श्रीराम चरित

खण्ड-३

— श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'

श्रीराम - चरित

[तृतीय खण्ड]

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशक—
श्रीकृष्ण - जन्मस्थान सेवा - संस्थान
मथुरा – २८१००१ (उ० प्र०)

मुद्रक—
राधा प्रेस
९९३/३, गोस्वामी गणेशदत्त मार्ग
गांधीनगर, दिल्ली-११००३१
दूरभाष : २१३१०७

प्रथमावृत्ति-सन् १९७९ ई०
संस्करण : २०००

राज-संस्करण— १४) रुपये
सजिल्द— १२) रुपये

श्रीरामचरित—(तृतीय खण्ड)

अनुक्रमणिका

मङ्गलाचरण

विमल रघुवीर विरद वायु-पुत्र साकार ।
विघ्न - हरण , क्लेश-शमन , बुद्धि , ज्ञान , गुणागार ॥
वन्दन विवेक-निधि, पावन वैराग्य मूर्त्ति ।
वारिय विकार, राम - सुयश - गान - काम पूर्त्ति ॥

तृतीय नेत्र - धूम्र धूसरित पीत जटा जाल—
गङ्गधार - आर्द्र , कृष्ण कुण्डलित फणीश माल ॥
उज्वल इन्दुभाल, भव्य धूर्जटि - कर कपाल ।
नीलकण्ठ , आशुतोष , गरलाशन , प्रणतपाल ॥
हर-हर शिव साम्बशम्भु , वन्दन सगण , सुत समेत ।
कृपा दृष्टि , परमोदार वृषभध्वज कृपागार ॥

भगवान श्रीराम

अपनी बात

अब तक श्रीरामचरितको प्राय: काण्डोंमें विभाजित करनेकी वह परम्परा अपनायी गयी है, जो आदि कवि महर्षि वाल्मीकिके द्वारा प्रवर्तित हुई। मैंने इस चरित-वर्णनका मुख्य आधार वाल्मीकीय रामायणको मानकर भी इस परम्पराका निर्वाह नहीं किया है ; क्योंकि उस परम्परामें अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दरकाण्ड पर्याप्त छोटे हो जाते हैं। यह चरित इसलिए भी उस परम्परासे पृथक है ; क्योंकि यह काव्य नहीं है। गद्य-वर्णनके लिए उसके उपयुक्त विभागीकरण मुझे ठीक लगा। ऐसा विभाजन करनेमें भी प्रथम खण्ड वहीं पूरा हुआ है, जहाँ काव्य-परम्पराने बालकाण्ड पूरा किया है।

दूसरे खण्डको अयोध्याकाण्ड कहना मुझे अपने वर्णनके उपयुक्त नहीं लगा। इस खण्डकी घटनाएँ अयोध्यामें ही घटित नहीं होतीं। अवश्य ही इन घटनाओंका मूल अयोध्याके राजसदनमें महारानी कैकेयीके द्वारा उपस्थित किया गया दुष्काण्ड ही है और यदि काव्य-परम्पराका निर्वाह करके भरतके नन्दिग्राम-निवासपर इसे पूरा कर दिया जाता तो इसे अयोध्याकाण्ड कहना उपयुक्त लगता ; किंतु मुझे जब अरण्य और किष्किन्धाके वर्णन पृथक नहीं करने हैं अच्छा लगा कि श्रीरामकी भी शान्त वन-यात्रा इसीमें ले ली जाय। भरत जैसे नन्दिग्राममें साधन-रत हैं, श्रीसीताराम-लक्ष्मणके साथ पञ्चवटीमें विराजमान हैं।

इस तृतीय खण्डका प्रारम्भ ही श्रीजनक-नन्दिनीके हरणके दारुण प्रसङ्गसे हुआ है। जैसे द्वितीय खण्ड वन-गमनकी भूमिका लेकर प्रारम्भ होता है। सीता-हरण एक नवीन अध्याय स्वयं श्रीराम-चरितमें प्रारम्भ करता है और इसकी परिसमाप्ति रावणके वधपर होती है। अत: इस सहज घटना-क्रमके विभागको ही मैंने मान लिया है।

जैसे प्रथम खण्ड आनन्दोत्सवोंके द्वारा परिपून है, श्रीरामचरितका अन्तिम भाग भी मिलन, दीर्घ-वियोगकी परिसमाप्ति और श्रीराम-राज्यका उल्लास लिये है। वैसे प्रत्येक जीवन जो धरापर— मर्त्यधरापर प्रकट होता है, उसकी जो स्वाभाविक परिसमाप्ति है—लीलासंवरणकी उस समाप्तिसे चरित-लेखनमें बचा नहीं जा सकता।

नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सतकोटि अपारा।।
कलपभेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन गाए।।

रा. च. मा. बा. ३२.६.७

श्रीरामचरितमानसकी यह अमर पंक्ति ध्यानमें रहनी चाहिये। किसी भी चरित-लेखकके लिए सम्भव नहीं है कि ऐसे कल्पभेदसे हुए चरितोंको एक ही वर्णनमें समन्वित कर ले। जैसे केवट-प्रसङ्ग कहाँ आवे, परशुरामजी कहाँ मिलें, धनुर्भङ्ग राजाओंके एक साथ हुए प्रयत्नके मध्य हो अथवा उनके विफल लौटनेके पश्चात्—ये वर्णन निर्णयकी अपेक्षा करते हैं। मैंने इनके निर्णयका आधार अध्यात्म रामायण अथवा वाल्मीकीयको बनाया है, वैसे ही अन्य रामायणोंमें वर्णित सभी चरितोंको स्थान अथवा कालके भेदसे कहीं ले लिया जाय, यह सम्भव नहीं हुआ है।

श्रीरामोपासनाकी शृङ्गारिक शाखा अर्थात् श्रीरामकी मधुर भावसे उपासनाके जो आधार-ग्रन्थ हैं, उनमें वर्णित चरितोंका समन्वय वाल्मीकिके वर्णनसे किसी प्रकार हो नहीं पाता था। अतः ऐसे वर्णन मुझे छोड़ ही देने पड़े हैं।

यहाँ भुशुण्डि रामायणका नामोल्लेख उपयुक्त होगा। इस ग्रन्थमें श्रीरामचरितको जहाँ एक ओर वज्रयानकी तान्त्रिक साधनासे समन्वित किया गया है, वहीं दूसरी ओर श्रीकृष्णकी गोकुल-वृन्दावनकी लीलाओंसे भी एक किया गया है। महाराज दशरथ रावणके भयसे अपने चारों कुमारोंको गुप्त रूपसे सरयू पार गोपोंके मध्य रहने भेज देते हैं और वहाँ प्रायः वे सब चरित होते हैं, असुरवध, गिरिधारण, रास आदिके, जो श्रीकृष्ण-चरितमें हैं। ऐसे वर्णन कल्पभेदसे सत्य हो सकते हैं किंतु उन्हें इस चरितमें लेना किसी प्रकार मेरे लिए सम्भव नहीं हुआ।

श्रीरामचरित मैंने अपने लिए ही लिखना प्रारम्भ किया था; किंतु इस बार एक नवीन बात हुई। मैंने जो भी पुस्तकें लिखीं, उनके प्रकाशनकी बात मैंने सोची नहीं। फलतः लिखे जानेके कई-कई वर्ष पीछे वे छपीं। तब छपीं जब कोई दूसरा ही किसी संयोगमें पाण्डुलिपि पढ़नेको पा सका और उनके छापनेमें रुचि लेने लगा। लेकिन इस श्रीरामचरितके प्रकाशनमें वह परिपाटी भङ्ग हो गयी है। भाई श्रीजयदयाल डालमियाके आग्रहसे इसको 'श्रीकृष्ण-सन्देश' में जुलाई ७६ से (प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ) देना प्रारम्भ

किया गया, जब कि चरितके केवल दो खण्ड पूरे हुए थे। तीसरा खण्ड लिखा ही जा रहा था।

हिन्दी गद्यमें कोई भक्तिके दृष्टिकोणसे लिखा गया बड़ा रामचरित नहीं है। जन सामान्यमें वाल्मीकीय रामायणकी कथा अत्यल्प परिचित है। इन कारणोंसे और इसलिए भी कि यह अपने आराध्यका चरित है, श्रीरामभक्तोंको प्रिय लगेगा।

मुझे इसके लिखनेमें राम-कथाके चिन्तनका लाभ मिला है। भगवद्भक्तोंको यह प्रिय लगे, उनको प्रसन्नता प्राप्त हो तो यह मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य।

यहीं एक बात कह देनी है कि श्रीराम-चरितका आध्यात्मिक अर्थ अनेकोंने किया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी आध्यात्मिक अर्थका संकेत किया है। सीता-हरण, सीता-शोध, रावण-वध आध्यात्मिक अर्थके प्रमुख आधार बनते हैं। इस अर्थकी ओर अंगुल्या निर्देश करके भी मैं गोस्वामी तुलसीदासजीकी ही भाँति अयोध्या-नरेश महाराज दशरथके पुत्र श्रीराम और उनके चरितका चिन्तक-लेखक हूँ।

श्रीराम मेरे कुल-पुरुष हैं। मैं कहता हूँ—

राम-कृष्णमें भेद नहीं है।
जहाँ भेद है—वेद नहीं है॥
पूर्वज अपने राम प्रणम्य।
सहज कृष्णका सौहृद गम्य॥

ऐसी स्थितिमें जो रामकी ऐतिहासिकता ही अस्वीकार करके उनके चरितको केवल आन्तरिक संघर्ष कहते हैं, ऐसे महाचिन्तकोंको प्रणाम ही किया जा सकता है। मेरे लिए तो श्रीरामचरित लेखन, अन्तःकरण-शुद्धिका सर्वश्रेष्ठ साधन, भगवच्चिन्तन ही नहीं, पितृऋण-परिशोधका भी प्रयास है। आपको भी यह प्रसन्न-निर्मल करेगा यदि उन कौसल्यानन्द-वर्धनके श्रीचरणोंमें आपकी श्रद्धा है।

—सुदर्शन सिंह

स्वर्गाश्रम
२६-४-७६

उपक्रम

आपके मनमें कोई विचार मूर्त हुए बिना, वह क्या जीवनमें किसी कार्यके रूपमें आ सकता है ? जीव अज्ञानी हैं, अतः अनजानमें उससे कुछ हो जाना सम्भव है ; किंतु सृष्टिकर्ता अज्ञानी नहीं हैं। अतः सृष्टिमें ऐसा कोई पदार्थ या क्रिया सम्भव नहीं जो चेतन सृष्टिकर्ताके मानसमें पहिले आये बिना मूर्त हो जाय।

मानसमें आये विचार आध्यात्मिक हैं। वाह्य जगतमें व्यक्त पदार्थ, क्रिया आधिभौतिक हैं। इन दोनोंके मध्य अधिदेव है। जैसे आपका शरीर अधिभूत है और आप स्वयं-जीवका अध्यात्म हैं; किंतु जीव जिस मन, बुद्धि, चित्त, अहंको लेकर शरीरको चलाता है, वह अन्तःकरण अर्थात् पूरा सूक्ष्म शरीर अधिदेव है। इसी प्रकार सृष्टिमें जितने कार्य या पदार्थ व्यक्त होते हैं, उनमें जो उनकी संचालक चेतना है, उसे अधिदेव कहते हैं।

मनमें जो भाव, मूर्ति आ सकती है, वह वाह्य जगतमें भी मूर्त हो सकती है। वाह्य जगतमें जो मूर्त है, उसका अधिदेव है और अध्यात्म भी है। बिना अध्यात्मके अधिभूत सम्भव ही नहीं है। अतः आप जो भी घटना या पदार्थ देखते सुनते-जानते हैं, वह या तो काल्पनिक है और यदि तथ्य है तो उसका आध्यात्मिक आधार भी है।

पुराणमें वर्णित घटनाओंकी आध्यात्मिक व्याख्या ही इसलिए सम्भव है; क्योंकि वे काल्पनिक नहीं हैं। उनका आधिभौतिक रूप भी ऐतिहासिक सत्य है। जब कोई कहता है—'यह वर्णन केवल मनुष्यकी आन्तरिक सत्-असत् भावनाओंका संघर्ष-वर्णन है।' तब वह सृष्टिके इस तथ्यसे ही दूर रहता है कि जो आन्तरिक तथ्य है, वह इतिहासका सत्य बन चुका है अथवा बनने वाला है।

यह बात सृष्टिकी समस्त घटनाओं, पदार्थोंके सम्बन्धमें कही गयी; किंतु ईश्वर तो सत्यसङ्कल्प है। उस नित्य चिन्मयका संकल्प ही तो यह सृष्टि है। अतः भगवदीय अवतार कभी किसी कालमें हुआ, ऐसा नहीं है। अवतार-कालमें जो चरित हुए, वे नित्य हैं। वे सब लीलाएँ अब भी वैसे ही हैं। अवतार-कालमें उनका आविर्भाव स्थूल जगतमें होता है और फिर तिरोभाव रहता है।

श्रीरामचरितकी समस्त लीलाओंका इस समय तिरोभाव मात्र है। अब भी भाव-प्रवण भक्तोंके लिए किसी भी लीलाका आविर्भाव सम्भव है। समय-समयपर होता रहता है।

श्रीरामचरितकी आध्यात्मिक व्याख्या सम्भव ही इसलिए है ; क्योंकि उसका ऐतिहासिक रूप भी तथ्य है—इतिहासका मुख्य तथ्य है। यदि वह इतिहासका मुख्य तथ्य न हो तो मानस-जगतका भी मुख्य सत्य नहीं हो सकता था !

श्रीरामचरितकी घटनाओंमें सीता-हरणसे लेकर रावण-वध तथा सीताकी पुनरुपलब्धि तककी घटनाओंकी आध्यात्मिक व्याख्या बहुत लोगोंने की है, अब भी की जाती है। जीवात्मा परमात्मासे अभिन्न है। उसकी नित्य शक्ति—नित्य स्वभावभूता शक्ति सीता अर्थात् शान्ति। यह शान्ति अज्ञानके कारण ही अपहृत है। जीवनमें वैराग्य आवे तब शान्तिका पता लगे और अज्ञानका नाश हो, तब शान्तिकी उपलब्धि हो। यही आध्यात्मिक व्याख्याका मुख्य रूप है। इस व्याख्याकी ओर संकेत गोस्वामी तुलसीदासजी-ने भी गीतावलीमें किया है।

'मोह दसमौलि तद् भ्रात अहंकार······'

और

'प्रबल वैराग्य दारुण प्रभञ्जन तनय।।

श्रीरामचरितकी यह व्याख्या सत्य होते हुए भी मुझे सदा अनावश्यक लगी है; क्योंकि जो आध्यात्मिक साधन बहुत-से ग्रन्थोंमें स्पष्ट वर्णित हैं, उन्हींको कथाके द्वारा निकालनेका कष्ट क्यों उठाया जाता है ? जो सरल-सुगम रीतिसे उपलब्ध है, उसे क्लिष्ट कल्पनाके द्वारा व्याख्यायित करनेकी आवश्यकता ? लेकिन लोकरुचि अद्भुत है। लोगोंको क्लिष्ट कल्पना, रहस्य-निरूपण प्रिय लगता है, इस ओर आकर्षण होता है।

जहाँ तक मेरी बात है, मेरी अपनी सत्ता ही श्रीरामके ऐतिहासिक तथ्यका प्रमाण है। वे मर्यादापुरुषोत्तम पृथ्वीपर प्रकट न हुए होते तो उनके वंशका यह बालक ही कहाँसे आता। अत: मेरी रुचि किसी आध्या-त्मिक रूपकके वर्णनमें नहीं है। मैं जिस जिस रामचरितका वर्णन कर रहा हूँ, वह मेरे मनमे सत्य है। इस पृथ्वीपर घटित सत्य है और केवल सत्य-घटना मात्र नहीं है। ऐसा सत्य है कि अब भी जिसके स्मरणमें उसका कोई अंश भी आ जाता है, उसके अन्त:करणके समस्त कल्मषोंको नष्ट करके उसे आलोकित कर देता है। उसे शाश्वत चित्प्रकाशसे परिपूरित कर देता है।

इस परम सत्य, परम पावन सत्यका ही मेरे साथ आप भी चिन्तन करें। आध्यात्मिक व्याख्याओंके उत्कट जञ्जालको एक ओर पटककर पञ्चवटीकी पर्णकुटीमें भगवती भूमिजाके साथ विराजमान जटामुकुटी, वल्कलवसन, कृष्णमृगचर्माम्बरोत्तरीय, धनुषस्कन्ध, पद्मपलाशलोचन, इन्दीवरसुन्दर श्रीरामका चिन्तन करें।

'देवि ! इस धरापर न मैं अकारण आया हूँ और न तुम आयी हो।' एक दिन एकान्तमें जब श्रीलक्ष्मण समीपके वनमें फल, कन्द एकत्र करने गये थे, श्रीराम अपनी अभिन्न सहचरीसे बोले, 'हम दोनोंके अवतरणका मुख्य प्रयोजन तो पूरा हो ही रहा है। यह व्यक्त रूप, हमारे चरितोंका चिन्तन प्राणियोंको पवित्र करके परमधामका अधिकारी बनाता रहेगा ; किंतु सुरोंका सङ्कट भी दूर करना है। लङ्कामें अपने ही जब प्रशप्त होकर राक्षस बने बैठे हैं, उन्हें अपनाना है। उनके मध्य अपने इस रूपमें तुम रहो, यह उचित नहीं है और रहो तो कोई लीला सम्भव नहीं है। तुम्हारी साक्षात् सन्निधिमें आसुर भाव दो क्षण भी नहीं टिकेंगे। तुम्हारी अवमानना तुम्हारी ऐश्वर्य शक्ति ही सहन नहीं करेगी। असुर-आसुर भाव तमसकी गाढता ही तो है। अतः तुम अपना कोई छाया-रूप प्रकट करो तो वह तुम्हारे उन शिशुओंके मध्य रहकर उनके उद्धारका माध्यम बने।'

'आर्य-पुत्र लीलभिनय करना चाहते हैं तो मुझे क्या आपत्ति है।' श्रीजनक-नन्दिनीने सस्मित कहा। सहसा उनके शरीरकी छाया मूर्तिमान हो गयी। ठीक ऐसी मूर्ति कि उसमें किञ्चित भी अन्तर पहिचानना सम्भव नहीं था—'अब आप इसे अपने वामाङ्गमें विराजमान करें।'

'इसलिए यह सम्भव है ; क्योंकि इसकी स्वयं कोई सत्ता नहीं है।' श्रीरामने उस छाया-मूर्तिको देखा–'यह तुम्हारी छाया तुमसे अभिन्न है।'

श्रीजनकनन्दिनी उसी समय वहाँ स्थित गार्हस्पत्याग्निमें, जिस अग्निमें श्रीराम नित्य हवन करते थे, जिसकी रक्षाकी सतत सावधानी अब तक श्रीजानकीने रखी थी, उसमें प्रविष्ट हो गयीं। *

इस प्रकार दशग्रीव-दलनके प्रधान कार्यका उपक्रम उस दिन उस पर्णशालामें हो गया।

---

*वैदिक प्रथा ही यह है कि यज्ञोपवीत संकारके पश्चात् बालक नित्य हवन प्रारम्भ करता था। विवाहके समय उसे गार्हस्पत्याग्नि मिलती थी। इस अग्निकी रक्षा पत्नीका कर्तव्य था। इसका विसर्जन संन्यासके समय या मरणोपरान्त होता था। श्रीराम-लक्ष्मण सङ्कट-कालकी विधिके अनुसार अपनी अग्नियाँ अयोध्यामें ब्राह्मणोंके पास छोड़ आये थे ; किंतु वनमें नित्य हवन करते थे। जहाँ स्थायी रहते थे, अग्नि-रक्षा भी होती थी।

सूर्पणखा

अपनी दिग्विजय-यात्रामें दुर्दम दशग्रीवने देवता-दानव किसीको अछूता नहीं छोड़ा था। उसने देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, किम्पुरुषोंपर विजय प्राप्त की तो वानर, नाग प्रभृति उपदेवताओंसे भी संघर्ष किया और अधोलोकोंमें जाकर दानव-दैत्योंसे भी दो-दो हाथ किये। इसी विजय-यात्रामें जब वह दानवोंसे युद्ध कर रहा था, अपनी सगी बहिन सूर्पणखाके पति विद्युज्जिह्वसे उसका संघर्ष हो गया। विद्युज्जिह्व रावणके हाथों मारा गया। सूर्पणखा विधवा हो गयी।

विधवा, शोकार्त्ता बहिन जब रोती-चिल्लाती लङ्का पहुँची, रावणने उसे शान्त करनेके लिए उस मयराष्ट्र प्रदेशकी राज्यपालिका बना दिया, जो प्रदेश मयने अपनी पुत्री मन्दोदरीके दहेजमें दशग्रीवको दिया था। सूर्पणखाके साथ खर, दूषण तथा त्रिशिरा ये तीन राक्षस-सेनापति चौदह सहस्र राक्षस सेनाके साथ नियुक्त किये। ये खर, दूषण, त्रिशिरा रावणके भाई—मातुल पुत्र थे और अत्यन्त पराक्रमी थे।

अब तो केवल लड़कियाँ ही नहीं, लड़के भी नख बढ़ाने लगे हैं। लेकिन वर्णनसे लगता है कि सूर्पणखा नाम उसके नखोंके कारण पड़ा होगा। उसकी अँगुलियाँ मोटी होंगी, अतः नख चौड़े होंगे और बढ़ाये गये नखोंका आकार सूर्प (सूप) के समान हो गया होगा।

अगस्त्याश्रमके आगेका पूरा दक्षिण-भारतका प्रदेश सूर्पणखाके ही प्रभुत्वमें था। दण्डकारण्य भी उसका अधिकृत प्रदेश ही था; किंतु जहाँ तक ऋषि-मुनियोंने आश्रम बना लिये थे, वहाँ तक राक्षसोंका उपद्रव उन तपस्वियोंके तेजसे बहुत कुछ सीमित हो गया था। इस प्रदेशमें सबसे दक्षिण मतङ्गाश्रम था और किष्किन्धाके वानरेन्द्र बालिके द्वारा पराजित होकर तो रावणने उसे अपना मित्र ही बना लिया था।

राक्षस दण्डकारण्य तक ही उत्पात नहीं करते थे, वे आगे शरभङ्ग आश्रमके समीप तक पहुँचते थे। वे निसर्ग क्रूर थे। घोर रजोगुणी थे। मांसभक्षी थे और प्राणि-हत्या उनकी प्रिय क्रीड़ा थी। वे प्रचण्ड तेजस्वी तपस्वियोंसे ही डरते थे। अवश्य ही चित्रकूटके अत्रि-आश्रमके दक्षिण-

विराध और पञ्चवटीके दक्षिण कबन्धसे वे दूर रहते थे। ये दोनों महा दैत्य उनके लिये भी दारुण थे।

पञ्चवटीमें श्रीरामने निवास किया, यह समाचार राक्षसोंसे छिपा नहीं था; किंतु महातेजस्वी आगस्त्यने भी जिनका सत्कार किया, विराध-को जिन्होंने मार दिया, उनके समीप जानेका साहस कोई सामान्य राक्षस नहीं कर सकता था।

खर-दूषण-त्रिशिराने भी उपेक्षाकी— 'वे धनुर्धर होकर भी कोई उत्पात तो करते नहीं हैं। अपने प्रदेशमें दूसरे तपस्वियोंको भी तो हम सहन करते हैं। अकारण उनको उत्तेजित नहीं करना चाहिये।'

खर-दूषण-त्रिशिरा सेनापति थे ; किंतु सूर्पणखाका तो उस प्रदेशकी राज्यपालिका थी। उसे अपने प्रदेशका पता रखना चाहिये। उसके प्रशा-सित प्रदेशकी पञ्चवटीमें आकर जो दो पुरुष पर्णकुटी बनाकर बस गये हैं, उन्हें देख लेना उचित लगा उसे। वह अकेली वनमें विचरण करने निकली। रावणकी दुर्धर्ष बहिनको अपने ही प्रदेशमें भय किसका ? स्वच्छन्द विहा-रिणी राक्षसी किसीको साथ लेकर घूमने निकले तो उसे अपनी स्वतन्त्रता-पर अंकुश लगता नहीं लगेगा ?

'इतना रूप ! इतना सौन्दर्य मनुष्योंमें होता है ?' दूरसे सूर्पणखाने श्रीराम तथा लक्ष्मणको देखा और देखती रह गयी। कल्पनासे परे जो असीम सौन्दर्य सिन्धु है, उसकी रूप माधुरीने एक काम-चारिणी राक्षसीको विमुग्ध बना दिया तो आश्चर्य क्या।

सूर्पणखा कोई सती, इन्द्रिय-जयी तो थी नहीं। कोई श्रद्धालु देखे उस रूप-राशिको तो अपनेको उसपर उत्सर्ग कर दे। कोई तत्त्वज्ञ तापस देखे तो उसको अन्तरमें आसीन करके युग-युगान्त तक उसके पादारविन्दों की सेवाको उत्कण्ठित हो ; किंतु इन्द्रियाम, विषय लोलुप जब रूप-राशि देखेगा तो उसे अपना उपभोग्य ही तो बनाना चाहेगा। वासना-विवश राक्षसी, उसकी वासना ही तो भड़क सकती थी।

'ये परम-सुन्दर !' राक्षसीकी वासना श्रीरामके समीप आसीना सीताको देखकर भी देखने नहीं देती थी। उसे तो दीखता था—'ये दोनों वृहद्बाहु, विशाल वक्ष, तरुण !'

वह मायाविनी थी। राक्षस उपदेवता हैं। उनमें-से प्रत्येकको जन्म-से इच्छानुसार रूप धारणकी सिद्धि प्राप्त होती है। सूर्पणखाके मनमें

नारीका जो सुन्दरतर रूप आ सकता था, वैसा रूप धारण किया उसने। अपनी समझसे वह त्रिभुवनकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी बनी थी।

सबके चिन्तनका स्तर होता है। सौन्दर्यकी परिभाषा भी सबकी एक नहीं है। अपने देश, काल, सभ्यताके अनुसार सौन्दर्यकी परिभाषा पृथक-पृथक होती है। सूर्पणखाको कैसे पता लगता कि अयोध्याके लोगोंकी सौन्दर्यानुभूति कैसी है। उसकी अपने परिवारकी—राक्षसोंकी सौन्दर्य-परिभाषा ही उसके मनमें आ सकती थी। उसीके अनुसार सर्वश्रेष्ठ रूप बनाया था उसने।

सात्विक शृङ्गारमें साज-सज्जा भी सात्विक होती है। मन्दिरकी कलामें कमल, वृषभ, स्वस्तिक चिह्न ही मिलेंगे, मनुष्यका कङ्काल कपाल तो मिलनेसे रहा। मिले भी तो भैरव, भद्र काली जैसे मन्दिरमें मिलेगा। सूर्पणखा कामातुरा थी। उसे सङ्कल्पसे ही वस्त्राभूषण व्यक्त करने थे; किंतु उस समय उसका मानस सात्विक कलाकी कल्पना करनेकी स्थिति-में था ?

विशाल सुपुष्ट शरीर, सबल कर-पद एवं मुखाकृति, अत्यन्त गौर-वर्ण अङ्ग-अङ्ग भारी रत्न-जटित आभूषणोंसे अलंकृत, अत्यन्त मूल्यवान रत्न खचित वस्त्र। सूर्पणखाको स्मरण ही नहीं रहा कि वनके इस परिवेश-में इतनी साज-सज्जा चौंकानेवाली है। यह भी स्मरण नहीं रहा कि नारीके सौन्दर्यमें शरीरका वर्ण, अङ्गराग, वस्त्राभरण ही मुख्य नहीं, सौकुमार्यका भी प्रधान स्थान है। उसके अनजानमें ही अन्तर्मनमें जो राक्षस कला निहित थी, आभरणोंमें, वस्त्रमें वह खुलकर व्यक्त हो गयी। उसे अपने आभरणों-वस्त्रके चित्रोंपर ध्यान देनेका अवकाश ही कहाँ था।

पूर्वाह्न कृत्य सम्पन्न करके सीताके साथ श्रीराम अपनी पर्णशालामें आकर बैठे ही थे कि सूर्पणखा आ गयी थी। वह गोदावरीके तटसे चरण-चिह्न देखती आयी थी मनोरम नारी रूप धारण करके, आभूषणोंकी झङ्कार करती, मटकती चपल कटाक्ष करके मुस्कराती वह श्रीरामको पर्ण-शालाके द्वारपर आयी।

सिंह स्कन्ध, सुकुमार, कन्दर्प-शतोपम इन्दीवराभिराम श्रीरामके समीप पहुँचकर उसने कटाक्षपात पूर्वक पूछा—नवघन सुन्दर ! मनोहारी ! तुम कौन हो ? इस घोर अरण्यमें क्यों आये हो ?'

'सुन्दरी ! हम दोनों भाई अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश दशरथजीके पुत्र हैं। पिताकी आज्ञासे वनमें आये हैं। मेरा नाम राम है और मेरे छोटे भाईका नाम लक्ष्मण है। ये मेरी पत्नी सीता हैं।' श्रीरामने भी सस्मित पूरा परिचय देकर सूर्पणखाके वस्त्राभरणको गम्भीर दृष्टिसे देखते पूछा—'तुम कौन हो ? अरण्यमें एकाकिनी क्यों घूम रही हो ? तुम राक्षसी तो नहीं प्रतीत होती हो।'

'तुम्हारा अनुमान अतथ्य नहीं है। मैं राक्षसी ही हूँ। मेरा नाम सूर्पणखा है। महामुनि विश्रवाका पुत्र लोकपाल कुबेरका भाई त्रिभुवनजयी रावण मेरा सगा भाई है। सदा सोते ही रहनेवाला महाकाय कुम्भकर्ण और धर्मात्मा विभीषण, ये मेरे दो भाई और हैं। मैं इस दण्डकारण्यकी प्रशासिका हूँ। मेरे प्रसिद्ध भाई खर-दूषण और त्रिशिरा मेरे सेनापति हैं।' सूर्पणखाने अपना परिचय छिपाना उचित नहीं समझा। उसे लगा कि ये चक्रवर्तीके कुमार हैं तो इन्हें सामान्य नारी स्वीकार हो ही नहीं सकती। अपने कुल, कुल-प्रभाव तथा ऐश्वर्यका पूरा परिचय दिया उसने—'मैं कामरूपिणी हूँ। तुम जैसा चाहोगे, वैसा रूप धारण कर सकती हूँ।'

'त्रिभुवनमें ऐसा कोई नहीं जो मुझे पानेकी इच्छा न करे ; किंतु मैंने सबका त्याग कर दिया है। तुम्हीं मेरे उपयुक्त पति हो और तुम्हारे उपयुक्त पत्नी मैं ही हूँ।' अब उसने श्रीजानकीकी ओर संकेत किया—'इस अत्यन्त दुर्बला-कुरूपा सीताके द्वारा तुम्हें क्या सुख मिलेगा ? इस अल्प-प्राणाकी ओर मत देखो। तुम्हें इसका और भाईका संकोच हो तो मैं दोनोंको खाये लेती हूँ। मुझे स्वीकार करके यहाँके राज्य वैभवका भोग करो।'

'तुम देखती ही हो कि मैं विवाहित हूँ और पत्नी मेरे साथ हैं। हम आर्य जिसका पाणि-ग्रहण करते हैं, प्राण देकर भी उसकी रक्षा अपना कर्तव्य मानते हैं। तुम सपत्नीके साथ रहो, यह तुम्हारे गौरवके अनुरूप नहीं है।' श्रीरामने हँसकर यह कहा ; किंतु स्पष्ट कर दिया कि सीताका उत्पीड़न वे सह नहीं सकेंगे। लक्ष्मणकी ओर संकेत किया—'वे मेरे छोटे भाई भी युवा हैं। वनमें पत्नी-विरहित हैं। वे यदि तुम्हें स्वीकार कर लें तो तुम्हारे योग्य अच्छे पति सिद्ध होंगे।'

'तुम्हारे रूपके योग्य मैं हूँ।' सूर्पणखाने समझा कि रामके सामने दूर खड़ी रहकर प्रस्ताव करके उसने भूल की है। लक्ष्मणके गलेमें ही भुजाएँ डालने बढ़ी तो वे हट गये। हँसकर बोली—'भागते क्यों हो ? राक्षसी हूँ तो भी तुम्हें खाऊँगी नहीं। तुम मुझे स्वीकार कर लो।'

'मैं तो उनका दास हूँ। मेरी पत्नी बनकर तुम दासी क्यों बनना चाहती हो।' लक्ष्मणने भी हँसकर कहा—'उनकी बनोगी तो मेरी स्वामिनी हो जाओगी। वे कौसलेश हैं, समर्थ हैं। उनके साथ जो हैं, वे तो पुरानी हो गयीं, दुर्बल भी हैं। अतः तुम मेरे उन अग्रजका ही वरण करो।'

कामातुरा सूर्पणखा परिहास समझनेकी स्थितिमें नहीं थी। उसे यह तर्क ठीक लगा कि राम उसे स्वीकार कर लें तो लक्ष्मणकी वह स्वामिनी बन जायगी। लक्ष्मण उसे सहज सुलभ होंगे। इसमें राक्षसीको कोई अनौचित्य नहीं दीखा। वह रामके समीप लौटी। श्रीरामने उसे देखकर दूर रहते ही कह दिया—'बहुत भोली हो तुम। देखती नहीं हो कि पत्नी मेरे पास हैं। मेरे भाईसे थोड़ा आग्रह भी नहीं करके उनकी बातोंमें आ गयीं!'

वह फिर लौटी। सचमुच उसे आग्रह करना चाहिये; किंतु लक्ष्मण-ने इस बार समीप आनेका अवसर ही नहीं दिया। तनिक दूरसे ही डाँटा—'दुष्टे! वहीं ठहर। तू नारीकी मर्यादा भी नहीं समझती। अग्रजका वरण करने जाकर तू मेरी आदरणीया बनी और मेरे समीप आकर उनके लिए अस्पृश्या हो गयी, यह भी तेरी बुद्धिमें नहीं आया। तुझ असती निर्लज्जाका वरण वही कर सकता है जो तेरे समान ही लज्जासे सर्वथा शून्य केवल वासनाका दास हो।'

'क्या ? त्रिभुवनजयी अमित पराक्रम दशग्रीवकी दुर्धर्षा भगिनीको कोई इस प्रकार प्रताड़ित करनेका साहस करता है ?' सूर्पणखाके नेत्र जल उठे। काममें—प्रबल काममें बाधा पड़नेपर वैसा ही प्रबल क्रोध आया। वह पलटी—'रामने इस प्रकार अपमानित करनेको उसे छोटे भाईके समीप भेजा ? रामको गर्व किसपर है ? उस छुई-मुई-सी सीतापर जो उनके समीप है ?' सूर्पणखाको सीताकी उपस्थिति प्रारम्भसे खटक रही थी। वह समझती थी कि यह दुर्बला स्त्री ही उसकी इच्छा-पूर्तिमें बाधक है। अब वह उसे अवश्य खा लेगी।

सूर्पणखा लक्ष्मणके पाससे लौटी तो उसकी व्याकुलता, निर्लज्जता, एकसे दूसरे भाईके पास भटकना देखकर, वह फिर अपने स्वामीके समीप आ रही है, यह देखकर श्रीजानकीको हँसी आ गयी।

'यह मेरा उपहास करती है?' सूर्पणखाने सीताको हँसते देखा और क्रोधसे दाँत पीसा—'सूर्पणखा राक्षसी है। इसे अभी ज्ञात होगा कि राक्षसी कैसी होती है और राक्षसीके उपहासका साहस कितना दारुण होता है।'

कज्जल कृष्णवर्णा, अरुणकेशी, करालमुखी, विकटदंष्ट्रा, विघूर्णित-रथचक्र-पीत-नेत्रा, लम्बोदरी, लम्बितस्तनी, वृद्धा, विकराल नखा सूर्पणखा-का अपना रूप क्रोधावेशमें प्रकट हो गया। वह सीधे आग्नेय नेत्रोंसे सीताको घूरती झपटी।

इसके पूर्व क्षणमें ही, जैसे ही सूर्पणखा लक्ष्मणके समीपसे घूमी थी, लक्ष्मणकी दृष्टि अपने अग्रजकी ओर उठी। वह दृष्टि आदेश चाहती थी—'आर्य! इस राक्षसीके साथ यह परिहास?'

'लक्ष्मण! दुष्टोंके साथ परिहास नहीं किया जाता।' स्पष्ट कहा, श्रीरामने और दक्षिण करसे संकेत किया। करकी तीसरी अँगुली ऊपर उठी अर्थात् ऊपरका तीसरा लोक (भूः, भुवः स्वः में स्वः—स्वर्ग) उसका एक नाम नाक है, फिर तर्जन-अँगुष्ठने शून्य बनाया अर्थात् आकाशकी तन्मात्रा शब्द ग्रहण करने वाली इन्द्रिय कर्ण, अँगुलीसे काट देनेका एक झटका।

लक्ष्मणके लिए इतना संकेत पर्याप्त था। महर्षि अगस्त्यने इन्द्रके द्वारा दिया जो खड्ग श्रीरामको दिया था, वह लक्ष्मणके ही समीप था। कोशसे खड्ग खींचकर लक्ष्मण दौड़े और सूर्पणखाके आगे आ खड़े हुए। वह राक्षसी कुछ समझे, इससे पहिले उसकी नाक और दोनों कान काट दिये श्रीरामानुजने।

नासिका-कर्ण कट जानेपर रक्तकी धारा चल पड़ी। अपने ही रक्तसे लथपथ चिल्लाती राक्षसी हाथ-पैर फेंकती वहाँसे भागी।

श्रीरामानुजने पीछे लौटकर खड्ग स्वच्छ किया और इस शान्तिसे राक्षसीके रक्तविन्दु आश्रम भूमिसे स्वच्छ करने लगे जैसे कोई अत्यन्त सामान्य घटना हुई हो।

मध्याह्न स्नान-सन्ध्याका समय हो गया, जबतक लक्ष्मणने आश्रम-भूमि स्वच्छ की। दोनों भाई गोदावरी स्नान करने उठे तो श्रीरामने वैदेही-से कहा—'देवि! अब आज तुम भी सरिता-तट साथ ही चलो। तुम्हें अब थोड़े क्षण भी अकेले नहीं छोड़ा जा सकता।'

खर-दूषण-दलन

अकस्मात् चिल्लाती रक्त-स्नाता, नासिका-कर्णहीना सूर्पणखा अपनी राजधानी पहुँची। उसे इस रूपमें देखते ही राक्षसोंमें आश्चर्य, क्रोधावेश फैला। खर कुछ पूछे इससे पहिले हो सूर्पणखाने चिल्लाकर डाँटा —'तुम सब कापुरुष हो। निकम्मे हो। शत्रु घरमें घुस आया और तुम सब सुरा पीकर सो रहे हो। धिक्कार है तुम्हें।'

'बहिन! किस अज्ञने यह धृष्टताकी है?' खर क्रोधमें काँपता उठा। सूर्पणखाका हाथ पकड़कर उसने उसे नम्रता, स्नेह-पूर्वक बैठाया—'कौन मरनेको उत्सुक है? किसने अपने कालको आमन्त्रित किया है?'

'जाके देख कि वे कौन हैं!' सूर्पणखा क्रोधमें भरी चिल्लायी अयोध्याके दो राजकुमार तपस्वी बनकर पञ्चवटीमें आ बसे हैं। उनके साथ एक स्त्री है। ऐसी सुन्दरी स्त्री जैसी लङ्कामें कभी देखी-सुनी नहीं गयी। मैं भाई दशग्रीवके लिए उसे हरण करना चाहती थी तो छोटे कुमारने मेरी यह दशा बना दी।'

'शोणिताक्ष! अहि-भक्षी! महिषाक्ष!' खर एक ओरसे अपने सबसे क्रूर, बलवान राक्षसोंके नाम पुकारता चला गया। चौदह नाम पुकारे उसने और वे चौदह राक्षस उठ खड़े हुए–'उन दोनों कुमारोंको खा लो और उनके साथकी स्त्रीको यहाँ पकड़ लाओ।'

'मैं साथ जा रही हूँ। उन दोनोंका रक्त-पान करूँगी, तब मेरा क्रोध शान्त होगा।' सूर्पणखा उन राक्षसोंके आगे मार्गदर्शिका बनकर दौड़ चली।

'खर; दूषण; त्रिशिरा; तुम सब चलो; पूरी राक्षसी सेना चलेगी!' सूर्पणखा गयी और लौटी। पूरे वेगसे दौड़ती गयी थी राक्षसोंके साथ और अकेली भागती-हाँफती लौटी। लौटते ही उसने आदेश दिया। 'वे दोनों कुमार अत्यन्त दुर्धर्ष हैं। बड़ेने धनुष चढ़ाकर एक बाण छोड़ दिया और तुम्हारे भेजे चौदह राक्षसोंके उसके एक बाणने टुकड़े काट फेंके। ऐसे तो राक्षस-वंशका ही विनाश हो जायगा। सम्पूर्ण सेना लेकर आक्रमण करो। आज उन दोनोंका मैं अवश्य रक्तपान करूँगी। तुम उनके शरीर भक्षण कर लेना।'

खरको सूर्पणखाकी बात ठीक लगी। वैसे भी वह सूर्पणखाकी आज्ञा माननेको विवश था और जो एक बाणसे चौदह वीर राक्षसोंको मार दे सकता है, उसके समीप थोड़ी सेना भेजना अपनी शक्तिको क्षीण करना था। खरने युद्ध-भेरी बजा दी। क्षणोंमें ही राक्षसोंकी सम्पूर्ण सेना सज्जित हो गयी। इस बार भी अमङ्गलरूपा सूर्पणखा स्वयं मार्गदर्शिका बनकर आगे चली।

दिनका तृतीय प्रहर प्रारम्भ हो गया था। दक्षिणसे उठती धूलिका अम्बार, अपार कोलाहल सुनायी पड़ा। श्रीरामने अनुजसे कहा—'लक्ष्मण! राक्षसोंकी सेना आ रही है। इस समय युद्धकी अपेक्षा सीताकी सुरक्षा अधिक आवश्यक है। तुम्हें मेरी शपथ, प्रतिवाद मत करो। सीताको लेकर पर्वतकी गम्भीर गुफामें चले जाओ। धनुष चढ़ाकर सावधान रहना; किंतु इतने भीतर रहना कि राक्षस तुम्हें भी सहसा न देख सकें। मैं राक्षसों-के इस दलको देखता हूँ।'

लक्ष्मणको बोलनेका अवकाश ही नहीं था। उन्होंने दोनों त्रोण कसे। धनुष चढ़ाया और अग्रजके चरणोंमें मस्तक झुकाकर सीताजीको आगे करके चल पड़े। थोड़ी ही दूरीपर पर्वतमें एक गम्भीर गुफा दोनों भाइयोंने पहिलेसे देख रखी थी। श्रीजानकीने उस गुफामें प्रवेश किया। लक्ष्मण द्वारसे कुछ भीतर गुफाके द्वारकी ओर मुख करके, धनुषपर बाण चढ़ाये सावधान खड़े हो गये।

जैसे ही सीताको लेकर लक्ष्मण चले, श्रीराम भी उठकर खड़े हो गये। उन्होंने अपनी जटाएँ समेटकर मुकुटके समान बाँध ली। ऐणेयाजिन उत्तरीयके ऊपर पीठपर दोनों अक्षयत्रोण कसे। धनुष चढ़ाया और एक बाण दक्षिण करमें लेकर पर्णशालाके प्राङ्गणसे बाहर आकर खड़े हो गये। युद्ध होता है तो रक्त-मांससे पर्णशालाका प्राङ्गण अपवित्र नहीं होना चाहिये।

'वह रहा परमसुन्दर बड़ा राजकुमार!' सूर्पणखाके साथ खर आकाश-मार्गसे आया था। दूरसे सूर्पणखाने संकेत किया—'यह नवघनसुन्दर पद्म-पलाश-लोचन, परम सुकुमार दीखता ही है। अत्यन्त बलवान है। जटा-वल्कल कृष्णाजिनधारी ये लोग फल-मूलाशन हैं। जितेन्द्रिय, तपस्वी, धर्म-पालक होकर हमारे सभी नियमोंको नष्ट कर रहे हैं। गन्धर्वराजसे सुन्दर ये पता नहीं देवता हैं या मनुष्य। इसीके छोटे भाईने मुझे विरूप किया है;

किंतु वह गौर कुमार तथा इसकी भुवनसुन्दरी पत्नी कहाँ है ? लगता है कि इस बड़े भाईने पत्नी तथा भाईको कहीं छिपा दिया है।'

'यह सौन्दर्य !' खर तो देखता ही रह गया। उसने पीछे मुड़कर भाइयोंको समीप बुला लिया—'दूषण ! त्रिशिरा ! इतना सौन्दर्य तो ब्रह्माकी सृष्टिमें मैंने सुना नहीं। इनको मारकर सृष्टिकी सुन्दरताका उत्कृष्टतम उदाहरण नष्ट करनेको जी नहीं चाहता।'

'सेनापति अकम्पन !' खरके समान ही दूषण, त्रिशिरा भी उस रूप-राशिको अपलक देख रहे थे। जब दोनों भाइयोंने विरोध नहीं किया तो खरने अकम्पनको पुकारकर बुलाया और आज्ञा दी—'ये अनुपमेय सौन्दर्य-शाली मार देने-योग्य नहीं हैं। जीवनमें पहिली बार सुकुमार सौन्दर्यको देखकर खरकी जिह्वापर उसे खा लेनेके लोभसे पानी नहीं आया है। इन्हें देखते ही रहनेको जी चाहता है। यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको विरूप बनाया है; किंतु इनसे जाकर कहो क्षमा करता हूँ। दोनों भाई अपनी पत्नीको देकर यहाँसे चले जायँ। अब इन्हें जनस्थानमें नहीं रहना चाहिये।

श्रीराम सहज भावसे धनुष चढ़ाये, दक्षिण करमें बाण लिये इस प्रकार दक्षिण दिशाकी ओर देख रहे थे, जैसे आक्रमणको उद्यत वनराज गजयूथको देख रहा हो। अकम्पन उस अभय भङ्गीको ही देखकर काँप गया। सघन वृक्षोंकी ओटसे ही उसने पुकारा—'मैं जनस्थानके शासक राक्षसाधिप खरका दूत अकम्पन तुम्हें चेतावनी देता हूँ।'

'जनस्थान ?' श्रीरामके मुखपर हास्य आया—'तुम राक्षसोंने तो इसे निर्जनस्थान बना दिया है; किंतु राक्षस ! तू दूत है तो सम्मुख आ जा ! दूतको किसी धर्मज्ञ क्षत्रियसे भय नहीं होता।'

'राक्षसाधिप खरका आदेश है कि तुम अपनी पत्नीकी भेंट देकर भाईके साथ यहाँ से भाग जाओ तो वे तुम्हारा अपराध क्षमा कर देंगे।' अकम्पनने कहा—'तुमने उनकी बहिनके नाक-कान काटकर वधके योग्य अपराध किया है। वैसे भी हम राक्षस दया करना नहीं जानते; किंतु तुम्हारे सौभाग्यसे हमारे अधिपतिको तुमपर दया आ गयी है। कहाँ है तुम्हारी पत्नी ? उसे शीघ्र बुलाकर मुझे दो और तुम दोनोंको अविलम्ब यहाँसे चले जाना चाहिये। दण्डकारण्यमें पुनः प्रवेशका साहस मत करना।'

'राक्षस! हम भागते, भयातुर लोगोंपर प्रहार नहीं करते ।' श्रीरामने हँसकर कहा— अपने स्वामीसे जाकर कह, हम क्षत्रियोंका स्वभाव ही आखेट है और वन्यके दुष्ट खर हमारे विशेष लक्ष्य होते हैं ; किंतु उसे और तुम सबोंको भय लगता हो तो भाग जाओ । यह और सुन लो कि अबसे किसी ऋषि-मुनि-तापसको उत्पीड़ित किया तो राम पुनः क्षमा नहीं करेगा ।'

अकम्पन उलटे पैर भागा । वह मेघ-गम्भीर स्वर, वह धनुषपर बाण चढ़ानेकी उत्सुक भंगी—पता नहीं क्यों उसका हृदय रामको देखकर ही काँपने लगा था । खरके समीप जाकर उसने श्रीरामका उत्तर सुना दिया । खरने क्रोधपूर्वक आदेश दिया राक्षस सेनाको—'मार दो इस तपस्वी को ।'

'मार दो ! काट डालो ! खा लो !' चिल्लाती राक्षसोंकी सेना टूट पड़ी । गदा भल्ल, तलवार, त्रिशूल, पत्थर—कोई राक्षस शस्त्रहीन नहीं था । सबने एक साथ प्रहार किया । मानो शस्त्रोंकी वर्षा हुई ; किंतु उसे युद्ध कहना कठिन है । श्रीरामने धनुषका ज्या-घोष किया और हाथका बाण धनुषपर चढ़ाकर छोड़ दिया ।

'यह ? यह ?' खर ही नहीं, सभी राक्षस उस शत-सहस्र वज्रपातके समान कठोर ज्या-घोषसे ही भूमिपर गिर पड़े । तीनों भाई राक्षस-नायकोंके नेत्र फटे-फटे हो गये—'यह क्या इन्द्रजाल है ?'

मायावी राक्षस सर्वत्र माया देखनेके अभ्यासी । उन्होंने देखा कि श्रीरामका बाण धनुषपर पहुँचकर दस हुआ, छूटते ही सहस्र हो गया और लक्ष-लक्ष होकर राक्षसोंके शस्त्रोंके टुकड़े-टुकड़े काट दिये उसने । श्रीरामका कर कब त्रोणसे शर लेता है, कब धनुष प्रत्यञ्चापर पहुँचता है, कब बाण छूटता है, देखना कठिन था । पल-पल उस धनुषका ब्रह्माण्ड-भेदी प्रलयङ्कर ज्या घोष गूंज रहा था और गूंज रहा था राक्षसोंका आर्तनाद । किसीको कहीं भागनेको भी स्थान नहीं था । दिशाएं, गगन बाणोंसे भर गये थे । लगता था कि आकाशसे, पृथ्वीसे वनके पत्ते-पत्तेसे बिकराल बाण छूट रहे हैं । राक्षसोंके कर, पद, भुजाएँ, मस्तक, शरीर-खण्ड कट-कटकर उछल रहे थे । छिन्न अंगोंके भी टुकड़े हो रहे थे । पृथ्वी शस्त्र-खण्डोंसे, मांसके टुकड़ोंसे, रक्तकी वर्षासे भयावह हो उठी । मांसाशी, प्राणियोंका आर्तनाद सुनकर अट्टहास करनेवाले, रक्तकी होली खेलकर नृत्य करनेवाले, राक्षस आज आर्तनाद कर रहे थे और भागनेको भी स्थान नहीं पा रहे थे ।

'भाई दूषण !' खरने ललकारा। दूषण राक्षसोंकी सुरक्षित ५०० सेना लेकर आगे बढ़े, तबतक तो सम्मुख संग्राम-भूमिमें लड़ती मुख्य सेनाका हाहाकर समाप्त हो चुका था। किसी आहतकी सिसकी तक सुनायी नहीं देती थी।

'अरे तापस ! तेरा काल दूषण आ रहा है, सम्हाल !' व्यर्थ थी दूषणकी गर्जना और उसका गदाघात। रघुवंश-विभूषणके सम्मुख कभी दोष-दूषण टिका है ? क्या हुआ कि वह मूर्तिमान दूषण—दोषोंका साक्षात् अधिष्ठाता था, श्रीरामको तो दूसरा शर-सन्धान भी नहीं करना पड़ा। दूषण और उसके सहायक राक्षस प्रथम प्रहारमें ही पृथ्वीपर प्राण-हीन पड़े थे।

'मेरे रहते आप स्वयं युद्ध करने जायँगे ?' त्रिशिराने क्रोधावेशमें आगे बढ़नेको उद्यत त्रिशूल-हस्त खरको रोका। अवशिष्ट समूची सेना लेकर वह श्रीरामके ऊपर टूटा। प्रज्वलित अग्निपर पावसमें पतंग टूटते हैं तो उनका क्या होता है ? दूषणका अनुज त्रिशिरा—दूषणके पीछे क्या उत्पन्न होता है ? अन्तःकरण दूषित हुआ तो काम, क्रोध, लोभ—यही तो आवेंगे। गीतामें कहे गये नरकके तीन द्वार—'कामः क्रोधस्तथा लोभः, लेकिन इनमें कोई श्रीराम-चरण-चिन्तकको अभिभूत कर सकता है?

त्रिशिरा तो मूर्तिमान ज्वर था। आध्यात्मिक आधि दैविक, आधिभौतिक त्रिविध तापोंका साकार अधिदेवता। आधि-व्याधिके अधीश्वर उसके सैनिक; किंतु श्रीरामका स्मरण तो जिन्हें निःशेषकर देता है, वे स्वयं श्रीरामपर आक्रमण करें तो कितने क्षण टिकने !

खर—पशुता एवं कर्कशताकी घनीभूत मूर्ति—अहंकारका व्यक्त आक्रोश ! किंतु श्रीरामके पराक्रमने उसे भयभीत कर दिया। भाग सकता तो अवश्य भाग जाता। लेकिन दशग्रीवसे बचकर भागेगा भी कहाँ। उसने एक बार चारों ओर देखा, बाणोंसे—तीक्ष्ण बाणोंसे व्याप्त दिशाएँ ! खरने विवश होकर माया-युद्ध प्रारम्भ किया। दिशाएँ अन्धकारमें डूब गयीं। गगनसे प्रज्वलित शिलाएँ गिरने लगीं। पृथ्वीसे भूत-प्रेत-पिशाच प्रगट होकर अट्टहास करते दौड़ने लगे। लेकिन यह सब दो क्षण भी नहीं चला। श्रीरामके शरने माया ध्वस्त करके खरको भी मार दिया।

'लक्ष्मण ! तुम्हारे अग्रज किस अवस्थामें है, तनिक देखो तो !' श्रीजानकी बाहरके कोलाहल, चीत्कार, आर्तनादको सुनकर व्याकुल हो

रही थीं। वृक्षोंकी सघनताने गुफाका द्वार छिपा रखा था। इससे जहाँ गुफा अधिक सुरक्षित थी, वहाँ उसके भीतरसे बाहरका कुछ देखा नहीं जा सकता था।

'आप आर्यके धनुषकी प्रत्यञ्चा-ध्वनि पहिचानती हैं।' लक्ष्मणने अनेक बार यह आश्वासन दुहराया—'गूँज रहा है वह ज्याघोष और फलत: आततायी राक्षसोंका आर्तनाद भी गूँज रहा है। आपको आशङ्का करनेका कोई कारण नहीं है। धनुष चढ़ाये श्रीरामको क्षति पहुँचानेकी शक्ति त्रिभुवनमें है ही नहीं।'

'लक्ष्मण! अब तो वह ज्याघोष भी सुनायी नहीं पड़ता!' दो घड़ीमें ही श्रीरामने समूची राक्षस-सेनाको समर-शैया दे दी। विपक्षमें कोई आहत भी आर्तनाद करने वाला नहीं बचा था।

'अम्ब! मैं देखता हूँ।' लक्ष्मणने कहा—'लगता है आर्यने शत्रुओंको समाप्त कर दिया। आप किसीका चीत्कार या क्रन्दन भी तो नहीं सुनती हैं।'

धनुषपर बाण चढ़ाये लक्ष्मण गुफासे सावधानीपूर्वक निकले। उन्होंने वृक्षोंके झुरमुटमें-से ही इधर-उधर देखा और हँसकर धनुष उतारते हुए पुकारा— अम्ब नैकषेय युद्ध-शैयापर सो चुके। आप अब आकर मेरे संग्राम जयी अग्रजका स्वागत करें।'

श्रीजानकी गुफासे निकलीं। आतुर पदोंसे पर्ण-कुटीकी ओर बढ़ीं। लक्ष्मणने उनका अनुसरण किया। उनको देखकर श्रीरामने स्वस्थ, सस्मित स्वरमें पुकारा—'आओ लक्ष्मण!' उन्होंने धनुषकी ज्याको उतार लिया था। अब धनुष कन्धेपर पहुँच चुका था।

अङ्गोंपर स्वेद-बिन्दु झलमला रहे थे। स्थान-स्थानपर रक्त-बिन्दु सुशोभित थे। श्रीवैदेहीने समीप आकर एक-एक रक्त-बिन्दुको अपनी सुकुमार अँगुलीसे टटोलना प्रारम्भ किया—'आर्यपुत्रको कहीं आघात लगा है?'

'ये प्रतिपक्षियोंके रक्तबिन्दु हैं देवि;' श्रीरामने हँसकर कहा।

'किंतु आर्यपुत्र अत्यन्त शान्त हो गये हैं।' श्रीमैथिलीने अपने करोंसे स्वामीकी पीठपर कसे त्रोण खोले—'अब आप तनिक विश्राम करके तब स्नान करें।'

लक्ष्मणने अग्रजके चरणोंमें प्रणाम किया और उठ खड़े हुए वे परम चतुर। इस समय श्रीसीतारामको एकान्त देना आवश्यक था। कार्य बहुत था। आश्रमके समीप इतना रक्त, मांस सड़नेको नहीं छोड़ा जा सकता था। यह सब पड़ा रहा तो रात्रिमें ही मांस-भक्षी पशुओंका समूह यहाँ एकत्र होगा और वह अस्थि-खण्ड, मांससे पर्णशाला-प्राङ्गण भी दूषित कर देगा।

दिनका तृतीय प्रहर व्यतीत हो चुका था। सायंकालसे पूर्व समर-स्थानको स्वच्छ करनेके लिए लक्ष्मणको धनुषका सहारा लेना पड़ा। वायव्यास्त्रका सन्धान करके ही उन्होंने उस भूमिमें पड़े सब शव-खण्डोंको शस्त्रोंके टुकड़ों-सहित समेटकर एक भारी खड्डमें फेंका। उसपर काष्ठ-राशि डाली और तब उसे प्रज्वलित कर दिया।

सायं स्नानके लिए दोनों भाई गोदावरी-तटपर पहुँचे तो श्रीजानकीको भी स्नान करना था। उनके कर भी स्वामीके स्पर्शसे राक्षसोंके शोणितमें सन गये थे। उस समय उस खड्डसे धुआँ और लपटें उठ रही थीं। उसमें चौदह सहस्र राक्षसोंकी चिता खर-दूषण-त्रिशिराके साथ जल रही थी। जनस्थान सचमुच जनस्थान—मुनिजन-स्थान हो चुका था। श्रीरामने उसे निर्जन बनाने वाले राक्षसोंका नाम शेष कर दिया था।

—•—
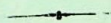
लंकामें खलबली

असुरोंमें सब अज्ञ ही नहीं होते। उनमें भी बुद्धिमान होते हैं। जनस्थानमें ऐसा हो बुद्धिमान अकम्पन न होता तो वह भागकर प्राण बचा पाता? खरने उसे श्रीरामके समीप दूत बनाकर भेजा था। श्रीरामको समीपसे देखकर ही वह समझ गया था कि उसके पक्षका विनाश निश्चित है! खरको सन्देश दिया उसने और जब खरने राक्षसोंको आक्रमणका आदेश दिया, वह युद्धभूमिसे दूर खिसक गया। उसकी अनुपस्थितिकी ओर भला उस समय कौन ध्यान देता।

खरके मारे जानेके पश्चात् छिपकर युद्धके परिणामको देखनेवाला अकम्पन भागा। उसे भय लगा कि राम अब कहीं बचे राक्षस न ढूंढ़ें। सीधा लङ्का गया वह! रावणके सम्मुख अत्यन्त कातर काँपता पहुँचा। उसकी अवस्था देखकर रावणने डाँटा— तू इतना कातर क्यों हो रहा है? क्या कहना चाहता है?'

'बहुत अप्रिय समाचार है!' अकम्पन हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया— 'आप यदि मुझे अभय दें, आश्वासन दें कि मेरा वध नहीं कर देंगे तो निवेदनका साहस करूँ।'

'अच्छा, अभय दिया तुझे!' रावण हँसकर बोला—'मेरा अप्रिय करनेका साहस यम इन्द्र वरुण और विष्णु भी नहीं कर सकते। कौन है जो अपने मरणको आमन्त्रित करने लगा है।'

'जनस्थान राक्षसहीन हो गया।' अभय पाकर भी अकम्पन निर्भय नहीं हुआ था। डरते-डरते ही उसने कहा—'अयोध्याके राजकुमार राम अमित तेजस्वी, धनुर्धारियोंमें सर्वश्रेष्ठ, दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता हैं। उनके समान ही अनलोपम उनके छोटे भाई लक्ष्मण उनके सहायक हैं। रामके बाण तो सिंह बनकर राक्षसोंका भक्षण करते है।'

'अयोध्या—अयोध्याके राजकुमार राम?' रावण चौंका और उठ खड़ा हुआ—'मैं अभी स्वयं जाकर उन दोनोंको मार दूंगा।'

'क्रुद्ध श्रीरामके सम्मुख मत जाइये! वे अभी क्रोधमें भरे होंगे।' अकम्पनने चरण पकड़ लिया रावणका—'मैंने उनको युद्ध करते देखा है।

वे समस्त पृथ्वीको पलक झपकते समुद्रमें डुबा दे सकते हैं। युद्धमें स्वयं काल भी उनको पराजय नहीं दे सकता। नीतिको अपनाइये! रामकी पत्नी भुवनसुन्दरी है। वे उसे इतना चाहते हैं कि उसके वियोगमें व्याकुल होकर अवश्य प्राण त्याग देंगे। आप किसी प्रकार उनकी पत्नीका अपहरण करो।'

'अच्छा!' दशग्रीव गम्भीर हो गया। उसे सोचनेके लिए समय चाहिये था। अकम्पनको विदाकरके वह राक्षसोंकी राजसभामें आ बैठा। यह चिन्तनकी उसकी अपनी शैली थी। राजसभाके चाटुकार जब उसकी स्तुति करते होते थे, उसका मस्तिष्क अधिक सक्रिय हो जाता था।

दशग्रीव असावधान नहीं था। अयोध्यासे वह सदा सशङ्क रहा था। अनरण्यने उसे शाप दिया था कि उनका वंशज ही उसे मारेगा और जबसे राम-लक्ष्मणने विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षाके निमित्त सिद्धाश्रमके समीप रहने वाले राक्षसोंको मारा था, रावण अयोध्याके इन दोनों राजकुमारोंसे अधिक सशङ्क हो गया था। वह इनकी गतिविधिका पता रखता था।

रामने शिव-धनुष तोड़ दिया। विश्वामित्रका स्नेह प्राप्त किया और परशुरामको भी प्रसन्न कर लिया। परशुराम दक्षिणमें महेन्द्राचलपर ही रहते हैं और उन्हें क्रुद्ध करनेका साहस नहीं किया जा सकता। अयोध्याके विरुद्ध जितने मोर्चे रावणने अत्यन्त सावधानीपूर्वक खड़े किये थे, राम एक-एकको ध्वस्त करते जा रहे हैं। पिताकी आज्ञाका बहाना बनाकर वे वनमें आ गये भाईके साथ और अतुलनीय पराक्रमी विराधका वधकरके अब तो दण्डकारण्यमें पहुँचकर पञ्चवटीमें बस गये हैं।

रावणने सोलह राक्षसोंको राम-लक्ष्मणको मारनेका आदेश देकर पञ्चवटी भेजा था। वे सभी बलवान थे, मायावी थे; किंतु उन्हें खर-दूषणके समीप तो भेजा नहीं जा सकता था। रावण स्वयं सीघ प्रयत्न कर रहा था और वह उलटा पड़ा। वे राक्षस योजनबाहु कबन्धकी पकड़में आकर उसके पेटमें पहुँच गये। अब आज अकम्पन यह समाचार लाया है।

'मूर्ख! चारचक्षुहीन; स्त्रीजित! कामुक! तू महाराज बनता है? तुझे अपने राज्यका कुछ पता है?' सूर्पणखा सगी बहिन थी। वह सीधे राजसभामें पहुँची और रावणकी भर्त्सना करने लगी—'तेरे आरक्षी खर-दूषण, त्रिशिरा पूरी सेनाके साथ मार दिये गये। भारतकी मुख्य भूमि पर अब पद धरने जितना प्रदेश भी तेरा नहीं है। तेरे जनस्थानको, मय-

राष्ट्रको शत्रुने अधिकृतकर लिया और देख तेरी बहिन होनेके कारण मेरी क्या दुर्गतिकी गयी है ! धिक्कार है तुझे ! तू यहाँ निश्चिन्त बैठा है ?'

सूर्पणखा जनस्थानमें युद्धारम्भ होते ही दूर हट गयी थी। अकम्पन भी बचा है, यह उसे पता नहीं था। जब युद्धका कोलाहल शान्त हो गया, गगनमें राक्षसोंको चिताका धूम उठने लगा, आकाशसे ही राम-लक्ष्मणको सीताके साथ गोदावरी-तटपर जाते देख सूर्पणखाने सिर पीटा—'हाय ! मेरे तीनों भाई और सब सैनिक मारे गये ?'

'वह नरेश नष्ट हो जाता है जो गुप्तचर, कोश, मन्त्रियों और सेनाको अपने वशमें नहीं रखता। जो शत्रुकी ओरसे उदासीन रहता है। तुझे पता है. रामने ऋषियोंके सम्मुख समस्त राक्षसोंको मार देनेकी प्रतिज्ञा की है ?' सूर्पणखा रोती-चिलाती लङ्का आयी और राजसभामें रावणके सम्मुख अपने केश नोचती, छाती पीटती क्रन्दन कर रही थी --'कमललोचन इन्दीवर-सुन्दर, जटामुकुटी, वल्कलवसन राम क्रुद्ध होकर समुद्रको सुखा दे सकते हैं। तू उनके पराक्रमके सम्मुख तुच्छ है !'

'बहिन ! यह सब कैसे हुआ ?' रावणने हाथ पकड़कर उठाया—तेरे कर्ण-नासिका क्यों काटे उन्होंने और मेरे सुरासुरजयी आरक्षी खर-दूषण-त्रिशिरा······।'

अकम्पनने जो कुछ कहा था, उसे तब रावण पूरा समझ नहीं सका था। 'जनस्थानके सब राक्षस मारे गये। इसका अर्थ इतना भयानक है, यह अब उसकी समझमें आया। वह चिन्तित हो उठा।

'कैसे क्या हुआ ?' सूर्पणखाने विवरण बताया—'उनके साथ एक स्त्री है। ऐसी स्त्री त्रिभुवनमें दूसरी नहीं है। मन्दोदरी भाभी उसकी दासी होने योग्य भी नहीं। उसके सौन्दर्यके सम्मुख उमा-रमा तुच्छ हैं। मैंने इन सबको देखा है; किंतु घूमती पञ्चवटी पहुँची तो उस स्त्रीको देखकर देखती रह गयी। उसके बिना तो तेरा अन्तःपुर कुरूपाओंका आगार है। मैं तेरे लिए उसे उठा लाना चाहती थी। मेरी इस चेष्टासे वे दोनों क्रुद्ध हो उठे। स्त्री समझकर मेरा वध नहीं किया। नाक-कान काटकर भगा दिया। मैं खर-दूषणके समीप पुकारती पहुँची ; किन्तु हाय ! इस भाग्यहीना बहिनकी सहायता करने जाकर वे तीनों भाई सम्पूर्ण सेनाके साथ मारे गये।'

सूर्पणखा पछाड़ खाकर गिरी। रावणने उसे उठाया—'तू लङ्कामें रह। अन्तःपुरकी सब स्त्रियाँ तेरा सम्मान करेंगी। दशग्रीवका सम्पूर्ण

ऐश्वर्य तेरा है। तेरा उपहास करने वाला प्राणदण्ड पावेगा। हमारे भिषक् तेरे कर्ण-नासिकाका आरोपण कर देंगे।'

सूर्पणखाको समझाकर रावणने चिकित्साके लिए भेजा। अब राज-सभामें बैठना उपयुक्त नहीं था। वह उठा वहाँसे। उसके मस्तिष्कमें आँधी चल रही थी—'राम-लक्ष्मणने खर-दूषण-त्रिशिराको मार दिया! जनस्थान अधिकृत कर लिया!'

यह आँधी तो लङ्काके राक्षसोंके प्रत्येक मन-मस्तिष्कमें चलने लगी थी। नगरमें समाचार फैल चुका था। सब सशङ्क—'उन्होंने सम्पूर्ण राक्षसों-को मार देनेकी प्रतिज्ञाकी है? खर-दूषण-त्रिशिरा मेघनादके समान शूरोंको मार दिया?'

लङ्कामें हलचल मच गयी, किंतु दशग्रीवके भयसे कोई प्रकट कुछ कहनेका साहस नहीं कर सकता था।

दशग्रीवकी दुरभिसन्धि

'अब ? अब क्या ? राम जनस्थानको अधिकृत कर चुके। भारतके दक्षिण आ गये। लङ्का अब बहुत दूर नहीं है। कौन हैं ये राम ?' दशग्रीवके मस्तिष्कमें अन्धड़ चल रहा था।

'अकम्पन कहता है कि उनकी पत्नीका हरण कर लो तो वे उसके वियोगमें प्राण त्याग देंगे। बहुत प्रेम है उनका अपनी पत्नीपर। प्राण न भी त्याग दें तो अत्यन्त दुर्बल अवश्य हो जायँगे।' रावण मनमें उद्वेग-पूर्वक सोच रहा है—'खर-दूषण-त्रिशिरा सभी देवताओंके लिए दुर्जय थे। उन्हें अकेले रामने दो घड़ीमें मार दिया ? केवल प्रलयङ्कर महेश्वर ऐसा कर सकते हैं ; किंतु वे मेरे आराध्य हैं। वे हम राक्षसोंका अनिष्ट नहीं करेंगे। दूसरे—दूसरे ? तब क्या परमपुरुषने रामके रूपमें अवतार ग्रहण कर लिया ? दूसरा तो कोई दशग्रीवके आरक्षीको मार नहीं सकता।'

'परमपुरुष मुझे मारने अवतीर्ण हुए तो मैं धन्य हो गया।' अधिक चिन्ता करना रावणके स्वभावमें नहीं था। वह खुलकर हँसा—'तब दशग्रीव सब राक्षस-कुलका समुद्धारक बनेगा। ये राक्षस कोई जप-तप तो करनेवाले नहीं हैं। रावणके आश्रयमें रहकर ये निर्भय रहे हैं, मनमाने भोग भोगे हैं इन्होंने। केवल परमात्माके आश्रितोंको ही परित्राण नहीं प्राप्त होता। पौलस्त्य दशग्रीवका आश्रय लेनेवाला भी परमपद पा लेता है, यह संसार देखे। यदि राम परम पुरुष हैं, उनको सम्पूर्ण राक्षस-कुलका संहार करना पड़ेगा। उनके शरोंसे, उनके सम्मुख, उनका दर्शन करते देह त्याग करके दशग्रीवके सब स्वजन, अनुचर परम पद पावें।'

'यदि राम परमपुरुष नहीं हैं ?' रावण फिर हँसा खुलकर—'वह विदेहराज-दुहिता—शिव-धनुषको तोड़कर दशाननको उसे प्राप्त करनेका सुयोग नहीं मिल सका था ; किंतु हम राक्षस कहाँ नारीके सतीत्वके मिथ्या प्रलोभनमें पड़ते हैं। वह त्रिभुवनमें रमणी-रत्न है और वसुन्धरा तो वीर-भोग्या है। यदि राम सामान्य मानव हैं—दिव्यास्त्रोंसे तो सौ योजन समुद्र पार कोई आ नहीं सकता।'

दशग्रीव निश्चय पर आ गया। उसने अपने मन्त्रियोंको राजभवनमें ही बुलवा लिया। इस मन्त्रणामें विभीषणको उसने नहीं बुलाया। मन्त्रियोंके आ जानेपर उसने कहा—'अकम्पन स्वयं जो देख आया है, तुम लोगोंने सूर्पणखाके मुखसे वह सब सुन ही लिया है। उन दोनों तपस्वियोंने जन-स्थानपर अधिकार कर लिया है। अकम्पन ठीक कहता है कि उनके साथ वहाँ जाकर युद्ध करना उचित नहीं है।'

दशग्रीवकी मन्त्रणा सभामें मन्त्रीगण कदाचित ही कुछ अपना मत प्रकट करते थे। रावण विरोध न सुन सकता था, न सह सकता था। फलत: मन्त्रियोंका काम केवल अपने महाराजकी बात सुनकर समर्थन करना, स्तुति करना मात्र रह गया था।

'विश्वमें ऋषि विश्वामित्र सबसे बड़ा दिव्यास्त्र-ज्ञाता है। रामने उसके यज्ञकी रक्षा की। सम्भव है विश्वामित्रने उसे अपने सब दिव्यास्त्र दे दिये हों।' दशग्रीव ही बोल रहा था—'रामने खर-दूषण-त्रिशिराको पूरी सेनाके साथ दो घड़ीमें मार दिया। अब मैं या मेघनाद उससे युद्ध करने जायँ तो भी हमारी विजयसे पहिले वह हमारे बहुतसे योद्धा अवश्य मार देगा। मैं नहीं चाहता कि मेरे स्वजन अकारण मारे जायँ।'

'महाराजाधिराज सदासे अपने आश्रितोंके प्रति अत्यन्त सदय रहे हैं।' मन्त्रियोंने स्तुति की—'लेकिन महाराजकी सेवामें प्राणार्पण करना प्रत्येक राक्षस अपना सौभाग्य मानता है।'

'अकम्पन कहता है कि रामको अपनी पत्नी इतनी प्रिय है कि यदि उसकी पत्नीका हरण हो जाय तो पत्नी-वियोगमें वह प्राण ही त्याग देगा।' दशग्रीवने मन्त्रियोंकी बातको कोई महत्त्व दिये बिना कहा—'यदि वह प्राण-त्याग न भी करे तो बहुत दुर्बल अवश्य हो जायगा। अत: मैं एकाकी जाकर उसकी पत्नीको उठा लाना चाहता हूँ। इसमें क्या गुण-अवगुण है, इसपर सब लोग विचार कर लें।'

'हम राक्षसोंने स्त्री-हरणमें कभी सङ्कोच नहीं किया है।' दशग्रीवका मातुल, मन्त्रियोंमें मुख्य प्रहस्त हँसा—'आपने अनेकों सैकड़ों स्त्रियोंका हरण किया है। स्त्री सम्पत्ति है, भोग्या है और भोग्य वस्तु उसका स्वत्व है, जिसकी भुजाओंमें बल हो। हम राक्षस इसी वीरधर्मपर विश्वास करते हैं। स्त्रीका क्या स्व और पर। अतः स्त्री-हरणमें अवगुणका तो प्रश्न ही

नहीं है। पत्नी-हरणसे राम इतना व्याकुल अवश्य हो जायगा कि उसे अपने दिव्यास्त्रके मन्त्र विस्मृत हो जायँ।'

'लङ्का जनस्थान नहीं है कि कोई मानव पैरसे चलकर यहाँ पहुँच जायगा।' दूसरे मन्त्रीने कहा—'मानव तो हम उपदेवोंके समान गगन-पथसे यात्रा कर नहीं सकता और रामके समीप इस समय लोकान्तरों तक जाने-वाले रथोंमें-से कोई है नहीं। लेकिन इस तुच्छ कार्यके लिए महाराज स्वयं कष्ट क्यों करें?'

'इसलिए महाराजको स्वयं जाना चाहिये; क्योंकि स्त्री-हरण करना है और उसे अपने अन्त:पुरमें रखना है।' प्रहस्त हँसा—'राक्षसोंकी स्वाद-लोलुपतापर भरोसा नहीं किया जा सकता। अनेक बार सुकुमार शरीर देखकर वे उसे मुखमें रख लेनेसे अपनेको रोक नहीं पाते।'

इस व्यङ्गमें बहुत-सी अनकही बातें सम्मिलित थीं। मन्त्रियोंके मुखोंपर हास्य आ गया। सर्वसम्मतिसे निश्चय हो गया कि महाराजका विचार सर्वथा उपयुक्त है। दशग्रीवने उसी समय अपना गगनचारी, वह रथ सज्जित करनेकी आज्ञा दी, जिसमें गर्दभ जोते जाते थे। उस गृद्धध्वज रथपर बैठकर वह उसी समय चल पड़ा।

'सीताको वे अकेली छोड़ते नहीं होंगे। इस समय तो सर्वथा नहीं, जब कि सूर्पणखाने उसके हरणका प्रयास किया था और खर-दूषणको मार-कर वे मुझसे शत्रुता कर चुके हैं।' गगनमें रथके उठते ही रावणने अनुमान कर लिया। 'उन दोनों भाइयोंको किसी बहाने उनके आश्रमसे हटाकर ही सीताका हरण सम्भव है।'

मनमें पूरी योजना बनाकर रावण समीपके समुद्री द्वीप—मारीच द्वीपपर उतरा।* मारीचका वह द्वीप तपोवनके समान ही था। मारीच जबसे श्रीरामके शराघातसे वहाँ आकर गिरा था, उसका जीवन ही दूसरा हो

---

*आज जिसे श्रीलङ्का कहा जाता है, वह तो सिंहल द्वीप है। वाल्मीकीय रामायण और श्रीमद्भागवतमें भी उससे पृथक लङ्का का वर्णन है—

'सिंहलो लङ्केति।' —भागवत ५।१९।३०

रावण की लङ्का भारत के अन्तिम दक्षिणी छोर कन्या कुमारी से सौ योजन (सात सौ मील) दूर दक्षिण समुद्र में थी। वहाँ इस समय लकद्वीप समूह है। समीपके मालद्वीप समूह मारीच द्वीप हैं।

गया था। उसकी राक्षसी वृत्ति समाप्त हो गयी थी। उसने जटा धारण कर ली थी। बल्कल पहिनता था। कन्दमूल खाकर तप करता था। अवश्य ही शिवभक्त होनेके कारण वह ललाटपर, भुजाओंपर भस्मका त्रिपुण्ड लगाता था और रुद्राक्षकी मालाएँ पहिनता था। जप और ध्यानमें ही अपना समय व्यतीत करता था।

मारीच सिद्धासनसे मृगचर्मपर बैठा समाधिमें स्थित है, यह देखकर दशग्रीवको हँसी आयी। रथ उसने दूर छोड़ दिया था। हाथ जोड़कर कुछ व्यङ्ग-पूर्वक उच्चस्वरसे उसने प्रणाम किया—'नैकषेय महर्षि मारीचको पौलस्त्य दशग्रीव प्रणाम करता है।'

चौंककर मारीचने नेत्र खोला। आतुरतापूर्वक उठा और रावणको आदरके साथ ले जाकर आसनपर बैठाया। अर्घ्य, पाद्य आदिसे रावणकी पूजा की। उसको आहारके लिए मधुर फल तथा कन्द दिये। दशग्रीवने भी शान्तिसे यह सत्कार स्वीकार कर लिया। जब वह फलाहार कर चुका, मारीचने हाथ जोड़कर पूछा—'महाराजाधिराजने इस सेवकपर कैसे कृपा की? आप एकाकी क्यों आये हैं?'

'मुझे तुम्हारी सहायता अपेक्षित है।' रावणने थोड़ेमें खर-दूषणादिका वध सुनाकर कहा—'रामने जनस्थानपर अधिकार कर लिया, बहिन सूर्पणखाको विरूप बना दिया, यह मेरे लिए असह्य है। मैं उनकी पत्नीका हरण करना चाहता हूँ।'

'महाराज! किसने आपको यह सम्मति दी है? वह आपका शुभचिन्तक कदापि नहीं है। वह सम्पूर्ण राक्षस-कुलका विनाश चाहता होगा।' रावणने जब रामका नाम लिया था, तभी मारीचने भयसे काँपते हुए चौंककर इधर-उधर देखा था। वह अब भी भयातुर स्वरमें ही बोल रहा था—'राम—आप रामके समीप जानेकी सोचते हैं? लौटिये लङ्का। भूल जाइये जनस्थान आपका था। आप नीतिज्ञ हैं। अत्यन्त सबल विरोधी कुछ छीन भी ले तो उसे त्यागकर दूर हट जाना ही श्रेयस्कर होता है। आप उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर चोरी करेंगे? पर-स्त्रीकी चोरी? मुझे पापमें सहायता देनेको कहते हैं? देखते ही हैं कि मैं सब सुख-भोग त्यागकर यहाँ एकान्त द्वीपमें भजन करनेमें लगा हूँ, मुझपर दया कीजिये।'

'महाराज! प्रतिशोधकी ज्वाला बहुत सन्ताप देती है। आप सोचते हैं कि उन तपस्वी कुमारने आपकी निरपराध बहिनको विरूप किया,

आपके आरक्षी मारे तो आप उनसे प्रतिशोध लेंगे। मैं भी ऐसा ही सोचता था।' मारीच कहता गया—'आपके आदेशसे भाई और परिवारके साथ मैं सिद्धाश्रमके समीप था। हमारे वनमें विश्वामित्रने आश्रम बना लिया। उनके शापसे सावधान रहकर हम केवल थोड़ें उत्पात करके उन्हें वहाँसे भगा देना चाहते थे। विश्वामित्र अयोध्याके राजा दशरथसे उनके इन्हीं पुत्रोंको माँग लाये। मेरी माता ताड़काको इन्हीं बड़े साँवलेने एक ही शरमें मार दिया।'

मारीच रो पड़ा। वह रामका नाम लेनेसे भी बचता था। उसने कहा—'मेरे सब सहायक और मेरे भाई सुबाहुको इन्होंने मार दिया। उस समय मैं इनके शराघातसे सौ योजन दूर समुद्र-तटपर गिरा, मूर्छित हो गया था। जब मूर्छा मिटी, बहुत क्रोध आया अपने भाई तथा सहायकोंका विनाश ज्ञात होनेपर; किंतु अयोध्या जानेका साहस नहीं था। मैं प्रतिशोधकी ज्वालामें जलता रहा। सुअवसरकी प्रतीक्षा करता रहा। थोड़े-से मायावी राक्षस सहायक भी मिल गये मुझे। इन दोनोंका पता लेता रहा। प्रसन्न हुआ जब ये वनमें आये। जब इन्होंने पञ्चवटीमें पर्ण-कुटी बना ली, मैं अपने सहायकोंको लेकर इन्हें मारने पहुँच गया।'

'महाराज! इनके दिव्यास्त्रकी शक्ति देख चुका था। प्रकट आक्रमणका साहस नहीं था। सोचा था कि दोनों भाइयोंको पृथक-पृथक करके धोखेसे मार देंगे। मैं और मेरे सब सहायक मृग बनकर गये थे।' मारीचने फिर चौंककर इधर-उधर देखा—'इन दोनोंमें एकको भी धोखा देना सम्भव नहीं। बड़ेने देखते ही हमें पहिचान लिया। दूसरे मृगोंके साथ खेल रहे थे; किंतु हम पहुँचे तो धनुष चढ़ा लिया। हममें-से किसीको भागनेका अवसर नहीं मिला। सब सहायक मारे गये। पता नहीं क्यों उन्होंने इस बार भी मुझे मारा नहीं। इस बार उनके शराघातसे मैं इस द्वीपमें आकर गिरा।'

'मुझे भयोन्माद हो गया है तबसे। किसी शब्दका प्रथमाक्षर 'रा' हो तो—र हो तो भी उसे पूरा सुननेसे पूर्व ही मेरे प्राण सूखने लगते हैं। मैं राज, रत्न, रमणो, रथ आदि सुनकर भी चौंकता हूँ—कहीं 'राम आये' न सुनायी पड़ें।' मारीच गिड़गिड़ाया—'महाराज! बहुत उत्पीड़क होती है प्रतिशोधकी ज्वाला; किंतु वह इस स्थानमें तो विनाशको बुला रही है। आप इस विचारको त्यागकर लङ्का लौटिये।'

'मारीच ! मैं तुमसे उपदेश नहीं सुनने आया हूँ। तुमसे सहायता लेने आया हूँ।' रावणने खड्ग खींचकर गर्जनाकी - 'तुम जानते हो कि दशग्रीव प्रतिवाद नहीं सुना करता। अभी यहीं मरना है तुम्हें ? नहीं तो जो कहता हूँ, चुपचाप सुनो और आज्ञा-पालन करो। मेरे साथ रथमें बैठो। तुम वहाँ मृग बनकर गये थे, इस बार मैं तुम्हें उनकी पर्णकुटीके समीप रथसे उतार दूँगा तो मृग बन जाना—इतना सुन्दर मृग कि वे देखकर तुम्हारा चर्म पानेको लालायित हो उठें। उन्हें अपनेपर आकर्षित करके तुम्हें दूर ले जाना है—इतनी दूर कि लौटें भी तो आधी घड़ी लगे उन्हें। फिर उनके बाणसे कैसे बचकर निकल भागना, यह सोचना तुम्हारा काम है। मैं इतने अन्तरालमें उनकी पत्नीका हरण कर लूँगा।'

'मैं आर्त हूँ। तुम्हारी शरण आया हूँ। तुम्हारी सहायता चाहता हूँ।' दशग्रीवने स्वर बहुत विनम्र बना लिया—'तुम बहुत बड़े मायावी हो, बलवान हो और मैं तुम्हारा स्वामी संकटमें हूँ। मेरी बहिन कुरूपा कर दी गयी है। मेरे तीन भाई मार दिये गये हैं। मैं उनकी त्रिभुवनसुन्दरी पत्नीको पाये बिना व्याकुल हो रहा हूँ। तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिये।'

'अपने प्राण देकर भी सत्पुरुष स्वजातिके अपमानका प्रतिशोध लेते हैं।' रावण कहता गया—'पत्नी उन्हें बहुत प्रिय है। उसके वियोगमें वे स्वयं प्राण त्याग देंगे। न भी प्राण त्याग दें तो दुर्बल हो जायँगे। तब मैं उन्हें मार दूँगा।'

'महाराज ! संसारमें आपके समान शक्तिशालीको स्तुति करने वाले, मधुभाषी सदा ही मिलते हैं; किंतु सत्य और हित की कटु बात कहने वाले, मिलने दुर्लभ हैं। भले वह बात औषधिके समान हो।' मारीच काँपते हुए बोला। जैसे उसके शरीरका रक्त सूख गया हो। बार-बार अपने ओष्ठ चाटता था। अटकता था बोलनेमें—'आपके गुप्तचर असावधान हैं। उन्होंने आपको विपक्षीके सम्बन्धमें ठीक समाचार नहीं दिया है। मैं चाहता हूँ कि राक्षस-जातिपर उनका क्रोध न उतरे, तभी हम सबका मङ्गल है। सीताके कारण समस्त राक्षस जातिका ही विनाश मत बुलाइये ! इस प्रकार तो लङ्का ही नष्ट हो जायगी !'

'वे बहुत वीर्यवान, बुद्धिमान, निर्लोभ, धर्मज्ञ, गुणवान और अजेय हैं।' भयके कारण निरन्तर श्रीरामके चिन्तनमें लगे रहनेसे मारीचका अन्तःकरण निर्मल हो गया था। उसके मानसमें श्रीरामका स्वरूप आने

लगा था। उसने बतलाया—'आप भ्रममें मत पड़ो कि वे किसी दोष-दुर्बलताके कारण निर्वासित हैं। माता-पिता को बात मानकर वे वनमें आये हैं। जितेन्द्रिय हैं, स्त्री-जित नहीं। क्रूर नहीं हैं, सदय हैं। आपकी बहिनके द्वारा बड़ा अपराध हुए बिना उसे विरूप नहीं किया होगा। अज्ञ नहीं हैं कि उन्हें धोखा दिया जा सके। वे तो मूर्तिमान धर्म हैं। उन सत्य पराक्रमसे शत्रुता मत करो।'

'राक्षसेश्वर! सीता परम सती हैं। वे भले मर जायँ—रामको छोड़कर दूसरेकी ओर दृष्टि नहीं उठावेंगी।' मारीचने फिर चेतावनी दी—'सीता अपने सतीत्वसे ही सुरक्षिता हैं। उनके लोभमें रामकी क्रोधाग्निको फूँक मारकर मत भड़काओ। रामके समीप मत जाओ! अपने राज्य, सुख, स्वजन, सबको सङ्कटमें मत डालो। सीताको धर्षित कर पाना अशक्य है। सीता तो अग्नि-शिखाके समान हैं। कदाचित आपने युद्धमें रामको देखा होता। एक बार लङ्का जाकर कुम्भकर्ण विभीषण आदिसे सम्मति कर लो।'

'आप जानते हो कि मुझमें दससहस्र गजबल हैं। मैं ऋषि-मुनियोंका ही मांस खाता था और वे बालक थे, तब तक दिव्यास्त्र भी नहीं मिले थे उन्हें, जब उन्होंने सिद्धाश्रममें मुझे उपेक्षापूर्वक बिना फरका बाण मारा था।' मारीचने समझानेका पूरा प्रयत्न किया 'मैं दूसरी बार दण्डकारण्यमें मृग बनकर गया, तब भी ऋषियोंको ही खाता था। एक ही आघातमें मेरे साथी मार दिये उन्होंने और मुझे यहाँ फेंक दिया। तबसे मैं कन्द-मूल खाकर रहने लगा। मेरा जीवन परिवर्तित हो गया। मुझे तो जहाँ दृष्टि जाती है, वे धनुर्धर इन्दीवरसुन्दर ही दीखते हैं।'

'महाराज! बलि और नमुचि जिनको जीत नहीं सके, हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपुको जिन्होंने फाड़ फेंका, उनसे शत्रुता मत करो।' अन्तमें रोकर बोला—'यदि आप मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरे सामने उनकी चर्चा मत करो। उनका नाम मत लो। आपको उचित लगे, वह करो; किंतु मैं आपका साथ इस समय नहीं दे सकूंगा।'

'मारीच! उपदेश मत दो। जो स्त्री कैकेयीकी बात मानकर वनमें चला आया वह बुद्धिमान हो सकता है? उसमें दोष हैं या गुण, यह मैं तुमसे नहीं पूछता। मुझे सीताका हरण अवश्य करना है। तुमसे युक्ती नहीं जानना चाहता। मैं राक्षसेश्वर तुम्हारे पास आया हूँ और तुम दुष्टता पूर्वक कटु भाषण करते हो? मेरा कहना मानो! वहाँ स्वर्णमृग बन उन्हें

प्रलुब्ध करो। जब वे तुम्हारे पीछे दूर चले जायँ तो उनके स्वरमें आर्तके समान लक्ष्मणका नाम लेकर पुकारना और फिर चाहे जहाँ भाग जाना।' रावणने प्रलोभन दिया -- तुम्हें मेरी यह सहायता करनी ही है। मैं सफल होकर लौटनेपर तुम्हें एक पूरे प्रदेशका राजा बना दूंगा। उठो! तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो। मेरे अनुकूल चलकर ही बच सकते हो, अन्यथा मैं अभी तुम्हें मार दूँगा।'

'मार देने योग्य वह है जिसने तुम्हें यह सम्मति दी है। वह पापी है। उसने तुम्हें विनाशका मार्ग बतलाया है। वह तुम्हें प्रज्वलित अग्निमें झोंक देना चाहता है!' मारीचने सिरपर दोनों हाथ पटके --' तुम मुझे राज्य दोगे? मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि उनके सम्मुख जाकर जीवित बचनेकी आशा करूँ। उन्होंने दो बार मुझे जीवित छोड़ा है, अब नहीं छोड़ेंगे। लेकिन तुम भी अपनेको अब मरा ही मानो। मैं चल रहा हूँ। तुम्हारी आज्ञा मानूँगा। यहाँ तुम्हारे हाथसे मुझे नहीं मरना है। मैं राक्षस हूँ, तुम्हारा आश्रय पाया है। ऋषि-मुनियोंके भक्षणका पाप भी सिरपर है। उनके बाणसे, उनको देखते हुए देहत्याग हो मेरे लिए सबसे श्रेयस्कर है।'

'अब तुमने समझदारी की बातकी है।' रावण यह कहकर मुड़ पड़ा। उसके पीछे सिर झुकाये मारीच चलता रहा, जैसे प्राणदण्ड प्राप्त अपराधी फाँसीके तख्तेकी ओर जाता है। समस्त अस्त्र-शस्त्रोंसे भरे उस रथमें मारीच पीछे जाकर बैठ गया। उस पिशाच मुख गधे वाले रथमें रावण मारीचके समीप बैठा। वह रथ वहाँसे आकाशमें उठा और उत्तर चल पड़ा।

सीता-हरण

'अब तुम अपना काम करो !' रावणने पञ्चवटी पहुँचकर रथ छिपाया थोड़ी दूर और मारीचको हाथ पकड़कर पर्णकुटीकी ओर संकेत करके बोला—'स्मरण रखो कि दोनों भाइयोंको यहाँसे दूर करना है। तुम्हें पर्याप्त पुरस्कार प्राप्त होगा।'

'पौलस्त्य ! पुरस्कारका प्रलोभन मत दो।' मारीचने रावणकी ओर घृणापूर्वक देखकर कहा—'मैं आज मरणका महापर्व मनाने आया हूँ ; किंतु तुम्हारी यह इच्छा अवश्य पूर्ण कर दूंगा। रामने राक्षस-कुलके विनाशकी प्रतिज्ञा की है। उनका प्रण पूरा हो और मेरे समान ही तुमको तथा तुम्हारे सब स्वजनों, सेवकोंको रामके शरोंसे प्राण-त्यागका सौभाग्य प्राप्त हो।'

दशग्रीव मनमें हँसा। मारीचका यह शाप उसे वरदान प्रतीत हुआ। मारीच क्षणार्धमें मायामृग बन गया। अद्भुत स्वर्णमृग। उसके स्वर्णिम शरीरपर सर्वत्र उज्वल रजत-विन्दु थे। शृङ्ग श्वेत रौप्य निर्मित लगते थे और खुर लगता था कि नीलमणिसे बने हैं। शृङ्गाग्र जैसे रक्तपीतमणिसे बने हों ! मुखका भाग कृष्ण-श्वेत था। ओष्ठ लाल थे। जब वह आश्रमकी ओर दौड़ चला, रावण उसे मनमें सफल होनेका आशीर्वाद देता, मुग्ध नेत्रोंसे देखता रहा।

'आर्य पुत्र ! यहाँ आइये।' श्रीजनक-नन्दिनी पुष्प-चयन करने उठी थीं। दिनका तृतीय प्रहर था। मृगको देखकर वे मुग्ध नेत्रोंसे उसीकी ओर देखने लगी थीं। मृग कभी कोमल तृणमें मुख लगाता था, कभी चौकड़ी भरकर दूर जाता था और कभी समीप आकर श्रीवैदेहीके चरण सूंघ जाता था। अत्यन्त ललित चेष्टा थी उसकी।

'ऐसा मृग तो मैंने कभी देखा नहीं। आप इसे पकड़ लाइये। मैं इसे अपना क्रीड़ा-मृग बनाऊँगी। पालूंगी इसे। अपने साथ अयोध्या ले जाऊँगी। मेरी बहिनें और माननीया सासजी प्रसन्न होंगी इसे देखकर !' श्रीरामके समीप आ जानेपर जानकीने उनके वाम स्कन्धपर कर रखकर अत्यन्त आग्रह भरे स्वरमें कहा। इसी समय मृग लम्बी छलाँग लेकर दूर

चला गया। यह देखकर मैथिली बोलीं—'यह बहुत चञ्चल है। यदि पकड़ा न जा सके तो इसे मारकर इसका चर्म मुझे ला दीजिये। मेरी तपस्विनी सासजी इसके चर्मको पाकर प्रसन्न होंगी।'

श्रीरामने विचित्र भङ्गीसे भार्याकी ओर देखा। उस दृष्टिमें उपालम्भ था—'देवि ! सृष्टिके सुन्दरतम प्राणियोंके चर्म, पङ्ख आदि अपने मनोरञ्जनके लिए प्राप्त करनेकी यह वासना बहुत निष्ठुर है।'

'इसे पकड़ लाइये अथवा इसका चर्म ला दीजिये।' श्रीवैदेहीने फिर अनुरोध किया। उनकी दृष्टि मृगपर लगी थी। इस समय स्वामीकी दृष्टिका तात्पर्य समझनेकी मनस्थितिमें वे नहीं थीं।

'अच्छा देवि !' श्रीरामने शिथिल स्वरमें ही स्वीकार किया। जैसे मनमें कहा हो—'तुमको स्वर्णमृग पानेका लोभ लगा है तो स्वर्णपुरीमें ही निवास करना होगा।'

वह स्वर्णमृग कभी पौधोंके कोमल अंकुर खा लेता था। कभी पृथ्वी सूँघता था। दूसरे मृगोंने उसे सूँघा और दूर भाग गये। चतुष्पाद प्राणीकी नासिकाको मारीचकी माया धोखा नहीं दे सकी थी। लक्ष्मण यह देखकर सशङ्क हो गये।

'आर्य ! पहिले भी मायावी राक्षस मारीच मृग बनकर इस अरण्यमें आ चुका है। उसने बहुत-से मुनियोंको खा लिया था। लगता है, वही आया है। मृग बननेका उसे अभ्यास है।' श्रीराम धनुष उठाने पर्णकुटीमें आये तो लक्ष्मणने समीप आकर नम्रतापूर्वक निवेदन किया—'सृष्टिमें ऐसा मृग देखना तो दूर, सुना भी नहीं गया है। अतः यह राक्षसी माया है, मृग नहीं।'

'लक्ष्मण ! इसके प्रति सीताके मनमें स्पृहा जागी है। यदि यह मुनि-भक्षक मारीच है, तो भी इसे मार देना उचित है। अतः मैं इसके पीछे जा रहा हूँ। मृग हो या मायावी राक्षस, आज इसका मरण निश्चित है। मैं इसे मारकर शीघ्र लौटूँगा।' श्रीरामने भाईको सचेत किया—'तुम बहुत सावधान रहकर सीताकी रक्षा करना। यह मायावी राक्षस है तो इसके सहायक भी समीप हो सकते हैं। सीताकी रक्षाके लिए जो आवश्यक हो, करना।'

श्रीरामने धनुषको ज्या-सज्ज किया। उसपर बाण चढ़ाया। जबसे वैदेहीने श्रीरामको पुकारा था, मृग समीप नहीं आया था। वह दृष्टिसे

ओझल भी नहीं हुआ ; किंतु दूर-दूर ही कूदता, उछलता, क्रीड़ा करता रहा। अब धनुषपर बाण चढ़ाये श्रीरामको अपनी ओर आते देखकर वह भाग चला।

जटामुकुटी, कृष्णमृगचर्मके उत्तरीयपर त्रोण कसे, वल्कलवसन, धनुष चढ़ाये पङ्कजारुण-चरण श्रीराम वनभूमिमें मृगकी ओर दृष्टि लगाये भाग रहे हैं। भागनेकी आवश्यकता है इन्हें ? जिनका मन्त्र-प्रेरित शर जयन्तके पीछे समस्त लोकोंमें लगा रहा था, वे खड़े-खड़े ही मृगको बाणका लक्ष्य नहीं बना दे सकते ? लेकिन लीलामयको लीला करनी है। मारीच अपने पीछे दौड़ते इन धनुर्धर नीलसुन्दरकी झाँकी करनेकी अभीप्सा लेकर चला है आज और इनसे लगकर किसीकी अभिलाषा अपूर्ण तो नहीं रहती।

मृग गर्दन मोड़कर बार-बार पीछे देखता है—'वे आ रहे हैं। वे दौड़े आ रहे हैं।' मन-प्राणमें यह छवि बस गयी है। वह छलाँगें लगाता है—लम्बी छलाँगें और दूर चला जाता है। रुकता है, पीछे देखता है और ऐसे चलने लगता है जैसे अब श्रान्त हो गया। अब कूद नहीं सकेगा। कभी पृथ्वीसे चिपक-सा जाता है। कभी लगता है कि कहीं छिप गया, अदृश्य हो गया। श्रीराम चौंककर देखने लगते हैं इधर-उधर। सहसा फिर सम्मुख दौड़ता दीखता है।

'यह तो मुझे बहुत दूर ले आया !' श्रीराम चौंके। उन्होंने दौड़ते पद रोके। धनुषपर चढ़ा बाण लक्ष्यपर छोड़ दिया।

'हा सीते ! हा भाई लक्ष्मण ! भैया लक्ष्मण ! लक्ष्मण !' मृग बने मारीचने गर्दन घुमाकर अरुणाभ हुए—स्वेद-कणोंसे सुशोभित श्रीरामका मुख देखा। इसी समय बाण उसके हृदयको फोड़ता निकल गया। मारीचने मरते-मरते श्रीरामके ही स्वरमें तीन बार लक्ष्मणको पुकारा। व्याकुलतामें माया मिट गयी। मृग-देह नहीं, राक्षस मारीचका शरीर गिरा भूमिपर। प्राण-त्याग करते उसके ओष्ठ हिले। क्षीण, अस्पष्ट ध्वनि निकली-'राम !'

'यह राक्षस !' श्रीरामने सदय दृष्टि डाली। मारीच धन्य हो गया। श्रीरामका दर्शन करते, उनके बाणसे विद्ध, उनका नाम लेता, उनकी दृष्टिके सम्मुख देहत्याग किया उसने। लेकिन श्रीराम दूसरे ही क्षण चौंककर लौट पड़े—'इसने दुष्टतापूर्वक मेरे स्वरमें ही मेरे भाईका नाम कातर कण्ठसे पुकारा है ! क्या दशा होगी यह स्वर सुनकर सीता और लक्ष्मणकी ?'

'हा सीते ! हा लक्ष्मण !' स्वर बहुत कातर, बहुत उच्चस्वरमें गूँजा था। उसे लक्ष्मणने और सीताने सुना। लक्ष्मण धनुष चढ़ाये सावधान स्थिर खड़े थे। उनके अनुरोधपर श्रीजानकी पुष्प-चयन त्यागकर पर्णकुटीमें लौट आयी थीं। लक्ष्मणने कहा था—'अग्रजके लौटने तक आपको पर्ण-शालामें ही रहना चाहिये।'

'लक्ष्मण ! तुम अभी यहीं खड़े हो ? सुनते नहीं हो कि तुम्हारे अग्रज तुन्हें सङ्कटमें पड़े पुकार रहे हैं ?' अत्यन्त व्याकुल होकर पर्णशालाके द्वारपर खड़े लक्ष्मणसे श्रीमैथिलीने कहा—'दौड़ो ! अपने अग्रजकी शीघ्र सहायता करो !'

'अम्ब ! यह स्वर मेरे आराध्य अग्रजका नहीं है। यह किसीका छलपूर्ण स्वर है। श्रीरामको सङ्कट-ग्रस्त कर सके ऐसी शक्ति त्रिभुवनमें नहीं है।' लक्ष्मणने शान्त स्वरमें समझाया—'आप धैर्य रखें। रघुवंशी कुमार प्राण-सङ्कटमें भी इतना कातर कभी नहीं होता कि इस प्रकार पुकार करे। मेरे समर्थ अग्रज ऐसे स्वरमें पुकारेंगे कभी ?'

'दुर्बुद्धे ! क्या तुम बड़े भाईका मरण चाहते हो ?' नेत्रोंमें अश्रु भरे आग्नेय दृष्टिसे लक्ष्मणकी ओर देखती सीताने क्रोधपूर्वक कहा—'रामका सङ्कट तुम्हें प्रसन्न करता है ? तुम्हें भरतने नियुक्त किया है अथवा स्वयं मेरे प्रति दुर्भावके कारण साथ लगे वन आये हो ? स्मरण रखो कि सीता शरीर त्याग देगी। अन्य पुरुष इसे प्राप्त नहीं कर सकेगा।'

'देवि ! मेरे अग्रजको युद्धमें सुर-असुर, पिशाच, राक्षस कोई जीत नहीं सकते। श्रीराम अवध्य हैं। उनके विषयमें आप भय त्याग दें।' लक्ष्मणने मस्तक झुकाये हुए समझाया—'अग्रजने मुझे आपकी रक्षामें नियुक्त किया है। मैं आपको एकाकिनी नहीं छोड़ सकता।'

'तुम मित्रके रूपमें भाईके शत्रु हो ! इस करुण पुकारको सुनकर भी उनकी सहायताको नहीं जा रहे हो। तुम उनकी मृत्यु देखना चाहते हो ?' सीता धम्-से बैठ गयीं—'तुम्हारे मनमें दुर्भाव है। मैं पाषाणपर मस्तक पटककर अभी प्राणत्याग करूँगी।'

'आप मेरी आराध्या हैं। मैं आपको उत्तर नहीं देना चाहता ; किंतु मेरे प्रति ऐसे वचन आपके योग्य नहीं हैं।' हाथ जोड़कर रुदन करते लक्ष्मणने कुछ क्रोधपूर्वक कहा—'वनके सब प्राणी, वनदेवता सुन लें कि

आपको मुझसे भी शङ्का है। आपको धिक्कार है। आपका मङ्गल हो। मैं श्रीरामका सेवक हूँ। आपकी आज्ञासे उनके समीप जाता हूँ। वनदेवता आपकी रक्षा करें।'

'अम्ब ! एक अनुरोध मान लेना।' चलते-चलते पर्णशालाके चारों ओर लक्ष्मणने धनुषकी नोकसे मन्त्रपाठ करते हुए रेखा खींचकर कहा—'अग्रजके लौटने तक इस रेखाका उल्लंघन करके बाहर मत निकलना।'

वह अनन्तके द्वारा अभिमन्त्रित रेखा—श्रीजानकीके अतिरिक्त दूसरा कोई उसका उल्लंघन करनेका प्रयत्न करते ही भस्म हो जाता; किंतु लक्ष्मणके अग्रज अनन्त-लीला-विहारी हैं। अपने आश्रितका अपराध क्षमा करना वे जानते ही नहीं। लक्ष्मणका अपमान किया सीताने और सर्वेश्वरने उनके लिए भी अपहरण, राक्षसपुरीके उत्पीडन की व्यवस्था स्वीकार कर ली।

लक्ष्मण चले तभी अपशकुन हुए। उन्होंने लौटकर पर्णकुटीकी ओर देखा तो व्याकुल होकर वैदेही चीत्कार कर उठीं। अपने करोंसे उदरपर आघात करने लगीं। लक्ष्मणने विवश होकर भूमिमें मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया और उन्हें, पर्णशालाको दाहिने करके बड़े भाईकी ओर रोते हुए चल पड़े।

लक्ष्मण पर्णशालासे थोड़ी ही दूर गये थे कि छिपकर सब कुछ देखता दशग्रीव प्रकट हुआ। उसने त्रिदण्डी साधुका वेश बनाया था। उज्ज्वल चमकता कौशेय-गैरिकवस्त्र, शिखा, यज्ञोपवीत, छाता और पादत्राण भी। बायें कन्धेपर दण्ड, वामहस्तमें कमण्डलु, भस्मका त्रिपुण्ड, रुद्राक्षकी माला कण्ठमें, भुजाओंमें। कोई भी तनिक ध्यान देता तो समझ लेता कि कौशेयगैरिकवस्त्र, छाता, उपानहधारी साधु नहीं हो सकता—त्रेतामें तो नहीं ही। त्रिदण्डके साथ भस्म त्रिपुण्ड, रुद्राक्षकी मालाओंका क्या मेल ? लेकिन दशग्रीव जानता था कि नारीके लिए कैसा भी साधुवेश पर्याप्त है। वह श्रद्धामयी वेशका विवेचन नहीं जानती।

रावणको देखते ही वृक्ष-लताएँ काँपने लगीं। वनदेवका साहस दशग्रीवके सम्मुख कुछ करनेका नहीं था। वायु स्तब्ध होकर शान्त हो गया। पर्णशालाके भीतर अग्निने स्वतः प्रज्वलित होकर केवल अपनी उपस्थिति प्रकट की। पशु भागे। पक्षिवृन्द चिल्लाकर उड़ता दूर चला गया।

'भवती भिक्षां देहि।' रावणने पर्णशालाके समीप पहुँचकर पुकार की। पुकारनेके पश्चात् सस्वर वेदमन्त्रोंका पाठ करने लगा।

'भगवन्! मैं आपकी वन्दना करती हूँ।' श्रीमैथिलीने पर्णशालके द्वारपर आकर अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'आप कुछ देर विश्राम करें उस सम्मुखकी पर्णकुटीमें। मेरे स्वामी अनुजके साथ आखेट करने गये हैं। अब आते ही होंगे। आकर वे आपको सविधि अर्घ्य अर्पित करेंगे। आपका सत्कार करेंगे।'

'देवि! आपका कल्याण हो। मैं पर्णशाला देखकर भिक्षाकी आशासे चला आया था।' उस कपट साधुने कहा—'गृहस्थके द्वारपर साधुको प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। मैं जा रहा हूँ।'

'आप एक क्षण रुकें! मैं ही आपको भिक्षा देती हूँ।' श्रीजानकीने प्रार्थना की—'गृहस्थके द्वारसे अतिथि निराश लौट जाय तो गृहपतिके समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं। आप हमारे पुण्य प्रारब्धसे पधारे हैं तो कृपा करके हमें पाप-भागी बनाकर मत जाइये।'

'जैसी तुम्हारी श्रद्धा!' रावण झोली फैलाये खड़ा हो गया। लेकिन जब श्रीवैदेही फल, कन्द, मूल लेकर द्वारपर आयीं और भिक्षा देनेके लिए हाथ बढ़ाया तो दशग्रीव चार पद पीछे हट गया। उसकी दृष्टि नीचे रेखा-पर लगी थी। वह वेद एवं तन्त्रोंका, मन्त्रशास्त्रका महापण्डित—उससे उस रेखाका प्रभाव छिपा रहता? उसने कहा—'देवि! किसीने इस पर्णशालाको वेष्टित कर दिया है। मैं बद्ध भिक्षा नहीं स्वीकार कर सकता। जो मुक्ति-मार्गका पथिक है, बद्ध आहार उसके लिए अग्राह्य है।'

धर्म-सङ्कट उपस्थित हो गया। इस वनमें इतने दिनोंके अनन्तर एक साधु अतिथि आया, वह क्षुधातुर है और निराश लौटा जा रहा है। इससे तो पतिके धर्मका ही नाश हो जायगा। यह सोचकर श्रीवैदेही भिक्षा लिये पर्णशालासे बाहर रेखाका उल्लंघन करके आयीं—भगवन्! भिक्षा लें।'

'तुम स्वर्णिम पद्मिनी-सी सुन्दरी कौन हो? कौन हैं तुम्हारे निष्ठुर पति जो इस राक्षसोंसे घिरे वनमें तुम्हें ले आये?' रावणने झोली नहीं फैलायी। वह एकटक श्रीजानकीको देखता खड़ा रहा।

'मैं मिथिला-नरेशकी पुत्री सीता हूँ। मेरे पति अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्के ज्येष्ठ पुत्र हैं। पिताकी आज्ञा मानकर चौदह वर्षके लिए वन आये थे। अब तो वनवासके अधिक वर्ष व्यतीत हो चुके।' सीताजीने सङ्कोचपूर्वक दृष्टि झुका रखी थी। वे देख नहीं सकती थीं कि दशग्रीव सशङ्क बार-बार पीछे और इधर-उधर देखता है। उन्होंने आग्रह किया—'आप भिक्षा ग्रहण करें।'

'तुम जैसी सौन्दर्य-मूर्त्ति, सुकुमारी, रमणी-शिरोमणि क्या वन-वासियोंके साथ यहाँ वनमें रहने, वल्कल पहिनने योग्य है!' रावणने बिना झोली आगे बढ़ाये कहा—'तुम तो स्वर्ण-सौधमें सेविकाओंसे घिरी सेवा पाने योग्य हो। तुम स्वयं मुझे स्वीकार करो…।'

'तुम कौन हो ? साधु होकर अकेली अबलासे एकान्तमें ऐसी बात कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?' श्रीमैथिलीका स्वर कठोर हो गया—'तुम्हें भिक्षा लेनी है ?'

'मैं भिक्षा लेने ही आया हूँ ; किंतु मेरी भिक्षा तुम स्वयं बनो !' खुलकर अट्टहास किया दशग्रीवने—'देख लो कि मैं कौन हूँ। स्वर्णपुरी लंकाका त्रिभुवन-विजयी राक्षसेश्वर रावण स्वयं तुमसे याचना करता है।'

साधु-वेश तो माया-वेश था। वह सहसा लुप्त हो गया। दशमौलि, बीस भुजावाला, रत्नमुकुटी, रत्नाभरणोंसे सजा दशग्रीव सम्मुख खड़ा था। अब उसका सारथि छिपे रथको पर्णशालाके द्वारपर ले आया। रावणने दुष्टतापूर्वक हाथ बढ़ाया—'विदेह - नन्दिनी ! अब चलो, रथमें बैठो। लङ्काका साम्राज्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। साम्राज्ञी बनकर उसे और मुझे भी सनाथ करो।'

'दुष्ट ! सानुज स्वामी नहीं हैं, इसलिए तू कुटिल शृगालके समान यहाँ प्रविष्ट हो गया है और मुझे प्रलोभन देता है ? सिंहकी वधूकी कामना तू शशक करता है ?' श्रीजानकीके अधर फड़कने लगे यद्यपि मनमें वे सभय सशङ्क हो उठी थीं ; किंतु स्वर कठोर बनाकर डाँटा उन्होंने—'तू त्रिभुवनजयी बनता है ? दो क्षण खड़ा रह यहाँ। अभी स्वामी सानुज आये जाते हैं। वे तेरा दर्प दलित कर देंगे। मैं तुझे शाप देकर भस्म कर

सकती हूँ ; किंतु—'

दशग्रीव काँपकर दो पद पीछे हट गया। उसे सन्देह नहीं था कि इन सती-शिरोमणिने शाप दे दिया तो ब्रह्माका कोई वरदान उसकी रक्षा नहीं कर सकेगा। लेकिन सीताके 'किंतु'ने उसे साहस दिया।

'किंतु समर्थ स्वामीके रहते नारी अपनी रक्षाका स्वयं उद्योग करे, यह स्वामीके पौरुषपर अविश्वास है।' वैदेहीने यह कहा और दशग्रीवको मानों अभय-दान मिला। अब उसे इन तेजोमयीके द्वारा प्रशप्त होनेका कोई भय नहीं रह गया। उसे शीघ्रता करनी चाहिये। श्रीराम-लक्ष्मण आ पहुँचें, इससे पूर्व उसे अपना अभीष्ट पूर्ण करके पर्याप्त दूर पहुँचना चाहिये।

'धन्य सतीत्व !' दशग्रीवने मनमें सम्मुख खड़ी श्रीसीताकी चरण-वन्दना की। वे मिथिलेश-नन्दिनी पर्णकुटीमें जानेको लौट पड़ी थीं। रेखाके भीतर होनेसे पूर्व ही रावणने पीछेसे पकड़कर उठाकर रथमें डाला। उसके बैठते ही रथ आकाशमें उड़ चला।

जटायुका आत्मोत्सर्ग

'अरे दुष्ट ! तू क्यों अपना विनाश आमन्त्रित करता है। मैं अजेय, जितेन्द्रिय यशस्वी रघुवंश-भूषणकी अनुव्रता हूँ।' सीताने पहिले डाँटा— 'तू सिंहके मुखमें सिर डाल रहा है ! महासर्पकी मणिका हरण करके सकुशल रहनेकी कामना मत कर !'

'मैं कुबेरका भाई हूँ। देवता भी मेरे भयसे काँपते हैं। त्रिलोकजयी रावणकी स्वर्णपुरी लङ्कामें पहुँचकर तुम मर्त्यधर्मा रामको भूल जाओगी।' रावणने कहा—'तुम मेरी सर्वप्रधान महाराज्ञी बनो। पाँच सहस्र दासियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। समुद्रसे घिरी लङ्का अजेय है। राम वहाँ पहुँच भी नहीं सकते।'

'तू दुर्बुद्धि ! तेरे दोषसे समस्त राक्षस कुलका संहार होगा।' सीताने फिर डाँटा—'भले तू रसातल या पातालमें छिपे ; किंतु राघवके शरानलमें भस्म होकर रहेगा। भले प्रभा सूर्यके बिना रहे, ज्योत्स्ना-चन्द्रको त्याग दे, यह जनकपुत्री रामके अतिरिक्त दूसरेकी हो नहीं सकती।'

रावण मौन हो गया। सारथिको उसने संकेत किया, रथ पूरे वेगसे ले चलनेको।

'वनदेव ! वृक्षो ! देवी गोदावरी !' श्रीमैथिलीने अञ्जलि बाँधकर कातरकण्ठ प्रार्थना की— मेरे स्वामीके लौटनेपर उन्हें बतलाना कि मुझे अधम राक्षस दशग्रीव बलात् ले गया है।'

'हा लक्ष्मण ! हतभागिनी सीताने तुमपर विश्वास नहीं किया ! तुम्हें असहनीय कठोर वचन कहे—इस मूर्खा, विपद्ग्रस्ताको क्षमा कर देना !' आर्तकण्ठसे पुकार निकली—'लक्ष्मण ! कहाँ हो तुम ? दौड़ो ! राक्षस मुझे लिए जा रहा है। स्वामी ! आर्यपुत्र ! आप कहाँ हैं ?'

मिथिलेशनन्दिनी अत्यन्त व्याकुल इधर-उधर ऊपर-नीचे देख रही थीं—कोई स्वामीको पुकार दे। कोई देवर लक्ष्मणको कह दे। कोई दो क्षण इस दुष्ट राक्षसको रोक दे।

'आर्य ! यह दुष्ट मेरा अपहरण कर रहा है।' महावटके ऊपर बैठे जटायुपर दृष्टि पड़ी। करुण कण्ठसे चीत्कार निकली—'आप अत्यन्त वृद्ध हैं। असमर्थ हैं इस राक्षसको रोकनेमें ; किंतु आर्य पुत्रसे, लक्ष्मणसे कह दें …।'

'पुत्री सीता !' बात पूरी होनेसे पहिले ही जटायुका स्वर गूँजा—'भय मत कर ! मैं इस राक्षसको नष्ट कर दूँगा।'

जटायुकी दृष्टि तबसे श्रीरामपर लगी थी, जबसे वे मायामृगके पीछे दौड़े थे। जटायुको अवसर ही नहीं मिला था कि रामको सावधान कर दें। वे सतर्क देख रहे थे कि मायावी राक्षस मृग बनकर अपने पीछे रामको लिये जा रहा है। सचिन्त हुए जटायु—'यह दुष्ट क्या करेगा ?'

श्रीरामने जब मारीचको मार दिया, जटायु प्रसन्न हुए। अभी वे श्रम-विन्दु शोभित रामके कमलमुखकी शोभा देखनेमें तन्मय थे कि श्रीसीताका कातर स्वर श्रवणमें पड़ा। जटायु चौंके और पङ्ख फैलाकर टूट पड़े। समीपका पूरा वन हिल उठा। अनेक शाखाएँ टूट गिरीं। मानों भयानक अन्धड़ आ गया हो। रावण भी चौंका। एक पूरा पर्वत ही उसकी ओर उड़ा आ रहा था—'यह गरुड़ है या मैनाक ? किंतु गरुड़को साहस होगा मुझसे सामना करनेका ? मैनाक इन्द्रके भयसे समुद्रमें छिपा है। इन्द्रजितके पिताके पास आवेगा ?'

'रावण ! मैं जटायु गीधोंका राजा बोलता हूँ।' जटायुने पुकारा—'सीताको छोड़ दो। तुम राजा होकर इतना नीच कर्म करने चले ! पर-स्त्रीपर कुदृष्टि अनुचित है। पौलस्त्य ! इतना ऐश्वर्य पाकर भी ऐसा अपकर्म ? मर्यादा विरुद्ध भोग लिप्सा महान् शक्तिशालीको भी विनष्ट कर देती है।'

जटायु जानते थे कि रावणको युद्धमें वे पराजित नहीं कर सकते। वे रावणके रथके सम्मुख आ गये थे। रथका वेग अवरुद्ध हो गया था। जटायुका प्रथम प्रयास यही था कि राक्षसको यथासम्भव तब तक रोका जाय, जबतक राम यहाँ नहीं आ जाते।

'श्रीराम निरपराध हैं। वे किसीका अपराध नहीं करते। तुम्हारी बहिन सूर्पणखाका ही दोष है। सुनना चाहो तो सीताको त्यागकर मुझ प्रत्यक्षदर्शीसे पूरी बात सुनो।' जटायुने धमकाया भी—'यह ठीक है कि मैं

साठ सहस्र वषका हो चुका। वृद्ध हूँ ; किंतु पक्षियोंका युवराज हूँ, तुम सशस्त्र हो, तरुण हो, फिर भी मेरे जीवित रहते जानकीको लेकर सकुशल नहीं जा सकते।'

दशग्रीवके बीसों नेत्र अग्निवर्ण हो गये। उसने अपने दसों हाथोंमें पाँच धनुष चढ़ाये और वाणोंकी झड़ी लगा दी ; किंतु जटायुका वेग प्रचण्ड था। अपने पंखोंके झटकेसे उन्होंने बाणोंको व्यर्थ कर दिया। पञ्जेके प्रथमाघातमें ही रावणका सारथी समाप्त हो गया। उसके रथको अश्वोंको चोंचमें पकड़ कर जटायुने ऐसे झिझोंड़ फेंका जैसे बगुला नन्हें मत्स्यको झिझोंड़े। पञ्जे और चोंचके प्रहारसे रावणका शरीर लथपथ हो गया। रथ अश्व, सारथी रहित धरापर गिर कर ध्वस्त हो गया।

रावणका धनुष गीधराजने पहिले ही झपाटेमें नोच फेंका था। जब दशग्रीवका अश्व-सारथिहीन रथ गिरने लगा, उन्होंने झपटकर जानकीको पञ्चोंमें उठा लिया ; किंतु दूर जानेका समय नहीं था। जानते थे कि दुष्ट राक्षस अवसर मिलते ही दिव्यास्त्रका भी प्रयोग करनेमें हिचकेगा नहीं। तब सीताके भी प्राण संकटमें पड़ सकते हैं। अतः मैथिलीको थोड़ी दूरीपर भूमिपर धीरेसे धरकर लौटे और रावणपर टूटे। पञ्जे, पङ्ख, चोंचके अनवरत प्रहार—रावणको हाथ उठानेका भी अवकाश नहीं मिला। उसका मुख, भुजाएँ, मस्तक, वक्ष, उदर, पीठ—पूरा शरीर क्षत-विक्षत हो गया। वह घूमकर गिरा और मूर्छित हो गया।

मूर्छित शत्रुपर प्रहार क्रूरता होती। जटायुने अब श्रीजानकीकी ओर ध्यान दिया। वे इतने युद्धमें श्रान्त हो चुके थे। इस समय सीताको उठाकर पर्णशाला तक पहुँचानेमें भय भी था। दशग्रीव किसी क्षण सचेत हो सकता था। सचमुच दशग्रीव शीघ्र सचेत हो गया। जटायुको सीताको आश्वासन देनेका भी अवकाश नहीं मिला।

श्रीवैदेही अब तक स्तब्ध गीधराज और रावणके युद्धको देख रही थीं। वृद्ध श्वसुरके समान सम्मान्य जटायु उनके लिए दुर्धर्ष राक्षससे भिड़े थे। जानकीका हृदय वेगपूर्वक धड़क रहा था। कुछ क्षण ही तो लगे थे। रावण मूर्छित होकर गिरा। गीधराज समीप आये और तत्काल उन्हें लौटना पड़ा। राक्षसको इतना अवकाश नहीं देना था कि वह दौड़कर अपने ध्वस्त रथमें-से दूसरा अस्त्र उठा सके।

जटायुके शीघ्रता करनेपर भी दशग्रीव अवसर प्राप्त कर चुका था। उसने अपनी कटिमें लटकती तलवार निकाल ली थी। गीधराजने आक्रमण किया तो राक्षसने तलवारसे उनका एक पङ्ख काट दिया। एक पङ्ख कटते ही असन्तुलित होकर वे लड़खड़ाये, तब तक रावणने उनके दोनों पैर काट दिये और गिरनेसे पहिले ही दूसरा पङ्ख भी काट दिया।

जटायु भूमिपर गिरे। मूर्छित हो गये। केवल उनका हृदय धड़कता रहा। चीत्कार मारकर श्रीजानकी दौड़ी और ऐसे जटायुसे लिपट पड़ीं जैसे पुत्री पितासे लिपट जाय। उन्होंने आर्तस्वरमें पुकारा—'आर्यपुत्र दौड़ो! दौड़ो लक्ष्मण!'

दशग्रीवको लगा कि उसे विलम्ब हो गया है। किसी क्षण सानुज श्रीराम आ सकते हैं। उसने तत्काल मायामय रथ प्रकट किया। उसे अपनी ओर आते देख श्रीमैथिली भागीं। उन्होंने एक लताका आश्रय लिया, उसे पकड़ा; किंतु दुष्ट दशग्रीवसे ऐसे कैसे बचा जा सकता था। रावणने अपने संकल्प-बलसे ही उन्हें मायामय रथमें* डाला और स्वयं सारथी बनकर रथको आकाश-मार्गसे ले चला। दशग्रीवको लंका पहुँचनेकी शीघ्रता थी। राम पर्णकुटी पहुँचकर किसी दिव्यास्त्रका प्रयोग करें, इससे पूर्व उसे लंका पहुँचना था।

---

* मायामय रथ अर्थात् रथ होता नहीं, केवल दीखता है। व्यक्ति दूसरेके सङ्कल्प-बलसे आकाशमें उसके पीछे उड़ा जा रहा है, और उसे तथा दूसरोंको भी दीखता है कि उसे रथमें डालकर ले जाया जा रहा है।

अशोक वाटिका

अधोदृष्टि, आर्तक्रन्दन करती श्रीसीता विवशा जा रही थीं—'हा राघवेन्द्र ! हा रघुनाथ !'

कोई दीख जाय ! बर्णनसे बाहर वेदना—'इस भाग्यहीनाके कारण वृद्ध गीधराजके प्राण गये !'

अत्यन्त व्याकुल दृष्टि, कहीं नीचे कोई दीख जाय। जाय। स्वामी तक सन्देश पहुँचानेका कोई सूत्र मिले। सहसा नीचे पर्वत-शिखरपर पाँच विशालकाय वानर बैठे दीखे—उपदेव वर्गके वानर। श्रीजानकीने अपना उत्तरीय फाड़ा और शरीरके आभरण उतारकर उसमें बाँधे। जैसे ही दशग्रीव शिखरके ऊपर पहुँचा, सीताने वस्त्रमें बँधा आभूषण नीचे फेंककर पुकारा—'मुझ असहाया जनक-पुत्री सीताके धर्मभाई बनना। स्वामी आवें तो इन्हें देकर समाचार देना।'

अधिक कहनेका अवसर नहीं था। वानरोंमें एकने दौड़कर वह ऊपर-से गिरी वस्त्रमें बँधे आभूषणोंकी गठरी उठा ली, यह दीख गया। दशग्रीवने भी नीचे देख लिया। वह मनमें हँसा—'यह ऋष्यमूकका शिखर पञ्चवटीसे कितनी दूर है, गगन पथसे इस वेगमें आती सीता क्या समझेगी और नीचे ये वानर—बालिके भयसे यहाँ प्राण बचानेको छिपे ये—कदाचित् राम यहाँ पहुँच भी जायँ तो ये उनका क्या उपकार कर सकते हैं ?'

'दुष्ट ! कापुरुष ! डरपोक ! तूने मृग भेजकर मेरे पतिको दूर किया और तब मेरा हरण किया।' सीताजी रावणको धिक्कारती, डाँटती ही जा रही थी—'मेरे स्वसुरके सखा गीधराजको मारा तूने। तू चाहे जहाँ छिप ! मेरे स्वामीके कोपसे अब कोई तेरी रक्षा नहीं कर सकता।'

रावण मौन बना रहा। उसका रथ, उसका वेग सब उसके सङ्कल्प-का निर्माण था। इस समय उसे दूसरी ओर ध्यान देनेका अवकाश नहीं था। सीधे लंकाके अन्तःपुरमें जाकर उतरा वह। राक्षसियोंने उठकर उसको प्रणाम किया। रावणने उन्हें आदेश दिया—'इसे समझाओ। इसकी अच्छी सेवा करो। रत्न, मणि, वस्त्र जो चाहे, इसे अविलम्ब देना।'

'तुम लोग तत्काल जनस्थान चले जाओ।' सीताको राक्षसियोंको देकर दशग्रीव पहिले अपने मिलन-कक्षमें आया। वहाँ उसने लंकाके आठ विख्यात मायावी, पराक्रमी दुर्दान्त राक्षस बुलवाये और उन्हें आदेश दिया—'खर-दूषण-त्रिशिराकी राजधानी सूनी पड़ी है। उसे अपना निवास बना सकते हो। वहाँ तुम्हें आहार तथा अन्य सब आवश्यक सामग्री प्राप्त हो जायगी; किंतु ऐसे छिपकर रहना कि तुम्हारी उपस्थिति किसीको ज्ञात न हो।'

'पञ्चवटीमें पर्णकुटी बनाकर अयोध्याके दो राजकुमार तपस्वी वेशमें रहने लगे थे। उनपर निरन्तर दृष्टि रखनी है। तुममें-से कम-से-कम दो रात-दिन उनको देखते रहो।' दशग्रीवने कार्य बतलाया—'वे किधर जाते हैं, क्या करते हैं, किनसे मिलते हैं, यह सब समाचार सुविधा देखकर मेरे पास भेजते रहो।'

'वे दिव्यास्त्र ज्ञाता हैं। उनको तुम्हारी उपस्थिति ज्ञात नहीं होनी चाहिये।' रावणने सावधान करके कहा—'वैसे छिपकर उन दोनोंमें-से एकको भी मार दे सको तो मैं बहुत पुरस्कार दूँगा। स्मरण रखना, एक श्यामवर्ण है, एक गौर है। दोनों पञ्चवटीसे अब किसी ओर चलते भी मिल सकते हैं।'

इस बार भी दशग्रीव इन चरोंको भेजते समय अपनी उतावलीमें कबन्धका स्थान बतलाकर उससे बचे रहनेको कहना विस्मृत हो गया। पहिले भेजे गये राक्षसोंके समान ये भी जनस्थानसे अपरिचित थे। कबन्धके सम्बन्धमें सुना अवश्य था इन्होंने; किंतु कबन्ध कहाँ रहता है, इसका इन्हें पता नहीं था। अतः ये जनस्थान पहुँचकर पञ्चवटीकी ओर चले तो कबन्धकी योजनभर लम्बी भुजाओंकी पकड़में आ गये। कबन्धकी पकड़में आये प्राणीकी एक ही गति होनी थी, उसके उदरमें पहुँचकर पच जाय। दशग्रीवको अपने इन दूतोंका कोई समाचार कभी नहीं मिला।

जनस्थान दूत भेजकर रावण सीताके समीप पहुँचा। वे घुटनोंमें सिर दिये रुदन करती बैठी थीं। राक्षसियोंने निवेदन किया—'यह कोई बात नहीं सुनती। किसी पदार्थकी ओर नहीं देखती। ऐसी ही बैठी रो रही है।'

'मेरे साथ चलो! राजसदन देख तो लो कि यहाँ कितना वैभव है। कैसे अलभ्य रत्न, मणि, मृग, पक्षी हैं।' रावणने विस्तारसे अपने

वैभवका वर्णन किया—'मैं बत्तीस करोड़ राक्षसोंका स्वामी हूँ। मुझे प्रसन्न करनेसे यह सब वैभव तुम्हारा हो जायगा। सब राजसदनकी स्त्रियाँ, मेरी पट्टमहिषी मन्दोदरी भी तुम्हारी सेवा करेगी। अब रामको देखनेकी आशा छोड़ दो। त्रिलोकीमें यहाँ पहुँचनेमें कोई समर्थ नहीं है।'

श्रीवैदेहीने इधर-उधर देखकर एक तृण उठाया—'राक्षस! तू और तेरा वैभव इस तृणके समान मेरे लिए तुच्छ है। मैं धर्मके सेतु अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्की पुत्रवधू हूँ। मेरे स्वामीके सामने तुमने मेरा हरण करनेका साहस किया होता तो लंका जीवित नहीं लौटते। वे तुम्हें छोड़ेंगे, यह दुराशा त्याग दो। अब तुम्हारे जीवनके थोड़े दिन रह गये। वे क्रोध करें तो समुद्रको शुष्क होते क्षणभर लगेगा। सृष्टिको प्रलयगर्भमें उनका एक शर फेंक सकता है। तुमको मेरे शरीरका लोभ है तो इसे भक्षण कर लो; किंतु सीता अपने स्वामीको छोड़कर किसी और की ओर दृष्टि नहीं उठावेगी।'

'सीता! मैं राक्षस हूँ। मेरी प्रतिज्ञा भी सुन ले!' रावणने कठोर स्वरमें कहा—'मैं केवल बारह महीने प्रतीक्षा करूँगा। इस अवधिमें तूने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया तो राक्षसियाँ तुझे काटकर मेरा प्रातराश प्रस्तुत करेंगी।'

'इसे अशोक वाटिकामें रखो।' रावण श्रीवैदेहीका उत्तर सुने बिना हट गया वहाँसे। उसने राक्षसियोंको संकेतसे समीप बुलाकर आज्ञा दी—'कोई इसे समझाओ, प्रलोभन दो और कोई भयभीत करो, धमकाओ। लेकिन सावधान! यह मर गयी तो मैं तुम सबको मार दूँगा। यह आत्म-हत्या न कर ले, सरोवरमें कूद न पड़े या अपनेको चोट न पहुँचा ले। बहुत अधिक व्याकुल हो, मूर्छित हो जाय तो थोड़ी दूर हटकर छिपकर दृष्टि रखो!'

दशग्रीव प्रशप्त था। रम्भा और पुञ्जिक स्थली अप्सराओंने उसे तब शाप दिया था, जब उसने बलपूर्वक उन्हें धर्षित किया। 'तू किसी नारीके साथ उसकी स्वीकृतिके बिना अनाचार करेगा तो तत्काल मर जायगा*। इस शापके कारण रावण कोई धृष्टता करनेका साहस नहीं कर सकता था। वह वहाँसे चला गया।

---

* इस शापकी कथा 'राक्षसराज'में दी गयी है।

'तुझे महारानी नहीं बनना तो उठ यहाँसे।' राक्षसियाँ गुर्रायीं। श्रीजानकी विवशा उनके साथ अशोक वाटिका चली गयीं। नरेशोंके अन्तःपुरसे लगे पुष्प एवं फलोंके उद्यान प्रायः होते थे। ये उद्यान राजसदनकी परिखासे घिरे अन्तःपुरके ही अङ्ग होते थे। राजभवनकी स्त्रियाँ वहाँ क्रीड़ा-विनोदके लिए जाया करती थीं। ऐसा ही अन्तःपुरका उद्यान थी अशोक वाटिका। उसमें रावणके अपने पुत्रोंका भी प्रवेश नहीं था।

'अबसे अन्तःपुरकी कोई रानी अशोक वाटिकामें नहीं जायँगी।' दशग्रीवने उसी दिन आदेश दे दिया—'केवल वाटिका रक्षक रहेंगे वहाँ और वे भी सीतासे दूर रहेंगे। सीताकी रक्षिकाएँ ही उसके समीप जायँगी।'

'देवि, आपके श्रीचरणोंमें काश्यप अदिति पुत्र पुरन्दर प्रणाम करता है।' दूसरे ही दिन प्रथम प्रहरमें अचानक देवराज इन्द्र श्रीवैदेहीके सम्मुख प्रकट हुए। निशाचरोंको तो मध्याह्न तक निद्रा आती है। इन्द्रकी मायासे भी राक्षसियाँ सुप्त थीं। श्रीजानकीके समीप कोई नहीं था। देवराजने रत्नपात्रसे दिव्यपायस एक कमलपत्रपर रखकर सामने उपस्थित किया—'भगवान ब्रह्माने इसे मेरे द्वारा भेजा है। लोकपितामह द्वारा प्रेषित यह प्रसाद आप ग्रहण कर लें। इससे आपको वर्षभर क्षुधा-पिपासाका कष्ट नहीं होगा।'

'लोकपितामह पूज्य हैं और आप भी मेरे स्वसुरके सखा हैं।' श्रीजानकीने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया—'आप दोनोंका आदेश मुझे मानना चाहिये। यहाँ राक्षसियोंसे स्पृष्ट जल भी मैं ग्रहण नहीं कर सकती। आर्यपुत्र अवश्य आवेंगे और सीता उससे पूर्व मर गयी तो उन्हें असीम पीड़ा होगी। अतः मुझे चाहे जितने कष्ट हों, जीवन तो रखना ही है।'

श्रीवैदेहीने देवताओंका, पक्षियोंका भाग पृथक करके शेष पायस स्वयं ग्रहण कर लिया। देवराजने ही जल दिया आचमन करनेको। देवभाग एवं उच्छिष्ट पद्मपत्र वे उठा ले गये। पक्षियोंने अपना भाग उसी क्षण स्वच्छ कर दिया।

'सीता केवल रुदन करती है। वह न जल पीती, न कोई फल ही ग्रहण करती।' राक्षसियोंने घबड़ाकर रावणसे कहा—'ऐसे वह अवश्य मर जायगी।'

रावणने आदेश दिया—'विभीषणकी पत्नीको वहाँ जाना चाहिये। वह जाय तो तुम सब दूर चली जाया करो। वह सीताको कुछ खिला सकती है।' तबसे विभीषण-पत्नी सरमा वहाँ जाने लगीं।

वियोग-विलाप

'अकेली सीताको छोड़कर लक्ष्मण यहाँ ?' श्रीराम दूरसे ही अनुजको अपनी ओर आते देखकर चौंके। मारीचने मरते समय उनके स्वरमें सीता और लक्ष्मणको पुकारा था। इससे सशङ्क वे तीव्रगतिसे लौटे थे। अनुज उनके आदेशकी उपेक्षा करके आ रहे थे, यह असाधारण बात थी। किसी सामान्य कारणसे लक्ष्मण उनके आदेशकी अवज्ञा नहीं कर सकते। अवश्य कुछ अघटनीय घटित हुआ।

श्रीरामने आगे बढ़कर अनुजका बायाँ कर पकड़ लिया—'लक्ष्मण! तुम जानकीको एकाकिनी छोड़ आये? वे सकुशल हैं? मुझे लगता है कि उनका कुछ अनिष्ट हुआ है। अवश्य इसमें मायावी राक्षसोंका षड्यंत्र है।'

'आर्य!' रोते हुए लक्ष्मण अग्रजके पैरोंपर गिर पड़े।

'भाई! एक पलके विलम्बका अवसर नहीं है।' श्रीरामने भाईको उठाया—'हम दोनों शीघ्रतापूर्वक पर्णशाला चलें। तुम चलते हुए बतलाओ क्या हुआ?'

'हा लक्ष्मण हतोऽस्मि!' यह ध्वनि सुनायी पड़ी। तीन बार आपके स्वरमें किसीने मुझे कातर कण्ठसे पुकारा।' लक्ष्मणने कहा।

श्रीरामने कह दिया—'वह तो मायावी मारीचका स्वर था। मरते-मरते वह यह छल कर गया।'

'मैं समझ गया था कि यह कोई कपटी राक्षस पुकारता है; किंतु उसे सुनकर आर्या व्याकुल हो गयीं। मैंने बहुत कहा कि आप सुरासुर सबके लिए अजेय हैं; किंतु उन्होंने मेरी बातको दुर्भावना माना।' लक्ष्मणने रोते-रोते कहा—'उन पूजनीयाने जो कुछ मुझे कहा, मैं अपने मुखसे वह सब नहीं कह सकता। वे आक्षेप भी सुन लेता, पर वे अपनेपर ही आघात करने लगी थीं। आत्मघातको उद्यत हो गयी थीं। मुझे विवश होकर उनके आदेशसे आपके समीप आना पड़ा।'

'अवश्य इसमें किसी राक्षसका छल है। हम दोनोंको सीताके समीपसे दूर करनेमें वह सफल हो गया।' श्रीरामने कहा—'लक्ष्मण! मेरा

वाम नेत्र, वाम भुजा फड़क रही है। लगता है कि जनक-नन्दिनी आश्रममें नहीं हैं।'

लक्ष्मण हतप्रभ मौन चले आ रहे थे। श्रीरामने कहा—तुमने अच्छा नहीं किया। उनका क्रोध देखा, मेरा आदेश नहीं देखा। वे हम दोनोंके भरोसे ही वनमें आयी थीं। राक्षस उन्हें खा ले सकते हैं। उनका अपहरण कर सकते हैं।'

लक्ष्मण क्या कहते। वे मस्तक झुकाये मौन चले आ रहे थे। उनके नेत्रोंसे बिन्दु टपक रहे थे। जितनी शीघ्रतापूर्वक चलना सम्भव था, दोनों भाई उतनी शीघ्रतासे दौड़ रहे थे। दूरसे ही श्रीरामने पुकारा—'सीते ! वैदेही ! परिहास मत करो प्रिये ! रामके प्राण व्याकुल हो रहे हैं। जानकी ! तुम कहींसे भी सुन रही हो तो उत्तर दो !'

उत्तर कौन देता ? लताओंके पत्र और पुष्प म्लान हो गये थे। अग्निकुण्डमें अग्निदेव थे ही नहीं। दुःखके कारण शान्त हो गये थे। वृक्षोंके पत्र पीताभ होकर गिर रहे थे, जैसे वे रुदन करते हों। मृगगण एक ओर जाते थे, करुण शब्द करते थे। पक्षी चीखते आकाशमें उड़ते थे। मूक प्राणी संकेत ही तो कर सकते हैं; किंतु इस समय श्रीराम कोई संकेत समझनेकी स्थितिमें नहीं थे।

'सीता कहाँ गयीं ? कहीं पुष्पचयन करने ?' श्रीरामने भाईकी ओर देखा। लक्ष्मणने सिर हिला दिया कि इसकी सम्भावना नहीं है। रामका आर्तनाद गूँजा--'कोई उनका अपहरण कर ले गया ? कोई खा गया उन्हें ?'

'गिरिवर ! गजगामिनी जनकसुता कहाँ हैं ? अश्वत्थ, न्यग्रोध ! प्लक्ष ! पद्मपाणिनी मिथिलेशनन्दिनीको कहीं देखते हो ? आम्र, विल्व, आँवले ! जिन्होंने तुम्हें पुत्रोंके समान सींच-सींचकर पाला, वे सीता कहाँ गयीं ?' श्रीराम प्रेमके आवेशमें उन्मत्तप्राय इधर-उधर दौड़ने और वृक्षोंसे, लताओंसे पूछने लगे---'मल्लिके ! माधवी ! यूथिके ! चम्पकवर्णी जानकीको तुमने देखा ?'

'शशक ! कपि ! मृगो ! मेरी मृगलोचनी प्रिया कहाँ छिपी है ?' श्रीरामको ये पशु-पक्षी संकेत ही तो कर सकते हैं; किंतु ये तो पूछ रहे

हैं, एकसे दूसरेकी ओर दौड़ते पूछ रहे हैं—'काक ! कपोत ! कोकिले ! कोकिलस्वरा सीता कहाँ हैं ? कहाँ हैं हंसगामिनी मेरी प्रिया ?'

'सीता ! सीता ! हा सीते ! कहाँ हो तुम ? श्रीराम मूर्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण व्याकुल होकर अग्रजके पीछे लगे थे। उन्होंने अब अग्रजका भी एक त्रोण, कुल्हाड़ी, खन्ती सम्हालकर पीठपर बाँध लिये थे। अग्रजके मृगचर्मका उत्तरीय गिरा तो उसे भी उठा लिया। अब इस पर्ण-शालामें रहा नहीं जा सकता। भगवती मैथिलीको ढूँढ़ना है, यह वे समझ चुके और अग्रज अत्यन्त व्याकुल हैं। उन्हें भी सम्हालना है। श्रीराम मूर्छित होकर गिरे तब लक्ष्मणको जलपात्रका स्मरण हुआ। दौड़कर उसे उठा लाये। अग्रजके मुखपर जल छिड़का।

'तुम कौन हो ?' संज्ञा लौटनेपर भी श्रीराम पूरे सचेत नहीं हुए थे। समीप व्याकुल अनुजको देखकर उन्होंने अपरिचितके समान पूछा।

'मैं आपका दास लक्ष्मण !' अग्रजके उन्मत्तके समान नेत्र फटे एक-टक देखते देखकर जैसे लक्ष्मणका हृदय विदीर्ण हो गया हो। रुदन करते हुए उन्होंने श्रीरामके दोनों चरण पकड़ लिये।

'मैं कौन हूँ ?' अपनी-अपने नामकी भी स्मृति नहीं रही हो, इस प्रकार श्रीरामने अपने शरीरको देखा।

'अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथके ज्येष्ठ राजकुमार।' लक्ष्मणने वैसे ही रुदन करते कहा—'मेरे स्वामी। रघुवंश-भूषण।'

'राजकुमार ? रघुवंश-भूषण ? स्वामी ?' जैसे कोई बहुत विस्मृत बात मस्तिष्कपर बल देकर सोची जा रही हो, ऐसा स्वर। आस-पास देखा और पूछा—'इस वनमें हम क्यों आये ? क्या कर रहे हैं यहाँ ?'

'भगवती मैथिलीको ढूँढ़ रहे हैं।' लक्ष्मणने कहा।

'हा मैथिली ! हा सीते ! कहाँ हो तुम ?' श्रीराम उन्मत्तके समान उठकर दौड़ने लगे। विलाप करने लगे—'लक्ष्मण ! वे सब सुख त्यागकर मेरे पीछे वनमें चली आयी थीं। मैं उनके बिना अयोध्यामें कैसे मुख दिखलाऊँगा। क्या कहूँगा महाराज जनकसे ? क्या कहूँगा अपनी तपस्विनी मातासे ? जनकपुरके लोग क्या कहेंगे मुझे ? अयोध्याके लोग रामको कापुरुष समझकर उपहास करेंगे !'

'मेरे स्वामी ! हम अवश्य उन अम्बाको पावेंगे ; किंतु उनका अन्वेषण आवश्यक है।' लक्ष्मणने कहा—'आप शोक त्यागकर धैर्य धारण करें। अपनेको स्थिर करें तो हम अन्वेषण करें।

'तुम ठीक कहते हो। चलो, इस गोदावरीसे पूछें।' श्रीराम उठ खड़े हुए ; किंतु वही उन्मत्त भाव—'ये पुष्प, ये वृक्ष, ये पशु-पक्षी मुझे मेरी पत्नीका पता क्यों नहीं बतलाते ? कैसे हो सकता है कि इनमें किसीने सीताको न देखा हो ? मैं इन सबको भस्म कर दूँगा। सीता नहीं हैं, उन्हें किसीने खा लिया ? तब यह उनसे रहित सृष्टि किस कामकी ? संसारके रहनेका प्रयोजन ? मैं प्रलय करूँगा। यह सृष्टि समाप्त हो जाय !'

प्रचण्ड क्रोधसे शरीर काँपने लगा। अभी तक धनुष करमें ही था और मारीच-वधके पश्चात् प्रत्यञ्चा उतारी नहीं गयी थी। पीठपर एक त्रोण कसा था। अङ्गारसे जलते नेत्र, कठोर भृकुटि। दक्षिण कर बाण निकालने बढ़ा। श्रीराम उठकर खड़े हो गये थे। सुरोंमें भी किसीका साहस उस समय उनके श्रीमुखकी ओर देखनेका नहीं था।

'मेरे स्वामी !' लक्ष्मणने वह दाहिना हाथ पकड़ लिया—'किसी एकने अपराध किया है। आप अनन्त दयामय हो। उस एकके दोषसे निरपराध सृष्टिके अनन्त जीवोंका संहार आप नहीं कर सकते।'

श्रीरामके क्रोधसे पर्वतोंके शिखर टूटने लगे थे। पृथ्वीमें भूकम्प आ गया था। लक्ष्मणकी ओर देखकर तनिक शान्त हुए—'अच्छा, चलो, ढूँढो। कौन है वह जो सीताको ले गया ?'

महावटकी ओर बढ़ते ही भूमिपर टूटा रथ, पड़े धनुष, मरा सारथी, मृत पिशाच मुख गर्दन मिले। रक्तके विन्दु थे, जहाँ-तहाँ। स्पष्ट था कि कोई युद्ध वहाँ हुआ था। श्रीराम फिर क्रुद्ध हुए—'यदि ये पर्वत, वृक्ष, प्राणी, सीता नहीं लौटाते तो मैं आज ही अवश्य प्रलय कर दूँगा।'

'यह आपके अनुरूप नहीं होगा। आप आज्ञा दें, प्रलय तो आपका दास यह लक्ष्मण पल भरमें कर देगा।' लक्ष्मणने हाथ जोड़ा—'लेकिन यहाँ पृथ्वीपर केवल एक ही रथीके चिह्न हैं। दोके चिह्न नहीं और दोके बिना युद्ध सम्भव नहीं। यह रथ किसका टूटा है, यह जान लेना पहिले आवश्यक है।' श्रीरामका ध्यान बँट गया। क्रोधका स्थान अन्वेषणने ले लिया। दोनों भाई रथ, धनुष, बाण आदिको ध्यानपूर्वक देखने लगे।

जटायुकी अन्त्येष्टि

'आप शरणागत-वत्सल हैं। सब प्राणियोंके शरण्य हैं। आपका कोई अप्रिय नहीं कर सकता।' लक्ष्मणने देखा कि अग्रजका आवेश शान्त हुआ है तो समझाना प्रारम्भ किया। आवेशके समय तो समझाना शक्य नहीं होता—'हम अम्बाका अपहरण करनेवालेका अन्वेषण करेंगे। सम्पूर्ण पृथ्वी, समुद्र और आवश्यक हुआ तो सभी लोकोंको मैं देख आऊँगा। संसारका चप्पा-चप्पा हम ढूँढ़ेंगे। यदि हमारा प्रयत्न असफल हो जाय, यदि निश्चय हो जाय कि भगवती धरात्मजा जीवित नहीं हैं, तब आप त्रिलोकीके प्रलय-की आज्ञा इस सेवकको दे सकते हैं। अभी महासंहार करनेसे तो उन देवीका भी अनिष्ट अवश्यम्भावी हो जायगा।'

'आपका स्वरूप अभयप्रद है। आपके स्मरणसे प्राणी समस्त भयों-से परित्राण पा लेता है। आपके द्वारा त्रिभुवनको भय नहीं प्राप्त होना चाहिये।' टूटे रथ, धनुष आदिको ध्यानपूर्वक देखनेमें लगे अग्रजको लक्ष्मण समझाते रहे—'आप ही यदि दुःख-सहनका आदर्श नहीं स्थापित करोगे तो सामान्य जीव कैसे दुःख सह सकेंगे। किसीके जीवनमें कष्ट-आपत्ति आवे ही नहीं, यह तो आपके विधानने ही असम्भव बना दिया है। अपने कुलगुरुके ही सौ पुत्र एक दिनमें राक्षसने मार दिये थे। पृथ्वीमें भूकम्प आते हैं। सूर्य-चन्द्रपर ग्रहण लगता है। दुःख-दुर्दैव किसीको छोड़ते नहीं। अतः प्राकृत पुरुषके समान आपको शोकातुर नहीं होना चाहिये।'

'देव ! मैं तो आपका दास हूँ।' लक्ष्मणने चरण पकड़े—'आपने ही मुझे जो उपदेश किया था, उसकी मैंने आवृत्तिकी है। मेरी इस धृष्टताको क्षमा करें। आपको उपदेश करनेका साहस तो सुरगुरु, सृष्टिकर्ता और साक्षात् भगवान् शिव भी नहीं कर सकते। सबके संहारसे कोई लाभ भी नहीं है। हमको पहिले शत्रुका पता लगाना चाहिये।'

'लक्ष्मण ! तुम उचित कहते हो। जानकीके वियोगने मुझे उद्भ्रान्त बना दिया है।' श्रीरामने गम्भीर होकर धनुष उतार दिया। बोले—'अतः तुम्हीं बतलाओ कि अब हम कहाँ चलें ? क्या करें ?'

'वस्तु जहाँ खोती है, अन्वेषण वहींसे आरम्भ होता है।' लक्ष्मणने कहा—'पहिले यह जनस्थान ही हमें ढूँढ़ना है। इसमें राक्षस रहते हैं तो महात्मा भी रहते हैं। कहींसे अवश्य कोई शोध-सूत्र मिलेगा। हम इस युद्ध-स्थलीको ही पहिले देखें। पता नहीं, यहाँ किसका किससे युद्ध हुआ। पता नहीं क्यों हुआ।'

'वह—वह कोई पर्वताकार प्राणी भूमिमें पड़ा है।' श्रीरामने युद्ध-स्थलीपर दृष्टि घुमायी और सम्मुख देखकर हाथ उठाकर संकेत किया—'वह रक्तसे लथपथ दीखता है। अवश्य राक्षस होगा। वैदेहीको खाकर सो रहा है। इसे मार देना चाहिये।'

कन्धेसे धनुष उतारकर श्रीराम प्रत्यञ्चा चढ़ाने लगे तो पक्षियोंका समूह चीत्कार कर उठा। आसपासके सभी पक्षी एक साथ उड़कर जटायुके चारों ओर उन्हें घेरकर एकत्र हो गये। यह देखकर श्रीराम चौंके—'यह पक्षियोंका प्रिय ! पक्षिराज जटायु तो नहीं ?'

'आयुष्मन् ! मुझे तो राक्षसने पहिले ही मार डाला है, तुम धनुष क्यों उठाते हो ?' क्षीण स्वर सुनायी पड़ा जटायुका—'जिसे तुम इस जन-स्थानमें औषधिके समान अन्वेषण कर रहे हो, उन श्रीजनक-नन्दिनीका रक्षण करनेमें यह गीध जटायु अक्षम रहा। बलवान राक्षस दशग्रीवने उनका हरण किया। उसीका रथ, धनुष, गधे, सारथि यहाँ मृत-ध्वस्त पड़े हैं ; किंतु मैं वृद्ध उस दुर्दमसे जीत नहीं सका। उसने तलवारसे मेरे पङ्ख और पैर काट दिये।'

'पितृव्य जटायु ! तात !' श्रीराम-लक्ष्मण दोनोंने धनुष फेंक दिया और दौड़े। समीपके दूसरे पक्षी उड़कर दूर जा बैठे। दोनों भाई लिपट गये जटायुसे। श्रीरामने अङ्कमें जटायुका मस्तक ले लिया। अपनी जटाओं-से वे उन गीधराजके रुधिरको पोंछने लगे। श्रीरामका शरीर पक्षीके रक्तसे लथपथ हो गया। उन कमललोचनके नेत्रोंकी अश्रुधारा गीधके मस्तकका अभिषेक करने लगी।

'राज्य गया, वनमें रहना पड़ा, पत्नीका हरण हो गया और अब इस अभागे रामके ये आश्रयदाता पिता भी मारे गये !' श्रीराम रुदन करते-करते, गीधके रक्तसे सनी अलकें हाथमें लिए आवेशमें आ गये—'तात ! आपके पक्ष और पद अभी उगेंगे। आप स्वस्थ, तरुणके समान शक्तिशाली

हो जायँगे। यह आपका पुत्र राम आपके समीप रहकर सदा आपकी सेवा करेगा। इसे पिताके स्नेहका, सेवाका सौभाग्य दें और इससे पुत्र-सेवाका सुख प्राप्त करें ! राम अपने समस्त पुण्य आपको···।'

'रुको—रुको वत्स रामभद्र !' जटायुने वाक्य नहीं पूरा होने दिया। उन्होंने किसी प्रकार गर्दन उठायी—'तुम क्यों चाहते हो कि जटायु इस मुनीन्द्र-दुर्लभ महामरणसे वञ्चित हो जाय और मृत प्राणियोंका मांस-भक्षी गीध बना रहे ? जन्म-जन्मके साधनोंका परम फल योगीन्द्र-वृन्द चाहते हैं कि मरते समय तुम्हारा नाम उनके मुखसे निकले। तुम्हारी स्मृति मानसमें किसीके कदाचित आती है तो परमपद उसका स्वत्व हो जाता है। वह तुम मेरे समीप हो। तुम्हारे अंकमें सिर रखकर देहत्यागका सौभाग्य सृष्टिमें दूसरे किसीको कभी मिला है ? मेरे मित्र दशरथके आत्मज होकर जो अवसर उन्हें तुम नहीं दे सके, वह मुझे सुलभ है, अतः रोको मत !'

'तात ! राम भी आपके सम्मुख कङ्गाल है। आपको कुछ देनेमें राम भी समर्थ नहीं।' श्रीराघवेन्द्र भरित कण्ठ बोले—'परार्थमें प्राणोत्सर्ग करनेवाले प्राणियोंका परमपद स्वतः स्वत्व हो जाता है। राम तो उनका वशवर्ती बन जाता है, जो प्रेमपूत हृदयसे दो दूर्वादल एवं एक चुल्लू जल इसे देते हैं, आपने तो रामसे अभिन्न इसकी भार्याके रक्षणमें अपनी आहुति दे दी। राम आपको क्या देगा—आपका सदा ऋणी रहेगा यह आपका पुत्र।'

'तात ! रावणने क्यों जानकीका हरण किया ?' अपनेको सम्हाल-कर सामान्यभाव धारण करके श्रीरामने पूछा—'सीताने कुछ कहा आपसे ? रावण किधर गया ?'

'वत्स ! विश्रवाका पुत्र रावण आकाशमार्गसे पुत्री सीताको लेकर दक्षिण गया। वे अत्यन्त व्याकुल थीं।' जटायुका स्वर क्षीण होता जा रहा था—'वत्स ! मैं अब बोल नहीं पा रहा हूँ ; किंतु तुम व्याकुल मत हो। दशग्रीवने जब सीताका हरण किया, विन्द नामका मुहूर्त था। देवता साक्षी हैं, इस मुहूर्त्तमें खोयी, चोरी गयी वस्तु अवश्य प्राप्त हो जाती है। शत्रुको मारकर तुम अवश्य वैदेहीको प्राप्त करोगे।'

'राम !' जटायुके मुखसे निकला। साथ ही मुखसे रक्त गिरा और उनकी गर्दन श्रीरामके अङ्कमें ढुलक गयी।

'तात ! आप परमधाम पधारो !' अत्यन्त गम्भीर श्रीरामका स्वर गूँजा। सहसा जटायुके शरीरसे एक ज्योति प्रकट हुई—स्निग्ध नीलोज्वल ज्योति। वह घनीभूत होकर चतुर्भुज, वनमाली, पीताम्बरधारी, रत्नमुकुटी पुरुष बन गयी।

'पिता आपके सखा हैं। आप वैकुण्ठमें पधारें; किंतु मार्गमें, स्वर्गमें पिताजीसे मिलनेपर उनसे सीताहरणका यह समाचार न कहें। वे वहाँ भी दुःखी हो जायँगे।' श्रीरामने कहा—'यह समाचार उनको स्वयं रावण शीघ्र देगा, जब कुलके साथ वहाँ पहुँचेगा।'

श्रीरामकी प्रदक्षिणा करके, स्तवन करके, वे दिव्य पुरुष जब आकाशमें जाकर अदृश्य हो गये, श्रीराम सामान्य पुत्रके समान मृत गीधके शरीरसे लिपटकर रुदन करने लगे—'लक्ष्मण ! सब योनियोंमें साधु, धर्मात्मा होते हैं। इन्होंने हमारे पिताकी प्राण-रक्षा की। हम यहाँ आये, तबसे हमारी रक्षा करते रहे हैं। सीताकी रक्षामें अपनी आहुति देनेवाले गीधराजकी मृत्युसे जितना दुःख मुझे हुआ है, उतना सीता-हरणसे भी नहीं हुआ था। तुम काष्ठ-चयन करो। मैं इनकी सविधि अन्त्येष्टि करूँगा।'

लक्ष्मणने आसपाससे सूखी लकड़ियाँ एकत्र करके गोदावरीके तटपर चिताका निर्माण किया। दोनों भाइयोंने जटायुका शरीर उठाया। गोदावरीमें स्नान कराके उसे चितापर स्थापित किया। श्रीरामके आदेशसे लक्ष्मण पर्णशालासे अग्नि ले आये। सबका शरीर दक्षिणाग्निकी आहुति बनता है; किंतु चिताकी परिक्रमा करके श्रीरामने अपने करोंसे उसमें अपने द्वारा स्थापित, पूजित अग्नि अर्पित की।

जटायु तो प्रत्यक्ष पार्षद-देह प्राप्त करके परमधाम पधारे थे। उन्हें वैसे भी किसी और्ध्वदैहिक कृत्यकी आवश्यकता नहीं थी। पशु-पक्षीके लिए अन्त्येष्टि संस्कारका विधान नहीं है; किंतु श्रीरामके करोंकी अग्नि महाराज दशरथको नहीं मिल सकी, जटायुको प्राप्त हुई।

चिताग्नि शान्त हो जानेपर श्रीरामने भाईके साथ गोदावरी-स्नान करके अञ्जलिके जलसे भस्मका सरित-प्रवाह किया। तर्पण किया जटायुका और आखेट करके, गीधके उपयुक्त पिण्डदान किया और इस प्रकार अपनेको उपयुक्त पुत्र सिद्ध किया।

देरतक दोनों भाई बैठे रहे वहाँ। श्रीरामको जैसे सीता भूल ही गयी। उनके मुखपर केवल जटायुके स्नेह, शौर्य, सद्गुणकी प्रशंसा थी।

कबन्ध-मोक्ष

अकथ्य दारुण स्थिति—जिसने कभी कष्ट सहा है, कभी निर्जन अथवा शत्रुओंके प्रदेशमें एकाकी पड़ा है, वह भी कठिनाईसे ही कल्पना कर सकता है। घोर वन, कहीं मुनियोंके आश्रम भी समीप नहीं। मायावी राक्षसोंका प्रदेश और अपहृता भार्याका अन्वेषण करना था। श्रीराम बार-बार वियोग-विह्वल होते थे।

कहीं भी वृक्षके नीचे रात्रि काट देनी थी। श्रीराम अब पत्र-शैया भी देखकर 'हा सोते! हा सीते!' पुकारने लगते थे। रात्रिमें निद्रा नहीं लेते थे। दिनमें विश्रामका नाम नहीं। लक्ष्मण किसी प्रकार भी अग्रजको कन्द-मूल या फल खिला नहीं सके। स्वयं लक्ष्मण तो वनमें आये तबसे निद्रा, क्षुधाजयी हो गये थे, किंतु अपने आराध्य अग्रजका अनाहार उनके हृदयको मथे डालता था।

जटायुने कहा था—'श्रीजानकीको दशग्रीव आकाश-मार्गसे दक्षिण ले गया है।' यह कोई पता था? कोई चोर कुछ चुरा ले जाय, वह अपने घर ही ले जाकर रखेगा, यह क्या निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है? रावण समुद्रके मध्य स्वर्णपुरी लङ्कामें रहता है; किंतु उस राक्षसाधिपके अनुचर, साथी, सहानुभूति रखनेवाले तो संसारमें भरे पड़े हैं। पातालमें दैत्य, दानव हैं। पृथ्वीपर ही अनेक राक्षस हैं। कौन कह सकता है कि रावणने सीताको कहाँ ले जाकर छिपाया है। दक्षिण गया वह जनस्थानसे; किंतु कहाँ दक्षिण? कितनी दूर दक्षिण? पञ्चवटीसे दक्षिण तो भारतका पूरा दक्षिणी प्रदेश पड़ा है और उसमें बहुत पर्वत हैं। सघन अरण्य है। आगे जाकर रावण आकाश-मार्गसे कहीं किसी ओर मुड़ा या नहीं? वह कहीं उतरकर किसी वनमें, किसी गुफामें, किसी अपने मित्रके समीप सीताको छोड़ गया या नहीं? इन प्रश्नोंका उत्तर कौन देगा?

इसी दशग्रीवने विवाहसे पूर्व ही श्रीराम-माता कौसल्याका अपहरण किया था। तब तो वह उन्हें लङ्का नहीं ले गया। एक पेटिकामें बन्द करके

महामत्स्यको दे गया था*। अब वह ऐसा कुछ नहीं करेगा, इसका कोई आश्वासन है ?

कहीं समीप ही रावणने सीताको न छिपाया हो। कोई सर्वज्ञ ऋषि मिल जाय तो कदाचित् जानकीका पता दे सके। अगस्त्यजीका आश्रम पञ्चवटीसे उत्तर था। दशग्रीव दक्षिण गया था, अत: दोनों भाई दक्षिण जा रहे थे। अब दक्षिण केवल मतङ्गाश्रम था। उसी ओर बढ़ रहे थे। कदाचित् कोई ऋषि कुछ बता सकें। वैसे मायावी रावणकी चेष्टा जान लेना ऋषि-मुनियोंके लिए कठिन था। वह ध्यानके लिए अगम्य कर देना जाननेवाला तन्त्रशास्त्रका प्रकाण्ड पण्डित—लेकिन आशाके बिना प्रयत्न कैसे चले। दोनों भाई चलते जा रहे थे।

दण्डकारण्यकी सीमा समाप्त हो गयी। क्रौञ्चारण्य भी पार हुआ। मतङ्ग-आश्रमसे पूर्वका अत्यन्त दुर्गम, जनहीन-प्राणिहीन प्रदेश। पशु-पक्षी ही नहीं, राक्षस भी इसमें प्रवेशका साहस नहीं करते थे। लेकिन दुर्गम प्रदेशमें सीताके मिलनेकी सम्भावना अधिक हो सकती है। दोनों भाइयोंने उस अरण्यमें प्रवेश किया।

एक ओरसे अन्धड़ चलनेका शब्द आया। वृक्ष जैसे टूट रहे हों। दीर्घाकार, भयानकमुखी, लम्बोदरी, मुक्तकेशा, कटिमें व्याघ्रचर्म लपेटे एक राक्षसी दौड़ती आयी। उसने दोनों करोंमें मृग, व्याघ्र पकड़ रखे थे। उन्हें कच्चा ही चबा रही थी। उसका मुख, शरीर रक्तसे लथपथ था। दोनों भाइयोंको देखते ही दाहिने हाथका मृग मुखमें डाला उसने और अन्धड़के समान दौड़कर लक्ष्मणको उठा लिया मुट्ठीमें।

'प्रियतम ! डरो मत। मेरा नाम अयोमुखी है।' उसने रक्त टपकते, भयानक दाढ़ोंवाले मुखको मटकाया—'इस काननमें मेरे साथ विहार करो। केवल यहाँसे आगे दक्षिण मत जाना। मैं भी नहीं जाती। मेरा कबन्ध पकड़ पावे तो मुझे भी मुखमें डाल ले।'

लक्ष्मणने अविलम्ब खड्ग खींच लिया। उस भयानका, लौहकृष्ण-वर्णा अयोमुखीकी नासिका, कर्ण और पयोधर काट दिये। लक्ष्मणको छोड़-कर चिल्लाते हुए वह भाग गयी।

---

* इसी चरितके प्रथम खण्डमें यह कथा गयी है।

'लक्ष्मण ! मेरी वामभुजा, वामनेत्र फड़क रहे हैं।' श्रीरामने अनुज-से कहा—'कोई अनिष्ट आसन्न है। धनुष ज्यासज्ज करो शीघ्र।'

अभी श्रीरामका वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि पक्षी उच्च स्वरसे चीत्कार करते वृक्षोंपरसे उड़े। एक अकल्पित विशाल हाथ आया और उसने लक्ष्मणको मुट्ठीमें पकड़कर उठा लिया। वह हाथ जैसे किसी बहुत बड़े वट-वृक्षकी शाखा अथवा अजगरका शरीर हो।

'आर्य ! आप मेरी बलि देकर शीघ्र दूर भागें !' लक्ष्मणने पुकार कर—चिल्लाकर अग्रजसे कहा ; क्योंकि वह हाथ उन्हें उठाकर लिये जा रहा था—'आप अवश्य श्रीविदेहनन्दिनी और राज्यको पावेंगे !'

'लक्ष्मण ! खड्ग' श्रीराम झपटे। उन्होंने छोटे भाईके हाथोंसे खड्ग झपट लिया। इन्द्रने जो खड्ग महर्षि अगस्त्यके यहाँ रखा था और वहाँसे श्रीरामने लिया था, वह लक्ष्मणके समीप ही रहता था। राक्षसी अयोमुखी-के नाक-कान काटकर अभी लक्ष्मण उस खड्गको स्वच्छ करके कोशमें रखनेका अवसर नहीं पा सके थे। थोड़ी ही दूर अभी दक्षिण बढ़े थे कि यह विपत्ति आ गयी। लेकिन खड्ग लेते-न-लेते वैसे ही दूसरे हाथने श्रीरामको भी पकड़ लिया था।

'इसकी बाहु काट दो !' श्रीरामने उस हाथको कलाईके कुछ ऊपरसे काट दिया और दौड़कर खड्ग लक्ष्मणको पकड़ाया किसी प्रकार, क्योंकि दूसरा हाथ इतना ऊपर उठ गया था कि उसे वे स्वयं नहीं काट सकते थे। लक्ष्मणने भी वैसे ही हाथको काटकर अपनेको मुक्त किया।

'तुम दोनों कौन हो ?' अब मेघ-गर्जनाके समान शब्द सुनायी पड़ा। दोनों भाइयोंने आश्चर्यसे देखा कि दूर, वृक्षोंके मध्य, सभी वृक्षोंसे बहुत ऊँचा पर्वताकार कबन्ध (मस्तकहीन धड़) खड़ा है। शब्द उसके उदरसे आ रहा है ; क्योंकि उसका मुख उसके पेटमें है। इतना विशाल होनेपर भी उसकी भुजाएँ इतनी बड़ी हैं कि वह उन्हें मोड़कर मस्तकपर रखे, तब भी उसकी कुहनी उसके पैरोंके समीप पृथ्वीसे लगती है। अब कलाइयोंके पाससे हाथ कट जानेपर उसने अपने बाहु मस्तकपर रख लिये हैं और अपने ही रक्तमें स्नान कर रहा है।

'मैं अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथका पुत्र राम।' श्रीरामने उच्चस्वरमें उत्तर दिया—'मेरे साथ मेरे अनुज ये लक्ष्मण।'

'ओह ! मेरे उद्धारकर्त्ता आ गये ?' कबन्धने मानों प्रसन्न होकर कहा—'आप दोनों समीप आ जाओ, मैं गन्धर्वराज उपवर्हण हूँ।'

'तुम्हारी यह अवस्था ?' दोनों भाई उसके समीप तीव्रगतिसे जाते हुए बोले। वे देख रहे थे कि उसने अपनी बाहुओंसे आघातका कोई प्रयत्न नहीं किया है। स्थिर खड़ा है वह।

'मेरे सङ्गीतसे सन्तुष्ट होकर सृष्टिकर्त्ताने मुझे समस्त प्राणियोंसे अवध्य होनेका वरदान दिया।' उसने आत्मकथा सुनायी—'इस वरदानने मुझे मदान्ध बना दिया। महर्षि स्थूलशिरा अतिशय दयालु हैं। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने इतना कुरूप अङ्गीकार किया है। अनेकोंका अहङ्कार मिटाया है उन्होंने। वे एक दिन देवराजकी सभामें पधारे। मैं उनका शरीर तथा उचककर अटपटे ढङ्गसे उनका चलना देखकर खुलकर हँस पड़ा।'

'अशिष्ट ! तू सुरसभामें आसन पाने योग्य नहीं है।' क्रुद्ध ऋषिने शाप दे दिया—'अभी राक्षस हो जा।'

'मैं तत्काल राक्षस हो गया। राक्षस देह ही नहीं हुआ, बुद्धि भी राक्षसी हो गयी।' कबन्धने बतलाया—'देवराज इन्द्रको पकड़कर निगल लेने झपट पड़ा। देवराजको दोष नहीं दिया जा सकता। उन्होंने अपनी रक्षाके लिए मेरे मस्तकपर व्रजसे प्रहार किया। इससे मैं कबन्ध बन गया। मेरा मस्तक मेरे धड़के भीतर प्रविष्ट हो गया।'

'सृष्टिकर्ताका वरदान मेरे लिए शाप बन गया। मैं मर सकता नहीं था और अब मस्तक धड़में चले जानेसे देखने, सुनने, बोलने सबमें असमर्थ दयनीय हो गया।' कबन्धने कहा—'देवराज ऐसे प्राणीको अमरावतीमें कहाँ रखते ? मैं स्वयं कहीं जाता कैसे ? अतः उन्होंने कह दिया कि मेरे उदरमें मेरा मुख प्रकट हो जाय।'

'आप इतने निष्करुण नहीं हो सकते देवराज !' कबन्ध कह रहा था—'मैंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि मेरे आहारकी कोई व्यस्था कर दें। अन्यथा अनन्तकालतक क्षुधार्त रहूँगा।'

'जैसे ही तुम पृथ्वीपर पहुँचोगे, तुम्हारी भुजाएँ एक योजन विशाल हो जायँगी।' इन्द्रने स्वर्गकी सुरक्षा रखते हुए वरदान दिया—'अपनी भुजाओंकी परिधिमें आये प्राणियोंको तुम पचा सकोगे।'

'देव ! इस अधमका कभी उद्धार भी होगा ?' मैंने महर्षिजीसे प्रार्थना की।

'जब त्रेतामें परात्पर पुरुष श्रीराम अवतीर्ण होंगे, वे अनुजके साथ वनमें स्वयं तुम्हारे समीप आवेंगे।' महर्षिने कृपा की—'वे जब तुम्हारे हाथ काट देंगे, तुमको अपना गन्धर्व-शरीर प्राप्त हो जायगा। तब तक तुम दक्षिण भारतमें क्रौञ्चारण्यसे कुछ दक्षिण निवास करो।'

'महर्षिका अनुग्रह—वे शाप न देते, एक गन्धर्वको आपका स्पर्श प्राप्त होता ?' कबन्ध करुण स्वरमें कह रहा था—'अब तक मेरा सिर मेरे उदरमें है। मैं प्राणियोंको पकड़-पकड़कर पेटमें पहुँचानेके अतिरिक्त कुछ सोच नहीं सकता। पक्षियोंको कठिनाईसे पकड़ पाता था ; क्योंकि लेटे बिना ऊपर नहीं देख सकता। पूरा घूमे बिना मैं नहीं देख सकता ; किंतु आप देख सकते हैं। मेरे पीछे कहीं समीप ही एक गर्त है। उसमें काष्ठ डालकर मुझे जला दें। मेरे कटे हाथ भी उसीमें फेंक दें तो मैं इस अधमरूपसे परित्राण पाऊँ।'

अब यह प्राणी अत्यन्त दयनीय हो गया था। हाथ कट जानेसे अब आहार भी पकड़ नहीं सकता था। ब्रह्माके वरदानसे अस्त्र-शस्त्रसे अवध्य था। अतः इसे जीवित जला देना स्वयं इसीपर दया करना था—आवश्यक था।

'मैं अवश्य तुम्हारा दाह-कर्म कर दूँगा।' श्रीरामने आश्वासन दिया। अग्रजका संकेत पाते ही लक्ष्मण कबन्धके पीछे थोड़ी दूरीपर जो महागर्त था, उसमें आस-पाससे काष्ठ डालने लगे। श्रीरामने कबन्धसे पूछा—'रावण वनमेंसे मेरी पत्नीको अपहरण कर ले गया। उसने वैदेहीको कहाँ रखा ? स्वयं वह कहाँ होगा ?'

'शाप-दोषसे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। मैं भोजनके अतिरिक्त, कुछ सोच नहीं सकता हूँ।' कबन्धने कहा—'जब आप मुझे दग्ध कर देंगे, मुझे अपना गन्धर्व-देह प्राप्त हो जायगा। तब मैं आपकी जो सहायता कर सकूँगा, अवश्य करूँगा।'

लक्ष्मणने काष्ठ एकत्र कर दिया उस गर्तमें। काष्ठ-मन्थन करके ही अग्नि प्रकट की। केवल कबन्धके कटे हाथ दोनों भाइयोंको अग्निमें डालने पड़े। वह तो स्वयं जाकर उस ज्वालामें कूद पड़ा। आश्चर्य—न

दुर्गन्धि, न चिटखनेका कोई शब्द, कबन्धका शरीर ऐसे जलने लगा जैसे वह प्राणिभक्षी राक्षसका देह न होकर घृतपिण्ड हो। अन्ततः वह गन्धर्व था। क्षणोंमें राक्षस-देह भस्म हो गया और उस ज्वालासे दिव्य देहधारी, परम सुन्दर रत्नाभरण-भूषित गन्धर्व प्रकट हुआ।

दोनों भाइयोंको प्रणाम करके, दोनोंकी परिक्रमा करके गन्धर्व आकाशमें कुछ और ऊपर उठ गया। पृथ्वीका स्पर्श तो इस देव-शरीरसे वह कर नहीं सकता था। आकाशसे ही बोला—'मर्यादा-पुरुषोत्तम! आपको मानवकी मर्यादा ही रखनी है तो सुनें। देव, गन्धर्व किसीमें दशग्रीवका विरोध करनेकी शक्ति नहीं है। मैं कोई सक्रिय सहायता करनेमें असमर्थ हूँ। केवल सम्मति दे सकता हूँ।'

'मनुष्य ६ उपायोंसे अभीष्ट प्राप्त कर सकता है— १. साहस, २. सन्धि, ३. विग्रह ४. दुर्ग, ५. सहायक और ६. आश्रय। साहस आप दोनोंमें असीम है; किंतु इस सङ्कटके अवसरपर आपको एक मित्र—सहायक बनाना चाहिये। समानसे ही सन्धि करके उसे मित्र बनाया जा सकता है।' गन्धर्वने सुझाव दिया–'वानरराज बालिने अपने अनुज सुग्रीव-को निर्वासित कर दिया है। वे चार मन्त्रियोंके साथ आगे पर्वतपर रहते हैं। वे ऋक्षरजाके पुत्र कृतज्ञ हैं। उन्हें राक्षसोंका पूरा पता है। उनसे मित्रता कर लो। वानरोंको भेजकर वे सीताका अन्वेषण करा सकते हैं।'

'आगे जो पुष्पित वृक्ष, हैं, उनसे पश्चिम जाओ। वहाँ अत्यन्त सुन्दर सरोवर है। स्नान करके मेरे राक्षस-शरीरके रक्तसे दूषित गात्र स्वच्छ कर लो।' गन्धर्वने अन्तमें कहा--'वहाँ समीप ही तुम्हारी दीर्घकालसे प्रतीक्षा करती परम तपस्विनी शबरीका आश्रम है। उसे अपने दर्शनसे अवश्य कृतार्थ करो। ऋष्यमूक पर्वतका एक प्रभाव है, वहाँ स्वप्नमें जो वस्तु मिलती है, जागने पर वह अवश्य मिल जाती है।'

इतना कहकर गन्धर्व अन्तरिक्षमें अदृश्य हो गया।

शवरीके बेर

अहैतुक कृपालु, अनन्त करुणावरुणालय, सर्वेश्वरकी कृपाका अधिकारी कौन नहीं है। उन सर्वरूपके लिए भी कोई पराया हो सकता है ? उनकी दया भी क्या वर्ण, आश्रम, जाति या स्त्री-पुरुषका भेद देखती है ? उसके लिए तो पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, पानी-पाषाण, चर-अचर सब समान हैं। सबपर उसका अवतरण सदा सम्भव है।

पुण्यप्राण प्राणी उत्तमकुलमें अथवा सभ्य सम्पन्न समाजमें ही जन्म लेंगे, ऐसा भी कोई नियम नहीं है। वह शबर-भील कन्या थी। अरण्यवासी, अशिक्षित, असभ्य, आखेट-जीवी भील सरदारकी कुमारी। जनपदमें ही अनेकोंके बालकोंको शिक्षा नहीं प्राप्त होती, वन्य जातिकी कन्याको भला शिक्षा कैसी। कोई सत्सङ्ग, सदुपदेश प्राप्त होनेका अवसर नहीं। पशुप्राय वन्य-मानव—उनके यहाँ एक एक ही चर्चा, परस्परके विवादकी अथवा आखेटकी—हिंसाकी चर्चा या परनिन्दा।

ऐसे कुलमें, ऐसे वातावरणमें, ऐसे विकट स्थानमें उसका जन्म हुआ ; किंतु कीचड़से कमल भी तो उत्पन्न होता है। वह उस कीचमें उत्पन्न होनेवाले कीड़ोंमें नहीं थी, कमलिनी थी वह। शैशवसे ही उसे अरुचि थी मांससे-मांसकी गन्धसे। पिता-सरदार थे। वन्य जातियोंका अग्रणीका अर्थ ही होता है कि उनमें सबसे बलवान्, सबसे अधिक लक्ष्यवेध निपुण, सबसे निर्भीक आखेटक। उसकी पर्णकुटीमें प्रतिदिन प्रायः आखेटमें मारे गये पशुओंका रन्धन होता था। वह शिशु थी तो रुदन करती थी। तनिक चलने योग्य हुई तो वृक्षोंके नीचे भाग जाती थी। कन्द-फल, मूल ही उसे खिलाया जा सकता था।

'यह कोई मुनि-पत्नी बनेगी।' व्यङ्ग करती थीं उसकी मातासे भील-पत्नियाँ—'इसके लिए कोई ब्राह्मण ढूँढ़ना होगा।'

अकेली पुत्री—पिताको विवाहकी चिन्ता होनी ही थी। वन्य जातियोंमें अत्यल्प वयमें—दूध पीते बच्चोंके विवाह हो जाते हैं। पुत्रीके

स्नेहवश शैशवमें विवाह नहीं हुआ। वह पदों चलने लगी तो उसके स्वभावकी बात प्रसिद्ध हो गयी। कोई भील उसे अपनी पुत्रवधू कैसे बनाना स्वीकार करे जो मांस-रन्धन ही नहीं करेगी। इस कठिनाईके कारण वह बड़ी होती गयी।

वह युवती हुई। किसी प्रकार पिताने दूर भील-पल्लीके एक विधुर युवकको अपनी पुत्रीसे विवाहके लिए प्रस्तुत किया। उन लोगोंने मान लिया—'पतिगृह पहुँचकर विवश होगी तब अपना अभ्यास परिवर्तित कर लेगी।'

भील-कन्याके विवाहमें स्वागतकी सामग्री मांस और सुरा। पिताने सुराके कुम्भ स्वयं बना रखे थे। मृग, अज आदि पशु एकत्र होने लगे। उसने अपनी एक सहेलीसे पूछ लिया—'मेरे पिता इतने पशु क्यों पालने लगे हैं ? ये दूध भी तो नहीं देते।'

'तेरा विवाह नहीं होना है क्या ?' विवाहिता सहेली उसके भोलेपनपर हँसी—'तेरा वर और बाराती आवेंगे तो क्या तेरे समान कन्द-मूल खायेंगे ?'

'तब क्या वे इन पशुओंको मारेंगे ?' उसने पूछा।

'वे क्यों मारेंगे ?' सहेलीने कहा—'इन्हें मारेंगे तेरे पिता। बाराती इनका भोजन करेंगे।'

'मेरे विवाहमें—मेरे निमित्त इतने प्राणी मारे जायँगे ?' वह तो सुनते ही अधमरी हो गयी। अन्तमें मनमें निश्चय किया—'मैं विवाह करूँगी ही नहीं।'

'यह तेरे वशकी बात है ?' सहेलीने कहा—'कोई पिता कन्याको कुमारी रहने दे सकता है। पिता पकड़कर वरके हाथमें तेरा हाथ देंगे तो तू विरोध कर सकेगी ?'

गुरुजनोंका–माता-पिताका विरोध उसके स्वभावमें नहीं। रुदनके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था। एकान्तमें ऊपर आकाशकी ओर नेत्र उठाकर कातर प्रार्थना—'देवता ! मेरी सहायता करो।'

देवता कम ही किसीकी प्रत्यक्ष सहायता करते हैं। वे जिसकी सहायता करना चाहते हैं, उसे सद्बुद्धि दे देते हैं। उसे भी प्रेरणा प्राप्त

हुई। रात्रिमें जब सब सो गये, उठी। पशुओंके बाड़ेका द्वार खोलकर उन्हें वनमें जानेको मुक्त कर दिया और स्वयं माता-पिता, स्वजनोंका मोह त्यागकर मुक्त हो गयी स्नेह-बन्धनसे। अकेली वनमें भाग चली। शबर-कन्या थी, वनमें उसे भय कैसा। वन-पथ परिचित था। बहुत दूर था मतङ्गाश्रम ; किंतु वही आश्रय था। बीचमें कबन्ध था। वह भक्षण कर ले, इसका भय नहीं था उसे। लेकिन जिसकी रक्षा सर्वेश करें, उसे कबन्ध मार पाता ? वह चलती रही, दौड़ती रही पूरी रात्रि, दिन होनेपर भी और कबन्ध सो रहा था जब उसका अरण्य पार कर रही थी वह।

मुनियोंके आश्रम दीखे पम्पा सरोवरके पास पहुँचकर। उसके पद रुके—काँटोंसे छिदे पद; किंतु प्राण आश्वस्त हो गये—अब पिता या कोई स्वजन कबन्धके भयसे यहाँ तक पकड़ने नहीं आ सकते।'

'ये ऋषि-मुनि असन्तुष्ट होंगे।' दूसरी शङ्का हुई। वह अस्पृश्य शबर कन्या है। उसकी छाया भी पड़ी तो कोई मुनि रुष्ट होकर शाप दे देगा। बचपनसे बहुत डराया है मुनियोंसे।

उसने एक बहुत सघन झाड़ी ढूँढ़ ली। निश्चय कर लिया कि दिन-भर उसमें छिपी रहेगी। भील-कन्याको उदर-पूर्तिकी क्या चिन्ता। कन्द, मूल, फल, शाक उसके अत्यन्त परिचित हैं और इधर तो झरबेरीकी झाड़ियाँ भरी पड़ी हैं। वह बेर खाकर वर्षों रह सकती है।

उसने सुना है कि ऋषि-मुनियोंकी सेवा श्रेष्ठ कर्म है। उसने दूसरे दिनसे ही यह सेवा प्रारम्भ कर दी। रात्रिमें ही मुनियोंके सरोवर तक पहुँचनेका मार्ग स्वच्छ करके दूर वनमें चली जाती। अपने लिए कन्द, मूल, फल और बहुत-सी सूखी लकड़ियाँ एकत्र करती। वहीं कन्द-मूल खाकर किसी झाड़ीमें पड़ रहती। रात्रिका अन्धकार होनेपर लौटती। अर्धरात्रिके पीछे, उठकर सूखी लकड़ियाँ ऋषियोंके आश्रममें उनकी अग्निशालाके द्वार-पर रखकर आश्रम भूमि और सरोवरका पथ स्वच्छ करती। ब्राह्ममुहूर्तमें कोई उठे, इससे पहिले अपनी झाड़ीमें जा छिपती।

'यह मार्ग कौन स्वच्छ करता है ? कौन रख जाता है प्रतिदिन ये समिधाएँ ?' जो सबसे अधिक सावधान है, उसी तपस्वीको दूसरेकी सेवा सबसे पहिले सतर्क करती। महर्षि मतङ्गने पूछताछ प्रारम्भ की—'इस प्रकार सेवा करके कौन हमारी तपस्या चुरानेकी चेष्टा कर रहा है ?'

वहाँ राक्षसोंसे घिरे उस प्रदेशमें किसीके समीप कोई तरुण शिष्य नहीं था। सब वृद्धप्राय तपस्वी थे। सब अकेले अपनी पर्णकुटी बनाकर रहते थे। सबके यहाँ समिधाएँ रखी जा रही थीं। सभीके आश्रम रात्रिमें स्वच्छ हो रहे थे। प्रश्न ही था कि यह कौन करता है? तपस्वियोंकी तपस्या नष्ट करनेका यह कोई देवराज इन्द्रका अद्भुत प्रयत्न है या नहीं।

'कौन हो तुम ? रुको ?' महर्षि मतङ्गने इस तपःचौरको पकड़नेका निश्चय किया। रात्रि-जागरण तपस्वीके लिए कोई समस्या नहीं थी। ज्योत्स्ना धवल रजनी, शबरीने जैसे ही काष्ठ यज्ञशालाके द्वारपर रखा, महर्षि अपने उटजसे बाहर आ गये। कुछ कठोर स्वरमें डाँटा उन्होंने।

'एक अपावन शवर कन्या है।' शवरीने भूमिपर मस्तक रखा। भागनेका अवसर होता तो भाग गयी होती। भयसे काँपते हुए, ऋषि उसका स्पर्श न कर लें, इस प्रकार सावधान करके बोली—'आप सब महात्माओंकी शरण आयी हूँ।'

'क्यों आयी हो ? क्या चाहती हो ?' उसके कातर कण्ठसे, भय कम्पित गात्रको देखकर महर्षिका स्वर मृदु हो गया।

'अपना उद्धार चाहती हूँ।' शबरीने अपनी कथा सुना दी।

'अपना उद्धार ? और कुछ ?' महर्षि गम्भीर हो गये।

'और कुछ नहीं देव।' शबरी गिड़गिड़ायी।

'शबरी ! तुम अस्पृश्य कुलमें उत्पन्न होकर भी परमपावन हो। धर्मका निवास है तुम्हारे हृदयमें।' महर्षि दयार्द्र हो गये—'सच्चे अधिकारीकी अवज्ञा करनेवालेको सर्वेश क्षमा नहीं करते। तुम प्रातःकाल स्नाम करके आ जाना।'

शबरी कृतार्थ हो गयी। प्रातःकाल महर्षिने उसे राम-नामकी दीक्षा दी। ऋषि-आश्रमोंसे कुछ दूर पर्णशाला बना लेनेकी अनुमति दे दी।

एक अस्पृश्य भील कन्याको महर्षिने शिष्या बना लिया, यह दूसरे किसी तपस्वीको अच्छा नहीं लगा। महर्षिने भी उसे मना कर दिया कि वह किसीके आश्रममें समिधा रखने न जाया करे। गुरुके लिए काष्ठ चयन और पर्णशाला प्रांगणकी स्वच्छताकी आज्ञा मिल गयी उसे। सरोवरके समीपका स्थान वह रात्रिमें स्वच्छ करती रही।

अब दिनभर और रात्रिमें निद्रा आनेतक उसका जप चलने लगा। कन्द-मूल-फलपर उसने जीवन बिताया था। इस प्रकार दिन बीते, महीने बीते, वर्ष बीतते गये। शबरी युवा आयी थी, वृद्धा हो गयी। उसके केश श्वेत हो गये। शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं। इस कालमें महर्षिने दूर बैठकर ऋषियोंके साथकी चर्चा सुननेका उसे अधिकार दे दिया था। स्वयं उसे दूर बैठाकर उपदेश करते थे। भगवत्कथा सुनाते थे।

'वत्से ! परात्पर पुरुष श्रीराम पृथ्वीपर प्रकट हो चुके। वे अब अनुजके साथ चित्रकूट आ गये हैं।' एक दिन महर्षिने शबरीको बुलाकर कहा—'लेकिन सबके शरीरकी अवधि होती है। मेरे शरीरका प्रारब्ध पूरा हो गया। तू व्याकुल मत होना। राम स्वयं तेरे यहाँ आवेंगे। उनका आतिथ्य करना।'

महर्षि मतङ्गने सब तपस्वियोंको एकत्र करके उनसे विदा ली। स्नान करके आसन लगाया। उनका शरीर योगाग्निसे भस्म हो गया। भस्म हो गयी उसी अग्निसे उनकी पर्णशाला। वह पावन भस्म वायुदेव उड़ा ले गये।

तपस्वियोंमें देहासक्ति नहीं हुआ करती। वे लोग अपनी पर्ण-शालाओंमें चले गये ; किंतु शबरीकी तो वह तीर्थभूमि थी। वह प्रतिदिन उसे स्वच्छ करके गोमयोपलिप्त करती। वहाँ किसीके यहाँ गौ भी नहीं थी। वनके भैंसोंका गोबर ही उसे लाना पड़ता था।

'राम मेरी पर्णकुटीमें आवेंगे !' गुरुके वाक्योंने शबरीके अन्तरमें अद्भुत उत्साह भर दिया। वह दूसरे दिनसे ही अपने उन रामके सत्कार-की प्रस्तुतिमें लग गयी। उसे कहाँ पता था कि चित्रकूट कितनी दूर है। गुरुदेवने भी कहाँ कहा था कि राम कब आवेंगे। उसे लगता था, राम आज ही आवेंगे। अभी ही आनेवाले हैं राम।

शबरीकी रात्रिमें निद्रा समाप्त हो गयी। वह वनमें दूरतक अब जा नहीं सकती ; क्योंकि दूर जाय और राम आ जायँ तो ? सरोवर तकका पथ दिनमें बार-बार स्वच्छ करती है। उसके राम आवेंगे उस पथसे। सरोवर तक पता नहीं किस पथसे आवें ; किंतु सरोवरसे पर्णकुटी तकके पथमें शबरीको एक शुष्क पत्र सहन नहीं। ब्राह्ममुहूर्तसे पूर्व वह पूरा पथ लीप डालती है।

राम आवेंगे—उनके लिए पुष्प, जल तो चाहिये। शबरी पता नहीं, दिनमें कितनी बार पुष्प-चयन करती है। पुष्प शीघ्र म्लान होते हैं। जल शीघ्र उष्ण हो उठता है। बार-बार पुष्प और जल परिवर्तित करने होते हैं।

राम आवेंगे—अभी आते होंगे राम। शबरी कन्द, मूल, फल एकत्र करती है रामके लिए। एकत्र करती है और बार-बार अपनी पर्णशालाकी ओर भागती है—राम आ गये।

'राम आवेंगे तो इस अस्पृश्याके यहाँ आवेंगे ?' तपस्वी व्यङ्ग करते हैं ; किंतु शबरी कहाँ किसीकी सुनती है। गुरुदेवने कहा है कि राम उसके यहाँ आवेंगे—अवश्य आवेंगे। शबरीकी आस्था अमर है। उसकी आकुल प्रतीक्षा अनथक है।

'राम आये ? राम आ रहे हैं ?' कोई मृग कूदता है, कोई पक्षी उड़ता है, कोई आहट—शबरी तो उन्मादिनी हो गयी है। वायुके चलनेके शब्दमें भी उसे रामके आगमनकी आहटका भ्रम होता है। वह बार-बार बिना आहट भी ऊँचे चढ़कर दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ाती है—'राम आ रहे हैं ?'

दूर्वादल श्याम, कमल लोचन, आजानुबाहु, जटामुकुटी, वल्कल-वसन राम ग्रौर उनके समान वेशवाले स्वर्ण-गौर लक्ष्मण। दोनों भाई धनुषधारी। शबरीने श्रीरामको देखा नहीं है ; किंतु गुरुमुखसे उनका वर्णन सुना है। अपने हृदयमें तो उसे दोनों भाई प्रत्यक्ष लगते हैं। युग-युगके पहिचाने। श्रवण मार्गसे ही तो सदा वे मनुष्यके हृदयमें आते हैं। शबरीके हृदयमें पता नहीं कबसे विराजमान हैं और वह अब उनके प्रत्यक्ष आगमनकी प्रतीक्षा कर रही है।

ग्रीम, वर्षा, शीतकाल आता गया—बीतता गया। ऋतुएँ परिवर्तित होती गयीं। वृक्षोंमें पत्र आते, पुष्प आते, फल आते, फल पकते, पतझड़ होता। महीने बीतते गये, ऋतुएँ बीतती गयीं, वर्ष बीतते गये। श्रीरामको चित्रकूटसे पञ्चवटी पहुँचकर वहाँसे प्रस्थान करनेमें लगभग बारह वर्ष लगे थे और शबरीकी अनथक प्रतीक्षा चलती रही थी। केवल उसके पुष्प, कन्द, मूल, फल ऋतुओंके अनुसार परिवर्तित होते थे। उसकी प्रतीक्षामें, उसकी आस्थामें, उत्सुकतामें कोई परिवर्तन, कोई क्लान्ति कभी नहीं आयी।

ग्रीष्मकी प्रचण्ड धूप उसे रोक नहीं सकी। वर्षाका प्रबल वेग और शिशिरकी कठोर ठण्ड उस वृद्धाको विरमित करनेमें असमर्थ थी। उसका ध्यान ही कहाँ था अपने शरीरकी ओर। वह जर्जर काया एक धुनसे सञ्चालित थी—'राम आ रहे हैं।'

ऐसी उत्कण्ठा, ऐसी प्राणोंमें जागी प्रतीक्षा—उस सर्वेशकी प्रतीक्षा यदि असफल हो जाय, सृष्टि टिकेगी ? आधि-व्याधि, सङ्कट या यमका साहस था रामकी प्रतीक्षामें पागल उस वृद्धाका स्पर्श करनेका ?'

शबरीकी प्रतीक्षा—शबरीके उत्सुक प्राणोंकी प्रतीक्षाको सफल तो होना ही था ; किंतु कब ? बड़ा दुर्दिन होता है पावस प्रारम्भ होनेसे कुछ पूर्वका दिन। कन्द अंकुरित हो जाते हैं। मूल उगने लगते हैं। वृक्षोंमें फल होते हैं ; किंतु अभी सुपक्व नहीं होते। शबरीको इन दिनों बहुत असंतुष्ट रहना पड़ता था प्रतिवर्ष। कोई कन्द, मूल, आहार योग्य नहीं। एक ही वृक्षके फलोंमें कौन अम्ल, कौन मधुर, कुछ ठिकाना नहीं। केवल झरबेरीमें फल मिलते थे। सूखे-से फल ; किंतु कुछ मधुर मिलते थे वे। बिना चखे कैसे पता लगे कि कौन मधुर, कौन अम्ल। वह फल चखकर मधुर एकत्र करती थी। इस चखनेमें अम्ल, कटु उसकी उदर पूर्ति करते थे। मधुर एकत्र कर लिया करती थी।

शबरीने जनपद देखा ही नहीं था। वह भील कन्या थी। बचपनमें जैसे फल चखकर सहेलियाँ परस्पर देती थीं, वही जानती थी। जीवन भले ऋषि आश्रममें, ऋषियोंके समीप बीता ; किंतु महर्षि मतङ्ग भी उसे दूर बैठकर श्रवणका अधिकार मात्र दे सके। उनकी यह उदारता भी दूसरे तापस कठिनाईसे सहते थे। अतः ऋषि-मुनियोंके आचार-व्यवहारको देखनेका शबरीको अवसर ही नहीं मिला था।

शबरीको यह भी पता नहीं था कि ऋषि-मुनियोंके अतिरिक्त भी क्षत्रिय, वैश्य वर्णके लोग उसे अस्पृश्य मानेंगे। उसने केवल तपस्वियोंके लिए अपनेको अस्पृश्य जाना था और राम उसके मनमें कहाँ तपस्वी थे। वे धनुर्धर थे, शबरीके अपने स्वजन पिता आदि भी धनुर्धर थे, अतः राम उसे अपने लगे थे—अपने थे।

शबरी अपने रामके लिए फल एकत्र करती थी। 'उसके राम आवेंगे--अवश्य आवेंगे। आते होंगे।' शबरीके प्राण प्रतीक्षा कर रहे थे।

राम आये—सचमुच सानुज आये ; किंतु प्रावृट् प्रारम्भ होनेसे पूर्वके विषम दिनोंमें आये जब शबरीको उनके लिए कन्द-मूल संग्रहमें सबसे अधिक कठिनाई होती थी। कन्द-मूल अंकुरित होकर अखाद्य हो जाते थे। फल अपक्व थे। झरबेरीके बेर चखकर ही जाने जा सकते थे कि मधुर हैं या नहीं। शबरीने उन्हें तनिक-तनिक चखकर एकत्र किया था।

कुछ मधुर फल भी मिले शबरीको चार[1] तेंदू[2] जैसे। कुछ कन्द भी अनंकुरित मिले मिश्री कन्द जैसे। खाद्य अंकुर बर्षांसे पूर्व नहीं मिल सकते थे। शबरी जानती ही नहीं थी कि चखनेसे फल उच्छिष्ट हो जाता है तो दूसरे फल जिन्हें चखना नहीं था, हाथ धोकर संग्रह करती ? उसे अपने रामके लिए फल एकत्र करने थे—मधुरतम फल, स्वादिष्ट कन्द, उत्तम गुणवाले कन्द। राम उसके थे।

राम जो सबके हृदयमें रहते हैं उनके लिए कोई अस्पृश्य होता है ? सर्वव्यापी राम—आपके मुखमें वे नहीं हैं ? उनके लिए उच्छिष्ट ? राम किसके ? जो सच्चे मनसे उन्हें अपना मान ले। तब शबरीके अपने—सगे स्वजन ही तो थे राम।

राम आये—सानुज आये। पम्पा सरोवरमें स्नान करके आये। सरोवरके तटपर ही ऋषियोंने, तपस्वियोंने उनका स्वागत किया। उनसे अपनी पर्णशाला पधारनेकी प्रार्थना प्रायः सबनेकी ; किंतु राम तो उस पगदण्डीसे चल पड़े जो उनके लिए प्रतिदिन उपलिप्त होती थी। जो उनके लिए दिनमें कई बार स्वच्छ होती थी। जो उनकी प्रतीक्षारता शबरीकी पर्णकुटी जाती थी। उस पर्णकुटी जाती थी जिसे राम अपनी कह सकते थे।

राम आये—शबरीकी पर्णकुटीके द्वारपर स्वयं आये। अनिमन्त्रित आये। तपस्वियोंके निमन्त्रणकी उपेक्षा करके आये। इसकी उपेक्षा करके आये कि तपस्वी रुष्ट होकर चले गये जब वे सानुज इस पर्णशालाकी ओर बढ़े।

राम आये ! इन्दीवर सुन्दर, कमललोचन, जटामुकुटी, वल्कलवसन, आजानुबाहु, धनुर्धर राम सानुज आये। शबरीने देखा—इतने सुकुमार, इतने सौन्दर्यघन राम ! हृदयमें जो मूर्त्ति आती थी उससे अनन्त-अनन्त

---

१. इसका बीज चिरौंजी होता है।

२. इसीके पत्तोंसे अब बीड़ी बनती है।

गुणित सौन्दर्य, माधुर्यघन राम ; किंतु जैसे युग-युगके, जन्म-जन्मके परिचित अपने अत्यन्त स्वजन राम आये। शबरीको कुछ सूझा नहीं। वह रामके चरणोंमें लिपट गयी। दोनों भुजाओंमें भर लिए उसने रामके पद।

रामने शबरीको उठाया। स्वयं आसन देखकर बैठ गये। अब शबरी तनिक सचेत हुई। उसे कहाँ अर्घ्य, पाद्य, आचमन देना आता था। वह कहाँ श्रुति मन्त्रोंसे स्तवन कर सकती थी। उसके नेत्रोंसे झरती वारिधाराने रामके चरण धोये। थर-थर काँपता शरीर, किसी प्रकार अपने वल्कलके अञ्चलसे ही उस वृद्धाने रामके चरण पोंछ दिये।

न चन्दन, न धूप, न दीपक। कदली तन्तुमें कण्टकके द्वारा पिरोयी पुष्पमाल शबरीने रामके कण्ठमें समर्पित की और उनकी जटामें पुष्प सजाने लगी, तबतक स्वयं रामने कहा—'शबरी ! मैं बहुत भूखा हूँ।'

सङ्कोचीनाथ श्रीराम ; किंतु शबरीसे सङ्कोच कैसा ? यहाँ आकर तो रामको सीताका वियोग विस्मृत हो गया था। सचमुच राम बहुत भूखे थे। राम सदा प्यासे प्राणोंका प्रेम पानेके भूखे रहते हैं और यहाँ आकर बहुत भूखे हो गये थे। लक्ष्मणके बार-बार आग्रहपर भी जिन्होंने फल या कन्द मुखमें नहीं लिया था, वे राम भूखे तो थे ही। पञ्चवटीसे चले तबसे निराहार राम भूखे नहीं होंगे ? शबरीकी पर्णशालामें आकर रामकी क्षुधा एक साथ जाग उठी थी।

शबरी अपने सब संगृहीत फल, कन्द उठा लायी। अब राम कुछ स्वयं उठाकर खाने लगे, कुछ शबरी उनके मुखमें स्वयं देने लगी। शबरी फल उठाती थी, मिश्री कन्द उठाती थी। राम मुख खोलकर ले लेते थे ; किंतु बार-बार माँगते थे—'शबरी ! तुम्हारे बेर बहुत स्वादिष्ट हैं।'

रामको कब क्या स्वादिष्ट लगेगा, कोई कह सकता है ? इन्हींको आगे द्वापरमें केलेके गूदेसे छिलका अधिक स्वादिष्ट लगा था। त्रेतामें तो शबरीके इन बेरोंका स्वाद कभी भूला ही नहीं—

'मातु स्वजन गुरु सदन सासुरे, भइ जब-जब पहुनाई।
तब-तब कही शबरीके फलनकी रुचि माधुरी न पाई ॥

—गीतावली

रामने खाया—माँग-माँगकर खाया। शबरीने पुलक पूरित खिलाया। इस खिलाने और खानेमें दोनोंमें एकको भी स्मरण नहीं आया कि लक्ष्मण

वहीं हैं, खड़े हैं, आनन्दाश्रु भरे पुलकित अपने अग्रजका यह सत्कार देख-देखकर तृप्त हो रहे हैं।

रामने तृप्त होकर भोजन करके आचमन किया। अब शबरी बोल सकने योग्य हुई---'राम ! तुम आये। आज गुरुदेवका आशीर्वाद सफल हुआ। आज मेरा तप, मेरी गुरु सेवा सफल हुई। गुरुदेव तब अक्षय लोक चले गये, जब तुम चित्रकूट पहुँचे थे। तबसे मैं तुम्हारी राह देख रही थी। मेरे गुरुदेवके स्थानका दर्शन करोगे ?'

'करेंगे देवि !' राम उठ खड़े हुए। शबरीको अब लकड़ी टेककर चलना पड़ता था। वह आगे चली।

'यह गुरुदेवका आश्रम है।' शबरी दिखा रही थी—'इस वेदीपर वे शयन करते थे। वहाँ हवन करते थे। उनके तपः प्रभावसे तुम्हारे दर्शन हुए। ये वृक्ष स्वयं वल्कल देते थे। अब भी लताएँ यहाँ अम्लान पुष्पोंसे लदी हैं।'

शबरी भाव-विभोर कह रही थी। राम-लक्ष्मणने वेदीको प्रणिपात किया। हवन कुण्डकी भस्म मस्तकमें लगायी। शबरीका जो तीर्थ है, रामके लिए वह परमतीर्थ था। अनुज बोले—'लक्ष्मण ! महर्षि मतङ्गका यह तपः प्रभाव अब भी प्रत्यक्ष है कि यहाँके पशु-पक्षी मनुष्योंका विश्वास करके इतने समीप आ गये हैं। यहा मृग और सिंह साथ खेलते, बैठते दीख रहे हैं।'

'शबरी ! तुम्हारे समीप हमें कबन्धने भेजा।' रामने अब कहा—'तुम तपस्विनी हो। सीताका पता हमें बताओ।'

'राम ! एक अस्पृश्या भीलनीका क्या तप, क्या शक्ति।' शबरीने कहा—'गुरु कृपासे जानती हूँ कि तुम लीलामय हो। सामने पम्पासर है। उसके दक्षिण तटपर चले जाओ। वहाँ सुग्रीवसे मिलनेका मार्ग प्राप्त हो जायगा। वे तुम्हारा कार्य करेंगे।'

यह चर्चा चल ही रही थी कि तपस्वियोंका समूह आ गया। सबने पुकारकी—'मर्यादा पुरुषोत्तम ! कृपासिन्धु ! कृपा करो ! हमारे धर्मको नष्ट होनेसे बचाओ !'

श्रीराम जब सानुज शबरीके आश्रम चले थे पम्पासरोवरके समीप-से, सब तपस्वियोंको बुरा लगा था। वे रुष्ट होकर चले गये थे। उनमें

चर्चा ही यह थी—'महर्षि मतङ्गने उस अस्पृश्या भीलनीको आश्रय दे दिया और अब ये राजकुमार होकर भी उसी आचारहीनाकी झोपड़ीपर गये हैं।'

शबरीका वहाँ रहना उन लोगोंको सदा अखरता रहा था। महर्षि मतङ्गका प्रतिकार कर नहीं सकते थे और राक्षसोंके भयसे मतङ्गाश्रमसे दूर भी नहीं जा सकते थे। अब श्रीरामने उनके आश्रम पधारनेका आमंत्रण अस्वीकार किया तो सबको अपमानका अनुभव हुआ। सब रोषमें शबरीको ही बुरा-भला कहते लौटे।

सब अपने-अपने आश्रम पहुँचकर चौंके। हवन कुण्डमें अग्नि बुझ गया था। वल्कल चूहोंने कुतर डाला था। पर्णकुटीमें कीड़े-पतङ्गोंका राज्य। अनेक स्थानोंपर चुहियोंने बच्चे दे रखे। लताएँ मुरझायी दीखीं।

तपस्वी प्राणि-हिंसा कर नहीं सकते और पतङ्गोंने, चूहोंने पर्णकुटी रहने योग्य नहीं रहने दी। परस्पर एक दूसरेके यहाँ दौड़े। सब कहीं एक-सी विपत्ति। निश्चय हो गया—'यह आधिदैविक उपद्रव है। श्रीराम ही इससे रक्षा कर सकते हैं।'

'लगता है, आप सबने परम तपस्विनी, भक्ति-मूर्ति शबरीजीकी निन्दा की है।' तपस्वियोंकी बात सुनकर श्रीरामने कहा तो सबके मस्तक झुक गये। 'राम भी इस अपराधका मार्जन करनेमें असमर्थ है। इन देवीसे ही आप क्षमा याचना करें। इनकी चरण रज पड़े तो आप सबके आश्रम निरुपद्रव हों।'

राम भक्तवत्सल हैं तो गर्वहारी भी हैं। भक्तापराध क्षमा करना ही इन्हें नहीं आता। तपस्वियोंका गर्व नष्ट हो गया। शबरीसे क्षमा माँगी और उस वृद्धाके रोकने, गिड़गिड़ाने पर भी उसके चरणोंके चिह्नोंसे अङ्कित रज लेकर लौटे।

तपस्वियोंके आश्रममें जैसे ही वह रज पड़ी—पतंगे, कीड़े, चूहे अदृश्य हो गये। वल्कल तो नवीन जुटाने ही थे। अग्नि भी अरणि-मन्थन करके प्रज्वलित करनी पड़ी।

'राम! तुमने यह क्या किया?' अत्यन्त ग्लानिसे शबरीने कहा—'यह अस्पृश्या भीलनी तुम्हारा स्मरण करती एक ओर पड़ी थी, अब ये पूज्य तपस्वी इसका सम्मान करेंगे, यह कैसे सहा जायगा? शरीर जर्जर

हो गया है। अबतक तुम्हारे दर्शनकी आशामें गुरुदेवका वियोग सहती रही। अब मुझे आज्ञा दो।'

'देवि ! आप जैसे प्रसन्न हों, करें।' लक्ष्मणने कहा। शबरीने अपने गुरुदेवका देहत्याग देखा था। वह वहीं बैठ गयी वैसे ही आसन लगाकर। भले उसे अग्नि-धारणा न आती हो, सङ्कल्प करते ही उसके शरीरसे अग्नि प्रकट हुआ। उस ज्वालामें वह वृद्धकाया भस्म हो गयी। ज्वालासे दिव्यवस्त्राभरणा ज्योतिर्मयी देवी प्रकट हुई। श्रीरामकी स्तुति करके, सानुज उनकी प्रदक्षिणा करके वह परमधाम चली गयी।

श्रीराम सानुज वहाँसे पम्पासरोवर आये। दोनों भाइयोंने स्नान किया और शबरीको इस श्रद्धासे जलाञ्जलि दी जैसे सत्पुत्र परलोकगता माताको देते हैं।

पम्पासरोवर

आज जहाँ हास्पेट नगर हैं, बहुत करके यहीं पम्पासरोवर होगा। आकाशसे देखनेपर हास्पेट एक बहुत बड़े कटोरेमें बसा लगता है। ऋष्यमूक पर्वतका विस्तार बड़ा होगा। मतङ्गाश्रम ऋष्यमूककी तलहटीमें ही था।

स्नान करके, श्रीराम जब सरोवरके समीप बैठ गये, सरोबरका निर्मल जल, उसमें खिले अनेक रंगोंके कमलोंकी शोभा, जल-पक्षियोंकी क्रीड़ा, सबने मिलकर श्रीरामको पुनः श्रीवैदेही-वियोगमें व्याकुल कर दिया। मनका स्वभाव ही है कि दारुण दिनोंमें और सुरम्य स्थानपर, सुखके समय भी वह अपने अतिशय प्रियका स्मरण करता है।

'लक्ष्मण ! इस सरोवरके समीप जो आगे पर्वत है, वही ऋष्यमूक है। उसीपर कहीं सुग्रीव रहते हैं। तुम उनके समीप जाओ; किन्तु क्या वे मुझ राज्यभ्रष्टकी सुनेंगे ?' श्रीराम व्याकुल होकर बोले—'सीताके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता; मैं कामको जीत लेता यदि यह मलयानिल, यह वसन्त मुझे व्याकुल न बनाता।'

वियोग-व्याकुल श्रीराम कहाँ स्मरण करते हैं कि 'यह वसन्त नहीं प्रावृट्के प्रारम्भसे पूर्वका ग्रीष्म है। वे अनुजसे कह रहे थे—'ये पत्ते मुझे संकेत करके बुला रहे हैं। ये जल-पक्षी मुझे पुकार रहे हैं। मैं जल-प्रवेश कर लूँगा। तुम अयोध्या लौट जाओ।'

'आर्य ! आप पुरुषोत्तम हैं। अपने इस दासकी क्यों परीक्षा ले रहे हैं ? लक्ष्मण शिथिलोत्साह नहीं है। मैं जानता हूँ कि उत्साहके बिना उद्योग नहीं बनता।' लक्ष्मणने कहा—'उत्साहीके लिए कुछ अलभ्य नहीं है। आपका यह सेवक दशग्रीवको पातालमें छिप जानेपर भी नहीं छोड़ेगा। आप सर्व-समर्थ हैं। सुग्रीवका सौभाग्य उदय होगा, यदि वह आपकी सेवा स्वीकार करता है।'

श्रीरामने समीप गिरते निर्झरको देखा—'लक्ष्मण ! यह अहर्निशि पर्वतके अन्तरसे झरती जल-धारा, हर-हरका अखण्ड कीर्तन करती प्राणियोंकी पिपासा शान्त करने बढ़ी जा रही है। धन्य है यह पानीका पवित्र आत्मोत्सर्ग।'

'देव ! आपकी ऐसी ही अकारण करुणा संसारके त्रयतापतप्त प्राणियोंको परम पावन करने अहर्निशि झर रही है।' लक्ष्मणने भाव-क्षुब्ध कण्ठसे कहा—'किन्तु अपनी ही क्षुद्रतामें सिमटा प्राणी पाषाण बन गया है। प्रवाहमें पड़े रहनेपर भी उसका अन्तर आर्द्र नहीं हो पाता।'

'यह निर्मल जल, ये सरोवरके समीपकी झुककर पानीके दर्पणमें अपना मुख देखतीं लताएँ, ये विहंग-मिथुन।' श्रीराम अपनी धुनमें कह रहे थे—'कहाँ होगी वैदेही ? उनके समीप भी कोई सरोवर होगा ? मेरे वियोगमें उन्हें सरोवरकी शोभा दृष्टि पड़ेगी ? कितने उत्साहसे वे मेरे साथ बन आयी थी ? हंससे वियुक्त हंसिनीके समान उनका क्रन्दन ही तो गूँजता होगा। जैसे यह निर्झर अखण्ड क्रन्दन कर रहा है।'

'आर्य ! निर्झरकी गति अविराम है। इसका उत्साह थकता नहीं। अतः यह वारिधिको पाता ही है।' लक्ष्मण अग्रजका ध्यान दूसरी ओर करनेके सतत प्रयत्नमें लगे थे।

श्रीराम आज अधिक ही उद्विगन थे। सरोवरकी शोभा इस उद्वेग-को बढ़ा ही रही थी, अतः आवश्यक था कि सरोवरसे शीघ्र कुछ दूर निकल जाया जाय।

श्रीरामने लक्ष्मणको ऋष्यमूकपर सुग्रीवके समीप जानेको कहा अवश्य, किन्तु स्वयं उन्हें भाईका अपनेसे दूर जाना इस समय अच्छा नहीं लगा। वे अनुजके साथ ही ऋष्यमूककी ओर ही चल रहे थे।

विराध दिनके प्रथम प्रहरमें ही मारा गया था। शबरीके आश्रम श्रीराम मध्याह्न-स्नान करके पहुँचे थे। अब दिनका चतुर्थ प्रहर चल रहा था, जब दोनों भाई पम्पासरोवरके तटपर ही किनारे-किनारे आगे बढ़ रहे थे। विशाल सरोवर, ग्रीष्ममें भी उसके किनारे हरे-भरे फलभारसे लदे वृक्ष थे। पुष्पोंसे झूमती लताएँ थीं और वहाँ ग्रीष्मके तापका नाम नहीं था। इस सबके कारण ही श्रीरामको वहाँ वसन्तका आभास हुआ था।

श्रीलक्ष्मण चाहते थे कि सरोवरका तट छोड़ दिया जाय, किन्तु उन्हें अग्रजका अनुगमन करना था। शवरीने सरोवरके ही दूसरे तटपर सुग्रीवसे मिलनेका सूत्र पानेकी बात कहीं थी। इसलिए भी सरोवरका तट छोड़कर सीधे पर्वतकी ओर चलना उपयुक्त नहीं लगता था, किन्तु सरोवरकी शोभाने जो अग्रजके मनस्तापको भड़का रखा था ? सुरम्य स्थान भी तो अनेक बार उद्वेगके कारण बन जाते हैं।

हनुमान–मिलन

अकारण भी शङ्कित-भीत व्यक्ति डरता है। अपने अन्तरका भाव ही व्यक्तिको बाहर सर्वत्र दीखता रहता है। सुग्रीव अपने बड़े भाई बालिसे भयभीत थे। यह भय उनके हृदयमें ऐसा बैठ गया था कि वे सदा सशङ्क रहते थे। भले जबसे सुग्रीव ऋष्यमूकपर रहने लगे, बालिने उनकी उपेक्षा कर दी, उन्हें मारनेका कोई प्रयत्न नहीं किया, किन्तु सुग्रीव को कैसे भरोसा हो कि बालिने अबतक उन्हें मारनेका यत्न नहीं किया तो आगे भी नहीं करेगा !

सुग्रीव उपदेवता थे–वानर-उपदेवता। बड़े भाईने भवन, पत्नी सब छीन लिया। प्राण लेकर भागे। चार मन्त्री विपत्तिके दिनोंके साथी बने रहे—रीछराज जाम्बवन्त, हनुमान, नल और नील। इनके साथ ऋष्यमूक-के शिखरपर शरण ली ; क्योंकि शापके भयसे बालि यहाँ नहीं आ सकता था। अन्यत्र कहीं जा नहीं सकते थे। इसी पर्वतपर घूमकर और पम्पा-सरोवरको देखकर मन बहलाना था।

प्रकृतिकी गोदमें जैसे दर्पण पड़ा हो, ऐसा पम्पा सरोवर। हरे-भरे वृक्ष, पुष्प, लताएँ, गुञ्जार करते भ्रमर, कूजते पक्षी जैसे किसीके स्वागत-का सम्भार बनदेवताने सजा रखा हो। भले पत्ते हिलकर बुलावें, पक्षी कूककर आह्वान करें, सुग्रीव बालिके भयसे वहाँ जा नहीं सकते थे। दूरसे सरोवरकी शोभा ही देख सकते थे।

'जाम्बवान ! हनुमान ! आप सब यहाँ आवें।' सुग्रीव शिखरपर घूमने निकले थे। पम्पासरोवरकी ओर दृष्टि गयी और चौंके। मन्त्रियोंको बुलाकर दिखलाया—'वे दो श्याम-गौर धनुर्धर सरोवरसे इधर ही आ रहे हैं। कहाँसे आये होंगे ? उत्तरमें कबन्ध है। किष्किन्धामें मनुष्य रहते नहीं ; किंतु बालि रावणका मित्र है। राक्षस और वानर भी कामरूप होते हैं। इनमें कोई मनुष्य-रूप बना सकता है। बालिने इन्हें मुझे मारनेको भेजा हो तो ?'

सुग्रीवकी शङ्काको निराधार नहीं कहा जा सकता। उन्हें पता नहीं था कि कबन्ध या खर-दूषण मारे जा चुके हैं। इस राक्षसोंसे भरे प्रदेशमें तपस्वी मुनियोंको छोड़कर सामान्य मनुष्यके आनेकी सम्भावना ही नहीं थी। दूर-दूर तक कोई जनपद नहीं था और जो आ रहे थे वे वन्य भील तो किसी प्रकार कहे नहीं जा सकते थे। उनका वेश भले तपस्वी-जैसा हो, धनुर्धर थे। राक्षसोंके प्रदेशमें घूम रहे हैं तो आसाधारण शूर होंगे ही।

'हनुमान ! तुम ब्रह्मचारीका वेश बनाकर उनके समीप जाओ।' सुग्रीवने आदेश नहीं दिया, अनुरोध किया—'पता लगाओ कि वे बालिके मित्र हैं या नहीं ? बालिने मुझे मारने उनको भेजा हो तो हाथ हिलाकर संकेत कर देना, मैं यह पर्वत छोड़कर तत्काल भागूँगा।'

सुग्रीव बालिसे तीव्र गतिसे भाग सकते थे। पहिले भी बालि उन्हें पकड़ नहीं सका था। इन दोनों शूरोंके सामनेसे भाग चलेंगे; भले बालि आवे तो फिर यहाँ आना पड़े।

बालि धार्मिक है। ये उसके मित्र देवता या कोई अपरिचित बानर हुए तो ब्रह्मचारीका सम्मान करेंगे। ब्रह्मचारीसे झूठ बोलनेका प्रयोजन नहीं होगा। कोई दशग्रीवके योधा हुए तो ब्रह्मचारीके प्रति उनका व्यवहार उनको सूचित कर देगा। किसी भी दशामें एकाकी ब्रह्मचारीसे कोई दुराव नहीं करता।

'आप मेरे संकेतकी प्रतीक्षा करें।' हनुमानने वहीं सामान्य ब्रह्मचारीका वेश धारण किया। सुग्रीवको समझाया–'आप सम्भ्रम त्याग दो। बालि यहाँ आ नहीं सकता और दूसरोंसे सहायता लेना उसके स्वभावमें नहीं है। फिर भी मैं इनके समीप जाता हूँ।'

कन्धेपर मूञ्जका यज्ञोपवीत, कक्षमें पलाशदण्ड और अश्वाजिन, हाथमें कमण्डलु, गलेमें रुद्राक्षकी माला, घुटा मस्तक, बँधी शिखा, भालपर भस्म-तिलक, एक युवक ब्रह्मचारीके वेशमें हनुमान ऋष्यमूकके शिखरसे एक ओर कूदे और श्रीरामके समीप ऐसे आये जैसे वनमें-से—मतङ्गाश्रमकी ओरसे ही आये हों।

'आप दोनोंका मङ्गल हो।' ब्रह्मचारीने प्रथम हाथ जोड़कर प्रणाम किया—'आप दोनों विशालबाहु, कमललोचन, देवोपम तेजस्वी—अपने इन अरुण-मृदुल चरणोंसे वनकी कण्टकाकीर्ण भूमिमें क्यों विचरण कर

रहे है ? आपने वल्कल, जटा धारण किया है ; किंतु धनुधर हैं। सिंह-स्कन्ध, वलिष्ठ बाहु, चन्द्र-सूर्यके समान तेजस्वी आप वनमें क्यों आये ? आप भगवान नर-नारायण हैं तो धनुष-बाण, खड्ग क्यों आपके पास ? ब्रह्मा, विष्णु, महेशमें कोई दो हैं तो अनुग्रह करके इस रूपका प्रयोजन बतला दें। परात्पर परमपुरुष ही इन दो रूपोंमें तो मुझे सनाथ करने मेरे सम्मुख प्रकट नहीं हुए हैं ? कृपा करके मुझे बतलावें कि आप कौन हैं ?'

'लक्ष्मण ! आश्चर्यकी बात है कि इस घोर वनमें इतना अल्पवयस्क और ऐसा विद्वान् ब्रह्मचारी आ गया है ।' श्रीरामने अनुजसे कहा –'यह व्याकरण-शास्त्रका प्रकाण्ड पण्डित लगता है। इसने अपने वाक्योंमें एक भी शब्द अशुद्ध, अनुपयुक्त नहीं कहा। इसका उच्चारण शुद्ध है, स्पष्ट है और शब्दोंका प्रयोग विद्वत्तापूर्ण है। यह कहीं बोलनेमें अटकता नहीं।

ब्रह्मचारीके ब्राह्मण होनेकी सूचना उसका यज्ञोपवीत देता था। उसने आयुमें अपनेसे बड़ेको सायुध देखकर भी तपस्वी-वेशके कारण पहिले प्रणाम किया, यह उसकी विनम्रता थी। वह अपने भाषणसे विद्वान् सिद्ध हुआ। इस वनमें उसकी उपस्थिति कहती थी कि वह अत्यन्त निर्भय है। विरक्त है। किसी ऋषिका शरणापन्न होने आया हो सकता है।

'मैं इक्ष्वाकुगोत्रीय अयोध्या-नरेश महाराज दशरथका ज्येष्ठ पुत्र राम हूँ और ये मेरे छोटे भाई लक्ष्मण हैं।' श्रीरामने संक्षिप्त परिचय दिया– 'पिताकी आज्ञासे मैं पत्नीके साथ वनमें आया था। पञ्चवटीमें मेरी पत्नी जनकराजनन्दिनी सीताका राक्षसने हरण कर लिया। हम दोनों उन्हींको ढूँढ़ रहे हैं। आप कौन हैं ? इस वनमें आप कैसे पधारे !'

'मेरे स्वामी !' हनुमानजी साष्टाङ्ग पड़े पृथ्वीपर और श्रीरामके चरणोंपर मस्तक रखकर रुदन करने लगे—'मैं अज्ञानी आपको न पहिचान सकूँ, यह स्वाभाविक है ; किंतु शरणागत-वत्सल ! आप अनजानके समान क्यों पूछ रहे हैं ?'

श्रीहनुमानजी अयोध्या रहे थे* तब श्रीराम बालक थे। राजकुमार-के वेशमें रहते थे। इस तापस-वेशमें यहाँ उनके दर्शन होनेकी सम्भावना नहीं थी।

---

* यह कथा और हनुमानजीका पूरा चरित 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' में दिया गया है।

'आप ब्रह्मचारी…।' श्रीरामने कहा।

'ब्रह्मचारी नहीं स्वामी! आपका दास पवनपुत्र हनुमान। एक क्षणमें ब्रह्मचारी-वेश लुप्त हो गया। श्रीहनुमानजी अपने वेशमें प्रकट हुए। श्रीरामने उठाकर हृदयसे लगाया। लक्ष्मणजीको हनुमानने प्रणाम किया तो उन्होंने भी अङ्कमाल दी।

'पवननन्दन! आप यहाँ?' श्रीरामने पूछा।

'प्रभु! आपके आदेशसे ही मैं अयोध्यासे चला आया था।' हनुमानजीने बतलाया—'पिताने किष्किन्धा भेजा तो वानरेन्द्र बालिके अनुज सुग्रीवने मुझे अपनी सेवामें स्वीकार कर लिया। मैं उनके ही साथ रहता हूँ। वे आपके सेवक हैं। बड़े भाईने उन्हें निर्वासित कर दिया है, अतः इस सम्मुखके पर्वत-शिखरपर ही अपने चार मन्त्रियोंके साथ रहते हैं। वे आपका सान्निध्य पाकर प्रसन्न होंगे।'

'केशरी-कुमार! हम तो स्वयं सुग्रीवसे मिलनेको समुत्सुक हैं।' श्रीरामने कहा—'कबन्धने हमें उनसे मिलनेकी सम्मति दी है।'

'कबन्धने?' हनुमानजी चौंके नहीं। वे अपने इन आराध्यको जानते हैं। ये असम्भवको सहज सम्भव करनेवाले अवश्य कबन्धका उद्धार कर आये होंगे।

'वह अपने राक्षस-शरीरसे परित्राण पाकर गन्धर्वलोक चला गया।' लक्ष्मणजीने बतला दिया।

'प्रभु! आपका यह दास सुग्रीवका इस समय सचिव है।' हनुमानजीने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया—'सुग्रीव आपसे मैत्रीकी कामना करते हैं।'

'लक्ष्मण! तुम देख ही रहे हो ये कपीन्द्र सुग्रीवके सचिव विद्वान है। वेदज्ञके बिना ऐसी शुद्ध वाणी दूसरेके कण्ठसे प्रकट नहीं होती।' श्रीरामने पुनः प्रशंसा की—'ये मध्यम स्वरमें, बिना विस्तारके असन्दिग्ध स्थिर स्वरसे शुद्ध, स्पष्ट, संस्कारित भाषा बोलते हैं। इनके मुख, नेत्र, भ्रू पर बोलते समय कहीं विकार नहीं आता। न शीघ्रता, न अटकना। ऐसी वाणी सुनकर कौन मुग्ध नहीं होगा। जिनके ऐसे योग्य सचिव हैं, वे सुग्रीव अवश्य मित्रता करने योग्य हैं।'

'हनुमान ! हम भी सुग्रीवसे मिलना चाहते हैं। उनकी मैत्री हमें भी अभीष्ट है।' लक्ष्मणजीने कहा—'हम उनके समीप चलेंगे।'

'आप दोनों मेरे कन्धोंपर विराजमान होनेकी कृपा करें !' हनुमान-जी एक घुटना मोड़कर वीरासनसे सामने बैठ गये—'नारायणका वाहन गरुड़ भी आज इस वानरके सौभाग्यकी स्पृहा करे !'

श्रीरामने सस्मित अनुजकी ओर देखा। स्वयं पवनकुमारके दाहिने स्कन्धपर बैठ गये तब अनुज भी वाम स्कन्धपर बैठे। जब दोनों भाइयोंके आगेके चरणोंको भुजाओंसे घेरकर हनुमान खड़े हुए, पर्वतपर खड़े, इसी ओर दृष्टि लगाये सुग्रीवको किसी संकेतकी आवश्यकता नहीं रह गयी।

सुग्रीव-मैत्री

'आप भय न करें! हम आपकी मित्रता चाहते हैं।' हनुमानने राम-लक्ष्मणको शिखरपर एक वृक्षकी छायामें उतार दिया, तब समीप आये सुग्रीवसे श्रीरामने कहा।

'आप दोनों कौन हैं? यहाँ वनमें क्यों हैं?' सुग्रीवने पूछा।

'सब प्राणियोंको शरण देनेवाले ये मेरे अग्रज अयोध्या-नरेश महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र हैं। पिताकी आज्ञा स्वीकार करके ये वन आये हैं।' लक्ष्मणने परिचय दिया—'इनके गुणोंके कारण मैं इनका दास लक्ष्मण हूँ। पञ्चवटीमें राक्षसने इनकी पत्नीका हरण कर लिया। दानववंशी कबन्धने आपका परिचय देकर हमें भेजा है कि 'सुग्रीव सहायता करेंगे।' सर्वलोकोंको शरण देनेमें समर्थ, सबकी कामना पूर्ण करने वाले, सबके विपत्तिके परमाश्रय श्रीराम आपसे शोकार्त होनेके कारण सहायताकी कामना करते हैं।

अग्रजके सम्बन्धमें इतना कहना भी लक्ष्मणको असह्य हो गया। उनके नेत्र भर आये। कण्ठ गद्गद् हो गया। स्वयं समर्थ रहते किसीसे सहायताकी याचना—लेकिन सेवकको तो स्वामीके संकेतका अनुगमन करना पड़ता है।

'मैं भी भाईके द्वारा हृतदार, निर्वासित, दीन बानर हूँ।' सुग्रीवने हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्रतापूर्वक श्रीरामसे कहा—'आप पराक्रमी हैं; फिर भी मुझ वानरसे मैत्री चाहते हैं, यह मेरा परम सौभाग्य है। आपकी मैत्रीकी आवश्यकता मुझे अधिक है। वह मेरा गौरव है। सचमुच आप यदि इस तुच्छ वानरको मित्र स्वीकार करना चाहते हैं तो मैंने ये हाथ फैलाये, आप इन्हें पकड़कर मैत्रीकी मर्यादा बना दो। मेरे ये हाथ—मेरी समस्त क्रियाशक्ति आपके सम्मुख है। आप इसे अपनाओ, इसे ग्रहण करो।'

श्रीरामने अपने सम्मुख फैले सुग्रीवके दोनों हाथ पकड़ लिये और ऐसे प्रसन्न हुए जैसे उन्हें अकल्पित लाभ हुआ। श्रीरामका स्वभाव ही ऐसा है। इनके सामने जो हाथ फैलाता है, उसका हाथ पकड़कर उसे उठा लेते हैं, अपना लेते हैं। यह करके भी मानते हैं कि उपकार इन्होंने नहीं किया, हाथ फैलाने वालेने किया। किसीको भी अपनाकर राम अत्यन्त प्रसन्न हुआ करते हैं।

'आर्योंमें अग्निकी साक्षीमें पाणि-ग्रहणकी प्रथा है। एक बार अग्नि-की साक्षीमें सत्पुरुष जिसका कर-ग्रहण करते हैं, कैसा भी वह हो, उसका जीवनभर निर्वाह करते हैं।' हनुमानजीने इतनी देरमें थोड़ी सूखी टहनियाँ एकत्र करके समीप अग्नि प्रज्वलित कर दी और बोले—'हम उपदेवता भी अग्निको श्रेष्ठतम साक्षी मानते हैं। अतः आप दोनों इन हव्यवाहकी साक्षीमें अपनी मैत्रीको पुष्ट कर दें।'

'हनुमान ! तुम बुद्धिमानोंमें मुकुटमणि हो !' श्रीरामने कहा। हनुमानने ही पुष्पोंके द्वारा अग्निका पूजन कर दिया। हाथ पकड़े हुए ही श्रीरामने सुग्रीवके साथ अग्निकी प्रदक्षिणा की।

'आप मेरे सखा, सुहृद, मित्र हुए।' सुग्रीवने गद्गद स्वरमें कहा—'हमारे सुख-दुःख, स्वार्थ एक हो गये। आपका शत्रु मेरा शत्रु और आपका मित्र मेरा मित्र रहेगा। मैं अपने पिता भगवान भुवन-भास्करको भी साक्षी करता हूँ।'

'मित्र सुग्रीव ! भगवान सूर्य हम इक्ष्वाकुवंशीयोंके कुलपुरुष हैं।' श्रीराम मेघ-गम्भीर स्वरमें बोले—'रामको कभी कोई बात दो बार नहीं करनी पड़ती। तुम्हारी मैत्री रामको स्वीकार है।'

अब सुग्रीवने इधर-उधर देखकर एक नवपल्लव तथा पुष्पोंसे भरी शाखा तोड़कर श्रीरामके सम्मुख रखी—'यह आसन स्वीकार करें। हम वानर ऐसा आसन अत्युत्तम तथा श्रद्धेयको देने योग्य मानते हैं।'

'आप यह आसन स्वीकार करें।' लक्ष्मणने वैसी ही दूसरी पल्लव-पुष्पोंसे लदी शाखा तोड़कर सुग्रीवके लिए आसन प्रस्तुत किया।

'आप भी विराजें।' हनुमानजीने चन्दन-तरुकी पल्लवोंसे परिपूर्ण शाखा तोड़कर लक्ष्मणको आसन दिया।

'बन्धुके द्वारा मेरा सर्वस्वापहरण एवं निर्वासन भी साथक हुआ।' श्रीरामके आसन-ग्रहण कर लेनेपर स्वयं भी बैठते हुए सुग्रीव बोले—'आप परम समर्थको मैं उसके फलस्वरूप ही मित्रके रूपमें पा सका। आज मेरे सौभाग्यका सूर्य उदय हुआ।'

लक्ष्मण दोनोंसे कुछ पीछे उस चन्दन-शाखापर बैठ गये थे। उनके समीप हनुमान हाथ जोड़े खड़े थे।

सीताजीके वस्त्राभरण

'आजके समान ही मैं पर्वतके इसी शिखरपर बैठा था।' सुग्रीवने शाखापर बैठकर सुनाया–'आकाशसे किसी नारीकी क्रन्दन ध्वनि सुनायी पड़ी। हम सब चौंककर ऊपर देखने लगे। दसमुख, बीसभुजा, कज्जल वर्ण राक्षसेश्वर रावण उस अवलाको बलात् रथमें पीछे बैठाये ले जारहा था। वह विद्युल्लेखाके समान ज्योतिर्मयी जैसे अत्यन्त काले मेघके बन्धनमें पड़ गयी हो।'

'मुझ असहाया जनकपुत्री सीताके धर्मभाई बनना।' उस देवीने पुकारकर कहा। उत्तरीय खण्डमें बाँधकर कुछ दिव्याभरण नीचे फेंके—'स्वामी आवें तो इन्हें देकर समाचार देना।'

'कहाँ है वह वस्त्र ?' श्रीरामने आतुरकी भाँति पूछा—'वे आभरण कहाँ हैं ? वे मेरी पत्नीके ही हैं।'

'मैंने उन्हें गुहामें सुरक्षित रखवा दिया है।' सुग्रीवने संकेत किया। हनुमान कूद गये गुहातक और दो क्षणमें वह पोटली ले आये।

'हा सीते ! हा जनक-नन्दिनी !' पोटली हृदयसे लगाकर श्रीराम क्रन्दन करने लगे।

'आर्य ! अब आपको ये वानर श्रेष्ठ सहायक प्राप्त हो गये हैं।' लक्ष्मणने सम्मुख आकर हाथ जोड़े।

'मेरे सम्मान्य मित्र ! आप विद्वान हो, बुद्धिमान हो। मैं तो बानर हूँ ; किंतु—' सुग्रीव साश्रुलोचन बोले—'मेरी पत्नी वालिने छीन ली है। अपमान करके मुझे निकाल दिया है। लेकिन मैं किसी प्रकार यहाँ दिवस व्यतीतकर ही रहा हूँ।'

'तुम्हारी पत्नीके हर्ताको मैं मार दूँगा !' श्रीरामने सुग्रीवकी ओर देखा और दृढ़ स्वरमें कहा।

'आपकी पत्नी तो परम पतिव्रता हैं। उन विषम विषज्वालासमाको कोई पचा नहीं सकता !' सुग्रीवने भी प्रतिज्ञा की —'मैं उनका पता लगाऊँगा और उसके अपहर्ताको यमलोक भेजनेका प्राणपणसे उद्योग करूँगा।'

श्रीरामने वह पोटली खोल ली। वह वस्त्रखण्ड ही परम सुन्दर, निर्मल सुकोमल था। रत्नाभरणोंकी ज्योतिसे दिशाएँ जगमगा उठीं। ये आभरण अनुसूयाजीने श्रीवैदेहीको दिये थे। सुराङ्गनाओंके लिए भी अत्यन्त दुर्लभ आभरण—उनकी शोभाका, कलाका वर्णन सम्भव नहीं। उनके धारण करनेवालेको जरा, म्लानता स्पर्श नहीं करपाती थी। लेकिन पति वियुक्ता पतिव्रताओंकी भी परमाराध्या श्रीवैदेहीके लिए अपने स्वामीसे पृथक होनेपर वे व्यर्थ भार थे। उन्हें उन्होंने उतार तो तभी दिया था जब दशग्रीव जटायुको पराभूत करके उन्हें मायामय रथमें लेकर चला था।

कङ्कण, कुण्डल, केयूर (अंगद) ग्रैवेयक (हार) और नूपुर थे उन आभूषणोंमें। श्रीराम एक-एकको उठाकर हृदयसे लगाते हुए अश्रु-वर्षा कर रहे थे—'लक्ष्मण ! तुम पहिचानते ही हो कि ये वैदेहीके ही कङ्कण, कुण्डल, केयूर, नूपुरादि हैं।'

'आर्य ! मैंने कभी अम्बाके श्रीमुख अथवा करोंकी ओर दृष्टि उठानेकी धृष्टता नहीं की।' हाथ जोड़कर लक्ष्मणने कहा—'अतः मैं उनके कुण्डल, कण्कण अथवा केयूरको नहीं पहिचानता।'

सुग्रीवने, जाम्बवन्तने, नल-नीलने चौंककर लक्ष्मणकी ओर देखा। हनुमानजीने हाथ जोड़कर उन्हें मस्तक झुकाया—'जो जीवोंके परमाचार्य हैं, इतना संयम उन्हींके उपयुक्त है।

वनमें सदा साथ रहना। सदा सेवामें लगे रहना। सदा आदेशका पालन; किंतु दृष्टि कभी मुख तो दूर, करोंके कङ्कण तक भी नहीं गयी। दृष्टि नित्य नीची रही, चरणों तक ही सीमित रही।

'तुम कुछ नहीं पहिचानते ?' श्रीरामने भी चौंककर अनुजकी ओर देखा।

'पहिचानता हूँ आर्य !' लक्ष्मणने अञ्जलि बाँधकर नूपुरोंको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया—'इन नूपुरोंको मैं पहिचानता हूँ। आर्याके श्रीचरण मेरे आराध्य हैं। उनमें नित्य नित्य प्रणाम करनेके कारण मैं उन श्रीचरणों-के आभरण इन नूपुरोंसे भली प्रकार परिचित हूँ। आर्या अम्बाके चरणोंसे पृथक होकर मुझे तो ये कान्ति हीन रुदन करते-से प्रतीत हो रहे हैं।'

श्रीरामने सम्हालकर उन आभरणोंको पुनः उसी वस्त्र खण्डमें बाँधा और कृपणके धनके समान हृदयसे लगाया। सुग्रीवने कहा—'ये आभरण जिनके हैं उनके ही श्रीअंगपर सुशोभित हों, इसके लिए सुग्रीव कोई चेष्टा उठा नहीं रखेगा। ●

सुग्रीवकी कथा

'अग्रजने ही तुम्हारी पत्नीको क्यों छीन लिया तुमसे ?' श्रीरामने सुग्रीवसे पूछा—'उसके अपनी पत्नी नहीं है ? अनुजसे उसकी शत्रुताका कारण ?'

'आदिपुरुष भगवान नारायणकी नाभिकमलसे उत्पन्न भगवान ब्रह्माने एक वानर उपदेवता अपने सङ्कल्पसे उत्पन्न किया । रीछ और वानर दोनों उपदेव-वर्गका अधिपति बनाया उन्हें। उनका नाम रखा ऋक्षरजा ।' सुग्रीवने प्रारम्भसे अपना परिचय प्रारम्भ किया—'उन स्रष्टा-के सङ्कल्प-जन्मा ऋक्षरजाका शरीर पीछे नारी-रूपमें परिवर्तित हो गया। वह सर्वमनोहरा नारी—उसे देखकर देवराज इन्द्र और भगवान भास्कर इतने मुग्ध हुए कि दोनोंका तेजस्खलन हो गया। उस नारीके बालोंपर देवराज इन्द्रका शुक्र पड़नेसे बालिकी उत्पत्ति हुई और ग्रीवापर सूर्य-शुक्र पड़नेसे मैं सुग्रीव उत्पन्न हुआ ।'

'हम दोनोंको जन्म देकर ऋक्षरजा पुनः पुरुष हो गये। अपने ज्येष्ठ पुत्र बालिको रीछ-बानरोंका अधिपति बनाकर वे ब्रह्मलोक चले गये ।' सुग्रीवने कहा—'हम दोनों भाइयोंमें अत्यन्त प्रीति थी। बालिने नित्य कन्या परम सुन्दरी ताराका पाणिग्रहण किया। मेरा परिणय बानरराज सुषेणकी पुत्री रुमाके साथ हुआ।'

'बालि बहुत धार्मिक है ; किंतु अत्यन्त असहिष्णु और अहङ्कारी है। उसके बलकी भी सीमा नहीं है। वह प्रतिदिन चारों दिशाओंके समुद्रों-पर जाकर सन्ध्या तर्पण करता है।' सुग्रीव सुना रहे थे—'अपनी दिग्विजय यात्रामें लङ्काका राजा रावण किष्किन्धा आया तो बालि पूर्व समुद्र तटपर सन्ध्या करने गया था। रावणने बालिको वहाँ जाकर युद्धके लिए ललकारा। बालिको बुरा लगा। उसने रावणको थोड़ी देर प्रतीक्षा करनेको कहा ; किंतु रावण गर्जना ही करता है, यह देखकर बालिने उसे पकड़कर छुद्र पशुके समान अपने कक्षमें दबा लिया। दशग्रीवको ऐसे दबाये ही वह चारों समुद्रोंपर सन्ध्या कर आया। भूल ही गया कि कोई कक्षमें दबा है। छः

महीने पीछे स्मरण आया कक्ष-कण्डू होनेपर, तब उसे अपने पुत्रके पलनेमें बाँध दिया। बालि पत्नी तारा उस दसमौलिके मस्तकोंपर दीपक जलाया करती थी। महर्षि पुलस्त्य आकर छुड़ा न देते तो पता नहीं कब तक बालि उसे बाँधे रहता।'*

'मुक्त होकर दशग्रीवने बालिसे मैत्रीकी याचना की। बालिने इसे स्वीकार कर लिया।' स्पष्ट हो गया कि रावणके विरुद्ध बालिसे सहायताकी आशा नहीं की जा सकती। सुग्रीवने कहा—'यद्यपि इस मित्रताका अभी तक इतना ही अर्थ रहा है कि बालि लङ्कापर आक्रमण नहीं करेगा और दशग्रीव अथवा उसका कोई अनुचर किष्किन्धाके वानर राज्यमें उत्पात करने नहीं आवेगा ; किंतु बालि अहङ्कारी है। वह कब क्या करेगा, कहा नहीं जा सकता। सङ्कटमें पड़नेपर दशग्रीव यदि सहायताकी पुकार करे, बालि अपनी मैत्रीके वचनको विस्मृत नहीं कर सकेगा। जब तक रावण बालिका ही कोई अपराध न करे, बालि रावणके विरुद्ध कुछ नहीं करेगा।'

'ऐसे पराक्रमी, अपने वचनपर—मित्रतापर दृढ़ रहने वाले बालिने अपने सगे भाईसे शत्रुता कर ली ?' श्रीरामने सुग्रीवकी ओर देखा।

'इसका भी इतिहास है। दानवेन्द्र दुन्दुभिका पुत्र मायावी क्रोधमें भरा रात्रिमें हमारे नगर-द्वारपर आकर गर्जना करने लगा। बालिको दुर्वचन कहकर युद्धके लिए ललकारने लगा। बालिने उसके पिता दुन्दुभिको मार दिया था, अतः वह पिताका प्रतिशोध लेने आया था।' सुग्रीवने कहा—'बालिको ही वह ललकार रहा था। अतः बालि रात्रिमें ही द्वन्द्व युद्ध करने दौड़ पड़ा। मैं बड़े भाईके प्रेमवश पीछे दौड़ा।'

'मायावी समझता था कि खुले मैदानमें बालिने पिताकी जो गति की, पुत्रकी वह गति पल भरमें बना देगा। वह तो बालिको उत्तेजित करके अपने अनुकूल स्थानपर ले जाना चाहता था। अतः बालिको देखते ही भाग खड़ा हुआ।' सुग्रीवने बतलाया—'रात्रिमें जगाये जानेसे क्रुद्ध बालि उस दुष्ट दानवको पकड़ने दौड़ा। दूर तक दोनों आगे-पीछे दौड़ते गये। बहुत दूर जाकर दानव एक पर्वतकी गम्भीर गुफामें प्रविष्ट हो गया।'

'बालिका स्वभाव इस प्रकार शत्रुको छोड़ देना नहीं है। जिसपर उसे क्रोध आता है, उसको मारकर ही बालि शान्त होता है। दानवके

---

* रावणके पूरे चरितको जाननेके लिए 'राक्षसराज' देखना चाहिए।

गुफामें जानेपर बालिने मेरी ओर मुख किया—'सुग्रीव ! तुम यहाँ एक पक्ष तक मेरी प्रतीक्षा करना। पता नहीं गुफा कितनी गम्भीर है और दानव माया युद्ध तो करेगा ही ; किंतु इस अवधिमें मैं उसे अवश्य मार दूँगा।'

'बालि गुफाके भीतर चला गया। मैं द्वारके समीप बैठा रहा। कुछ क्षणोंके पीछे ही गुफाके भीतरसे भयानक शब्द आने लगा। गर्जना और प्रहारके शब्द गुफामें गूँजकर बहुत भयानक बन गये थे। यह शब्द कभी किञ्चित् मन्द पड़ता था और कभी बहुत तीव्र हो जाता।' सुग्रीवनेका कहा--'मैं उस भयानक शब्दको सुनता वहाँ एक महीने रहा। समीपके स्रोतसे जल पी लेता था। वनके समीपके तरुओंके फलोंसे क्षुधा मिटा लेता था। भाईकी प्रतीक्षा करता बैठा रहा वहाँ।'

'एक महीने पीछे बहुत असाधारण धमाका हुआ गुफामें। कोई अस्पष्ट चीत्कार गूँजी। तनिक देर पीछे गुफाके द्वारसे भल-भलाती रक्त धारा उबल पड़ी।' सुग्रीवने खिन्न स्वरमें कहा—'मुझसे भूल यही हुई कि मैं भयभीत हो उठा था। पन्द्रह दिनके स्थानपर महीना भर बीता तभी मुझे भाईकी विजयमें सन्देह हो गया था। रक्तधारा देखकर मेरा धैर्य समाप्त हो गया। मुझे लगा कि दानवने मेरे भाईको मार दिया है और अब बाहर निकलेगा तो मुझे भी मार देगा। मुझसे जितनी भारी शिला उठ सकती थी, उतनी भारी शिला उठाकर मैंने गुहा-द्वार बन्द कर दिया और नगरमें भाग आया।'

'बालि नगरमें-से आते समय कह आया था कि उसका अन्वेषण अनावश्यक है ; किंतु सब उसके लौटनेकी आतुर प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने पहुँचकर गुफामें-से रक्त निकलनेकी बात सुनाकर अपना अनुमान सुना दिया।' सुग्रीव पश्चातापके स्वरमें बोल रहे थे—'मन्त्रियोंने मेरे अनुमानको सत्य मान लिया और आपत्कालीन राजसभा बुलाकर मुझे हठ करके सिंहासनपर बैठा दिया।'

'सिंहासन दो घड़ी भी सूना नहीं रहना चाहिये।' मन्त्रियोंका कहना था—'इस समय जब दानवके आक्रमणकी सम्भावना है, राजाकी हमें अत्यन्त आवश्यकता है। राजाके नेतृत्वमें ही हम शत्रुका सङ्गठित होकर सामना कर सकते हैं।'

'सबका अनुमान व्यर्थ था। बालि दो घड़ीमें ही आ पहुँचा। वह अत्यन्त क्रुद्ध था। शिलासे गुहा-द्वार बन्द पाकर वह मुझपर सन्देह कर बैठा था कि मैंने उसे मार देनेका प्रयत्न किया है। वह समझता था कि मैं पहिले ही दिन गुफा-द्वार रुद्ध करके नगरमें आ गया। मुझे सिंहासनपर बैठा देखकर उसका सन्देह पुष्ट हो गया।' सुग्रीव सखेद बोले—'बालिको देखते ही मन्त्रीगण उसकी जयध्वनि करने लगे। मैं सिंहासनसे भाईकी पदवन्दना करने उठा ही था कि उसने मुझे पकड़कर पटक दिया। मुझे घूसोंसे मारने लगा। मैं भागता नहीं तो बालि उस दिन मुझे मार डालता।'

'मैं भागा ; किंतु बालि तो जिसे शत्रु मान ले, उसे जीवित छोड़ना जानता ही नहीं। वह मेरे पीछे दौड़ा। भागते-भागते मैंने क्रुद्ध बालिका स्वर सुन लिया। वह मन्त्रियोंको आदेश दे रहा था—'इस लोभी, भ्रातृ-द्रोहीकी सब सम्पत्ति राजभवन पहुँचा दो। इसकी पत्नीको भी मेरे अन्तः-पुरमें पहुँचा दो। इसका भवन अधिकृत कर लो। मैं इसे मार दूँगा।'

'प्राण-बचानेके प्रयत्नमें मैं पूरे देशमें चारों ओर भागता फिरा। वनोंमें, पर्वतोंमें, द्वीपोंमें मैं दौड़ता रहा। जनपदोंसे मैं दूर-दूर रहा। वहाँ लोगोंकी भीड़, भवन मेरी गति मन्द कर सकते थे। कोई भी मुझे पकड़ ले सकते थे। मैं जानता था, इस बार पकड़नेपर बालि मुझे मार ही डालेगा।' सुग्रीव वर्णनके समय भी सशङ्क होकर इधर-उधर देखने लगे—'यही सृष्टिकर्त्ताकी कृपा थी कि दौड़नेमें बालिसे मेरा वेग अधिक था। लेकिन जैसे प्राणीके पीछे मृत्यु पड़ी रहती है, बालि मेरे पीछे पड़ा था। कहीं भी मुझे बैठनेका अवकाश नहीं था।'

'मैं थककर गिर जाता यदि ऐसे ही और अधिक दौड़ना पड़ता। इस भाग-दौड़में व्याकुल मैं सब कहींसे निराश घूमकर किष्किन्धाकी ओर ही इस ऋष्यमूक पर्वतपर पहुँचा तो मुझे मानो प्राणदान मिला।' सुग्रीवने कहा—'मैं भयके कारण भूल ही गया था कि बालि इस पर्वतपर शापके कारण नहीं आ सकता। मैं आश्वस्त होकर खड़ा हो गया जब पर्वतपर मेरे पहुँचते ही बालिका क्रुद्ध स्वर सुन पड़ा—'देखूँगा कि तू कब तक इसी पर्वतपर दुबका रहता है।'

'मुझे स्मरण आ गया कि बालिके लिए यह पर्वत प्रशप्त है! मुझे एक सुरक्षित स्थान मिला। तबसे मैं इसी पर्वतपर हूँ। मेरे विपत्तिके बन्धु ये चारों मन्त्री मेरे समीप आ गये यहाँ और मेरे साथ ही रहते हैं। इनका

सौहार्द्र—अन्यथा निर्वासित सुग्रीव इन्हें क्या दे सकता है।' सुग्रीवने कृतज्ञतापूर्वक मन्त्रियोंकी ओर देखा—'लेकिन यहाँ भी मैं सर्वदा सशङ्क रहता हूँ। बालि शत्रुता भूला नहीं करता। वह कभी किसीको मुझे मारने भेज सकता है।'

'आप इसीलिए हम दोनोंको देखकर सशङ्क हो उठे थे।' लक्ष्मणने तनिक स्मितपूर्वक कहा—'बालिको किसके शापने इस पर्वतपर आना कैसे वर्जित किया है ?'

'मैंने जिस मायावी दानवका वृत्त सुनाया था, उसका पिता दुन्दुभि अत्यन्त बलवान था। वह महिषके रूपमें रहता था। समुद्रमें प्रवेश करके सागरको नन्हें सरोवरके समान मथ डालता था। सींगोंसे पर्वत उठाकर फेंक देता था। वह हिमालयसे युद्ध करने पहुँचा। पर्वताधिराजने यह कह-कर पिण्ड छुड़ाया—'मुझमें तपस्वियोंका निवास है। मैं चञ्चल होऊँगा तो वे मुझे और तुम्हें भी शाप दे देंगे। अतः तुम वानरेन्द्र बालिसे युद्ध करने किष्किन्धा चले जाओ। वे तुम्हारे समबल शूर हैं।'

'दानव दुन्दुभि किष्किन्धा महिषके वेशमें दौड़ता आया। बालिको युद्धके लिए ललकाराता, फुंकारता विषाणोंसे पुर-द्वार गिराने लगा।' सुग्रीवने कहा—'बालि ललकार सुनते ही रक्तनेत्र दौड़ा। उसने सींग पकड़-कर दानवको पटक दिया। उसे घुमाकर फेंका तो वह इसी ऋष्यमूक पर्वत-पर उस भागमें गिरा, जहाँ नीचे महर्षि मतङ्गका आश्रम है। पर्वतपर गिरनेसे दानवका शरीर फटकर चिथड़े हो गया। उसके शरीरसे रक्त-धारा तो निकली ही, रक्तके जो बिन्दु उड़े, उससे ऋषिका सम्पूर्ण आश्रम दूषित हो गया।'

महर्षि मतङ्गको क्रोध आना ही था। पूछनेपर पता भी लग गया कि आश्रममें रक्तबिन्दु कैसे आये। अतः ऋषिने शाप दे दिया—'अबसे यदि बालि इस पर्वतके ऊपर अथवा एक योजन क्षेत्रमें प्रवेश करेगा तो तत्काल प्राणहीन हो जायगा। उसके जो पक्षधर इतने क्षेत्रमें प्रवेश करेंगे वे पाषाण हो जायँगे।'

'महर्षिने उदारतापूर्वक एक तपस्वीको भेजकर बालिको अपने शापकी सूचना दे दी थी। तबसे बालि अथवा उसका कोई पक्षधर इतने क्षेत्रमें प्रवेश नहीं करता।' सुग्रीवने कहा—'इतना होनेपर भी मुझे

विश्वास नहीं होता कि बालि मुझे मारनेका प्रयत्न त्याग देगा। मैं इस पर्वतसे नीचे नहीं उतरता हूँ। सदा, सब समय सशङ्क रहता हूँ।'

मैं राज्य नहीं चाहता था। अग्रजका मैं अनुगामी था। मैंने भ्रमवश ही गुहा-द्वारपर शिला रखी थी। मन्त्रियोंने मुझे बलात् सिंहासनपर बैठाया था। बालिको सकुशल आया देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई थी। राज्य तो बालिका था ही। मैं जीवन-भर उसका सेवक होकर रहना चाहता था।' सुग्रीवने फिर कहा—'लेकिन बालिने मुझे दो शब्द भी कहनेका अवसर ही नहीं दिया। वह मेरे प्राणका शत्रु हो गया।'

'इन हनुमानने ही पीछे बालिको समझानेका प्रयत्न किया। इन्होंने कहा—आपके अनुज निर्दोष हैं।'

'मैं उसका नाम नहीं रहने दूँगा संसारमें।' बालि अङ्गार नेत्र करके दाँत पीसकर बोला—'देखूँगा कि वह मूषकके समान कब तक ऋष्यमूकपर छिपा रहता है। उसके सम्बन्धकी कोई चर्चा मैं सुनना नहीं चाहता।'

'हनुमान रुष्ट होकर मेरे समीप आ गये। दूसरे किसीने फिर बालिसे कुछ कहनेका साहस नहीं किया।' सुग्रीव अत्यन्त दयनीय स्वरमें बोले—'ऐसे असहिष्णु, अपनी धारणाके विरुद्ध विनम्र बात भी सुननेको अप्रस्तुत-का भ्रम कोई कैसे दूरकर सकता है। कोई मन्त्री या दूसरा क्यों निर्वासित सुग्रीवके लिए बालिका कोप-भाजन बने।'

'मैं आपका अनुगृहीत हूँ। आप धीरे-धीरे समझ लोगे कि मैं आपके अयोग्य मित्र नहीं हूँ। आप-से सत्पुरुषकी मैत्री स्थायी होती है। बालिके जीवित रहते इस पर्वतपर भी मैं उद्विग्न रहता हूँ। मैं भले इसे त्यागकर कहीं न जा सकूँ, मेरे विपत्तिके साथी ये चारों मन्त्री आपकी भार्याका पता लगावेंगे।' सुग्रीवने शिथिल स्वरमें कहा—'आप तो परम बुद्धिमान, धीर, विद्वान महत्पुरुष हो। मैं वानर हूँ, स्वभाव चञ्चल हूँ। मेरी पत्नी छीन ली गयी है। मेरा सर्वस्व हरण करके मुझे निर्वासित कर दिया गया है। शत्रु सदा मुझे मार देनेके प्रयत्नमें है। मेरी अवस्था आप स्वयं समझ सकते हैं।'

बल-परीक्षण

'अब आप निर्भय हो जायँ। मेरे इन अग्रजका स्वरूप ही अभय है। इनके आश्रितके लिए त्रिभुवनमें कहीं किसीसे भय नहीं रह जाता।' लक्ष्मणने सुग्रीवको समझाया—'इनके पादपद्मोंके प्रपन्नका सभी अभीष्ट अवश्य पूर्ण होता है।'

'मैं तुम्हारे शत्रुको मार दूँगा।' श्रीरामने भी आश्वासन दिया– 'मेरे बाण अमोघ हैं।'

'आप दोनों ठीक ही कहते हैं; किंतु' सुग्रीवमें कोई उत्साह नहीं आया। वे वैसे ही शिथिल स्वरमें बोले—'मैं रावणका निवास स्थान नहीं जानता। केवल सुना है कि समुद्रके मध्य कहीं उसकी स्वर्णपुरी लङ्का है। उसके पराक्रमको भी नहीं जानता। लेकिन श्रीजनक-नन्दिनीकी शोधका पूरा प्रयत्न करूँगा। रावणको बालिने शशकके समान कक्षमें दबा रखा था। अकल्पनीय बल है बालिमें। सूर्योदयसे पूर्व वह पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्र और वहाँसे उत्तर तथा दक्षिणके समुद्र भी कूद जाता है। पर्वतोंको उठाकर कन्दुक क्रीड़ा करता है।'

'आप मुझे क्षमा करें। मैं आपकी शरण हूँ। आपका अपमान करनेका मैं साहस नहीं कर सकता। आपको भयभीत भी नहीं कर रहा हूँ। मैं बालिके पराक्रमका स्मरण करके भयभीत हूँ।' सुग्रीवने हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक कहा—'यह जो सामने श्वेत पर्वत दीखता है यह पर्वत नहीं है। यह दुन्दुभि दानवकी अस्थियाँ हैं। बालिने दुन्दुभिको उठाकर दो सौ धनुष दूर फेंक दिया था। इन अस्थियोंको कोई थोड़ा भी हटा पाता तो मैं समझता कि वह शक्तिशाली है।'

श्रीराम बिना एक शब्द बोले उठे। उस अस्थि-पर्वतके समीप गये। अपने वाम पादाङ्गुष्ठसे उन्होंने उस अस्थि-समूहको उठाकर फेंक दिया। यह तो हनुमानने उछलकर देखा और लौटकर बतलाया—'अस्थियाँ दस योजन दूर वनमें स्थित निर्जन स्थानमें गिरीं और चूर-चूर हो गयीं।'

'देव ! आप समर्थ हैं। शक्तिशाली हैं। मुझ भयभीत वानरके अपराधको क्षमा करें। मैं आपके बलकी परीक्षा नहीं लेता हूँ ; किंतु मेरे प्राण बालिके भयसे व्याकुल हैं।' सुग्रीवने हाथ जोड़कर बहुत ही दीन वाणीमें कहा—'जब बालिने दुन्दुभिको फेंका था, बहुत मांस, रक्त, मेद था उस दानवके शरीरमें। बहुत मोटा था वह दानव महिष। अब तो उसकी अस्थियाँ रह गयी थीं और वे भी सूख चुकी थीं।'

सुग्रीवने इसपर ध्यान ही नहीं दिया कि दोनों हाथोंसे बालिने दानवको फेंका था। पदाङ्गुष्ठसे बालि भी इन अस्थियोंको हिला पाता, इसमें सन्देह था। लेकिन सुग्रीवने सम्मुखके सात तालवृक्षोंकी ओर संकेत करके एक कथा सुनाना प्रारम्भ किया—

'महर्षि मतंगने बालिको शाप दिया, उससे पहिलेकी बात है। बालि पावसमें सात सुपक्व ताल फल ले आया। यहाँ उन फलोंको रखकर स्नान करने चला गया। लौटनेपर उसने देखा कि एक सर्प उसके फलोंके ऊपर लेटा हुआ है।'

'तूने मेरे फल दूषित कर दिए, जब कि तू इन्हें खा नहीं सकता।' बालिने क्रोधमें आकर उस सर्पको शाप दिया—'अतः ये फल तेरा शरीर फोड़कर उगेंगे और वृक्ष बनेंगे !'

'मैं इनकी गन्धसे आकृष्ट होकर आया। इनका स्पर्श सुखद लगा, इसलिए इनपर लेट गया। मैंने इनको मुख नहीं लगाया है। तूने मुझ निरपराधको शाप दिया है।' सर्पने भी बालिको शाप दिया—'अतः इन फलोंसे उगे वृक्षोंको जो नष्ट कर देगा, उसीके द्वारा तू मारा जायगा।'

'ताड़के वृक्ष वैसे भी बहुत सुदृढ़ होते हैं। ये तो एक ही सर्प देहपर उगे, परस्पर उलझी मूल वाले वृक्ष हैं। कितना भी प्रबल अन्धड़ चले, ताड़तरु गिर भले जाय, उसके पत्र नहीं टूटते।' सुग्रीव कह रहे थे—'शापसे पूर्व जब बालि यहाँ आता था, इन तरुओंको एक साथ हिलाकर निष्पन्न कर देता था।'

सुग्रीवके इस वाक्यके समाप्त होनेके पूर्व श्रीराम अपने वामस्कन्धसे धनुष उतारकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा चुके थे। अब उन्होंने त्रोणसे एक बाण निकालकर धनुषपर चढ़ाया और धीरेसे छोड़ दिया। प्रत्यञ्चा आधी भी खींची नहीं गयी थी, लेकिन बाण छूटा। सातों ताल सर्पके शरीरपर

उगे थे। एक सीधमें न होकर सर्पाकार पक्तिमें थे। वाणने सातोंको भूमिके समीपसे काट दिया। वे वृक्ष भयानक शब्द करते, गिरे। बाण वृक्ष काटकर घूमा और श्रीरामके त्रोणमें प्रविष्ट हो गया।

'स्वामी !' सुग्रीवके नेत्र आश्चर्यसे खुले रह गये। देरतक वे बोलने-में ही समर्थ नहीं हुए। जब बोल सके, श्रीरामको सखा सम्बोधनका साहस समाप्त हो चुका था। उन्हें लग रहा था कि इन सर्व समर्थकी अकल्पनीय उदारता—ये एक तुच्छ वानरको मित्र कहते हैं ; किंतु मेरी अक्षम्य धृष्टता है कि मैं इनको सखा कहता रहा हूँ। इनके श्रीचरणोंका सेवक-दास होना भी सुग्रीवका परम सौभाग्य है।

जब श्रीराम-लक्ष्मण आये थे, दोनोंके तूणीर देखकर सुग्रीव मनमें हसे थे—'इतने हल्के तूणीर !' छोटे और बड़े भाईके भी त्रोणोंमें केवल पाँच-पाँच वाण थे। दो तूणीर हुए तो भी क्या हुआ। दोनों भाइयोंके समीप कुल बीस वाण और एक खड्ग। इतने अल्प अस्त्रको लेकर ये वनमें आगये। कितने भी कुशल लक्ष्यवेधी हों, आखेट भले करलें, बीस वाणोंके बल पर युद्ध तो नहीं किया अथवा जीता जा सकता।

सुग्रीवने देखा कि श्रीरामका वाण लक्ष्यवेध करके स्वतः उनके त्रोणमें लौट आया। अद्‌भुत अस्त्री—जब प्रत्येक शरको पुनः लौट आना है, ऐसा अक्षय तूणीर - बीस वाण तो बहुत अधिक होते हैं। ऐसे अस्त्र रखने वाला तो एक ही वाणके पुनः पुनः प्रयोगसे विश्व-विजय कर सकता है। ये इतने छोटे त्रोण भी बाँधते हैं, यह इनकी क्रीड़ा ही है।

'स्वामी ! मेरे समर्थ स्वामी ! मैंने अपनी अल्पज्ञताके कारण अब-तक जो अशिष्टता की है, उसे एक अल्पज्ञ चपल वानरकी छुद्रता समझकर क्षमा कर दें।' सुग्रीव सीधे श्रीरामके चरणोंपर गिरे। श्रीरामने बीचमें ही उन्हें भुजाओंमें ले लिया।

'आप सर्वसमर्थ हैं। इस अधम वानरको अपने इन चारुचरणोंका किंकर स्वीकार करें !' श्रीरामका आलिंगन प्राप्त करके सुग्रीवकी बुद्धि निर्मल हो गयी। उनके मनका कलुष-द्वेष विनष्ट हो गया। वे भरे कण्ठ कहते जा रहे थे—'मेरा अज्ञान, मेरा भ्रम कि मैं अबतक अपने अग्रज बालिको अपना शत्रु मानता रहा। वह तो मेरा अतिशय उपकार करने वाला है, मेरा समुद्धारक है। मैं मोहवश ऐन्द्रियक भोगोंमें लिप्त था। बालिने मुझे निर्वासित करके अकिञ्चत बना दिया। इस पर्वतपर शरण

लेनेको विवश किया। उसीकी कृपाका सुपरिणाम है कि आप अनाश्रयाश्रय, अनाथनाथके श्रीचरणोंकी प्राप्ति आज मुझे सुगम हुई।'

'बालिका मंगल हो। वह सकुशल वानरेन्द्र बना रहे। मैं उसका कृतज्ञ हूँ।' सुग्रीव भरे स्वरमें कहते गये—'मेरे मनमें अब बालिसे कोई द्वेष नहीं। आप अपने पादपद्मोंका मुझे सेवक बनाकर अपने साथ मुझे लेलें, यही अब मेरी एकमात्र प्रार्थना है।'

मनुष्य आवेशमें जो उद्‌गार प्रकट करता है, वे स्थायी नहीं होते। उस समयकी उसकी भावनाको सत्य मानकर जो व्यवहार करेगा, उसे पश्चाताप करना पड़ेगा। श्मशान वैराग्य क्षण-स्थायी होता है। अत्यन्त भयभीत, बहुत दिनोंसे दुःखी सुग्रीवने श्रीरामका प्रभाव देखा तो उनके अन्तरको आश्वासन मिला। फलतः उनकी भावना उमड़ पड़ी थी।

'अपने साथ मुझे लेलें।' इस प्रार्थनाका अर्थ ? श्रीराम सदा ऋष्यमूक-पर बने रहने वाले हैं ? ऋष्यमूक त्यागकर सुग्रीव रामके साथ कहीं रहें तो उनपर आक्रमण न करनेका बालिने कोई व्रत लिया है ? बालि इस पर्वतसे सुग्रीवके हटनेपर उसपर आक्रमण करे तो सुग्रीवकी रक्षा रामको करनी पड़ेगी या नहीं ? जब बालिको सुग्रीवकी रक्षाके लिए मारना अनिवार्य है, तब समय व्यतीत करनेसे लाभ ? बालिके रहते तो सुग्रीव खुलकर सीता-न्वेषणका भी कोई कार्य नहीं कर सकते।

श्रीराम—प्रत्येक अन्तरमें जो अन्तर्यामी बने बैठे हैं, उन रामसे सुग्रीवके हृदयकी वास्तविक स्थिति छिपी थी ? लेकिन सत्पुरुष किसीका तिरस्कार नहीं करते। किसीकी दुर्बलता दूसरोंके सम्मुख प्रकट नहीं करते। दूसरे भले अपनेमें क्षणिक आवेश अथवा दम्भसे सद्‌गुण प्रकट करें, सत्पुरुषोंको उसे सत्यमान लेनेमें तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती।

'मित्र ! तुम्हारा अन्तःकरण निर्मल है, तुम्हारे हृदयमें राज्यलिप्सा, लोभ अथवा द्वेष सर्वथा नहीं है।' श्रीरामने सुग्रीवकी प्रशंसा की—'किंतु तुमने रामको मित्र स्वीकार किया है, अतः रामके सत्यकी रक्षा तुम्हें करना चाहिये। मैंने तुम्हारे विरोधीको मार देनेकी प्रतिज्ञा की है। मेरी प्रतिज्ञाको सत्य होने दो और रामके कार्यको सम्पन्न करनेके लिए बालिके मरनेपर वानरेन्द्र पद स्वीकार करो !'

बालि-वध

'अचानक किसी अपरिचितपर आक्रमण उचित नहीं है।' श्रीरामने सुग्रीवको समझाया—'मित्र सुग्रीव, तुम बालिको द्वन्द्व युद्धके लिए पुकारो। वह तुमसे युद्ध करने आवेगा, तब उसे हम मार देंगे।'

सुग्रीवकी समझमें बात आ गयी। किष्किन्धापर श्रीराम-लक्ष्मण आक्रमण करें, यह सुग्रीवको भी अभीष्ट नहीं था। इससे तो उनके अपने नगरकी हानि होती। किष्किन्धामें दूसरे किसीसे सुग्रीवकी शत्रुता भी नहीं थी।

'तुम आगे चलो !' श्रीरामने सुग्रीवसे कहा—'मैं अनुजके साथ पीछे आ रहा हूँ।'

सुग्रीवने देख लिया कि श्रीरामने धनुष चढ़ा लिया है और लक्ष्मण, हनुमान, आदिके साथ पीछे चल पड़े हैं, तब ऋष्यमूकके शिखरसे उतरकर किष्किन्धाके द्वारपर पहुँचकर उन्होंने गर्जनाकी— 'मैं सुग्रीव युद्धके लिए आया हूँ ! आओ और मुझसे युद्ध करो !'

'अच्छा ! आज इस सुग्रीवको भी साहस हो गया है ?' दिनका प्रथम प्रहर ही था। बालि चारों समुद्रोंपर अपनी दैनिक संध्या करके लौटा था। सुग्रीवकी ललकार सुनकर क्रोधावेशमें दौड़ा। शत्रुकी ललकार सुनकर सोचने अथवा सहायक लेनेका बालिको अभ्यास नहीं था।

सुग्रीव गदा लेकर आये थे। बालिने गदा छीनकर फेंक दी। बहुत थोड़ी देर द्वन्द्व-युद्ध हुआ। बालिके वज्रके समान घूसोंके प्रहारसे व्याकुल सुग्रीव भाग खड़े हुए। बालिने उनका पीछा नहीं किया। सच बात यह है कि पहिले क्रोधके आवेगमें बालिने अवश्य सुग्रीवको मार देनेके लिए खदेड़ा था ; किंतु जब सुग्रीवने ऋष्यमूकपर शरण ले ली, बालिने उनकी उपेक्षा कर दी थी। सुग्रीव अपने मनके भयसे ही सदा भीत रहते थे। बालिने कभी सुग्रीवको मारनेकी बात भी नहीं सोची थी। आज भी सुग्रीव भागे तो वह हँसता लौट गया अपने भवन—'अब इसे फिर उत्पात करनेका साहस नहीं होगा।'

'आप सत्यवादी हैं, भक्तवत्सल हैं !' सुग्रीव अत्यन्त व्याकुल श्रीरामके समीप भागे आये—'मेरा मरण ही आपको अभीष्ट था तो स्वयं मार देते। मुझे शत्रुके द्वारा पिटवाकर आपको क्या मिला ?'

'मित्र ! मुझसे भूल हुई।' श्रीरामने सुग्रीवको हृदयसे लगा लिया। सुग्रीवको बहुत चोट लगी थी और आशाके विपरीत पीटे गये थे वे, अतः हृदयपर भी चोट लगी थी। उनका आक्रोश उचित था। उनका मुख तमतमाया था। उनके नेत्र अश्रुपूरित थे। श्रीरामने स्नेहपूर्वक उनके शरीरपर हाथ फेरा तो एक नवीन अनुभव हुआ सुग्रीवको। उनके शरीर-की पीड़ा तत्काल लुप्त हो गयी। उनके भीतर मानों स्फूर्तिका स्रोत फूट पड़ा। इस अनुभवके कारण उनके मनका आक्रोश मिट गया। वे चौंककर श्रीरामके मुखकी ओर देखने लगे।

'तुमने भी बतलाया नहीं था कि रूप-रङ्ग, आकार और वेशमें तुम दोनों भाई सर्वथा एक जैसे हो।' श्रीरामने कहा—'मैं समझता था कि बालि आकारमें भी तुमसे बड़ा, अधिक पुष्ट होगा और अलङ्कार, मुकुट आदि धारण करता होगा। लेकिन जब तुम दोनों भाई भिड़ गये, पहिचा-नना कठिन हो गया कि दोनोंमें कौन बालि और कौन सुग्रीव। मैं बाण छोड़ देता और कहीं भूलसे वह मेरे मित्रको लग जाता—रामका बाण व्यर्थ नहीं जाता। भूल मेरी है, मुझे पहिले तुमसे बालिकी पहिचान पूछ लेनी थी।'

सुग्रीव सिहर उठे। सचमुच कहीं बाण उन्हें लग गया होता ? वे बोले—'पहिचान तो कुछ भी नहीं है। बालिका आकार, रूप, केश, वेश, चलने-बोलनेका सब ढङ्ग मेरे जैसा है। वह मुकुटादि पहिनता ही नहीं। हम दोनों भाई साथ रहते थे तब भी मन्त्रियोंको नगर-जनोंको हमें पहि-चाननेमें भ्रम हुआ करता था।'

'लक्ष्मण ! सुग्रीवको चिह्नित करो !' श्रीरामने अनुजको पर्वतकी तलहटीमें उत्पन्न गजपुष्पी लताकी ओर संकेत किया। लक्ष्मणने उस लता-के ही रेशेमें उसके पुष्पोंको पिरोकर माला बना दी। सुग्रीवके कण्ठमें वह माला पड़ी, मानों खिलौनेके छोटे-छोटे गजोंको कण्ठमें पहिन लिया गया हो।

'अब कोई भ्रम नहीं होगा।' श्रीरामने सुग्रीवसे कहा—'अब एक बार तुम फिर बालिको पुकारो। इस बारकी तुम्हारी पुकार उसके लिए मरणकी पुकार बनेगी।'

पर्वतके निचले भागमें उत्पन्न होने वाली अत्यन्त दुर्लभ यह लता निश्चय बालिको मिलने वाली नहीं थी। बालि पुष्पमाला धारणका व्यसनी नहीं था और गजपुष्पीके इतने बड़े, बेढंगे, निर्गन्ध प्राय पुष्पोंकी माला कोई भी पहिनता नहीं। अतः सुग्रीवको भी अब रूप सादृश्यसे होने वाले भ्रमका भय नहीं रहा।

सुग्रीवके साथ श्रीराम अनुज एवं हनुमानादिके साथ आगे तक आये। आगे वृक्षोंका एक सघन झुरमुट मिला। सुग्रीवने हाथ जोड़कर वहाँ मस्तक झुकाया। श्रीरामने पूछा—'यह किसका उद्यान है ?'

सुग्रीव—'सप्तजन नामके मुनि यहाँ तपस्या करते हैं। वे अधोसिर जलमें डूबे रहते हैं। सात दिनपर जलसे निकलकर आहार ग्रहण करते हैं। वृक्षोंके मध्यस्थित जलाशयमें अब भी होंगे। मैंने उनको ही प्रणाम किया है।'

भाईके साथ श्रीरामने भी हाथ जोड़कर उन मुनिके निमित्त मस्तक झुकाया—'मित्र ! मैं यहीं खड़ा हूँ। तुम बालिको सम्मुखके मैदानमें युद्धके लिए पुकारो !'

'आपके द्वारा अर्पित करायी यह माला मेरे कण्ठमें है। आप इस चिह्नको स्मरण रखना।' सुग्रीवने आतुरकी भाँति प्रार्थना की—'इस बार विलम्ब मत करना। बालि अब बहुत क्रोधमें भरा आवेगा। वह मुझे मार ही देगा यदि आपने बिलम्ब किया और ऐसा कोई दिव्यास्त्र मत प्रयोग करना कि किष्किन्धाकी सुरक्षा नष्ट हो।'

सुग्रीवने बहुत आगे जानेका साहस नहीं किया। उन्होंने थोड़ी ही दूर जाकर—गर्जना करते हुए बालिको पुकारा—'मैं सुग्रीव पुनः युद्ध माँगता हूँ।'

'यह इतनी शीघ्र भूल गया अपनी पिटायी ?' बालि अभी अंतःपुरमें प्रातराश करने बैठा ही था। सुग्रीवकी ललकार सुनकर क्रोधसे काँपता उठ खड़ा हुआ।

'स्वामी! मेरी प्रार्थना सुन लें !' ताराने पतिके पैर पकड़े—'आपसे पिटकर आपके छोटे भाई अभी भाग गये थे। यह स्पष्ट है कि बिना किसी प्रबल सहायकके वे इतनी शीघ्र लौटनेका साहस नहीं कर सकते। आप

क्रोध त्यागकर विचार कर लो। युद्ध ही करना हो तो कल युद्ध करनेक सन्देश भेज दो। सुग्रीवका पुनः लौटना शंकाका कारण है।'

'मैं उसे सहायकके साथ मार दूँगा।' बालिने गर्जना की। शत्रुकी ललकार सहन करना उसके स्वभावमें नहीं था।

'शत्रुको निर्बल मानना समझदारी नहीं होती। इस बार सुग्रीवके स्वरमें जो दर्प है,. वह प्रकट करता है कि वह बड़े सहायकके बिना नहीं आया है। आप जानते हैं कि सुग्रीव जन्मसे चतुर है। अपरीक्षित पराक्रम-की सहायताके भरोसे वह नहीं आया होगा।' अब ताराने स्पष्ट कहा—'अङ्गदको गुप्तचरके द्वारा सम्वाद मिला है कि सुग्रीवने दशरथ-नन्दन श्रीरामसे मैत्री कर ली है। रामने तुम्हारे वधकी प्रतिज्ञा की है। वे साधु तथा आर्तोंके आश्रय हैं। सब सद्गुण श्रीराममें निवास करते हैं। वे सबकी परम गति हैं। उन कबन्धको मारनेवालेसे विरोध मत करो। वे अप्रमेय-पराक्रम दुर्जय हैं।'

'सुग्रीवको बुलाकर आप युवराज बना लें। वे अब दुर्बल नहीं हैं। छोटे भाई होनेसे वे आपके स्नेह-पात्र हैं। उनको अपनाकर आप श्रीराम-का सौहार्द्र प्राप्त करेंगे।' ताराने प्रार्थनाकी—'छोटे भाईको कुछ देकर समीप रख लेनेमें आपकी शोभा है। अब दूसरा मार्ग नहीं है। मैं आपके चरणोंमें यह भिक्षा माँगती हूँ। आप मुझपर प्रसन्न हों। मुझे अपनी हितैषिणी मानते हों तो क्रोध त्याग दें। मैं पथ्यकी बात कहती हूँ, रामसे विरोध मत करें। सुग्रीवको रामका आश्रय है।'

'मुझे डराओ मत! मेरे शौर्यका अपमान मत करो। अन्तःपुरमें जाओ।' बालिने ताराको डाँट दिया—'श्रीराम धर्मज्ञ हैं। वे सुग्रीवके कारण मुझे नहीं मारेंगे। वे आये होंगे तो मैं उन्हें चरण पकड़कर सन्तुष्ट करके ले जाऊँगा। श्रीराम दीन-रक्षक हैं। कदाचित् मार ही दें मुझे—तुम्हारी आशङ्का सत्य भी हो तो क्या बालि कभी मरेगा नहीं? इससे अधिक उत्तम मृत्युका अवसर पुनः मिलेगा? मैं सुग्रीवको मारूँगा नहीं। केवल उसका गर्व नष्ट करूँगा।'

ताराने पतिकी प्रदक्षिणा की। स्वस्त्ययन किया—तिलक लगाया। रुदन करती लौटी। पतिसे यह अन्तिम मिलन है, इसे वह समझ चुकी थी।

बालिने कोई शस्त्र नहीं लिया था। सुग्रीव भी शस्त्रहीन थे। दोनों-में मुष्टि-युद्ध होने लगा। सुग्रीवमें इस बार कुछ अधिक स्फूर्ति थी। अधिक साहस था; किंतु वे बार-बार मुख घुमाकर उस कुञ्जकी ओर देखते थे, जिसमें श्रीराम खड़े थे।

सुग्रीवके कण्ठमें गजपुष्पीके फूलोंकी माला थी। ताराने बालिको स्वर्णमाला पहिनायी थी। मुष्टि-प्रहारसे दोनोंके शरीर स्थान-स्थानपर फट गये। दोनों रक्तसे सन गये। सुग्रीवने पूरी शक्ति लगा रखी थी। वे उछल-कूदके सब दाँव-पेंच प्रयोग करके भी अपनेको बचा नहीं पा रहे थे। अन्तमें अत्यन्त व्याकुल होकर कातरभावसे पीछे कुञ्जकी ओर देखा। तभी कानतक खींचे श्रीरामके धनुषसे छूटा बाण आकर बालिके मध्य वक्षमें लगा। बाण लगनेसे बालि घूमकर भूमिपर गिर पड़ा। उसके वक्षसे रक्तकी धारा चलने लगी।

बालिके गिरते ही श्रीराम कुञ्जसे निकलकर बालिके समीप आये। लक्ष्मण उनके पीछे आये। अब भी श्रीरामके वाम करमें चढ़ा हुआ धनुष था। उन जटामुकुटी, कमल-लोचन, विशाल-भुजा, वल्कलवसन, दूर्वादल-श्याम श्रीरामको देखते ही बालिने मस्तक उठाया।

'राम! आप राजपुत्र हैं, कुलीन हैं, अपने व्रतका पालन करने-वाले विख्यात हैं, अन्य युद्ध-लग्न मुझे मारकर आपको क्या मिला?' बालिकी वाणी तनिक भी शिथिल नहीं हुई थी। वह पूरी तेजस्विताके साथ बोल रहा था—'मैंने तो सुना था कि राममें दम-शम, धृति, पराक्रम आदि सभी सद्गुण हैं। आपके सद्गुणोंपर विश्वास करके ताराके मना करनेपर भी मैं सुग्रीवसे लड़ने आ गया। मुझे पता नहीं था कि आपकी धर्मबुद्धि मर चुकी है। केवल धर्मात्माका वेश धारण किया है आपने। मैंने आपके देशमें कभी कोई उत्पात किया था? राजा लोग पृथ्वीके लिए, स्त्रीके लिए या धर्मार्थ लड़ते हैं, मुझ वनचारीपर प्रहारका प्रयोजन क्या आ पड़ा था?'

'आप धर्मज्ञ हैं? धर्मका बोध है आपको? आपने मुझे छिपकर मारा है, जैसे व्याध आखेट-पशुको मारता है। ठीक है, मैं पशु हूँ, पर आप मेरा मांस खायँगे? वानरका मांस मांसाहारी मानव भी त्याज्य मानते हैं।' जिसके हृदयमें बाण लगा हो, उससे प्रिय, मधुर भाषणकी आशा नहीं

करनी चाहिये। बालि व्यङ्ग कर रहा था। कठोर वाणीमें भर्त्सना कर रहा था—'सुग्रीवकी सहायता करनी थी तो सम्मुख आकर युद्ध करते। तब मैं सीधे यमलोक भेज देता। सुग्रीवसे मित्रता क्यों? सीताको पाना चाहते थे तो किष्किन्धा आनेमें किसीने रोका था? आकर मुझसे कहते, मैं लङ्का जाकर गला घोटकर रावणको मार देता और सीताको ला देता। मेरे मरनेपर सुग्रीवको राज्य मिलेगा; किंतु आपने मुझे अधर्मपूर्वक मारा।'

बहुत अधिक रक्त निकल जानेसे बालिका कण्ठ सूखने लगा था। उसका बोलना विरमित हुआ तो श्रीराम बोले—'तुमने गुरु या वृद्धोंकी सेवा नहीं की है, अतः तुम्हारी बाल-बुद्धि गयी नहीं। तुम धर्मको जानते ही नहीं। इस समय समस्त पृथ्वीके शासक इक्ष्वाकुवंशी, नीतिज्ञ, सत्यपराक्रम भरत हैं। वे धर्मवत्सल हैं। हम सब क्षत्रिय उनके अनुगत हैं। धर्मभ्रष्टको दण्ड देना राजाका कर्तव्य है और राज-प्रतिनिधिको यह कर्तव्य पूरा करना चाहिये। आवश्यक नहीं है कि अपराधीको दण्ड देनेके लिए राजा या राज-प्रतिनिधि उसके सामने ही जाय। सामने जाकर युद्ध तो किया ही नहीं जाता।'

'अच्छा, तो आपने मुझ अपराधीको प्राण दण्ड दिया है?' बालिने व्यङ्ग किया—'न्यायमूर्ति! मेरा अपराध?'

'तुम कर्मसे निन्दित हो। अविद्यादि पञ्चक्लेशयुक्त हो। अर्थ तथा धर्मसे अनभिज्ञ हो।' श्रीरामने डाँटा—'पुत्र, शिष्य और अनुज समान होते हैं। ज्येष्ठ भ्राता पिताके समान होता है, तुमने छोटे भाईकी पत्नीको अन्तःपुरमें डाल लिया, अतः तुम वध्य हो।'

'बालि! तुमको पशु मानकर तुम्हारा आखेट नहीं किया गया। तुम मेरा अपमान करते हो, यह योग्य नहीं है। तुम्हें प्राण-दण्ड दिया गया है।' श्रीराम गम्भीर स्वरमें बोले—'तुम अपनेको वानर-पशु कहकर अपने अपराधका समर्थन नहीं कर सकते। तुम पशु नहीं हो। उपदेवता पशु नहीं हुआ करते। तुम सन्ध्या करते हो, यज्ञोपवीत धारण करते हो, वेदपाठ करते हो। इतनेपर भी पुत्री तथा पुत्रवधूके समान अनुजकी पत्नीको तुमने अपने अन्तःपुरमें डाला, अतः वध्य हो। मैं क्षत्रिय ऐसा पाप सहन नहीं

कर सकता। वन , पर्वत सहित समस्त पृथ्वी अयोध्याके शासनके अन्तर्गत है , इसे जानते हो ? '

' राजाके द्वारा दण्डित या क्षमा-प्राप्त अपराधी पाप-मुक्त हो जाता है। वह नरक नहीं जाता। लेकिन राजा पापीको दण्ड न दे तो स्वयं पाप-का भागी होता है। तुम्हें दण्ड देकर मैंने अपने क्षात्र धर्मका पालन किया है। तुम्हें निष्पाप बनाया है। ' श्रीरामने बहुत गम्भीर होकर कहा— ' सीताको तो हमें अपने पराक्रमसे प्राप्त करना है। इस समय मरण-पीड़ा-ग्रस्त तुम्हारा प्रलाप विश्वास करने योग्य है ? रावणसे तुम्हारी मित्रता नहीं है ? तुम स्वस्थ , अपने पदपर होते तो अपनी मैत्रीका निर्वाह करते या मित्रके विरुद्ध मेरी सहायता करते ? तुम्हारी बात मान भी लें तो मेरी सहायता करके तुम अपने मैत्री-धर्मसे भ्रष्ट होते या नहीं ? राम अनुज-स्त्रीके अपहर्तासे उसे मैत्री-धर्मसे भ्रष्ट करके सहायता लेगा , यह आशा करते हो तुम मुझसे ?'

' तुम अपनेको पशु कहते हो तो ऐसा ही सही। लेकिन तब सुग्रीव तुम्हारे सहधर्मी हैं या नहीं। अपने प्रिय पशुके ऊपर आक्रमण करनेवाला पशु वध्य होता है।' अब रामने स्पष्ट मुख्य तथ्य प्रकट किया—' रामकी सुग्रीवसे मैत्री है , यह तुम जानते थे। तब सुग्रीवपर आक्रमणका साहस तुमने कैसे किया। राम अपने आश्रितका रक्षक है और अपना अपराध भले क्षमा कर दे , भक्तापराध कभी क्षमा नहीं किया करता—यह राम का व्रतहै।

' मुझसे भक्तापराध तो हुआ। ' बालिका मस्तक गिर गया भूमिपर। उसका मानस व्यङ्गकी तीक्ष्णता मिटनेसे निर्मल हो गया। उसने हाथ जोड़ लिये—' राजराजेश्वर ! सर्वेश्वर ! आप ठीक कहते हैं। मैंने प्रमादवश जो कुछ कहा , उसे क्षमा कर दें। आपसे वाद-विवाद करके विजय कौन पा सकता है। आप प्रजा-पालक हो। यह पापी पशु वानर भी आपकी प्रजा ही है। लोकतत्त्वज्ञ ! धर्मज्ञ ! अब मुझे क्षमा कर दें। मैं आपके बाणसे शुद्ध हो गया। आपके सम्मुख यह शरीर छूटेगा , यह मेरा परम सौभाग्य।'

' अभी तुम कुछ और कहना चाहते हो , निर्भय कहो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। ' बालि कुछ कहते-कहते अटक रहा है , यह देखकर

श्रीराम समीप आ गये। उन्होंने उसके वक्षमें-से बाण निकाल लिया उसके मस्तकको अपने कमल-करसे स्पर्श किया।

'मुझे अब अपनी कोई चिन्ता नहीं। आपका अमृत-स्पर्श पाकर मैं आपके अभयपद चला। पत्नी तारा तत्त्वज्ञा है। आपके चरणोंमें उसकी अनुरक्ति है। अतः उसकी भी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। 'वालि अब शांत, स्थिर, स्वस्थ स्वरमें बोल रहा था—'लेकिन अपने पुत्र अङ्गदका मैंने बचपनसे बहुत प्यारसे पालन किया है। वह बल-बुद्धिमें मेरे समान ही है। आप उसकी रक्षा करें। सुग्रीवके समान ही उसे अपना स्नेहभाजन स्वीकार करें। आप शास्ता हैं, गोप्ता हैं, अतः भरत तथा लक्ष्मणसे जैसा स्नेह करते हैं, वैसा ही सुग्रीव तथा अङ्गदसे भी करें ! स्वामिहीना ताराका सुग्रीव अपमान न करें, यह भी अब आपका ही दायित्व बन गया है।'

'ताराने मुझे आज युद्धमें आनेसे मना किया था।' बालिने अब अपने हृदयकी बात प्रकट की—'मैं जानता था कि आप अवश्य मित्रकी रक्षा करेंगे ; किंतु मैं आपके शरसे शरीर त्याग करना चाहता था।'

'अब तुम निष्पाप हो गये !' बालिके मस्तकपर अपना कर रखे हुए ही श्रीरामने कहा—'तुम अब निश्चिन्त परमपद प्रस्थान करो। अङ्गद सुग्रीवके अनुकूल रहेंगे और सुग्रीव भी उनसे स्नेह करेंगे।'

बालि मूर्छित हो गया। उधर वानरोंमें भगदड़ पड़ी थी। बालिके मन्त्रियोंने तारासे जाकर कहा—'हम नगर-द्वार बन्द किये देते हैं। युवराज अङ्गदका अविलम्ब अभिषेक कर दो।'

'जिन्होंने एक बाणसे अङ्गदके पिताको मार दिया, उनके बाणोंसे द्वार बन्द करके अङ्गद बच जायेगा ?' ताराने झिड़क दिया सबको। वह अङ्गदको साथ लेकर श्रीरामके समीप पहुँची।

'श्रीराम ! वानरेन्द्र मेरे बिना स्वर्गमें भी सुखी नहीं होंगे।' तारा आकर चरणोंपर गिरी—'आपके तूणीरमें अभी बहुत बाण हैं। एक बाण-से मुझे भी मार दें ! इससे आपको पत्नी-दानका पुण्य होगा। यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो मैं वानरेन्द्रके साथ सती होने आयी हूँ।'

'तुम ऐसा नहीं कर सकती हो।' श्रीरामने समझाया—'अङ्गदके लिए तुम्हें जीवित रहना चाहिये। वैसे भी एक तत्त्वज्ञा नारीका शरीरके प्रति यह मोह उचित नहीं है।'

'सुग्रीव ! यहाँ समीप आओ भाई।' इसी समय बालि सचेत हुआ। यह बुझते दीपककी अन्तिम लौ थी। सुग्रीव समीप आ गये तो बालिने स्नेह-स्निग्ध स्वरमें कहा—'मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। मेरा सौहार्द्र नष्ट हो गया। मुझसे भूल हुई। अब मुझे क्षमा कर दो। तुम आज ही अपना अभिषेक करा लो। मैं परलोक चला, तुम मेरे प्राणप्रिय पुत्र अङ्गद-का ध्यान रखना। इस पितृहीनके अब तुम्हीं रक्षक हो। यह युद्धमें तुम्हारे आगे-आगे चलेगा। एक बात और—सुषेणकी पुत्री तारा अत्यन्त बुद्धिमती है। बहुत गम्भीर निश्चय करती है। वह जिसे ठीक कहे, उसे ठीक मान लेना। श्रीरामका कार्य करना। इसमें प्रमाद करोगे तो बहुत अधर्म होगा।'

'यह मुझे देवराज इन्द्रने दी थी।' बालिने अपने कण्ठसे उतारकर स्वर्णमाला सुग्रीवके गलेमें डाल दी—'अब इसे तुम धारण करो।'

'मेरे समान स्नेह तुम्हें अपने पितृव्य सुग्रीवसे न मिले तो भी खिन्न मत होना !' बालिने अङ्गदको समीप बुलाकर कहा—'सबके जीवनमें सुख-दुःख आते हैं, उन्हें साहससे सहन करना पौरुष है। सुग्रीवके शत्रुओंसे मेल मत करना। सुग्रीवका हित करना। स्मरण रखना कि श्रीराम ही सबके परमाश्रय और सच्चे स्वजन हैं।'

'श्रीराम…' कहते-कहते बालिका सिर एक ओर ढुलक गया। वह महामनस्वी श्रीरामके सम्मुख शरीर-त्यागकर परमधाम चला गया। वानर फूट-फूटकर रोने लगे। तारा पतिके शरीरसे लिपटकर क्रन्दन करने लगी। इस शोकमें भी उसने पुत्रसे कहा—'अङ्गद ! मेरा हृदय वज्रका है जो मैं भर्त्ताको इस रूपमें देखकर भी जीवित हूँ; किंतु पिताका यह रूप देख लो। सुग्रीवके साथ शत्रुताका यह परिणाम है। श्रीरामके स्वजनोंका—श्रीरामने जिन्हें अपनाया, उनका विरोध करनेवालेकी यही अन्तिम परिणति है।'

'देवि ! आप जानती हैं कि जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख कर्मानुसार प्राप्त होते हैं। आप शोकका त्याग करें। अङ्गद बालक है। आप व्याकुल होंगी तो वह देह ही त्याग देगा।' श्रीहनुमानजी आगे आ गये—'प्राणी पानीसे उत्पन्न, पानीके बुलबुले-जैसा है। उसकी मृत्यु निश्चित है। अतः जन्म-मरणकी चिन्ता न करके कर्त्तव्यकी चिन्ता करना उचित है।'

'धर्मज्ञे ! तुम किसके लिए शोक करती हो, शरीरके लिए या चेतनके लिए ?' श्रीरामका गम्भीर स्वर गूँजा—'शरीर सम्मुख पड़ा है तुम्हारे। इसे तुम सड़नेसे बचा सकोगी ? चेतन मरा करता है क्या ? तुम्हारा पति कौन था, जड़ शरीर या चेतन ?'

'आपकी माया अचिन्त्य है।' तारा जैसी तत्त्वज्ञाके लिए इतना उपदेश पर्याप्त था। उसने वालिके शरीरको छोड़कर श्रीरामके सम्मुख पृथ्वीपर मस्तक रखा—'आपकी अनुकम्पाके बिना जीव स्वयं अविद्याके अन्धकारसे निकल नहीं पाता। अतः दया करो दयामय !'

'सुग्रीव ! अग्रजकी सविधि अन्त्येष्टि करवाओ अङ्गदके द्वारा।' ताराको समझाकर नगरमें भेजकर श्रीरामने सुग्रीवको आदेश दिया—'लक्ष्मण तुम्हारे साथ रहेंगे।'

'पहिले मेरे मनमें बालिसे शत्रुता थी ; परन्तु ताराको रोते देखकर मेरा मन राज्य स्वीकार करनेको अब प्रस्तुत नहीं है।' सुग्रीवने श्रीरामसे कहा—'मुझे धिक्कार है कि मेरे कारण मेरा बड़ा भाई मारा गया। मैं पूर्ववत् ऋष्यमूकपर रहूँगा। आप अङ्गदको राजा बना दें।'

'हम सब रुदन करें तो उससे बालिका कुछ हित होगा ?' श्रीरामने समझाया—'अश्रुपात हो चुका, अब आवश्यक कर्तव्य करना चाहिये। काल दुरतिक्रम है। काल ही सबका कारण है। कालका अतिक्रम कोई कर नहीं सकता। बालि तो उत्तम लोक गया।'

'सुग्रीव उठो ! अङ्गदको लेकर अब अपने अग्रजकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करो !' लक्ष्मणने सुग्रीवको हाथ पकड़कर उठाया।

तार नामक वानरने अर्थी बनायी। तारा अन्तःपुरमें न जाकर पुनः लौट आयी। बालि-का शव उठने लगा तो वह उससे लिपटकर रुदन करने लगी।

'देवि ! मुझे बहुत दुःख है कि मैं वानरेन्द्रकी मृत्युका निमित्त बना।' सहज स्नेहशील परमोदार श्रीरामका स्वर आर्द्र हो गया—'बालिकी मृत्यु-का समय आ गया था ; किंतु रामका अभाग्य इसे निमित्त बनाने यहाँ ले आया।'

'कमललोचन ! करुणासागर ! आपकी उदारता असीम है।' श्रीरामके नेत्रोंमें अश्रु देखते ही तारा पतिका शव छोड़कर उठी— 'वानरेन्द्रका सौभाग्य— उन्हें अपने शरसे परिपूत करके, परमधाम देकर भी आप दुःखी हो रहे हैं ? धन्य हैं आप। इसीसे सन्त-सत्पुरुष आपके श्रीचरणोंमें स्थिर प्रीतिकी कामना करते हैं।'

सुग्रीवको लक्ष्मणने समझाया। बालि-का शव सम्मानके साथ पम्पा-सरोवरके तटपर चितापर चढ़ाया गया। अङ्गदने पिताके शरीरकी चितामें अग्नि अर्पितकी। सबने सरोवरमें स्नान किया। उपदेव-वर्गमें उत्तर क्रिया शवदाहसे सम्पूर्ण हो जाती है। उपदेवताओंको मरणाशौच शवदाहके पश्चात् समाप्त हो जाता है स्नान मात्रसे, अतः सब उत्तर क्रिया इस स्नानसे सम्पूर्ण हो गयी।

वानरराज सुग्रीव

'आपके अनुग्रहसे सुग्रीवको राज्य प्राप्त हुआ। अब आप इन्हें नगरमें जानेकी आज्ञा दें।' हनुमानने प्रार्थना की—'ये बहुत दिनों तक निर्वासित रहे हैं। नगरमें ये आपकी रत्नमालासे अर्चा करेंगे।'

'मैं चौदह वर्ष व्यतीत होनेतक नगरमें नहीं जा सकता।' श्रीरामने अनुजको आदेश दिया—'लक्ष्मण! सुग्रीवके साथ किष्किन्धा जाकर इनका वानरराज-पदपर अभिषेक कर दो। अङ्गदको इनका युवराज बना देना।'

'आप ?' सुग्रीवका उत्साह शिथिल हो गया यह सुनकर कि श्रीराम नगरमें नहीं जायँगे।

'मैं तुमसे दूर नहीं हूँ।' श्रीरामने समझाया—'अभी वर्षाका प्रथम मास प्रारम्भ हुआ है। मैं चार मास इस पर्वतपर ही रहूँगा। यहाँ यह गिरिगुहा वायु-सञ्चार-युक्त है और इसमें भीतर ही जल भी उपलब्ध है। तुम धर्मपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करो। यह स्मरण रखना कि वर्षा व्यतीत होनेपर सीताकी खोज करनी है।'

हनुमान आदिके साथ लक्ष्मण सुग्रीवको लेकर किष्किन्धा पहुँचे। अब बालिके समर्थक भी सुग्रीवका जयघोष कर रहे थे। तारा और अङ्गद जब सुग्रीवके समर्थक हो गये, दूसरों को विरोधका अवसर ही नहीं रहा। बहुत शीघ्रतामें वानरोंने उस गुहा-नगरको सजाया।

लक्ष्मणने सुग्रीवको सिंहासनपर बैठाकर उनका तिलक कर दिया। ताराका मन विरक्त हो रहा था; किन्तु लक्ष्मणने समझाया—'देवि आप मानवी तो हैं नहीं, उपदेवता हैं। वैसे भी सामान्या न होकर नित्य कन्या हैं। आप तत्त्वज्ञा हैं, अतः शरीरका मोह आपमें नहीं होना चाहिए।'

'वानर बालिके प्रति निष्ठावान रहे हैं। सुग्रीवका शासन सहज ही वे स्वीकार नहीं करेंगे और युवराज-पद पानेपर भी अङ्गद अभी बालक

हैं।' हनुमानने समझाया—'सुग्रीव दीर्घकालतक निर्वासित रहे हैं। अतः वानरोंकी वर्तमान स्थिति, वर्तमान समस्या तथा तात्कालिक रुचियोंसे अनभिज्ञ हैं। वानर-राज्य व्यवस्थित बना रहेगा, अङ्गदको ठीक स्नेह, शिक्षण एवं स्वत्व बना रहेगा, यदि आप साम्राज्ञी बनी रहती हैं। हम वानरोंमें इसे बुरा नहीं माना जाता। आप वानर-राज्यपर, प्रजापर कृपा करके अपने पदपर बनी रहें। इसके लिए सुग्रीव आपका आभार मानेंगे।'

ताराने मस्तक झुका लिया। उस मनस्विनीने दो क्षणमें निश्चय कर लिया—'हनुमान ! मैं समझती हूँ कि बानर-प्रजाको और सुग्रीवको भी मेरी सेवाकी आवश्यकता है ; किन्तु मुझे रुमाका स्वत्व नहीं लेना है।'

'जीजी ! मैं सदा आपकी स्नेह-भाजना रही हूँ।' रुमाने ताराके चरण पकड़े—'आप जानती हैं कि मैं शासनके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानती। आपकी सुरक्षाके बिना मैं असहाय हूँ। आप मुझे इस शासनके दायित्वसे मुक्त करके मुझपर कृपा करेंगी।'

सौन्दर्यमें भी अन्तर होता है। तारा परम सुन्दरी ; किन्तु महिमामयी थी। वह स्वभावसे साम्राज्ञी थी। रुमा भी सुन्दर, किन्तु जैसे छुई-मुई, भोली, व्यवहारसे अनजान बालिका हो। वालिने क्रोधमें सुग्रीवको अपमानित करनेके लिए रुमाको अपने अन्तः पुरमें डाल लिया ; किंतु उस प्रथम दिनके पश्चात् वह रुमाको भूल ही गया। रुमाको तो ताराने अपनी अनुजाके समान सम्हाल लिया था।

अब स्थिति परिवर्तित हो गयी। तारा सुग्रीवके साथ सिंहासनपर बैठने वाली साम्राज्ञी हो गयी। शासन-व्यवस्थामें सुग्रीवकी सहधर्मिणी तारा। व्यवस्था ताराके करोंमें ; किंतु अन्तःपुरके एकान्तमें सुग्रीवकी पत्नी रुमा। ताराकी अब अन्तःपुरके विलासमें कोई अभिरुचि नहीं रही थी। वह अन्तःपुरमें अङ्गदकी माता थी और व्यवस्थामें सुग्रीवको मन्त्रणा-दायिनी।

लक्ष्मणने अङ्गदका युवराज-पदपर अभिषेक कर दिया। उपदेवताओं-में जन्मते ही शिशु युवाके आकारका तथा सुपुष्ट हो जाता था ; किंतु

विद्या-बुद्धि तो शिक्षा तथा संगसे धीरे-धीरे आते हैं। अङ्गदको हनुमानका स्नेह एवं शिक्षण सुलभ हुआ। अङ्गद भी हनुमानके साथ ही लगे रहने लगे।

सुग्रीव-अङ्गदका अभिषेक करके लक्ष्मण निकले नगरसे तो सुग्रीव तारा तथा रुमाको लेकर मन्त्रियोंके साथ लक्ष्मणके साथ श्रीरामके समीप आये। श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने स्तुति की। श्रीरामने उन्हें विदा करते कहा—'मैंने वही किया, जो मित्रको करना चाहिये था।'

ऋष्यमूक-निवास

अतिशय रमणीय थी वह गुहा, जिसे श्रीरामने अपना निवास बनाया था। ऋष्यमूक पर्वतका यह माल्यवान शिखर बहुत सुन्दर था और इसमें इतने निर्झर थे कि इसका नाम ही प्रस्रवण पर्वत पड़ गया था।

पर्वतमें लाल, काली आदि अनेक रङ्गोंकी शिलाएँ थीं; किंतु जिस गुफामें श्रीरामने निवास किया, वह स्वच्छ, उज्ज्वल मर्मर पाषाण की थी। गुहा विस्तृत थी। उसके भीतर ही एक छोटा जल-स्रोत था। इसके कारण वर्षाके मिट्टी-मिले निर्झरोंके जलको स्वच्छ करनेके प्रयत्न अथवा उनके स्वच्छ होनेकी प्रतीक्षा आवश्यक नहीं थी।

गुफाके वाहर चारों ओर मल्लिका, मालती, यूथिका, वृन्दका (वेला) की लताएँ लहरा रही थीं। उनके उज्ज्वल पुष्पोंकी सुरभिसे दिशाएँ सुरभित रहती थीं।

वर्षारम्भमें ही आम्र, जामुन, कटहल पक गयेभाद्रके अन्ततक इन। फलोंको सुलभ रहना था। अनेक सुस्वादु अंकुर उग आये थे। भाद्रके व्यतीत होनेसे पूर्व ही अनेक कन्द आहार-योग्य हो जाते थे। आम्रके समाप्त होते ही अमरूदने उसका स्थान ले लिया।

लक्ष्मण आकाश निर्मल होते ही निकल जाते थे और कई दिनोंतक चल सकें, इतने फल, अंकुर आदि एकत्र कर लाते थे। आकाश खुला हो तो अनुजके साथ श्रीराम पर्वतपर ही कुछ दूर घूम आते थे अथवा गुहासे बाहर किसी भी शिलापर विराजमान होते थे।

पावस प्रकृतिका पालक, पोषक एवं शृङ्गारकर्त्ता है। वर्षासे धुली शिलाएँ, स्नान-शुद्ध वृक्ष-लताएँ, चञ्चल शिशुओंके समान कल-कल, छल-छल करते भागते निर्झर और मयूर, चातक, कोकिल प्रभृति पक्षियोंका श्रवण-मधुर स्वर। भ्रमरोंका गुञ्जन ही नहीं, भेक (मेढक)की टर्राहट भी पावसमें मनको प्रफुल्ल करती है।

सम्पूर्ण धरा-शिखरतक पर्वत-जैसे हरित वस्त्र धारण करके किसीके स्वागतमें सजे खड़े हों। पुष्पोंके साथ वीरवहूटी—पृथ्वीकी हरी साड़ीकी शोभामयी लाल बूँदें। मृग, शशक, वृषभ, गायें, और दूसरे भी पशु अच्छे स्वस्थ, प्रसन्न, उछलते-कूदते।

कभी आनन्द देनेवाले वायुके शीतल झकोरे, कभी ऊमस और कभी वर्षाकी झड़ी। गगनमें घटाओंका भेरी-घोष एवं चपलाका चपल नृत्य।

इस सबमें श्रीरामका मन अत्यन्त व्याकुल—'सीते ! सीते !' मेघ गर्जना करें, बिजली चमके, वर्षा वेगसे हो या बन्द रहे, श्रीरामको प्रत्येक अवस्थामें अपनी प्राण-प्रियाकी सुधि विक्षिप्त बनाती है। पिक 'कुहू-कुहू' करे, मयूरोंकी केका-ध्वनि उठे, पपीहा 'पी कहाँ' पुकारे या जागरण पक्षी—'उठो सोते लोग' की रट लगावे, श्रीरामको केवल—'हा जानकी' कहना है। निर्झरोंका नृत्य, मृगोंकी मुग्ध विलोकन, लताका झुक झूमना, भ्रमरोंकी गुञ्जार सब श्रीजनक-नन्दिनीका स्मरण कराते हैं।

'आर्य ! क्रियायोग क्या होता है ?' लक्ष्मणको कुछ-न-कुछ पूछना रहता है। वे कुछ पूछ लेते हैं तो उनके आराध्य अग्रज थोड़ी देर उन्हें समझानेमें अपनी व्यथा विस्मृत किये रहते हैं। अतः लक्ष्मणको समय मिलते ही अवश्य कुछ पूछना रहता है।

'जब कोई भाव जीवको ईश्वरसे मिलानेवाला बनता है तो उसकी संज्ञा योग होती है।' श्रीराम स्नेहपूर्वक अनुजको समझाने लगते हैं—'कर्म—कोई क्रियायोग नहीं है, वह भगवान्‌के लिए हो तो क्रियायोग है। जैसे संसारमें जो प्रीति है वह योग नहीं है। संसारमें भौतिक विषयोंका जो ज्ञान है, वह योग नहीं है। भगवानमें प्रीति प्रेमयोग या भक्तियोग है। भगवत्तत्त्वका ज्ञान ज्ञानयोग है।'

'भगवदुपासना—भगवन्मूर्त्तियोंकी अर्चाके विधि-विधानका नाम क्रियायोग है।' श्रीरामने मूर्त्ति-प्रतिष्ठा, मूर्त्ति-निर्माण-विधि, न्यास, कवच, स्तोत्र, पूजा-प्रकार, पूजाके उपकरण, मुद्राएँ, पर्व-आदि पर होनेवाले उत्सवोंकी विधि, सकाम-निष्काम अनुष्ठान, जप, मन्त्रोंके ऋणी-धनी आदि भेद, मन्त्रोंके ताडन-प्लावनादि संस्कार, दीक्षाका समय, विधि, भेद आदि सम्पूर्ण क्रियायोगका विस्तारसे वर्णन किया।

चार महीनेका समय था। एकान्त था। लक्ष्मण-जैसे सेवा-तत्पर अधिकारी जिज्ञासु थे, अतः श्रीरामने क्रियायोगके सब रहस्य समझाये। भक्तियोग, ज्ञानयोगका भी पूरा वर्णन किया। क्रियायोगके वर्णनमें लगनेके कारण लीला सूझी तो शारदीय नवरात्रमें व्रत करके नौ दिनोंतक नौदुर्गा-की आराधनामें लगे रहे। प्रत्येक दिन उस तिथिकी अधिदेवता दुर्गाकी पूरी पूजा। जैसे प्रथम दिन शैलपुत्रीकी तो दूसरे दिन ब्रह्मचारिणी एवं तीसरे दिन चन्द्रघण्टाकी। नौ दिनों यह आराधना-क्रम चलता रहा।
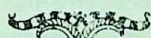
पवन-पुत्रकी सावधानी

'आपको जिनके अनुग्रहसे राज्य प्राप्त हुआ, जिनके पराक्रमके बल-पर आप विपत्ति-विमुक्त हुए, उनका कार्य आपने किया नहीं है।' हनुमानने अवसर देखकर सुग्रीवको प्रसन्न पाकर कहा—'जो समयानुसार मित्रसे व्यवहार नहीं करता, उसका सर्वस्व छिन जाता है।'

'आप सदाचारी हैं, सन्मार्गपर स्थित हैं, यही समझकर श्रीरामने आपकी सहायताकी। अतः आपको उनके विश्वासका अधिकारी सिद्ध करना चाहिये। उनके साथ की गयी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये।' हनुमान-ने समझाया—समय व्यतीत हो जानेपर किया गया कार्य अपना महत्व खो देता है। श्रीरामके लिए सीताके अन्वेषणका समय बीत रहा है।'

हनुमानका हृदय श्रीरामके समीप ही रहनेको अत्यन्त उत्सुक था; किंतु सत्पुरुष जिसे अपनाते हैं, उसका अचानक त्याग नहीं करते। सुग्रीव-को नवीन राज्य मिला था। वे शासनसे तथा प्रजाकी वर्तमान स्थितिसे भी अपरिचित थे। बहुत दिनोंतक निर्वासनका कष्ट भोगनेके पीछे वैभव मिला तो भोगोंमें लिप्त हो गये थे। उन्हें कुछ स्मरण ही नहीं आता था। सुग्रीवके शासनको सम्हालकर सुस्थिर कर देना आवश्यक था। अङ्गदका प्रशिक्षण भी हनुमानजीको ही करना था और राम-कार्य भी किष्किन्धा रहकर अच्छी प्रकार कराया जा सकता था। अतः हनुमान सुग्रीवके समीप ही रहते थे।

'श्रीराम बिना किसीकी सहायताके अपना कार्य करनेमें समर्थ हैं। लेकिन आपका उन्होंने बहुत बड़ा उपकार किया है। समर्थ पुरुष अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं तो अपने साथकी गयी प्रतिज्ञा पूरी कराना भी जानते हैं।' हनुमान साम और भय दोनों प्रकारसे समझा रहे थे—'उनके कहने-पर आप काम करेंगे तो उसका महत्त्व नष्ट हो जायगा। उनसे आपने प्रतिज्ञा की है सीताकी खोज करानेकी। आप अनुपकारीका भी काम कर देते हैं। श्रीरामका आपपर असीम उपकार है और वे समर्थ हैं। वे धनुष चढ़ा लें, क्रोध करें, इससे पहिले उनके साथ की गयी प्रतिज्ञाका पालन

किया जाना चाहिए। आपकी आज्ञा हो तो हम सब बानर पृथ्वी, जल, आकाशमें अब सीतान्वेषणके लिए निकल पड़ें।'

'हनुमान ! तुम सदा मेरी विपत्तिके सहायक रहे हो !' सुग्रीवने प्रशंसा की हनुमानजीकी—'तुमने समयपर उचित सम्मति दी है। वर्षा व्यतीत हो चुकी। आकाशमें न मेघ हैं, न विद्युत। गगन निर्मल होकर सूचित करता है कि पृथ्वीके पथ यात्राके योग्य हो गये हैं।'

'हनुमान ! अवश्य मुझसे प्रमाद हुआ है। इस समयसे पूर्व ही मुझे प्रयत्न प्रारम्भ कर देना था ; किंतु अब शीघ्रता करो।' सुग्रीव मनमें कुछ भयभीत, चिन्तित हुए। उन्होंने नल-नीलको भी बुला लिया—'रावण मायावी है, दुष्ट है और पृथ्वीमें कहाँ-कहाँ उसके कितने सहायक हैं, यह पता नहीं है। यद्यपि वह ऋष्यमूकसे सीता-सहित दक्षिण जाता देखा गया था ; किंतु मायावी राक्षस मार्गमें किधर मुड़कर कितनी दूर गया होगा, कुछ पता नहीं है। सीताको वह कहीं अरण्यमें, गिरिगह्वरमें, जलमें या पातालमें छिपा सकता है।'

'रावणकी राजधानी लङ्का दक्षिण समुद्रमें कहीं द्वीपमें है ; किंतु सीताको उसने कहाँ रखा होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।' सुग्रीवका मस्तिष्क सक्रिय हो गया था—'पहिले सीताका पता लगाना चाहिए। पहिले रावणसे उलझनेपर सीताकी सुरक्षा सङ्कटमें पड़ सकती है। सीता-को पहिले समूची पृथ्वीमें—पृथ्वीके पर्वतों, अरण्यों एवं असुर-आवासोंमें अन्वेषण करना है। पानीके भीतर अथवा पातालमें ढूँढ़नेकी बात पीछे। पृथ्वीपर ही कोई सूत्र सीतातक पहुँचनेका अवश्य पाया जा सकता है।'

'पृथ्वी छोटी तो नहीं है। किष्किन्धाके सब वानर बहुत अपर्याप्त हैं सीतान्वेषणके लिए।' सुग्रीवने आज्ञा दी—'पहिला कार्य यह कि तुम स्वयं जाओ, दूसरे वानरोंको भी भेजो पृथ्वीके विभिन्न वानर-आवासोंमें। सबको मेरा आदेश सुना दो कि सभी वानर पुरुषोंको पन्द्रह दिनके भीतर यहाँ अवश्य उपस्थित हो जाना चाहिए। जो भी इस आदेशकी अवज्ञा करेगा, उसे प्राणदण्ड प्राप्त होगा।'

हनुमानने प्रसन्नता प्रकट की। बहुत अधिक वानरोंको दान-मानसे सन्तुष्ट करके दिशाओंमें भेजा। स्वयं तथा नल-नील भी वानरोंको आमन्त्रित करने चल पड़े। जो वानर जिन प्रदेशोंसे परिचित थे, वे वहाँ भेजे गये। जो अत्यन्त दुर्गम, दूरस्थ प्रदेश थे, वहाँकी यात्रा स्वयं हनुमानको करनी थी। ●

रोष-नाट्य

'अब वर्षा तो बीत गयी लक्ष्मण ! दिशाएँ कासके पुष्पोंसे उज्वल हँसती लगती हैं और रजनी शारदी ज्योत्स्नासे धवल हो गयी है। सीताके बिना मेरे दिन युगों-जैसे व्यतीत होते हैं।' श्रीरामने चारो ओर फूले कासको देखकर कहा—'मैं सरिताओंके जलके उतर जाने और सुग्रीवकी प्रतीक्षा करता हुआ किसी प्रकार समय व्यतीत कर रहा था। सरिताओंका जल स्वच्छ हो गया। मार्ग यात्रा-योग्य हो गये ; किंतु सुग्रीवको मुझपर दया नहीं आयी !'

'सुग्रीव सोचता है कि उसका शत्रु नष्ट हो गया, राज्य मिल गया, अब वह क्यों निर्वासित, वनवासी रामके लिए व्यर्थमें कोई बखेड़ा करे।' वाणीमें रोष आया—'उस मूर्खको पता नहीं कि रामके तूणीरमें वह वाण अभी वैसा ही धरा है, जिसने बालिको स्वर्ग भेज दिया। सुग्रीव मेरा वही बालि-वध वाला रूप देखना चाहता है ?'

'सुग्रीव बुद्धि-भ्रष्ट है। कृतघ्न है यह वानर, और कृतघ्नका मांस तो राक्षस भी नहीं खाते।' लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे—'आपकी कृपाको उसने विस्मृत कर दिया। ऐसा अकृतज्ञ राज्य पानेका अधिकारी नहीं है। उसे और उसके नगरको भस्म कर दूँगा।'

'लक्ष्मण ! रुको।' अनुजको धनुष चढ़ाते देखकर श्रीरामने गम्भीर स्वरमें कहा—'तुम जानते हो कि राम किसीको अपनाकर छोड़ना नहीं जानता। सुग्रीव अकृतज्ञ, लम्पट, ग्राम्य-सुख-लीन हो सकता है, जीव तो सदासे ही दुर्बल है ; किंतु रामने जिसे अपना स्वीकार किया, उसपर सङ्कट आवे, यह तो उचित नहीं है।'

'आर्य ?' लक्ष्मण अग्रजका मुख देखते रह गये।

'रोष मत करो, रोषका नाट्य करो। पथ-भटके शिशुको जैसे माता नेत्र कड़े करके सम्हालती है, अन्तरमें अनन्त वात्सल्य प्राणियोंपर बनाये

रखना है, इसे विस्मृत मत करो।' श्रीरामने अनुजको आदेश दिया—'बुराई को बुराईसे मिटाना योग्य नहीं हैं। बुराईका प्रतिकार अच्छाईसे किया जाना चाहिये। सुग्रीवको मैंने अग्निकी साक्षीमें मित्र बनाया है। वह वध्य नहीं, रक्षणीय है ; किंतु उस अज्ञको किष्किन्धा जाकर धमकाकर जगा दो, सावधान कर दो। उससे कहो कि बालि जिस मार्गसे गया, वह मार्ग न सँकरा हो गया, न रुद्ध हुआ। उस मार्गकी ओर मुख करना है उसे ?'

× × ×

'कहाँ है कृतघ्न सुग्रीव ? बहुत गर्व हो गया है उसे वानरोंका राजा बनकर ? मैं उसे और उसके नगरको अभी जलाकर भस्म बना दूँगा।' लक्ष्मणने धनुषकी प्रत्यञ्चा उतारी नहीं। अग्रजकी आज्ञासे वे वैसे ही किष्किन्धा पहुँचे। वाण चढ़ाना अनावश्यक था। केवल ज्याघोष करके द्वारपालोंको, सामने दीखते वानरोंको सुनाकर गर्जना की।

लक्ष्मणने द्वारपालोंकी उपेक्षा कर दी थी। वे नगरमें प्रविष्ट हुए तो कुछ वानरोंको उनका व्यवहार भी अच्छा नहीं लगा था। कुछने रोकनेके उत्साहमें पेड़-पत्थर भी उठा लिए थे ; किंतु जैसे ही लक्ष्मणने ज्याघोष किया, सब भयभीत होकर भाग खड़े हुए !

जैसे शत-शत वज्रपात साथ हो रहे हों, लक्ष्मणके धनुषकी प्रत्यञ्चा-का भुवन-भेदी नाद घहरा रहा था। लक्ष्मण बराबर ज्याघोष कर रहे थे। वानरोंको लगता था, उनके कर्ण और मस्तिष्क फट जायँगे। पूरी किष्किन्ध्यामें सब अस्त-व्यस्त भाग रहे थे।

'आपके द्वारा पालित, आपका चरणाश्रित बालि-पुत्र बानर अङ्गद आपके चरणोंमें प्रणाम करता है।' अङ्गद दौड़ आये। लक्ष्मणने अपने पदोंमें प्रणत उन्हें उठाया।

'श्रीरामका आश्रित सदा अभय है !' लक्ष्मणने उठाकर अङ्गदसे कहा—'सुग्रीवको समाचार दो। उसे मेरी बात माननी हो तो मिले।'

× × ×

'देव ! कुमार लक्ष्मण क्रोधमें भरे नगरमें पधारे हैं।' अङ्गद दौड़े सुग्रीवके अन्तःपुर पहुँचे। सुग्रीव तथा रुमाके चरण-स्पर्श करके उन्होंने

कहा—'यह उनके धनुषका ज्याघोष भी गूँजता रहा तो थोड़े क्षणोंमें बानरोंके हृदयकी गति बन्द हो जायगी।'

'हनुमान ! इस समय क्या उचित है, यह मैं सोच नहीं पाता' व्याकुल सुग्रीवके लिए यही कुशल थी कि वानरोंको किष्किन्धा आनेका आमन्त्रण देकर हनुमान लौट आये थे। वे इस समय सुग्रीवके समीप थे। सुग्रीव भयकातर स्वर कह रहे थे—'मैंने तो उनका कोई अहित नहीं किया है। लगता है, मेरे शत्रुओंने उन्हें भड़का दिया है। श्रीरामने मेरे साथ जो उपकार किया, उसका मैं प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ हूँ। वे मुझे मित्र बनाकर कोप क्यों करते हैं ?'

'बानरेन्द्र ! स्पष्ट है कि यह शत्रुपर होने वाला क्रोध नहीं है। लक्ष्मणको सचमुच क्रोध आवे तो अपने स्थानपर खड़े ही वे समस्त सृष्टिके विध्वंसमें समर्थ हैं।' हनुमानने आश्वासन दिया—'वे पुरीमें आये हैं। धनुषपर वाण चढ़ाये बिना केवल ज्याघोष कर रहे हैं। इसका अर्थ है कि यह स्वजनपर होनेवाला प्रणय-कोप है। आप श्रीरामके उपकारको नहीं भूलते, यह तो आपके लिए स्वाभाविक है ; किंतु सीताकी शोधका उद्योग करनेका यह समय है। इसमें आपसे प्रमाद हुआ है, इसलिए उनका क्रोध करना अनुचित नहीं है। आप उन्हें प्रसन्न करें।'

'हनुमान ! मैं क्रोधमें भरे लक्ष्मणके सम्मुख जानेका साहस नहीं कर सकता।' सुग्रीवने कहा—'तुम तारा और अङ्गदको लेकर उनके समीप जाओ। उनको समझाकर शान्त करके ले आओ।'

× × ×

'कुमार ! आप इस बालक अङ्गदपर और उसकी इस मातापर प्रसन्न हों, जिन्हें आपने ही आश्रय दिया है।' ताराने अङ्गदको आगे करके प्रणाम किया और कहा—'आप अपने वानरेन्द्र मित्रपर भी प्रसन्न हों। वे तो आपके आज्ञानुवर्ती हैं। आपके कार्यमें ही लगे हैं। आप पधारें हमारी गुहामें। वानरेन्द्र आपके चरणार्चनको उत्सुक हैं।'

किष्किन्धा, पर्वतोंसे घिरी, सरिताके समीप उपदेवता वानरोंकी पुरी थी। वानरोंके उत्तम भवन थे उसमें। सुसज्ज थी पुरी। स्वभावसे फलाशन बानरोंकी नगरी बड़े-बड़े फलशाली वृक्षोंसे भरी थी। कोई सेवक भी अतृप्त नहीं था। कोई व्यग्र-उद्धत नहीं था। सब शिष्ट थे। स्त्रियाँ

सुन्दरी थी। आभरण-भूषिता थीं। लेकिन इस समय लक्ष्मणको क्रुद्ध देखकर द्वारपाल हाथ जोड़ काँप रहे थे। वानर उद्विग्न भागने लगे थे भवन त्यागकर वनमें।

'सत्पुरुष अपने आश्रितपर, स्त्रीपर, बालकपर क्रोध नहीं करते।' सुग्रीवका यह अनुमान ठीक था। तारा सामने आयीं तो लक्ष्मणने दृष्टि नीचे कर ली। धनुष कन्धेपर चला गया।

'कुमार ! आपके क्रोधका कारण ?' ताराने विनयके साथ कहा--'यह तो आपके मित्रका नगर है। कौन यहाँ मरनेको उद्यत है ? उसे तो मैं ही प्राणदण्ड दिला दूंगी।'

'सुग्रीव राज्य पाकर प्रमत्त हो गया है।' लक्ष्मणके स्वरमें अभी रोष-नाट्य था—'चार महीनेसे अधिक हो गये, मित्रको दिये गये वचनके पालनका उन्हें स्मरण ही नहीं हो रहा है। सुग्रीवके धर्मका ही नहीं, अर्थ-का भी लोप आसन्न है; किंतु यह चर्चा मैं उनसे ही करने आया हूँ।'

'वे आपके स्वजन हैं, आश्रित हैं, उनपर अत्यन्त कोप उचित नहीं है कुमार!' ताराने शान्त स्वरमें अनुनय की—'उनसे प्रमाद हुआ, किंतु वे तो वानर हैं। आप महापुरुष मित्रको क्षमा नहीं करेंगे तो कौन करेगा। वे तो स्वभावसे चपल हैं। उन्होंने आपके कार्यको विस्मृत भी नहीं किया है। आप चलकर देखें, कितने वानर उन्होंने बुला लिये हैं इस कार्यमें नियुक्त करनेके लिए।'

अब क्रोधका कारण ही नहीं था। तारा आगे हो गयी। अङ्गद और हनुमानने अनुगमन किया। माल्याभरण-सज्जित सुग्रीव रुमाके साथ सिंहासनपर बैठे थे। श्रीरामानुजको देखते ही कूदे। वहाँ अन्तःपुरकी स्त्रियाँ हाथ जोड़े खड़ी हो गयीं।

'सत्यवादी, धर्मात्मा राजा ही संसारमें सत्कार पाता है।' लक्ष्मणने पहुँचते ही कहा—'मित्रके साथ वचन-भङ्ग करनेवाला कृतघ्न मार देने योग्य है। तुमने श्रीरामको कुछ वचन दिया था, इसका स्मरण है तुम्हें ? उसके पालनका समय अभी नहीं हुआ ?'

'कुमार ! आपको ऐसे कठोर वचन नहीं कहने चाहिये।' ताराने लक्ष्मणको क्रोधसे अरुणमुख होते देखकर नम्रतापूर्वक कहा—'ये वानरेन्द्र कृतघ्न, कठोर अथवा दारुण नहीं हैं। श्रीरामका उपकार ये भूले नहीं हैं।

ये ऐसा प्रत्युपकार करेंगे, जो अन्य कोई कर नहीं सकता। इन्हें निर्वासित होकर कितना भटकना पड़ा, कितना दुःख उठाना पड़ा दीर्घकाल तक, अब थोड़ा सुख मिला तो उसमें भूल जाना अस्वाभाविक नहीं है। मैं क्षमा माँगती हूँ, क्रोध न करके इन्हें क्षमा करें। आप जैसेको इस प्रकार क्रोध नहीं करना चाहिये। मैं अनुभव करती हूँ कि ये श्रीरामके लिए राज्य तथा हम सबका त्याग कर सकते हैं। अभी तो पता ही नहीं है कि श्रीजनक-नन्दिनीको रावणने कहाँ रखा है। लङ्कामें ही रखा हो तो भी वहाँ असंख्य कामरूप राक्षस हैं। उन्हें मारना होगा। यह सब सोचकर इन वानरेन्द्रने बहुत अधिक दूत भेजकर पृथ्वीके सब बलवान वानरोंको बुलवाया है। वे सब अब आते ही होंगे।'

ताराकी बात सुनकर लक्ष्मण शान्त हुए। उनके मुखपर रोषका चिह्न नहीं है, यह देखकर सुग्रीवने कण्ठकी माला उतार दी और समीप आकर, हाथ जोड़कर बोले—'श्रीरामकी कृपासे मुझे राज्य तथा पत्नी प्राप्त हुई। मैं आपके अग्रजसे उऋण नहीं हो सकता। मैं तो उनका क्षुद्र सेवक हूँ। जानता हूँ कि श्रीजनकजाको वे अपने पराक्रमसे ही प्राप्त करेंगे। इस वानरको तो वे सहायक होनेका गौरव दे रहे हैं। यदि मुझसे कुछ प्रमाद, समयका अतिक्रम हुआ है तो उनकी प्रीतिपर असीम विश्वासके कारण हुआ है। मुझे क्षमा करें।'

'तुम मेरे अग्रजके उपयुक्त मित्र हो!' लक्ष्मणने नम्रतापूर्वक कहा—'तुममें विनय है। अपने दोषको समझ लेने, समर्थ होकर भी अपना दोष स्वीकार कर लेनेका सद्गुण मेरे सम्मान्य अग्रजमें और तुममें भी है। लेकिन अब शीघ्र श्रीरामके समीप चलो। वे बहुत दुःखी हैं। मैंने जो कड़ी बातें कही हैं, वे उनके वचनोंको दुहरायी मात्र हैं। मुझे क्षमा करो।'

'वानरेन्द्र! अपराध हम लोगोंसे हुआ है।' हनुमानजीको रुचा नहीं कि लक्ष्मण क्षमा माँगें। वे बोल उठे—'अतः उचित उपाय यह है कि आप कुमार लक्ष्मणको प्रसन्न करें।'

'हनुमान! जितने भी वानर हैं, वे वनमें, गुफाओंमें पर्वतोंपर, जहाँ कहीं भी हों, सबको शीघ्र बुलानेके लिए दूत भेजो!' सुग्रीवने श्रीलक्ष्मणको सिंहासनपर बैठाकर अर्चा करते हुए ही हनुमानजीसे कहा—'पहिले भेजे दूतोंको त्वरा करनेका सन्देश लेकर और दूत जावें। भोग-लिप्त, दीर्घसूत्री वानरोंको भी वे ले आवें। जो मेरी आज्ञा सुनकर भी

दस दिनके भीतर न आ जायँ, उन्हें मार दो। आकाश, पातालमें कहीं भा वे छिपकर भागने न पावें।'

इस आज्ञाके पालनका अवसर नहीं आया। आज्ञा हुए अभी दो घड़ी भी नहीं हुई थी, लक्ष्मणको सुग्रीव स्थिति समझा ही रहे थे कि दिशाओंसे असंख्य वानर आने लगे। दिशाएँ गूँजने लगीं—' वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय !'

वानर, फल, मूल, कन्द, औषधि उपहार ले-लेकर आये थे। हिमालयपर जहाँ माहेश्वर महायज्ञ पूर्व युगमें हुआ था, वहाँ उत्पन्न महातरु-का फल, उस यज्ञके हविष्यसे उत्पन्न फल, मूल, पुष्प जैसे दुर्लभ पदार्थ थे उपहारोंमें, जिन्हें खाकर महीने-भर क्षुधा-पिपासा लगती ही नहीं। सुग्रीव ने ऐसे दुर्लभ उपहार श्रीरामके लिए एकत्र किये। सब वानरोंको उचित आवास देनेका अङ्गदको आदेश दिया।

'अब हम यहाँसे चलें।' श्रीलक्ष्मण उठ खड़े हुए।

'आगत वानर सीधे श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करते माल्यवान शिखर पहुँचें।' सुग्रीवने अङ्गदको समझाया और वे भी हनुमानको लेकर लक्ष्मणके साथ चल पड़े।
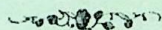
वानर-प्रेषण

'असमयपर किया कार्य भी अर्थहीन हो जाता है। जो अवसरोचित धर्म एवं अर्थके उद्योगको भूलकर काममें ही लिप्त रहता है, वह वृक्षपर चढ़कर सोनेवालेके समान गिर पड़ता है।' सुग्रीवने समीप आकर चरणों-पर सिर रखकर प्रणाम किया, तब श्रीरामने उठाकर उन्हें हृदयसे लगाया। शिलापर अपने समीप ही बैठाकर बोले—'अतः अब सीतान्वेषणका प्रयत्न होना चाहिये।'

'आपके उपकारका प्रत्युपकार कर पानेमें मैं सदा असमर्थ रहूँगा; किंतु आपके चरणोंकी सेवा मेरा सौभाग्य बनी रहे।' सुग्रीव उठ खड़े हुए— 'आप यहाँ आते इन असंख्य वानरोंको देखें। ये सब कामरूप हैं। नाना द्वीपों, वन-पर्वतोंसे आ रहे हैं। ये दलके-दल आते सब वानर फल-मूलाशन हैं और अनुशासित हैं। ये सब आपके लिए प्राण देनेको प्रस्तुत हैं।'

'मित्र! मेघके द्वारा वृष्टि होना, सूर्यका प्रकाश देना जैसे आश्चर्यकी बात नहीं है, तुम्हारे जैसे मित्रके लिए मित्रका उपकार वैसे ही स्वाभाविक है।' श्रीराम भी सुग्रीवके साथ उठकर वानरोंके आते दल देखने लगे।

जैसे प्रलयकी घटा उमड़ी आ रही हो, गगन चारों ओर धूलिसे भर गया। वायु उष्ण हो गयी। वानरोंके कण्ठका जयघोष सुनायी पड़ने लगा—'कौशल-किशोरकी जय! वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय!'

श्वेत, पीले, काले, लाल, कपिश, कर्बुर, कपोतरोमा, गोपुच्छ— अनेक-अनेक रङ्गोंके वानरोंके यूथोंके साथ पर्वताकार अत्यन्त काले तथा हिमश्वेत केशों वाले रीछोंका दल भी उमड़ा आ रहा था।

'रीछराज जाम्बवन्तसे आप परिचित हैं। ये कृष्ण और श्वेत दोनों रीछ-दल इनके अनुगत हैं।' सुग्रीवने प्रमुख-प्रमुखका परिचय देना प्रारम्भ किया—'ये स्वर्ण पर्वतके समान ताराके पिता सुषेण हैं और ये रुमाके

पिता शतबलि। ये असंख्य वानरोंके अग्रणी सुमेरुके समान स्वर्णाभ हनुमानके पिता केसरी हैं।'

'नल-नील, द्विविद-मयन्द, गय-गवाक्ष, धूम्रकेश; सुग्रीवके लिए प्रधानोंकी भी नाम-गणना सम्भव नहीं थी। पर्वतपर इतना स्थान नहीं था कि सब यूथपति भी वहाँ पहुँच पाते। सहसा सब वानर जहाँके-तहाँ खड़े रह गये। सबके कण्ठोंसे प्रेम-गद्गद् जयघोष गूँजा—' करुणामय कौसलेशकी जय!'

सुग्रीव भी कुछ समझ नहीं सके। सब मूर्त्तिके समान स्थिर खड़े हो गये। सबके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चलने लगा। पीछे सबमें एक ही चर्चा—'धन्य श्रीराम! मुझ जैसे तुच्छ कपिके समीप स्वयं आये। अपने चरणोंपर पड़ते मुझे उन विशाल-बाहुने उठाकर हृदयसे लगाया। अपने यूथपति भी मेरे जैसे क्षुद्र सेवककी उपस्थितिपर ध्यान नहीं देते और वानरेन्द्र जिनके चरणोंके पास करबद्ध खड़े थे, उन नवघनसुन्दरने पूछा इस कपिसे कि इसके परिवारमें कौन-कौन हैं। उनकी क्या व्यवस्था वानरेन्द्र अथवा यूथ-पतिने की है। क्या स्थिति हैं उसके आवास-स्थान की। वहाँ जल, फल, मूल प्रचुर हैं या नहीं? कोई विशेष व्यवस्था आवश्यक हो तो वह बिना सङ्कोच सूचित कर दे।'

प्रत्येक कपि—असंख्य कपि-दलके एक-एकका अनुभव यही था कि श्रीराम स्वयं उससे मिले। उसका स्वागत किया, उसका आभार माना सहायतार्थ आनेके लिए। जैसे वह वानरेन्द्र तथा यूथपतिका अनुचर न होकर स्वयं सहायता करने आया हो। उसकी कुशल पूछी।

'इन सबको आप अपने सेवकके रूपमें स्वीकार करें।' सुग्रीवने श्रीरामसे अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की।

'आप सब पर्वतोंमें जल तथा फलकी सुविधा देखकर अपने दलको ठहरावें।' यूथपतियोंको वानरेन्द्रने आदेश दिया—'यहाँ केवल वे आवेंगे, जिन्हें बुलाया जायगा।'

असंख्य कपि-दल—किंतु अत्यन्त अनुशासित। ऐसी सेना कि जो शिबिर एवं आहारके सम्बन्धमें निरपेक्ष थी। पर्वतोंपर, शिलाओंपर, वृक्षों-पर, सरोवर, निर्झर, सरिताके तटोंपर वानरोंने अपना डेरा जमाया।

ऋष्यमूक तथा कई योजन चारों ओरकी भूमि वानरोंसे भर गयी। सब अपना आहार स्वयं ढूँढ़ लेनेवाले थे।

'ये सब आपके किङ्कर हैं। आपके वशवर्ती हैं।' सुग्रीवने श्रीरामसे कहा—'आप इन्हें आज्ञा दें।'

'मैं जानना चाहता हूँ कि जनक-नन्दिनी सीता जीवित भी हैं या नहीं और जीवित हैं तो कहाँ हैं?' श्रीरामने सुग्रीवका आलिङ्गन करके उनसे कहा—'वानरोंको केवल वानरेन्द्र आदेश दे सकते हैं। यह कार्य न मैं कर सकता, न लक्ष्मण। तुम मेरा काम समझते हो। हमारे हितेच्छु हो, अतः तुम्हीं वानरोंको आदेश दो।'

'वानरपति विनत!' सुग्रीवने अविलम्ब कार्य सम्हाल लिया। अब वे अत्युच्च स्वरमें स्वयं यूथपतियोंका नाम लेकर पुकारने लगे। जैसे विनत आया, सुग्रीवने आदेश दिया—'सीताका पता लगाना है। वे सुरक्षित मिलनी चाहिये। अपनी पूरी सेनाके साथ पूर्व दिशामें जाओ। वन, पर्वत, खड्ड, गुहा, शून्य भग्न भवन या देवालय, उजड़े नगर, उदयाचल तक कोई स्थान बिना देखे बचना नहीं चाहिये।'

'किसी ऋषि-मुनिका अपमान मत करना।' यह आदेश सुग्रीव सभीको सुनाते गये—'लेकिन तपस्वियोंसे, परिव्राजकोंसे नाट्य-सङ्गीत-जीवी घूमने वालोंसे, भिक्षुकोंसे नम्रतापूर्वक सीताका पता पूछना। कोई राक्षस मिले तो तुम उससे यथेच्छ व्यवहार कर सकते हो; किंतु जहाँ तक सम्भव हो, दशग्रीव तक तुम्हारे उद्योगका समाचार न पहुँचे, यह उत्तम होगा।'

वानरोंने इस आदेशके पालनका सीधा उपाय अपने अन्वेषण-क्रममें निकाल लिया था। वन-पर्वतमें जहाँ कहीं उन्हें कोई राक्षस मिला, एक-एक चपत लगा दी उसे। अब यह दूसरी बात है कि इस अत्यल्प सत्कारको भी कोई राक्षस सहन नहीं कर सका। कई लाख चपतें—लङ्काके अतिरिक्त प्रायः पृथ्वी राक्षसोंसे रिक्त हो गयी।

'किसी धार्मिक जनोंके जनपदमें जाना आवश्यक नहीं है।' सुग्रीवने काम कम किया—'नगरोंसे भी दूर रहो। राक्षस किसी आर्य नगर या ग्राममें वैदेहीको छिपाने नहीं जायगा? अतः सघन मानव-जनपद जहाँ हैं, उस प्रदेशके अन्वेषणका व्यर्थ श्रम करके समय मत नष्ट करना।'

सुग्रीवने प्रत्येक दिशामें जानेवाले यूथपतिके साथ अनेक दूसरे यूथप सहायक दिये सेनाके साथ। सबको मार्गमें पड़ने वाले पर्वत, वन, नदियोंका विस्तारपूर्वक परिचय दिया। वहाँके विशिष्ट भयदायक प्राणियोंसे सावधान किया। सचेत किया कि सुरम्य प्रदेशोंमें, सुस्वादु फलोंके स्थानोंमें किसीको अटकना नहीं चाहिये।

'वानरराज शतबलि!' सुग्रीवने रुमाके पिता—अपने स्वसुरको पुकारा। उनके साथ जाने वालोंके नाम सूचित करके कहा—'आपको हिमालय पार करके उत्तरके प्राणि-विहीन हिमप्रदेश तक जाना है। आर्योंके नगर, ग्राम, प्रदेश छोड़ दीजिये। देवताओके भी विहार-स्थान देखने नहीं हैं; किंतु भगवान् शङ्करके कैलासके सम्बन्धमें यक्षराज कुबेरसे अवश्य पूछ लीजिये। उन भूतनाथके लिए कोई पराया नहीं है। रावण उनका भक्त है। यद्यपि आशा नहीं है कि वह कोई अपहृता वहाँ छिपानेका दुस्साहस करे; किंतु कुछ ऐसा करे तो यक्षराज कुबेरसे अज्ञात नहीं रहेगा। वे दशग्रीवके अग्रज होकर भी उसके मित्र नहीं हैं।'

ताराके पिता सुषेणको सुग्रीवने पश्चिम भेजा। उन्हें भी अनेक सहायक दिये। उनको सौराष्ट्र तक ही नहीं, पश्चिमकी पूरी सीमातक—मेरुसावर्णिके समीप तक 'सम्भवतः इनका आश्रम वर्तमान अफ्रिकाके किसी पश्चिमी तटपर होगा' जाकर उनसे भी सीताका पता पूछना था।

सुग्रीवने जिसको भी भेजा जिस ओर, उसे मार्गके प्रदेशोंका परिचय दिया। जैसे उत्तर भेजते समय शतबलिको काम्बोज, चीन, परमचीन, नीहार (कुहरेसे ढके रहनेवाला प्रदेश) दरद, कालपर्वत (उत्तरी ध्रुव) तक जानेको कहा। मार्गमें स्त्री-राज्यमें वहाँके नृत्य, गायन, सौन्दर्यसे सावधान किया।

'अमुक स्थानके फलोंको भूलकर भी मत खाना।' सुग्रीवने प्रायः सब दलोंको विशेष स्थानोंके सम्बन्धमें सचेत किया—'अमुक स्थानपर एक पत्र भी मत छूना! अमुक स्थानके मधुछत्रक अत्यन्त मादक या विषैले हैं। अमुक पर्वतकी शिलाएँ अस्पृश्य हैं। अमुक शिखर या स्थान किसीके निवास या तपःप्रभावसे अनुल्लङ्घनीय है। अमुक स्थानमें भयानक अजगर, सिंह अथवा क्षुद्र मशक, यूका (जोंक) जैसी बाधाएँ हैं। अमुक स्रोतों, सरोवरोंके

जल पीने योग्य नहीं। अमुक स्थानोंपर अदृश्य तापस रहते हैं। वहाँ मल-मूत्र त्यागसे विपत्तिमें पड़ना पड़ सकता है।' ऐसी सूचनाएँ अत्यन्त आवश्यक थीं। सुग्रीवने सब दलपतियोंको समझा दिया कि अपने यूथके प्रत्येक सदस्यको ये बातें बतला दें।

'जाम्बवान ! अङ्गद ! पवन-पुत्र हनुमान ! अग्नि-पुत्र नील-नल ! सुहोल गव-गवाक्ष! मैन्द द्विविद ! तार!' अन्तमें सुग्रीवने अपने सबसे प्रमुख एवं अत्यन्त विश्वसनीय लोगोंको पुकारा। दशग्रीव वैदेहीको लेकर दक्षिण जाते देखा गया था। उसकी राजधानी लङ्का दक्षिण थी। अतः सर्वश्रेष्ठ दलको दक्षिण भेजना उचित ही था।

'आप सबको दक्षिण जाना है। आप यहाँसे कुछ उत्तर जाकर वहाँसे अन्वेषण प्रारम्भ करें, जहाँसे सीताका अपहरण हुआ। विन्ध्य गिरि-के दक्षिणी भागको देख लेना। गोदावरीका उद्गम देखना और जनस्थान-में अन्वेषणसे पूर्व महर्षि अगस्त्यसे अनुमति लेना।' सुग्रीवने यह कहा तो श्रीरामने उनकी ओर साभिप्राय देखा।

'देव यह ठीक है कि मैंने रावणको गगनमार्गमें सीताको ले जाते देखा है और उन विदेह-नन्दिनीने जो आभूषण गिराये थे उन्हींके थे, यह आपने पहिचान लिये ; किंतु ' सुग्रीवने गम्भीर होकर कहा—' दशग्रीव मायावी है। यह भी तो सम्भव है कि आभूषण छीनकर वह भगवती सीताको जनस्थानमें या कहीं अन्यत्र छिपा आया हो। हमने जिसे उस मायावीको ले जाते देखा, वह माया हो—उस माया नारीको दिखाकर, श्रीमैथिलीके आभरण गिराकर राक्षस आपको तथा हम सबको भ्रममें डालकर भटकाना चाहता हो।'

सुग्रीव इतने बुद्धिमान हैं, यह अनुमान तो लक्ष्मणने भी नहीं किया था। श्रीरामने सानुज प्रशंसा-भरी दृष्टिसे देखा उनकी ओर। वानरेन्द्र होनेकी उचित योग्यता सुग्रीवने प्रकट की। वे दक्षिण जानेवाले दलको समझा रहे थे—' ग्राहोंसे भरी ताम्रपर्णी पारकर तुम्हें जो भारतका दक्षिणी अरण्य-पर्वतीय प्रदेश मिलेगा, वह दशग्रीवका प्रभाव-क्षेत्र है। रावण असाधारण प्रतापी है। अतः बहुत सावधान रहना। समुद्रके मध्य उसकी राजधानी लङ्का त्रिकूट पर्वतके शिखरपर है। उसका एक शृङ्ग रजतका और एक स्वर्णका है, यह मैंने तारासे सुना है। आवश्यक हो तो आगे

वैद्युत गिरि तथा श्वेतकुञ्जर गिरि (दक्षिण ध्रुव) तक जाना है तुम्हें ।'

'जो एक महीनेमें निर्दिष्ट स्थलोंको देखकर नहीं लौट आवेगा, मैं अपने हाथों उसका वध करूँगा !' अन्तमें सुग्रीवने सबको सुना दिया—'जो इस अवधिमें सीताका दर्शन कर आवेगा, उसे वानरोंके मध्य मेरे समान पद प्राप्त होगा। मेरे निर्दिष्ट तथा अनिर्दिष्ट स्थल भी ढूंढ़ना। जैसे सीता मिलें, वह करना।'

'वायुनन्दन ! तुम्हारी गति भूमि, जल, वायु तथा अन्तरिक्षमें भी अनिरुद्ध है। तुम देवलोक तथा पाताल भी जानेमें समर्थ हो। तुम्हारा वेग अपने पिता पवनसे भी तीव्र है। अन्तमें सुग्रीवने हनुमानको समीप बुलाकर कहा—'बल, बुद्धि, पराक्रममें तुम्हारी कोई समता नहीं है। देश—कालानुसार व्यवहारके तुम मर्मज्ञ हो। अतः ऐसा करना कि हम वानरोंका परिश्रम सार्थक हो। सीताको अवश्य ढूंढ़ना है तुम्हें।'

'हनुमान ! इसे सीताको दिखलाकर अपना परिचय देना !' जब सुग्रीवसे आज्ञा लेकर सबसे अन्तमें पवन-पुत्रने श्रीरामके पदोंमें मस्तक रखा तो अपने करसे अपनी नामाङ्कित मुद्रिका उतारकर उन्हें देते हुए श्रीरामने कहा—'तुम्हें सफलता मिलेगी। मुद्रिका देखकर सीता तुमसे अनुद्विग्नमना मिलेंगी। तुम्हारा पथ निर्विघ्न हो।'

हनुमानजीका शरीर पुलकित हो गया। अञ्जलि फैलाकर उन्होंने मुद्रिका ली और मस्तकके केशोंमें (जटामें) रख ली। साश्रुलोचन पुनः श्रीरामके चरणोंपर मस्तक रखा।

'सबको मेरी सूचनाओंका और अवधिका ध्यान रखना चाहिए !' सुग्रीवने एक बार फिर सबको सावधान करके विदा किया।

'मित्र ! तुम्हें पृथ्वीके भूगोलका इतना विशद ज्ञान है ?' श्रीरामने वानरोंके प्रस्थान करते ही सुग्रीवकी ओर मुख किया—'इतना विशद परिचय है तुम्हें सभी दिशाओंके प्रदेशोंका।'

'बालि मुझे मार देनेके लिए मेरे पीछे पड़ गया था।' सुग्रीवने कहा—'प्राण बचानेके लिए पूरी पृथ्वीमें मैं भागता फिरा हूँ। दौड़नेमें

बालिसे पर्याप्त तीव्र गति होनेके कारण मुझे कुछ रुकने देखने विश्राम ले लेनेका भी समय मिल जाता था। इस प्रकार पूरी पृथ्वी मुझे देखनी पड़ी है।'

अब तो सबको प्रतीक्षा ही करनी थी। पूर्व, उत्तर, पश्चिम भेजे गये दलोंके वानर निर्दिष्ट सीमातक जाकर लौट आये। उनमें-से कुछ मुख्य यूथपति दूसरोंको लौटाकर स्वयं दक्षिण जाने वाले दलमें सम्मिलित हो गये। दूसरी दिशाओंमें जाने वाले दलोंको कोई बड़ी बाधा नहीं मिली। इन सभी दलोंको आधेसे अधिक प्रदेशोंमें जनपद मिले जो उन्हें छोड़ देने थे। अतः ये दल अवधिसे पर्याप्त पूर्व लौट आये थे। अब इन्हें भी दक्षिण जाने वाले दलके लौटनेकी प्रतीक्षा करनी थी।

सीतान्वेषण

आरम्भसे ही अरण्यमें अन्वेषण करना था दक्षिण जाने वाले दलको। सबसे वृद्ध एवं सम्मानित होनेके कारण दलका निर्देशन स्वयं जाम्बवन्त करने लगे। वैसे युवराज अङ्गद साथ थे, अतः वे स्वतःसिद्ध दल नायक थे।

पञ्चवटी पहुँचकर इस दलने महर्षि अगस्त्यको प्रणाम किया— 'दक्षिणारण्यके अन्वेषणकी आपसे अनुमति लेने हम सब आये हैं। हम वानरेन्द्र सुग्रीवके चर हैं।'

'यथेच्छ विचरण करो।' अमित तेजा महर्षिने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे दिया—'विश्वास रखो, श्रीरामकी सेवामें लगे प्राणीको सदा सफलता प्राप्त होती है।'

विन्ध्य गिरिका यह दक्षिणी भाग बहुत विकट था, फलहीन कण्टक वृक्ष और उनमें भी अभीसे पतझड़ हो चुका था। सरिताएँ सूखी पड़ी थीं। उनके भीतर पाषाण और रेतके अतिरिक्त कुछ नहीं था।

वर्षाके अन्तमें शरद ऋतु प्रारम्भ होनेपर हनुमानजीके उद्‌बोधनके पश्चात् तो सुग्रीवने बानरोंको बुलानेके लिए चर भेजा था। एक पक्षका विलम्ब सुग्रीवने चर भेजनेमें न किया होता तो श्रीरामको रोष क्यों आता। बानरोंको आनेमें एक पक्ष लग गया। इस प्रकार हेमन्तके प्रथम मास मार्गशीर्षमें वानर सीतान्वेषण करने निकले। उन्हें अन्वेषणकी अवधि एक मासकी वानरेन्द्रने दी थी; किंतु शुष्क भूमिके कण्ठक तरुओंमें तो अभी पतझड़ हो चुका था।

गहन वनमें वैसे ही चलना कठिन और उसमें भी सब गुफाएँ, खड्ड, सघन कुञ्ज देखने थे। सिंह-व्याघ्रोंकी आवास गुफाएँ, रीछोंके निवास, बाँसोंके झुरमुट-सब ढूँढ़े जा रहे थे। कोई किरात, भील, शबर भी नहीं मिला कि उससे कुछ पूछा जाय।

'यहाँ कहीं पहिले कण्डू मुनिका आश्रम था।' जाम्बवन्तजीने बतलाया—'उनके एक मात्र पुत्रको राक्षसने खा लिया। इससे क्रोधमें आकर इस वनको निर्जन हो जानेका शाप देकर मुनि यहाँसे चले गये।'

'यही रावण है!' सहसा वानर चिल्लाये। उस घोर अरण्यमें एक अत्यन्त भयङ्कर राक्षस मिला। पता नहीं किस गुफा या कुञ्जसे निकला और घूसा तानकर सीधे युवराज अङ्गदकी ओर दौड़ा। लेकिन किसीको समीप आनेका अवकाश नहीं मिला। अङ्गदने उसे पकड़कर पटक दिया। उनके एक ही पदाघातसे जब वह तड़पकर शान्त हो गया, सबने कहा—'इतना अल्पप्राण रावण नहीं हो सकता।'

अत्यन्त सघन अरण्य, बहुत विकट पर्वतीय प्रदेश—इस कठिनाईने सबको थका दिया। सब सघन वृक्ष मिला तो एकत्र होकर बैठे तनिक विश्राम करने। जाम्बवन्तने सबको सावधान किया—'वानरेन्द्र सुग्रीव अत्यन्त उग्रदण्ड हैं। हमारे अन्वेषणकी गति बहुत शिथिल है। अतः तन्द्रा, निद्रा त्यागकर सबको पूरी शक्तिसे लगना चाहिये।'

'इस प्रकारके अन्वेषणमें बहुत काल लगेगा।' अब जाम्बवन्तने ही योजना बनायी—'हम सबको बिखर जाना चाहिये।' पूरे पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्र-तटके भागमें बिखरकर लगभग एक पंक्ति बना लें हम सब। हमारे यूथप अपने-अपने दलोंके साथ रहें। कोई वानर कभी एकाकी नहीं चले। कम-से-कम दो सदा साथ रहें। ऐसे दो-दोके दल भी इतनी ही दूर रहें कि सामान्य पुकारपर भी दूसरे दल तक शीघ्र पहुँच सकें।'

'सङ्कटकी सम्भावना होते ही साहस करनेसे पूर्व पुकारकर समीप-के दलोंको सूचना अवश्य दी जानी चाहिये। वे भी सहायताको दौड़नेसे पूर्व समीपस्थोंको पुकार देंगे।' जाम्बवान अनुभवी वृद्ध थे। उन्होंने दल-को बिखेरकर भी ऐसी व्यवस्था की, जिससे किसीपर सङ्कट आते ही पूरा दल क्षणोंमें वहाँ पहुँच सके।

'आहार, जल आदिके लिए भी कोई अकेला नहीं जायगा। अन्त-में आदेश दिया—'जनपदोंमें नहीं जाना है। ऋषि-आश्रम मिले तो केवल यूथपतियोंको वहाँ जाकर पूछना चाहिये। अपरिचित फल, मूल, कन्द कोई मुखमें न डाले।'

'हम सब सूर्यास्तके पश्चात् एकत्र ही विश्राम करेंगे।' रात्रिमें अन्वेषण वनमें अशक्य था—'सूर्योदयसे पूर्व ही प्रातःकालीन प्रकाश प्रारंभ हो तो सबको अन्वेषणमें लग जाना चाहिये।'

जैसे-जैसे यह दल दक्षिण बढ़ता गया, अन्वेषणका क्षेत्र सङ्कीर्ण होता जा रहा था। अतः वानरोंके दो-दोके दल अधिक समीप होते गये।

यह अविराम-अन्वेषणका क्रम अशक्त होता लगने लगा। ऐसा वन जिसमें फल नहीं, कन्द नहीं, खाने योग्य पत्ते और तृण भी नहीं। क्षुधा सहकर प्राणी कुछ दिन रह भी सकता है; किंतु तृषा तो असह्य है। जल जीवका जीवन है। जलके बिना कैसे रहा जा सकता है। उस अरण्यमें जलका नाम नहीं था। वानरोंने कई दिन बिना कुछ खाये काट दिये; किंतु जब जल नहीं मिला, सब जीवनसे ही निराश हो गये। कण्ठ सूखने लगा। तालुमें काँटे उठ आये। सब समीप आ गये। सबकी एक ही समस्या—जल?

दक्षिण भारतमें बहुत व्यापक जलहीन क्षेत्र अब भी है। यदि नहरें न हों, जीवन-शून्य हो जाय वह प्रदेश। अनेक वर्षोंके अवर्षणके कारण सरोवरोंके तले दरारोंसे भरे थे। सरिताओंमें रेत उड़ रही थी। पूर्व और पश्चिम भी अथाह असीम उदधि था; किंतु सागरका जल, तृषा शान्त करेगा? नारिकेलके वृक्ष थे किन्तु फल-रहित।

किसीको कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। वानर व्याकुल यूथपतियोंका मुख देखते थे; किंतु यूथपोंकी स्वयं वही दशा थी। अपने लोगोंकी यह दशा देखकर हनुमानजी एक ऊँचे वृक्ष-पर जा चढ़े और इधर-उधर देखने लगे।

अकालसे सूखे, निष्पत्र वनमें एक पर्वतके समीप हरे वृक्षोंका छोटा-सा झुरमुट दीख पड़ा। हरियाली है तो वहाँ जल भी होना चाहिये। दृष्टि जम गयी उस स्थलपर। सहसा चौंके—'सारस, हंस, क्रौञ्च जलकाक? ये सब तो जलपक्षी हैं! ये उस झुरमुटसे निकलते हैं तो वहाँ जलाशय होना चाहिये।'

'जल है—समीप ही जल है!' हनुमानकी पुकारने बानरोंको प्राणदान दिया। अङ्गद, जाम्बवान, अनेक दूसरोंने उस निर्दिष्ट झुरमुटको क्षोंपर चढ़कर देखा। स्पष्ट हो गया कि वहाँ कोई गुहा है पर्वतमें।

पक्षी उसीमें जाते हैं और उसीमें-से निकलते हैं। ध्यानसे देखो तो भीगे निकलते दीखते हैं। इसका अर्थ है कि उस गुहाके भीतर जलाशय है।

सब वानर उछलते-कूदते उस गुहातक पहुँच गये। वृक्षोंके झुरमुटमें गुफा तो मिल गयी; किंतु पता नहीं कितनी गहरी और अन्धकारसे भरी। सब अत्यन्त प्यासे थे। अधिक सोचने-समझनेका समय नहीं था। हनुमान आगे हुए। एक दूसरेकी पूंछ पकड़ ली उन्होंने और गुफामें चल पड़े। बड़ी लम्बी पंक्ति थी। केवल एक भी कठिनाईसे टटोलते जा सकता था।

भीतर पहुँचकर तो वानरोंको लगा कि वे सशरीर स्वर्ग पहुँच गये हैं। अकल्पनीय सुन्दर बहुत विस्तीर्ण उद्यान था और उसके मध्य स्वच्छ जलसे भरा, कमलोंसे पूर्ण सरोवर था। चारों ओर फलभारसे झुके स्वर्णिम वृक्ष खड़े थे।

वानर बहुत प्यासे थे। अधिकांश सीधे दौड़े और सरोवरका सुस्वादु जल पीने लगे। प्यास शान्त हुई तो परिपक्व फलोंने पेटकी स्मृति करायी। वे वृक्षोंपर चढ़ गये और कूद-कूदकर फल खाने लगे।

हनुमान, जाम्बवान, अङ्गद तथा दूसरे थोड़े-से यूथनायकोंने अपनेको संयत रखा। उन्होंने देखा कि उद्यानमें एक ओर एक मणि-भवन है। भवनसे बाहर पुष्पवाटिकामें कोई तपस्विनी-वेशमें देवी विराजमान हैं। उनका पीतवस्त्र, उनका तेजोमय शरीर ही कहता था कि वे यदि देवता नहीं भी हों तो उपदेवताओंमें किसी उत्कृष्ट वर्गकी होंगी। उन्हें देखकर हनुमानादि उनके समीप गये और नम्रतापूर्वक प्रणाम किया।

'तुम लोग कौन हो? यहाँ कैसे आ गये? इस उद्यानको क्यों नष्ट कर रहे हो?' उस तपस्विनीके स्वरमें रोष तो नहीं था; किंतु खीझ थी। बहुत वर्षोंसे वह इस एकान्तमें तपोलीन थी। अचानक वानरोंने आकर कोलाहलसे उसका एकान्त भंग किया था।

'हम कई दिनोंसे भूखे हैं। प्याससे हमारे प्राण व्याकुल हो रहे थे। जल ढूँढ़ते आपके इस आश्रम आ पहुँचे।' हनुमानजीके स्वरमें भी प्यासकी शिथिलता थी। उन्होंने परिचय देना चाहा—'हम...।'

'तुम लोग पहिले सरोवरमें स्नान करो, जल पिओ।' तपस्विनी सदय होगयी—'यथेच्छ फल खाओ। अपनी क्षुधा-पिपासा शान्त करके मेरे समीप आना, तब परिचय सुनूंगी।'

'देवि ! हम अयोध्याके अधीश्वर श्रीरामके दूत हैं । वनमें उनकी भार्याका राक्षसने हरण कर लिया । उन्हीं श्रीवैदेहीका पता लगाने हमें वानरेन्द्र सुग्रीवने भेजा है ।' जल पीकर, स्नान करके, फल खाकर, पूर्ण परितृप्त होकर हनुमान, जाम्ववान, अङ्गद आदि वानर-यूथप उस तपस्विनीके समीप पहुँचे । अपना परिचय देकर पूछा— 'आप कौन हैं ? यहाँ एकाकिनी क्यों रहती हैं ? भूमिके भीतर यह अनुपम उद्यान कैसे लगा ? यह किसका स्थान है ?'

'दानव विश्वकर्मा मयका नाम तुमने सुना होगा । यह वन उसने अपनी मायासे निर्मित किया है । वह हेमा नामकी अप्सरापर आसक्त होकर यहाँ उसके साथ रहने लगा था ।' उस चीरवल्कल तथा कृष्णमृगचर्म-धारिणी तपस्विनीने बतलाया— 'इन्द्र तो वज्र-प्रहारसे मय तथा हेमाको मार ही देना चाहते थे; किंतु सृष्टिकर्ताने उन्हें मना कर दिया । मय भी हेमाको यह वन देकर रसातल चला गया । मैं मेरु सावर्णीकी पुत्री स्वयम्प्रभा हेमाकी सखी हूँ । मेरी सखी हेमा ब्रह्मलोक जाने लगी तो यह स्थान मुझे दे गयी । यहाँ मैं दीर्घकालसे श्रीरामके दर्शनके लिए तप कर रही हूँ । मेरे वे आराध्य कहाँ हैं ? मैं उनके श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहती हूँ ।'

'हम श्रान्त थे, क्षुधित-तृषित थे । जल-पक्षियोंको देखकर यहाँ आये । तुमने आतिथ्यधर्मका पालन किया । हमारे सब लोगोंको मरनेसे बचा लिया ।' हनुमानजीने नम्रतापूर्वक कहा— 'हम तुम्हारा क्या प्रत्युपकार करें ?'

'मुझे तुम लोगोंसे कुछ नहीं लेना है ।' उसने कहा— 'मैं तो इस स्थानका त्यागकर आराध्यके समीप जा रही हूँ । यहाँका जल, फल तुम लोगोंके काम आ गया, आता रहे तो मुझे प्रसन्नता ही है ।'

'हम सब तुम्हारी शरण हैं ।' हनुमानजीने हाथ जोड़ा— 'सुग्रीवने हमें जो समय दिया था, सीतान्वेषण के लिए, लगता है कि वह समाप्त हो गया । आप यहाँसे निकलनेका मार्ग बतादें तो हम सीताके आन्वेषण-में लगें ।

'निकलनेका मार्ग ?' वह दो क्षण नेत्र बन्द करके मौन हो गयी— 'यह भूगर्भ स्थान दानवोंके द्वारा रक्षित है । यहाँ आकर केवल पक्षी यहाँसे निकल पाते थे । पक्षियोंके प्रवेश-मार्गसे ही तुम लोग यहाँ पहुँच सके । वह मार्ग तो तुम लोगोंके प्रवेशके पश्चात् तत्काल बन्द हो गया । इस मायामय भूगर्भमें समय भी पृथ्वीके सामान्य समयसे भिन्न है । लेकिन

तुम लोग सब नेत्र बन्द कर लो तो मैं संकल्पबलसे तुम्हें यहाँसे बाहर वहाँ समुद्रतटपर पहुँचा दूँगी, जहाँसे तुम सीताका पता पा सको। इस संकल्पसे बने लोकसे बाहर केवल इसके मर्मसे परिचितका संकल्प ही पहुँचा सकता है।'

'सब वानर नेत्र बन्द करके शान्त बैठ जायँ। श्रीहनुमानजीने पुकारा सबको। सबके साथ स्वयं भी नेत्र बन्द करके बैठ गये। कुछ ही क्षणोंमें समुद्रका गर्जन सुनायी देने लगा। तब सबने नेत्र खोले।

बानरोंके साथ ही स्वयम्प्रभा भी उस स्थानसे निकली। वह योगिनी अप्सरा थी। गगन-मार्गसे ऋष्यमूकपर पहुँचकर श्रीरामके चरणोंमें उसने प्रणाम किया। श्रीराम-लक्ष्मणकी प्रदक्षिणा करके स्तुति करने लगी।

'देवि ! तुम क्या चाहती हो ?' श्रीरामने पूछा।

'मैं तो आपके श्रीचरणोंकी किंकरी हूँ। इन पादपद्मोंके दर्शनके लिए दीर्घकालसे तप कर रही थी। आज मेरा जीवन सफल हो गया। उसने माँगा 'अब आप सुप्रसन्न हैं तो वरदान दें कि मेरी जिह्वापर आपका नाम ही रहे। जहाँ, जिस योनिमें भी जन्म हो, आपके भक्तोंका ही संग प्राप्त हो और मेरे मनमें सीता-लक्ष्मणके साथ आप सदा विराजमान रहो। लेकिन इस वनवासी वेशमें नहीं, मुकुटोज्वल मस्तक—राजाधिराजरूपमें।'

'अच्छा देवि !' श्रीरामने स्वीकार करके कहा—'अब शेष जीवन बदरीवनमें व्यतीत करो। मेरा नाम-स्मरण करते समय पर अलकनन्दामें शरीर त्याग करके मेरे नित्य धाममें निवास करोगी।'

वह तो श्रीरामको प्रणाम करके दोनो भाइयोंकी प्रदक्षिणा करके बदरीवन चली गयी। दूसरी ओर वानरोंने जब नेत्र खोला, उनके सम्मुख उत्ताल तरंगोंसे उद्वेलित अनन्त उदधि था।

'क्या—कितना समय व्यतीत होगया हम सबको उस भूगर्भमें?' वानर एक साथ चौंके। समुद्रतटके पर्वतोंपर जो वृक्ष थे, उनमें पुष्ट पत्ते लहरा रहे थे। बसन्तागम से पूर्व आने वाले पुष्पोंसे लदे थे वे वृक्ष। अब स्वयम्प्रभाकी बात स्मरण आयी। उसने कहा था कि उस मायामय भूगर्भमें पृथ्वीसे भिन्न समयकी गति है। पतझड़के समय उस गुफामें गये थे और वृक्षोंमें वसन्तागमके पुष्प खिले थे। इसका अर्थ था कि उस भूगर्भमें बहुत समय बीत गया था।

सम्पाती-संवाद

अरण्य वसन्तागमके पुष्पोंसे परिपूर्ण है, यह देखकर वानर बहुत व्याकुल हुए। सब एक स्थानपर ही निकले थे। वहीं बैठ गये। अङ्गदने कहा—' स्पष्ट है कि हम सबको भूगर्भमें समय बहुत बीत गया। सुग्रीवका दिया समय बीत चुका। अब वे मुझे कदापि क्षमा नहीं करेंगे।'

' सुग्रीवने मुझे युवराज प्रसन्नतापूर्वक नहीं बनाया। श्रीरामके आदेशसे उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा था।' दुःखमें व्यक्तिके मनमें असंगत आशंकाएँ जागती ही हैं। अङ्गद कहने लगे—' मैं उनके शत्रु बालिका पुत्र हूँ। मुझे तो वे तभी मार देते; किंतु अब किसी प्रकार नहीं छोड़ेंगे। लौटकर उनके हाथों मरनेसे यहीं प्राण त्याग देना मैं अच्छा मानता हूँ।'

'अब किष्किन्धा लौटनेसे तो सभीको मरना पड़ेगा।' वानरोंमें बहुतोंने कहा—' युवराज ! आप दुःखी मत हों। हम जिस भूगर्भसे अभी निकले, वह पर्याप्त बड़ी है। उसमें जल और फल भरपूर हैं। वह तपस्विनी गुफा त्यागकर चली गयी। आपके साथ हम सब उस गुफामें आजीवन रहकर आपकी सेवा करेंगे ! गुफा तो देवपुरीके समान सुन्दर, सुखद है।'

' युवराज ! यह दुर्विचार है कि सुग्रीव तुमसे स्नेह नहीं करते।' हनुमानजीने अङ्गदको हृदयसे लगाकर समझाया—' तारासे सुग्रीवकी प्रीति है। वे ताराको अप्रसन्न नहीं करना चाहेंगे और न श्रीरामको या मुझे अप्रसन्न करना चाहेंगे। श्रीरामका तुमपर बहुत स्नेह है। तुम जानते हो कि तुमपर मेरी प्रीति है।'

' पहिले तो इस मायामय गुफामें प्रवेशका अब मार्ग ही नहीं है, यदि मार्ग किसी प्रकार मिल भी जाय तो क्या समझते हो कि श्रीरामके बाणोंके लिए वह अभेद्य है ?' चारों बल (बाहुबल, मनोबल, बुद्धिबल, निश्चयबल) तथा दृढ़ता, उर्जस्विता, शौर्य, कृतज्ञता, गाम्भीर्यादि चतुर्दश गुणोंसे सम्पन्न, पवनकुमार सामसे समझाकर दण्ड, भय दिखाते बोले—

'श्रीरामके बाण पातालमें जानेपर भी किसीको नहीं छोड़ेंगे। अतः उन समर्थकी सेवा त्यागकर छिप रहनेकी बात सोचना ही अज्ञता होगी।'

'ये वानर भले अभी कुछ कहें; किंतु अपने पुत्र-स्त्री भवनको छोड़कर ये तुम्हारा साथ नहीं देंगे। तुम वानरोंके पालनमें समर्थ बालिपुत्र हो; परंतु ये बहुत शीघ्र तुम्हें छोड़कर चले जायँगे।' हनुमानने भेद-नीति अपनायी— 'ये रीछपति जाम्बवान, नील और मैं हम तीनों श्रीरामसे पृथक नहीं रह सकते। तुम समझते हो कि हममें किसीको भी तुम लोभ देकर या भय दिखाकर श्रीरामकी सेवाके कर्तव्यसे च्युत नहीं कर सकते हो।'

'वानर तो चपल बुद्धि हैं; किंतु समझो, इन्द्र जिस भूगर्भका भेदन कर सकते थे, वह केवल तबतक सुरक्षित है, जबतक लक्ष्मण क्रोधमें आकर धनुष नहीं चढ़ा लेते।' हनुमानने स्नेहपूर्वक कहा— 'भय त्याग दो। तुम ताराके एकमात्र पुत्र हो। सुग्रीव ताराको अप्रसन्न नहीं करेंगे।'

'हनुमानजी! आप ठीक कहते हैं कि गुफामें जानेका मार्ग नहीं है और हो भी तो वह लक्ष्मणके बाणोंसे अभेद्य नहीं है। ये वानर भी अधिक दिनों तक मेरा साथ नहीं देंगे। मैं आपको, जाम्बवन्तजीको, नीलको या किसीको श्रीरामकी सेवासे पृथक नहीं करना चाहता।' अङ्गदने लगभग रुदन-भरे कण्ठसे कहा— 'लेकिन मैं सुग्रीवपर विश्वास नहीं कर सकता। उनमें चपलता है, क्रूरता है। उन्हें भागते रहना पड़ा है मेरे पिताके भयसे। मेरे पिताने उनसे अन्याय किया था। अब वे मुझसे प्रतिशोध लेनेका अवसर पा गये हैं।'

'आप जाकर सुग्रीवसे तथा रुमासे भी मेरा प्रणाम कह देना। मेरी माता ताराको समझाना, जिससे मेरी मृत्यु सुनकर वह मर न जाय।' अङ्गदने दृढ़ स्वरमें कहा— 'मैं न वानरोंको साथ लेकर गुफामें बसने जाऊँगा और न किष्किन्धा लौटकर सुग्रीवके द्वारा मारे जानेका मुझमें उत्साह है। मैं यहाँ प्रायोपवेश करके प्राणत्यागका निश्चय कर चुका हूँ।'

'हमारा सौभाग्य है कि हम परात्पर पुरुष श्रीरामकी सेवामें लगे हैं।' हनुमानजीने समझानेका पुनः प्रयास किया।

'वह सेवा भी हमसे कहाँ हुई? दक्षिण समुद्रतटतक तो हमने देख लिया, सीताका पता कहाँ मिला हमें?' अङ्गदने स्वयं आसपाससे कुश उखाड़, उन्हें पूर्वाग्र बिछाकर बैठ गये— 'उन समर्थ स्वामीकी सेवाके

अयोग्य इस शरीरको अङ्गद नहीं रखेगा। अनशन करके इसे यहीं, इसी आसनपर मैं त्याग दूँगा।'

'हम सब यहीं अनशन करके देह त्याग करेंगे!' वानरोंने रोते-रोते कहा और सब कुश बिछाकर आचमन करके बैठ गये। अङ्गदके वचनोंने हनुमानके भी हृदयको स्पर्श किया था। वे भी मौन हो गये। उन्होंने भी कुश उखाड़ा, पूर्वाग्र बिछाया, आचमन किया और बैठ गये। सचमुच सीताका पता कहाँ मिला? तब श्रीरामकी सेवामें असमर्थ शरीर-को रखनेका प्रयोजन?

'अहा! इतने अधिक वानर हैं।' समीपके पर्वतकी भयानक कन्दरासे एक काला, झुलसे शरीरका, देखनेमें अत्यन्त भयङ्कर गीध निकल-कर उस गुफाके द्वारपर खड़ा हो गया। वह अपना कुरूप सिर इधर-उधर घुमाकर देख रहा था। इतने अधिक वानरोंका रुदन तथा अनशन करके देह त्यागका निश्चय गुफामें-से ही सुनकर वह निकला था। कर्कश स्वरमें मानो चीखता प्रसन्नता प्रकट कर रहा था—'विश्वका विधायक भी विचित्र दयालु है। कितने दीर्घकालसे मैं क्षुधा-पीड़ित हूँ। अब इतने असंख्य वानर उसने एक साथ मेरे आहारके लिए भेज दिये। ये उपवास करके जैसे-जैसे मरते जायँगे, मैं इन्हें खाता जाऊँगा। अब थोड़े दिनों ही प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। फिर तो बहुत दिनों तकके लिए भोजनकी व्यवस्था हो गयी।'

'ये उपवास करके अधमरे, असमर्थ होंगे तभी मैं आहार आरम्भ कर सकता हूँ।' मेघगर्जनके समान भयानक शब्द था उसका—'हम गीध मरे और मरणासन्नमें भेद करें, ऐसी तो कोई मर्यादा मानते नहीं।'

'हाय! हमें गीध नोच-नोच कर खायेगा!' वानरोंमें भय, मनो-वेदनाके कारण क्रन्दनध्वनि उठी—'एक गीध ही तो था जटायु, जिसने श्रीरामके लिए प्राण दे दिये। एक गीध यह है कि हम राम-कार्यमें लगे लोगोंके मरनेकी प्रतीक्षा कर रहा है।'

'जटायु धन्य था! उसने श्रीराम-आर्यकी रक्षाके लिए शरीर त्यागा।' अङ्गद बोले—'हम भी रामके लिए ही शरीर त्यागने बैठे हैं; किंतु जटायु-जैसा सौभाग्य हमारा कहाँ। जटायुका श्रीरामके अङ्कमें शरीर-त्यागका अकल्पनीय अवसर मिला। रावणने जटायुको मार भले दिया; किंतु उन महभागको परमगति प्राप्त हुई।'

'तुम लोग बार-बार मेरे भाई जटायुका नाम क्यों ले रहे हो ?' सम्पातीने अब वानरोंको पुकारा— 'मैंने दीर्घकालके अनन्तर भाईका नाम सुना है। मेरे भाईका क्या हुआ, जाननेको बहुत उत्सुक हूँ। मुझे यहाँसे उतार लो। मैं तुम लोगोंकी कोई हानि नहीं करूँगा। स्वयं मैं इतने ऊँचेसे उतरनेमें असमर्थ हूँ।'

'उसे वहीं रहने दो। वह उतरकर हमें जीवित ही भक्षण करना चाहता है।' वानरोंने भयभीत होकर कहा।

'हम तो मरने ही बैठे हैं। वह भक्षण भी करेगा तो दीर्घकालके उपवासके कष्टसे बचेंगे ही।' अङ्गद उठ खड़े हुए— 'वह अपनेको जटायुका भाई कहता है। उसके पंख हैं ही नहीं, जैसे जल गये हों। हमसे एक पंख-हीन पक्षी सहायता चाहता है तो मरते-मरते इतना पुण्य हम क्यों परित्याग करें।'

अङ्गदने जाकर सम्पातीको उठाया और नीचे ला रखा। उसने पूछा— 'तुम लोग जटायुको कैसे जानते हो ? वह मेरा अनुज है। उसका क्या हुआ ?'

'आप अपने अनुजसे दूर क्यों रहे ? किसने आपके पंख जलाये ?' अङ्गदने जटायुका बड़ा भाई जानकर सम्मानपूर्वक सम्पातीको श्रीराम-का वनवास, पञ्चवटीमें रावण द्वारा सीताहरण, जटायुका रावणको रोकना, रावणका जटायुके पंख-पद काटना तथा श्रीरामके द्वारा जटायुकी अन्त्येष्टि-कथा सुनाकर पूछा।

'हम दोनों सगे भाई थे। बचपनमें भगवान भास्करके सारथि अरुणदेवके दर्शनके उत्साहमें ऊपर उड़े ; क्योंकि अरुणजी हमारे पिता हैं।' सम्पातीने कहा— 'जटायु सूर्यका ताप सहन करनेमें असमर्थ हो गया तो मैंने उसे अपनी छायामें ले लिया। वह कब नीचे लौट गया, मुझे पता नहीं लगा। मैं अपने गर्वमें ऊपर उठता गया। अन्तमें उग्रतेजा मार्तण्डकी किरण-ज्वालासे मेरे पंख भस्म हो गये। मैं यहाँ सागर-तटपर गिरा और मूर्छित हो गया। उस समय एक चन्द्रमा नामके परम दयालु तपस्वी मुनि यहाँ रहते थे। उन परमोदारने मुझ अमङ्गल, मरणासन्न पक्षीपर कृपाकी। जल डालकर मुझे सचेत किया। मुझे उठाकर पर्वतकी उस गुफामें रख गये। उन्होंने ही कहा था— 'त्रेतामें श्रीरामके दूत आवेंगे, तब उनके स्पर्शसे तुम्हारे पंख फिर उग आवेंगे।'

'वह काल था जब पुरन्दरने वृत्रको मारा ही था। तबसे मैं पंख-हीन उस गुफामें पड़ा था। मेरे अनुज जटायुका क्या हुआ, यह जाननेका कोई उपाय नहीं था मेरे पास।' सम्पातीने शोकपूर्ण स्वरमें कहा— 'आज तुम लोगोंसे सुना, वह अनुज होकर भी पहिले परमपद पा गया। अब तुम मुझे समुद्र-तटपर रख दो तो मैं भाईको जल दे लूँ। इसके अनन्तर सीताके सम्बन्धमें जो जानता हूँ, तुमको बताकर कुछ सेवा करूँगा। बहुत वृद्ध हो गया हूँ, कोई पराक्रम करने योग्य नहीं रहा, अन्यथा रावणको मैं ही मार देता। अब तो वाणीसे ही सहायता कर सकता हूँ।'

अङ्गद सम्पातीको उठाकर समुद्रतटपर ले गये। उसे करोंमें सम्हाले रहे, जिससे समुद्रकी लहरें उठाकर भूमिपर उस पंखहीनको फेंक न दें। लगभग कटिपर्यन्त जलमें अङ्गदने जब सम्पातीको जलके समीप किया, जटायुका नाम लेकर आपने पंखहीन डैनोंसे पक्षीने जल उछाला। भाईका तर्पण वह ऐसे ही कर सकता था। सम्पातीके कहनेपर अङ्गद उसे ऊपर वानरोंके समीप ले आये।

'महाकारुणिकमुनि चन्द्रमाकी वाणी सफल हुई।' सम्पाती प्रसन्न होकर बोला—श्रीरामके दूतोंका यह स्पर्श-प्रभाव—आप सब देख ही रहे हैं कि पंख झुलसनेसे कालिमायुक्त मांसके लोथड़े जैसा दीखता मेरा शरीर अब रोमोंसे ढकने लगा है। मेरे पंख किस गतिसे उगते-बढ़ते जा रहे हैं।'

'मैं पंखहीन जब इस गुफामें पड़ा था, मेरा पुत्र सुपार्श्व मुझे सदा भोजन लाकर देता था। तुम सब जानते होंगे कि गन्धर्व सदा कामी होते हैं, सर्प क्रोधी होते हैं, मृग भीरु होते हैं, ऐसे ही गीध सदा भूखे होते हैं।' सम्पातीने अपनी कथा सुनायी— 'मैं दुःखी था। एक दिन पुत्र बहुत देर-से बिना कुछ लिए आया तो मैंने उसे बहुत डाँटा। वह अपने रिक्त लौटने-का कारण बतलाकर मुझसे रूठकर चला गया। तबसे फिर मेरे पास नहीं आया। वस्तुतः मैंने ही उसे त्याग दिया उस दिन।'

मेरे पुत्र सुपार्श्वने कहा था— 'दशग्रीव एक परम सुन्दरीको हरण करके लिए जा रहा था। वे क्रन्दन कर रही थीं'। मैं झपटा तो रावणने हाथ जोड़ लिये। हम गीध जीवित राक्षस खाते नहीं, अतः मैंने उसे छोड़ दिया। 'राम राम' कह कर रुदन करती उस परम सुन्दरीको वह लङ्का ले गया। मुझे इस झमेलेमें कोई आहार नहीं मिला।'

'चला जा यहाँ से । मुझे फिर मुख मत दिखलाना' मैंने पुत्रको कह दिया 'एक आर्त नारीकी रक्षा समर्थ होकर भी तूने नहीं की , अत: मैं तेरा त्याग करता हूँ । तू मेरा पुत्र नहीं है ।'

'मेरे पंख आ रहे हैं । मैं उड़ने योग्य होता जा रहा हूँ । किंतु इतना वृद्ध हो गया हूँ कि रावण तथा उसके राक्षसोंसे युद्ध करके सीताको ले आनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । सम्पातीने बतलाया— 'गीधकी दृष्टि बहुत दूरकी वस्तु देख लेती है । सौभाग्यवश सीता यहाँसे ऐसे स्थानपर हैं कि मेरी दृष्टि-पथ में कोई पर्वत , पेड़ , भवन बाधक नहीं है । मैं उनको देख रहा हूँ ।'

'आप श्रीवैदेही को देख रहे हैं ?' उत्साहमें आकर अङ्गद बोले —वे कहाँ हैं ? कितनी दूर हैं ? क्या कर रही हैं ?'

'यहाँसे सौ योजन दूर समुद्रके मध्य त्रिकूट पर्वतके मध्य शिखरपर विश्रवाके पुत्र रावणकी स्वर्णपुरी लङ्का है । वह राक्षसोंसे भरी है । उस स्वर्णपुरीके मध्य रावणके राजभवनसे लगे उद्यानमें राक्षसियोंसे घिरी, पीतवस्त्रधारिणी सीता अधोमुखी बैठी रुदन कर रही हैं ।'

'मैं यहाँसे सीताको स्पष्ट देख रहा हूँ ।' सम्पातीने कहा— 'गौरैया जैसे छोटे पक्षी भी मनुष्यसे अधिक दूरकी वस्तु देख लेते हैं । उनसे अधिक दूरदृष्टि कपोत जैसे फलभक्षी पक्षियोंकी, उनसे सतेज चील, क्रौञ्च और बाजकी और उनसे भी दूरतक देखनेकी शक्ति गीधकी दृष्टिमें है । गीधसे अधिक हंस देख सकते हैं । मैं गीध होकर भी अरुण-पुत्र हूं । मुझसे अधिक केवल गरुड़ देख सकते हैं । मैं जानकीको समीप बैठीके समान देख रहा हूँ । उनके कपोलोंपर अखण्ड अश्रुधारा चल रही है । वे शोक-कृशा हैं । राक्षसियाँ उन्हें डरा-धमका रहीं हैं ।'

'मैं ही सीताको देख सकता हूँ, ऐसा नहीं है । तुममें-से कोई भी उनके दर्शन कर सकता है , जो इस सौ योजन समुद्रको कूद जा सके ।' सम्पातीने उत्साह दिलाया — 'तुम अवश्य उसपार जाओ और दुष्ट दशग्रीवसे मेरे भाई जटायुका प्रतिशोध लो । तुम तो सर्वसमर्थ श्रीरामके दूत हो । तुम्हारे स्पर्शसे देखते ही हो कि मेरे जले पंख इतने ही क्षणोंमें उगकर इतने बढ़ गये कि मैं उड़ सकता हूँ ।'

'आश्चर्य है कि तुम लोग हताश होकर अनशन करने बैठे थे। यह अवसाद तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम लोग उठो, उद्योग करो। अवश्य सफलता तुम्हें प्राप्त होगी।' सम्पातीने अब अपने पंख फैलाकर फड़-फड़ाये— 'मुझे अनुमति दो। मैं बहुत दिनोंसे भूखा हूँ। अब कहीं जाकर आहारका अन्वेषण करूँ। वैसे भी तुम सब जानते हो कि किसी उद्योगके समय गीधकी उपस्थिति और उसकी छाया अशुभ-सूचक है। अतः मुझे तुम्हारे उद्योग-प्रारम्भसे पूर्व ही दूर चले जाना चाहिये।'

सम्पातीने पंख पूरे फैलाये, उन्हें वेगपूर्वक हिलाया और आकाशमें मण्डल बनाता ऊपर उठा। सभी बानर मुख ऊपर उठाये तबतक देखते रहे, जबतक सम्पाती उनकी दृष्टिसे ओझल नहीं हो गया।

जाम्बवानकी प्रेरणा

अनन्त उत्ताल तरङ्गायित महोदधि मकर, तिमिङ्गलादिसे परिपूर्ण सम्मुख देखकर वानरोंका साहस समाप्त हो गया था। इस सागरके ऊपर जो सौ योजन कूद सके वह श्रीजनक-नन्दिनीके चरण-दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करे।

'मैं केवल दस योजन कूद सकता हूँ।' सम्पाती जब गगनमें अदृश्य हो गया, वानर यूथपतियोंने परस्पर एक दूसरेकी ओर देखा। उनमें-से प्रमुखोंने अपनी शक्ति स्पष्ट करना प्रारम्भ किया—'मैं बीस योजन, मैं तीस, मैं चालीस, मैं पचास, मैं साठ, मैं सत्तर।'

'मैं अस्सी योजन तक कूद सकता हूँ।' अन्तमें ताराके पिता सुषेणने कहा।

'जब भगवान्ने वामनावतार लिया था, तब मैं युवा था। बलिसे तीन पद भूमि-दान लेकर जब वे विराट बने और एक पदसे पूरी पृथ्वी तथा दूसरेसे द्युलोक उन्होंने नाप लिया, तब मैंने उन विश्वकामकी सात प्रदक्षिणा दौड़ते हुए की थी।' रीछराज जाम्बवन्त शिथिल स्वरमें बोले—'किंतु अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ। शरीरकी शक्ति प्रायः समाप्त हो गयी है। इतने पर भी मैं अभी नव्वे योजनकी छलाँग लगा सकता हूँ।'

सबके नेत्रोंमें प्रशंसाके भाव आये। सृष्टिकर्ताके मानस पुत्र रीछराज वृद्ध होनेपर भी सब यूथपतियोंसे अधिक सशक्त थे। लेकिन इससे तो इस समय सफलता सम्भव नहीं थी।

'जहाँ तक समुद्र कूद जानेका प्रश्न है, मैं सौ योजन समुद्र कूदकर लङ्का पहुँच सकता हूँ।' युवराज अङ्गदके स्वरमें भी उत्साह नहीं था—'लेकिन केवल वहाँ पहुँचना ही नहीं है। श्रीवैदेहीको देखकर लौटना भी है। उनके समीप जानेके प्रयत्नमें रावणके अनुचरों तथा रावणसे संघर्षकी भी सम्भावना है। यह सब करके मैं सकुशल लौट सकूँगा, इतनी शक्ति मुझमें है इसमें मुझे सन्देह है।'

'अप्रमेय पराक्रम वानरेन्द्र बालिके पुत्रकी असीम शक्तिमें हमें सन्देह नहीं है। निश्चय तुम सब कार्य करके लौटनेमें समर्थ हो !' जाम्बवानने अङ्गदके कन्धे पर कर रखा— 'किन्तु युवराज ! तुम हम सबके अग्रणी हो। हम अपने नायकको दूत बनाकर नहीं भेज सकते।'

'दूसरा कोई समुद्र पार जानेमें समर्थ नहीं है और मुझे आप जाने नहीं दे सकते। अङ्गदके स्वरमें झुँझलाहट आयी— 'इसका अर्थ है कि वही आमरण अनशन ही एकमात्र मार्ग हमारे लिए शेष है। जब मृत्युका पथ ही चुनना है, आप अङ्गदको उद्योग-कर लेनेकी अनुमति क्यों नहीं देते !'

'वानरलोकैक महावीर, सर्वशास्त्र-विशारद ! अप्रमेय पराक्रम पवनपुत्र ! तुम क्यों चुप बैठे हो ?' जाम्बवानने अङ्गदकी बातका उत्तर देना अनावश्यक माना। एक ओर चुपचाप बैठे हनुमानकी ओर मुख किया उन्होंने—' उत्पन्न होते ही जो सूर्य तक छलाँग लेकर पहुँच गया, उसके लिए सौ योजन समुद्र कूद जाना कोई समस्या है ? सृष्टिमें ऐसा भी कोई कार्य है, जो तुम्हारे लिए भी अशक्य अथवा श्रमसाध्य हो ?'

'इस सागरपर गरुड़ बार-बार आते जाते हैं। तेज, बल, वेगमें तो गरुड़ तुम्हारी समता करनेमें समर्थ नहीं हैं। तुम अपना वेग, पराक्रम विस्मृत किये बैठे हो ?' जाम्बवन्तने हनुमानको उद्बोधित किया— 'तुम पवनके पुत्र हो। वायुदेवने तुम्हारी माताको वरदान दिया है कि उनका पुत्र गतिमें, प्लवनमें, पराक्रममें उनके समान होगा। तुम कौन हो, यह क्यों विस्मृत हुए बैठे हो ? शम्भु-शुक्र-सम्भव शिवांशके लिए राक्षसोंसे कोई शङ्का सम्भव है ? तुम तो प्रकट ही हुए हो श्रीरामका कार्य करनेके लिए, अतः उठो ! अपने पराक्रमको प्रकट करो !'

ऋषियोंके द्वारा शैशवमें मिले *शापके प्रभावसे अपनी शक्तिको विस्मृत किये शान्त सिर झुकाये बैठे हनुमानको रीछराजके वचनोंने अपनी शक्तिका स्मरण दिला दिया। वे झटकेसे उठ खड़े हुए।

'तुम्हारा प्राकट्य ही श्रीरामके कार्यके लिए हुआ है।' यह सुनते ही उठकर खड़े होकर हनुमानने सिंह-गर्जन किया। जैसे भगवान वामन

---

* 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' में हनुमानजीका पूरा चरित गया है। यह शाप कथा, जन्मादि वहीं देखना चाहिये।

सबके देखते-देखते विराट् बन गये थे, हनुमानका शरीर बढ़ा और सुमेरुके समान विशाल हो गया। वे अरुणमुख, तेजोदीप्त काञ्चनगिरिके समान प्रचण्ड हो उठे। उन्होंने लांगूल ऊपर उठाकर हिलायी तो लगा कि सूर्य-मण्डल अस्त-व्यस्त हो जायगा।

'श्रीपवनपुत्रकी जय! अमित-विक्रम हनुमानकी जय!' वानर प्रसन्न होकर कूदने और जयनाद करने लगे। आदि-सतयुगके महाकाय जाम्बवान भी हनुमानकी केवल कटि-पर्यन्त रह गये। दूसरे वानर तो अत्यन्त क्षुद्राकार लगने लगे।

'मेरे पिता वायु अग्निके मित्र हैं। मैं वेगमें पिताके समान हूँ। इस सौर जगतको मैं एक छलाँगमें पार कर सकता हूँ। पूरे समुद्रको कूदकर, बिना पृथ्वीपर पद रखे पुन: लौट आ सकता हूँ। सूर्योदयसे सूर्यास्त तक गरुड़का अथवा सूर्यका पीछा कर सकता हूँ।' हनुमानने हाथ जोड़कर जाम्बवानको प्रणाम करके नम्रतापूर्वक कहा; किंतु उनका स्वर प्रलय मेघके समान गूँज रहा था—'रीछराज! आप आदेश दें, मुझे करना क्या है?'

'आप सब लङ्का चलना चाहें तो मैं इस सागरको पीकर सुखा दे सकता हूँ। पर्वतोंको उखाड़कर इसे पाट दे सकता हूँ। इन्द्रका वज्र छीन ला सकता हूँ अथवा उसके बिना भी केवल घूँसेसे रावणको मार दे सकता हूँ।' हनुमान आवेशमें आ गये—'लङ्काको उखाड़कर यहाँ ले आऊँ या समुद्रमें डुबा दूं? रावणको गर्दन पकड़कर लाकर आपके पदोंमें पटक दूँ या श्रीरामके समीप ले चलना है? श्रीसीताजीको उठा लाऊँ और श्रीरामके समीप पहुँचा दूँ? आप बिना हिचके आदेश दें कि मुझे क्या करना है?'

'अमित-विक्रम आञ्जनेय! तुम सब कुछ करनेमें समर्थ हो। भगवान प्रलयङ्करके अंशके लिए असम्भव कुछ नहीं है। तुमने हम सबका शोक दूर कर दिया; किंतु सेवककी एक सीमा होती है। हम सब श्रीरामके सेवक हैं। हम सबको साथ लेकर हमारे स्वामी आवें और लङ्का-को रौंदकर, दशग्रीवका दर्पदलन करके सीताको स्वयं प्राप्त करें, इसमें उनकी शोभा—उनका सुयश है।' जाम्बवानने शान्त स्वरमें कहा—'रावणको मारने, पराजित करनेका यश हमें नहीं लेना है। स्वामीके सुयशको सीमित नहीं, उज्ज्वल करना है हमें।'

'हम सब तुम्हारी मङ्गल कामना करते हैं। हम यहीं तुम्हारे लौटनेकी प्रतीक्षा करेंगे।' जाम्बवन्तने अन्तमें कहा— 'तुम केवल इतना करो कि यह सौ योजनका समुद्र कूदकर लङ्का चले जाओ। वहाँ सीताका दर्शन करके लौट आओ। अवश्य ही इस कार्यमें यदि कोई तुमपर आघात करता है, तुम्हें लौटनेसे रोकना चाहता है, तुमपर कोई भी सङ्कट आता है तो उसका प्रतिकार अपनी शक्ति एवं बुद्धिके अनुसार करनेमें तुम स्वतन्त्र हो।'

'यदि मैं यहींसे छलाँग लगाता हूँ तो पृथ्वी मेरा वेग धारण नहीं कर सकेगी।' हनुमानके लिए एक समस्या उपस्थित हुई। कूदनेके लिए सुदृढ़ आधार-भूमि चाहिये। वे जिस शिखरपर खड़े होकर तनिक चरण दबाते थे, वही टूटने-धसकने लगता था। अन्तमें वे महेन्द्राचलके शिखरपर जाकर खड़े हुए।

गणेश, सूर्य, इन्द्र, वायु, ब्रह्माको स्मरण करके, श्रीरामको मन-ही-मन प्रणाम करके पूर्वाभिमुख खड़े वायुनन्दन दक्षिणमुख हुए। उन्होंने घुटने सिकोड़े, गर्दन सिकोड़ी, सिर तनिक पीछे किया। दोनों हाथ आकाशकी ओर उठाये।

कूदनेके उपक्रममें ही पर्वत धसकने-फटने लगा। शिलाएँ टूट-टूटकर गिरने लगीं। जहाँ-तहाँसे निर्भर फूट पड़े। पर्वतके प्राणी चीत्कार करते भागने लगे। पक्षी आकाशमें उड़कर मण्डल लेने लगे।

हनुमानका रोम-रोम उत्थित था। इससे उनका शरीर बहुत मोटा-भयानक दीखता था। उनकी तेजसे प्रज्वलित पूँछ आकाशमें लहरा रही थी। उन्होंने एक बार आकाशकी ओर देखा। वानरोंसे बोले— 'मैं श्रीरामके बाणके समान वेगसे समुद्र पार जाऊँगा। सीता न मिलीं तो रावणको बाँधकर ले आऊँगा। मैं सफल होकर ही लौटूंगा।'

हनुमानने कान सिकोड़े, श्वासका वेग रोका और कूदते गर्जनाकी— 'जय श्रीराम!'

'श्रीपवन-नन्दनकी जय!' वानरोंके साथ गगनसे देवता भी पुकार उठे। वेगके कारण वृक्ष उखड़कर साथ दूर तक उड़ते चले गये।

आकाशमें मानों इन्द्र-धनुष प्रकट हुआ। समुद्रमें उत्ताल तरङ्ग उठने लगीं। उदधिका अन्तराल मथ उठा। गगनमें मेघ उस प्रचण्ड वेगसे उत्पन्न आँधीसे उड़ गये। दूरतक समुद्र उखड़े वृक्षों, टूटी शाखाओं, पत्रों-पुष्पोंसे भर उठा।

'शुभस्ते पन्थानः सन्तु' आकाशमें दिव्य ऋषिगणोंका आशीर्वाद गूँजा। गन्धर्व हनुमानका स्तवन, गुणगान करने लगे। विशाल ज्वाल-मालाके समान तेजकी रेखा बनाते श्रीमारुति समुद्रके ऊपर उड़ चले।

मार्गके विघ्न

आध्यात्मिक अर्थमें भी ये साधनमार्गके विघ्न समझने ही योग्य हैं; क्योंकि—'मोह दसमौलि'—अज्ञानके दशमुखने दुस्तर भवसागरके मध्य सत्त्व, रज, तमगुणके सुदृढ़ त्रिकूट शिखरपर अपनी लङ्का बसायी है और वहाँ शान्तिरूपिणी सीताको उसने बन्दी बना रखा है। विक्षिप्त, दुःखी भटक रहा है जीवात्मा उस शान्तिके अपहृत हो जानेसे। सीताका समाचार सामान्य वानर नहीं ला सकते। साधारण साधनोंके द्वारा भवसागर पार नहीं होता। 'प्रबल वैराग्य दारुण प्रभञ्जन-तनय' ही इसे कर सकते हैं और वे भी अपर्याप्त हैं, यदि राम-नामकी मुद्रिका उनके पास न हो।

'भवसागर अति अपार' को पार करने प्रबल-वैराग्य पवनपुत्र चले तो पहिला विघ्न मैनाक—भोगोंका प्रलोभन। माया कहती है—'अब तुम्हें उपार्जनका श्रम नहीं करना। विश्राम करो, भोगो।'

दूसरा विघ्न सुरसा—सिद्धियाँ। पहिलेकी उपेक्षा कर दी जा सकती है; किंतु सुरसा लोकमाता है। इसे मारा नहीं जा सकता और इसके पेटमें भी नहीं जाना। बुद्धिपूर्वक बचना पड़ता है इससे। बचना पड़ता है—स्वीकार किये बिना छूकर निकल जाना पड़ता है।

तीसरा विघ्न सिंहिका—इस सागरमें—भवसागरमें ही छिपी छाया-ग्राहिणी राक्षसी यशेच्छा। यह लोकैषणा छाया ही पकड़ती है और खींचकर खा लेती है। जीवन ही नष्ट कर देती है। इसे मार ही देना है। इसका पूरा विनाश-परित्याग।

अन्तिम चौथा विघ्न लङ्किनी—यह भी देवता है। इसे भी मार नहीं सकते; किंतु एक प्रहार अत्यावश्यक है इसपर। यह है देहासक्ति—'शरीर रखनेके लिए तो यह आवश्यक ही है।' साधक इस प्रलोभनमें पड़ा और गया। शरीर रहे या जाय—एक कड़ा घूँसा और तब यह द्वार छोड़ देगी—'लङ्कामें तुम्हारे मनमें आवे सो करो।'

शान्ति-सीताके दर्शनसे पूर्व वैराग्यको छिपे रहना है। साधकको अपनेको छिपाये रखना है। उन पराशक्तिके पादपद्मोंका दर्शन मिल जाय, फिर तो अशोकवनके फल खाओ और लङ्कामें आग लगा दो। रावणकी लङ्का प्रभञ्जनपुत्र फूंक ही देंगे।

× × ×

'इक्ष्वाकुवंशीय सगरके पुत्रोंने भूमि खोदकर मेरा विस्तार किया। मेरी श्रीवृद्धि की।' हनुमानजीको अपने ऊपरसे जाते देख समुद्रके देवताने अपने भीतर छिपे मैनाक पर्वतसे कहा—'इक्ष्वाकु वंशके परम गौरव श्रीरामके दूत हनुमान हमारे ऊपर जा रहे हैं। इनके पिता पवनने तुम्हारी सहायता न की होती तो शक्र तुम्हें भी दूसरे पर्वतोंके समान पक्षहीन बना देते। अतः मुझे और तुम्हें भी इन पवनपुत्रका सत्कार करना चाहिये।'

'तुम जलसे ऊपर उठो। अपने शिखरपर मानव-रूप धारण करके पुकारो इन्हें।' समुद्रने कहा—'यह वानर अतिथि हमारा पूज्य है। यह शिखरपर विश्राम करके आगे बढ़े।'

तप्त जाम्बूनदके समान मैनाकका शिखर ऊपर उठने लगा। नील जलधिसे ऊपर उठते उस रत्नमण्डित स्वर्ण-शिखरको महावीर हनुमानने देखा। मनमें आया—'यह मेरा मार्ग रोकनेको सागरमें-से उठ रहा है। विघ्न है।'

'पवनकुमार! मैं तुम्हारा पथ-रोधक विघ्न नहीं हूँ।' पर्वतके अधिदेवता मैनाकने देखा कि ये तो अपने वज्र-वक्षसे धक्का देकर शिखरको ध्वस्त करने जा रहे हैं, अतः मानव-रूप धारण करके अपने शिखरपर खड़े होकर पुकारा—'तुम्हारे पिताने मेरी इन्द्रके वज्रसे रक्षा की है। तुम मेरे आदरणीय अतिथि हो। मेरे शिखरपर उतरकर विश्राम कर लो। मेरा आतिथ्य ग्रहण करो। फिर आनन्दसे आगे जाना।'

'मैं प्रसन्न हूँ तुमपर। मैंने तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार कर लिया।' हनुमानजीने दाहिना हाथ झुकाकर पर्वत-शिखरका स्पर्श किया। उन्होंने देखा कि शिखरपर मधुर जलके स्रोत प्रकट हो गये हैं। समुद्रगर्भमें होने-वाली सुन्दर लताओं तथा सुस्वादु जलीय दुर्लभ फलोंकी राशियाँ शिखरपर सजी हैं। लेकिन केवल दृष्टिपात करके हाथ उठाकर आगे बढ़ते बोले—'अपने आराध्यका कार्य पूरा किये बिना विश्राम मैं कर नहीं सकता। इस

समय मैं स्वामीकी सेवा-यात्रामें हूँ। शरीरकी ओर ध्यान देनेका यह समय नहीं है। अत: मुझे क्षमा करना।'

'मैनाक ! अब तुम्हें मेरे वज्रसे कभी भय नहीं होगा।' हनुमान-के आगे बढ़ते ही गगनमें ऐरावतपर बैठे इन्द्र प्रकट हुए—'तुमने श्रीरामके दूतके सत्कारका प्रयत्न किया है। उन अखिलेशके सेवककी सेवाका प्रयत्न भी अपने आपमें महान है। इसका पुरस्कार तो वही दे सकते हैं। मुझे तो अबसे अपना मित्र मानो। तुम श्रीरामके दासानुदास हो गये। इन्द्र अब तुम्हारा अपराध करनेका साहस नहीं कर सकता।'

'असीम शक्ति है पवनपुत्रमें।' मैनाकको अभय देकर इन्द्रने देवताओंसे कहा—'ये अपने वेगके भी वशमें नहीं हैं। गतिपर इस आकाशमें भी इनका नियन्त्रण है। मैनाकका स्पर्श करते समय वेग शिथिल करके धीरेसे स्पर्श किया और अब ऊपर उठ गये हैं।'

'वेग और बल तो इनमें नि:सन्देह असीम है; किंतु'—एक देवताने शङ्का की—'ये लङ्का जा रहे हैं। रावण-मेघनाद आदि महामायावी हैं। वहाँ केवल बल कृतकार्य होगा ?'

'अवश्य ही परीक्षण होना चाहिये कि इनमें बुद्धि कितनी है।' देवराजने देखा कि नागमाता प्रजापति कश्यपकी पत्नी देवी सुरसा वहीं हैं। उनसे देवेन्द्रने अनुरोध किया—'माता ! यह परीक्षण आप करो।'

'वानर ! मेरी उपेक्षा करके जाना चाहता है ? मेरे मुखमें प्रवेश कर !' शक्रका अनुरोध स्वीकार करके सुरसा अपना अत्यन्त भयङ्कर राक्षसीके समान रूप प्रकट करके हनुमानजीके सामने मुख फाड़े आगी और गर्जना करते मेघके समान बोली।

'अम्ब ! मैं अञ्जनाका पुत्र वानर हनुमान आप लोकमाताको प्रणाम करता हूँ।' हनुमानजीने हाथ जोड़ लिया—'मैं श्रीरामकी पत्नी सीताका पता लगाने जा रहा हूँ। श्रीराम सुरोंके सहायक हैं। अत: आपका अनुग्रह मिलना चाहिये मुझ रामदूतको। यदि आप मुझे भक्षण कर लेंगी तो श्रीरामको सीताका पता कौन देगा ?'

'मैं यह सब सुनना नहीं चाहती।' सुरसा मार्ग रोके गगनमें सामने अड़ी थी।

'देवि ! दशग्रीवने आपकी सन्तानोंको कम नहीं सताया है। उसने नागलोकमें अनेक नागोंका वध किया। नागकन्याओंको लङ्कामें बन्दी बना रखा है।' हनुमानजीने फिर प्रयत्न किया—'दशग्रीवके दलनमें श्रीराम प्रवृत्त तब होंगे, जब मैं उन्हें लौटकर सीताका समाचार दूँगा। अतः मुझपर दया करें।'

'बातें मत बना !' सुरसाने डाँटा—'नागोंमें दया नहीं ही होती, मुझ नागमातासे दयाकी आशा मत कर। मेरे मुखमें प्रवेश कर।'

'आप इस समय मुझे चले जाने दें !' हनुमानजी हाथ जोड़े अनुनय कर रहे थे—'मैं सीताको देखकर लौटकर उनका समाचार श्रीरामको दूंगा और तब अविलम्ब आकर आपके मुखमें प्रवेश करूँगा। मैं आपको सत्यकी शपथ खाकर वचन देता हूँ।'

'बहुत सत्यवादी है।' सुरसा अट्टहास करके हँसी—'तू सच भी बोलता हो तो भी मैं प्रतीक्षा करनेको प्रस्तुत नहीं हूँ। अब और बात नहीं, मेरे मुखमें आ !'

'जब आपको मेरी बात माननी ही नहीं है तो मुझे खा लीजिये !' हनुमानजीके स्वरमें तनिक भी भय या दैन्य नहीं आया।

यह भी कोई बात है कि कोई स्वयं अपने भक्षकके मुखमें प्रवेश करे। जिसे भक्षण करना है, उसे भक्ष्यको मुखमें लेना चाहिये। अभी तक सुरसाने जितना मुख फैला रखा था, हनुमानका आकार उससे बड़ा था। अब सुरसाने अपना मुख एक योजनका फैलाया। अविलम्ब हनुमान दो योजन विशाल हो गये। सुरसाने अपने मुखका विस्तार चार योजन किया। हनुमान आठ योजनके बन गये। सुरसाका मुख सोलह योजन फैला तो हनुमानका आकार बत्तीस योजनका बन गया। झल्लाकर सुरसाने अपने मुखका विस्तार सौ योजन किया।

'अम्ब ! अब आप मुझे अनुमति दें। कोई सत्पुरुष अपने मुखसे गिरे उच्छिष्ट ग्रासको पुनः मुखमें नहीं डालता।' सुरसाका मुख सौ योजन फैलते ही हनुमान फैलनेके स्थानपर छोटे हुए—अँगूठेके बराबर छोटे। सौ योजनके मुखमें अँगूठेके बराबर आकारका क्या पता लगना था। जैसे जम्हाई लेते मनुष्यके मुखमें जाकर मच्छर बाहर निकल जाय, हनुमान सुरसाके मुखमें गये और फिर बाहर कूदकर हाथ जोड़कर, मस्तक झुका-कर प्रार्थना की।

'देवताओंने मुझे तुम्हारी बुद्धिकी परीक्षा करने भेजा था।' सुरसा सौम्यरूप बनकर सुप्रसन्न बोली—'तुम बल और बुद्धि दोनोंमें अप्रमेय हो। अवश्य तुम श्रीरामका कार्य कर सकोगे। प्रस्थान करो ! सफल होकर लौटो !'

सुरसा आशीर्वाद देकर गगनमें अदृश्य हो गयी। हनुमानजीको प्रसन्नता हुई। वे सुरसाके आनेसे असमंजसमें पड़ गये थे। महर्षि कश्यपकी पत्नी, नागमाताका अपमान किया नहीं जा सकता था। प्रार्थना करनेसे वह मान नहीं रही थी। उसके जानेसे एक बड़ी बाधा टली। अब पूरे वेगसे उड़ने लगे।

रावणने लङ्काकी सुरक्षाके अनेक उपाय कर रखे थे। लङ्का दूसरे सब ओरसे तो अनन्त समुद्रसे घिरी थी, केवल उत्तरकी ओर लङ्कासे सौ योजनपर भारत था। अतः सुरक्षाकी आवश्यकता उत्तरकी ओर ही थी। इस उत्तर समुद्रमें उसने राहुकी माता सिंहिकाको नियुक्त कर रखा था। सिंहिका दैत्यकुलकी—रावणके नानाके कुलकी थी और दैत्य विप्रचित्तिकी पत्नी थी। इसमें छायाको पकड़कर प्राणीको खींच लेनेकी शक्ति थी।

कोई प्राणी समुद्रके भीतर तैरे, पानीके ऊपर तैरे या आकाशमें उड़े, सिंहिकाको दौड़कर, झपटकर अपने आखेट तक जानेकी आवश्यकता नहीं थी। वह अपने स्थानपर ही बैठे-बैठे जलमें पड़ने वाली उस प्राणीकी छायाको पकड़कर प्राणीको अपने पास खींचकर भक्षण कर जाती थी।

'बहुत दिनोंपर आज पेट भरेगा !' सिंहिकाने जलमें हनुमानजीके विशाल आकारकी छायाको देखा तो प्रसन्न हो गयी। रावणने राक्षसोंको जहाँ सिंहिका थी, उधर आनेसे मना कर रखा था। समुद्र-जीव और पक्षी भी इस स्थानके भयसे परिचित हो गये। उन्होंने अपना मार्ग-परिवर्तन कर लिया था। इससे बहुत घूमने-फिरनेमें असमर्था वृद्धा सिंहिकाको प्रायः भूखे रहना पड़ता था। कोई भूला-भटका पक्षी या मत्स्य ही उसे मिलता था।

हनुमान पूरे वेगसे जा रहे थे। छाया पकड़े जानेसे उन्हें झटका लगा। जैसे रस्सीमें बँधा बछड़ा दौड़ता है तो झटका लगता है। बड़ा आश्चर्य हुआ—'मेरी गतिको रोकने वाला कौन ?'

ऊपर कोई था नहीं। दिशाओंमें भी कोई दीखा नहीं। नीचे देखने-पर समुद्रके जलमें नीचे एक कोई विशाल काला आकार दीख पड़ा। यह भी दीख गया कि उसी आकारने हाथ फैलाकर उनकी छाया पकड़ रखी है।

'श्रीराम!' एक हुंकार की हनुमानजीने और समुद्रके भीतर दीखते सिंहिकाके शरीरपर ही कूद पड़े। एक तो हनुमानजीका वेग, दूसरे सिंहिका भी उन्हें पूरी शक्ति लगाकर नीचे अपनी ओर ही खींच रही थी। इतने वेगसे हनुमानजीके पद उसके ऊपर पड़े कि उसकी तो पसलियाँ भी पिस गयीं। समुद्र उसके रक्तसे लाल हो गया। दूसरे प्राणियोंको खानेवाली उस दैत्याके शरीरको समुद्री प्राणियोने शीघ्र समाप्त कर दिया।

देवता आकाशमें अदृश्य रहकर हनुमानपर दृष्टि रखे थे। वे आवश्यक हो तो कुछ सहायता भी करनेको उद्यत थे। सिंहिका-वधमें जो मति, दृष्टि, दाक्षिण्य, धैर्य पवन-पुत्रने प्रकट किया, उसे देखकर सुरोंको विश्वास हो गया कि ये अवश्य सफल होंगे। सिंहिकासे सुर भी डरते थे। वे भी वहाँ समुद्रके ऊपर अपने विमान नहीं लाते थे। उस छाया-ग्राहिणीके मरनेसे अब भारतसे लंका तकका समुद्र निर्विघ्न हो गया था।

गगनसे हनुमानजीको सागरका दक्षिणतट—लंकाका उत्तरीतट दृष्टि पड़ा। दृष्टि पड़ी स्वर्णपुरी लङ्का। हनुमानने अपना वेग शिथिल किया। आवश्यक था कि उतरनेसे पहिले उतरनेके योग्य सुरक्षित स्थान देख लिया जावे।

'बहुत वेगसे उतरनेपर शब्द होगा। धक्केसे द्वीप हिल उठेगा। इससे राक्षस सावधान हो जायँगे। वे दौड़ पड़ेंगे। संघर्ष पहिले ही अनिवार्य हो जायगा। आकाशमें असाधारण आकार देखकर भी वे चौंकेंगे।' श्रीहनुमान सोच रहे थे—'भगवती सीताके दर्शनसे पूर्व राक्षसोंको सचेत करना अच्छा नहीं।'

बहुत ऊपर गगनमें अपना वेग कम कर लिया उन्होंने। अपना आकार भी एक बड़े पक्षी—चीलके बराबर बना लिया। मांसाहारी राक्षसोंकी पुरीपर चीलें मँडराती ही रहती थीं। अतः अब किसीके ध्यान देनेका भय नहीं रहा।

'त्रिकूटके तीन शिखर हैं। दक्षिणका शिखर रजतका है। सीधा ऊपर जाता है। खड़े ढालका है। उसके ऊपर रावणका अखाड़ा लगता है।

वहाँ सशस्त्र प्रहरी हैं। उस शिखरपर कहीं उतरनेसे ऊपरके प्रहरी देख सकते हैं।' हनुमानजी गगनसे मण्डल लेते एक बार पूरा द्वीप देख गये।

मध्यका शिखर स्वर्णका था। सपाट था। उसीपर स्वर्णपुरी बसी थी। सुदृढ़ परिखासे घिरी पुरीके चारों ओर बहुत स्थान था; किंतु वहाँ भी राक्षसोंका आवागमन बहुत अधिक था। दिनमें पुरीमें अथवा उसके बाहरके मैदानमें उतरनेपर राक्षस देख सकते थे।

'शिखर इतना निर्जन क्यों है?' हनुमानजी जिधरसे आये थे, लङ्काके उत्तरका वह लौह-जैसा पाषाण-शिखर सुबेल मध्य शिखरसे कुछ ऊँचा था। सपाट था। वनसे—फलवाले वृक्षोंसे भी भरा था। उसपर सरोवर, निर्झर भी थे; किंतु प्राणिहीनप्राय दीखता था। उसी पुष्पोंसे भरे पर्वतपर हनुमान धीरेसे उतर गये। इस यात्रासे वे तनिक भी श्रान्त नहीं हुए थे। उनके श्वासकी गति बढ़ी नहीं थी। उन्होंने भूतलपर पद रखा—'जय श्रीराम!'

सुवेल शिखर पर

अतर्कित अनुकूलता शत्रुके स्थानपर शङ्काका कारण होना ही चाहिये। सुवेल-शिखरपर पुष्पोंसे लदी लताएँ थीं, फलभारसे झुके वृक्ष थे, स्थान-स्थानपर निर्झर थे स्वच्छ जलके, विस्तृत भूमि थी, सब कुछ तो था—जैसे किसीके स्वागतकी पूरी सज्जाकी गयी हो ; किन्तु राक्षस कोई नहीं था। रावणकी लङ्काके इतने समीप किसी ऋषि-आश्रम जैसी शान्ति ? हनुमानजीका ध्यान शीघ्र गया कि इतने मनोरम स्थानपर कोई पक्षी या वनपशु नहीं है। यदि राक्षस उनको खा गये तो वे इस समय क्यों नहीं हैं ?

'दशग्रीव अथवा उसके सेवकोंने मुझे गगनसे उतरते देख लिया है ?' प्रश्न उठा मनमें—'मुझे किसी प्रकार चौंकाये बिना पकड़नेका यह जाल है ?'

भगवदाश्रितको भय तो कभी कहीं हुआ नहीं करता, किन्तु जिस कामसे आये थे, उसमें विघ्न न पड़े, इसके लिए सतर्क रहना आवश्यक था। पूरे सुवेल-शिखरको देख लेनेका अवसर था। अभी पर्याप्त समय था सूर्यास्त होनेमें। लङ्कामें रात्रिके अन्धकारमें ही प्रवेश करना उचित था। तब तक लङ्काके बहिर्भागका निरीक्षण कर लेना चाहिये। इस स्वर्णपुरीके दुर्दम अधिपतिसे युद्ध अनिवार्य लगता था। तब आराध्य आवेंगे, उनके शिविरके योग्य स्थान यह सुवेल-शिखर ही लगता है तो इसे भली प्रकार देखा जाना चाहिये। लङ्काका बहिर्भाग—भावी संग्रामकी भूमि और पुरीपर आक्रमणके उपयुक्त स्थल भी देख ही लेने उचित हैं।

'पवनपुत्र !' किसी ओरसे बहुत विनीत पुकार आयी। यद्यपि स्वर बहुत कर्कश था ; किन्तु वह तो पुकारनेवालेकी विवशता थी—'आप यहाँ आ गये हैं तो मुझपर कृपा नहीं करेंगे ?'

'कौन ?' हनुमान चौंके। इधर-उधर देखने लगे। समीपकी भारी कन्दरापर दृष्टि गयी—'कालदेव आप ? यहाँ इस प्रकार ?'

'दुरात्मा दशग्रीवने मुझे यहाँ बन्दी बना रखा है।' सम्पूर्ण प्राणियों-के महासंहारकके रूपकी भयानकता कल्पनासे परे है। उस कोटरस्थ आग्नेय लोचन, कुटिल दंष्ट्रा, कन्दरासे मुख वाले, घोर कृष्ण वर्ण, कंकाल-प्राय काय, कालके केशोंके रूपमें सर्प ही फूत्कार कर रहे थे। नृमुण्डमाली, चर्मवसन, कपाली काल इस समय अत्यन्त दयनीय हो रहा था—'दशग्रीव तन्त्रशास्त्रका प्रकाण्ड पण्डित है। उसके द्वारा अभिमन्त्रित ये अष्टधातुकी शृंखलाएँ तोड़नेकी शक्ति मुझमें नहीं है; किन्तु आपको तो कोई मन्त्र-तन्त्र विवश नहीं करता। आप सम्पूर्ण मन्त्र-जालको छिन्न करनेमें समर्थ हैं। मैं आपकी शरण हूँ। मुझे इस बन्धनसे मुक्त कर दें।'

'श्रीराम तथा उनके सेवककी शरण पुकारनेपर भव-बन्धन भस्म हो जाता है।' हनुमानजीने उन शृंखलाओंको कच्चे सूतके समान तोड़ फेंका। 'आप स्वतन्त्र है!'

'मुझे यहाँ बन्दी बनाकर दशग्रीवने कह दिया था कि इस शिखर-पर आने वाले प्राणीको दृष्टिके द्वारा आकर्षित करके मैं आहार बना लिया करूँ।' कालने दीन स्वरमें कहा—'किन्तु उस दुरात्माने अपने राक्षसोंको सावधान कर दिया। दूसरे किसीको यहाँ आना नहीं था।'

'अच्छा! इसीलिए यह शिखर प्राणि-शून्य है!' हनुमानजी हँसे—'आप पधारें। दशग्रीवको पता नहीं लगेगा कि उसकी राजधानीके पार्श्व-का यह शिखर अब अरक्षित हो गया है। कल प्रातःके पश्चात् इसे अपनी, अपने नगरकी चिन्तासे ही अवकाश नहीं मिलना है। लेकिन श्रीरामका स्मरण करनेवाले आपसे अभय रहेंगे, यह स्मरण रखें!'

'आपका स्मरण करने वाले भी मुझसे अभय रहेंगे।' प्रणाम करके, प्रदक्षिणापूर्वक विदा होनेसे पूर्व कालने वचन दिया—'रावण, मेघनाद प्रभृति दस-पाँच ही लंकामें वर-प्राप्त हैं। उनके अतिरिक्त जिनको भी आप युद्धमें मारना चाहेंगे, मैं उनकी आयु समाप्त करनेकी सेवा अदृश्य रहकर आपके साथ रहते हुए किया करूँगा।'

'यहाँ ऐसी भयानक गुफाएँ भी हैं।' हनुमानजीका ध्यान गया इस ओर—'उनको अवश्य देख लेना है। किसी और गुफामें भी कोई बन्दी हो सकता है। आराध्यको यहाँ शिविर बनाना है तो इस स्थानको अभीसे निरापद बना देना आवश्यक है।'

'आप भगवान् भास्करके पुत्र भी यहाँ हैं ?' हनुमानजीके एक दूसरी गुहामें शनैश्चर बन्दी मिले। काला वर्ण ; किन्तु काल जैसा नहीं। सुदृढ़ शरीर, नील वस्त्र, आकृति बहुत भयानक नहीं, पर कठोर। विष-दृष्टि शनैश्चरके दोनों पैर बँधे थे और वे गुफामें उलटे लटक रहे थे—पैर ऊपर, सिर नीचे।

'दशग्रीव जब दिग्विजय करने निकला, उस समय उसपर मेरी साढ़ेसाती दशा थी। अनेक स्थानोंपर उसे पराजित होना पड़ा। बालि और सहस्रबाहुने बन्दी बना रखा उसे। इसका कारण जानकर वह चिढ़ गया।' शनैश्चरने बतलाया—'उसने मुझे बन्दी बनाकर यहाँ इस प्रकार बाँध दिया। उसका कहना था—'लंकामें अब किसीपर शनि-दशा नहीं आवेगी।'

'आप अब अपने स्थान जानेको स्वतन्त्र हैं।' हनुमानजीने शनैश्चर-का पद-बन्धन तोड़कर उन्हें सीधा खड़ा कर दिया।

'अभी मैं कहीं नहीं जाऊँगा।' शनैश्चर नीची दृष्टि किये बोले—'जब तक तुम लंकामें हो, तभीतक यह स्वर्णपुरी है। तुम्हारे जाते ही मैं इसे देखूँगा। शनिकी विष-दृष्टि इसके स्वर्णको पाषाण बना देगी। तब मैं अपने लोक जाऊँगा। तुम जाते समय गर्जना करके मुझे सूचित करते जाना कि जा रहे हो।'

सुवेलपर और कोई बन्दी नहीं मिला। रावणको कैसे पता लगता कि वहाँ काल या शनैश्चर नहीं हैं। कोई राक्षस उस ओर आनेका कभी साहस ही नहीं करता था। अतः सुबेल-शिखर श्रीरामके आनेपर उनके उतरनेका सबसे अधिक सुविधापूर्ण, सुरक्षित, निरापद शिविर-स्थान सिद्ध हुआ।

हनुमानजीने वह पूरा शिखर भली प्रकार देख लिया। आनेपर प्रभु कहाँ उतरेंगे, यह भी निश्चय कर लिया। बाहर प्रशस्त शिला, वर्षा आवे तो समीप सुविस्तृत गुफा, निर्मल जलका निर्झर, पुष्पित लताएँ, मधुर फलके वृक्ष—साथ ही वहाँसे लंकापुरीकी गतिविधिपर दृष्टि रखी जा सकती थी।

छोटा रूप बनाकर लंकाके रजत-शिखरतक भी हो आये। राक्षस निःशंक थे। बिडाल जितना छोटा वानर कहीं दौड़कर निकल गया पुरीसे बाहर इसकी ओर कोई ध्यान देने वाला नहीं था।

त्रिकूटके तीनों शिखर एक पंक्तिमें नहीं थे। लेकिन वे सम-त्रिबाहु त्रिभुज भी नहीं बनाते थे। मध्यका स्वर्ण-शिखर बहुत विस्तृत था। द्वीप-का अधिकांश भाग उसीने ढक रखा था। उसके मध्यमें रत्नजटित परिखासे घिरी राक्षस-राजधानी थी। पुरीके बाहर चारो ओर पर्याप्त भूमि थी।

मध्यके स्वर्ण-शिखरके एक ओर तनिक कोण बनाता सुबेल शिखर था। यह शिखर सघन बनसे परिपूर्ण था। मध्य शिखरके दूसरी ओर रजत शिखर था। यहाँ पुरीके बाहर कोई समतल भूमि नहीं थी। पुरीकी परिखासे सटा यह शिखर चारों ओरसे सीधे ऊपर उठता चला गया था। इसके पदप्रान्तमें तीन ओर उदधिकी उत्ताल तरंगें टकराती थीं। केवल एक ओर भूमि थी और वह भाग पुरीसे सटा था। यह शिखर ऐसे कोणपर था कि उसके ऊपरसे सम्पूर्ण लङ्कापुरी दीख सकती थी। सुबेलसे यह शिखर दीखता था।

सीधा खड़ा पर्वत, उसपर केवल कण्टकतरु, चिकनी चमकती शिलाएँ—इस सबसे ऊँचे पर्वतके शिखरका शिरोभाग बहुत सँकरा था। उस पूरे भागको भित्तिसे घेरकर रावणने अपनी मल्लशाला बनवायी थी। वहाँतक पहुँचनेका मार्ग केवल उस छोटे द्वारसे प्रारम्भ होता था, जो पुरीसे उस पर्वततक जानेके लिए ही बना था।

उस पर्वतपर चढ़ना अनावश्यक था। उसपर घूमना निरापद नहीं था। मल्लशालाके सशस्त्र सावधान रक्षकोंकी दृष्टि कभी भी पड़ सकती थी। मल्लशालामें रावण श्रीजानकीको रख नहीं सकता था। युद्धकी दृष्टि-से भी वह स्थान अनुपयोगी था। उसपर स्थित राक्षस चढ़नेवाले पर शिलाएँ सरलतासे लुढ़का सकते थे। लङ्कापुरीके भीतरसे खुलने वाले द्वार-के अतिरिक्त उसपर चढ़नेका मार्ग नहीं था। उसपर कोई बड़ा दल रखा जाय, इतना स्थान नहीं था। वहाँसे केवल निरीक्षण किया जा सकता था। लङ्कापर आक्रमण करनेके लिए वह स्थान उपयुक्त नहीं था। अतः हनुमान-जीने उसकी उपेक्षा कर दी। उसके समीप जाकर भी उसपर चढ़े नहीं।

लङ्काके बहिर्भागकी एक परिक्रमा करके, बाहरसे पुरीको और पुरीके चारों ओरके भू-भागको, खाईको देखकर वे उत्तर द्वारपर पहुँचे।

नगरके चारों ओर चौड़ी, गम्भीर, जलसे भरी खाई थी। उस खाई-में मकर, अष्टपद आदि भयानक जीव भरे पड़े थे। दशग्रीवने उनको

आहार देकर पाला था। खाईके बाद अत्युच्च, सुदृढ़ रत्नखचित स्वर्णसे बनी परिखा थी। नगरके अत्युच्च स्वर्ण भवन और उनके रजत-शिखर बाहरसे दीख रहे थे। नगरके चारों ओर चार कैलास पर्वतके समान ऊँचे महाद्वार थे। खाई पार करनेके लिए द्वारोंके सम्मुख सेतु बने थे, जो यंत्रोंके द्वारा क्षणोंमें उठा लिये जा सकते थे।

द्वारोंपर अनेक विशालकाय बन्त्र लगे थे। उनसे शिलाएँ तथा विस्फोटक अस्त्र-शस्त्र फेंके जा सकते थे। द्वारोंपर सशस्त्र, कवच-शिरस्त्राण पहिने महाकाय प्रहरी सावधान खड़े रहते थे। द्वारोंसे देखनेपर ही पता लग जाता था कि पुरी असंख्य बलवान राक्षसोंसे भरी है।

'इस दुर्धर्ष पुरीतक किसी प्रकार वानर पहुँच भी जायँ तो वे कौन-सा पराक्रम प्रकट करेंगे?' उत्तर द्वारसे थोड़ी दूर सघन वृक्षोंके मध्य छिपे हनुमान सोचने लगे—'इतने वैभव एवं शक्तिसे सम्पन्न दशग्रीवसे सन्धि सम्भव नहीं है। इस स्वर्णपुरीके स्वामीको कोई लोभ क्या देगा? वह वेदोंका विशिष्ट विद्वान है। सामनीतिसे समझाना भी सम्भव नहीं। इन राक्षसोंमें भेद-फूट डाली नहीं जा सकती। अङ्गद, नील, जाम्बवान, सुग्रीव जैसे थोड़े ही वानर इस पुरीमें प्रवेश करनेमें समर्थ हैं।'

'दिनमें तो इस नगरमें राक्षसोंकी दृष्टि बचाकर एक मच्छर भी प्रवेश नहीं कर सकता। इसमें प्रवेश तो रात्रिके अन्धकारमें ही करना पड़ेगा।' हनुमानजी खड़े-खड़े सोच रहे थे—'मैं अकेला हूँ। पूरा नगर बहुत बड़ा है। तनिक भी असावधानी हुई और मैं देख लिया गया तो कार्य ही नष्ट हो सकता है। मेरा समुद्र-लङ्घन निष्फल नहीं होना चाहिये।'

वहाँ खड़े-खड़े ही जब अन्धकार हो गया सूर्यास्तके पश्चात् तब हनुमानजीने अपना आकार अंगुष्ठके बराबर बना लिया और द्वारकी ओर बढ़े। द्वारमें प्रवेश करके पुरी देखकर चकित हो रहे थे, तब तक एक भयङ्कराकृति राक्षसी मार्ग रोककर आगे आ खड़ी हुई।

'तू अपनेको बहुत चतुर समझता है? जानता नहीं कि इस पुरीमें चोरीसे प्रविष्ट होनेवाले ही मेरे आहार हैं।' उसने डाँटा और पकड़नेको हाथ नीचे झुकाया—'इस पुरीके सभी राक्षस कामरूप हैं। इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हमींको तू धोखा देने चला है! कौन हो तुम? क्यों आये यहाँ? सचमुच वानर ही हो? जीवित हो, तभी तक बतला दो। पुरीमें प्रवेश सम्भव नहीं है।'

'अच्छी उलझन—इससे लड़ने लगे तो राक्षस दौड़ पड़ेंगे। अभी अपनेको प्रकट करना नहीं है।' हनुमानजीने उसे मार देना ही ठीक माना। पलक झपकते बड़े हुए और एक भरपूर घूँसा धर दिया। वह रक्तवमन करती भूमिपर गिरीं ; किंतु सामान्य राक्षसी तो नहीं थी कि मर जाती। हनुमान भी चकित हो गये—उनके वामकरका घूँसा सहकर भी यह जीवित है ? दूसरा घूँसा बाँधते बोले—'तू विरूप तमोमयी कौन है ?'

'मुझपर प्रसन्न हो ! मुझे मारो मत !' वह हाथ जोड़कर गिड़-गिड़ायी—'मैं इस पुरीकी अधिदेवता लंकिनी हूँ। राक्षसपुरीकी अधिदेवता राक्षसीके रूपकी ही तो होगी। तुमने मुझे जीत लिया तो पुरीपर ही विजय प्राप्त कर ली। मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारे कार्यमें बाधक नहीं बनूँगी।'

'जब शरीर बनता है, जीव आ जाता है उसमें। तुम्हें यह नहीं बतलाना है कि कोई नगर बसता है तो उसका अधिदेवता उसमें रहने लगता है। सृष्टिके प्रारम्भमें जब यह पुरी सृष्टिकर्त्ताने बनायी, मुझे इसका अधिदेवता बनाया।' लंकिनीने कहा—'बड़ा दुःख हुआ, मैं अधर्मी राक्षसोंकी पुरीकी अधिदेवता बनी।'

'जब किसी वानरके प्रहारसे व्याकुल हो जाय, समझ लेना कि राक्षसोंका विनाशकाल आ गया।' ब्रह्मलोकसे मुझे दुःखी जाते देख सृष्टि-कर्त्ताने दया करके कहा 'उसके पश्चात् तू भगवद्भक्तोंकी राजधानीकी अधिदेवता हो जायगी।'

'दुरात्मा दशग्रीवका सकुल विनाश सन्निकट है।' लंकिनी उठकर मार्गसे हटते बोली—'तुम पुरीमें प्रवेश करो ! तुम्हारा उद्देश्य सफल हो।'

उस असुरपुरीके अधिदेवताके अदृश्य होते ही मानों रावणके मस्तक-पर रखा गया हो, इस प्रकार हनुमानने पुरीमें वामपाद प्रथम रखा।

अन्वेषण

अध्ययन भी लंकामें होता था, पूजा-पाठ-जप एवं यज्ञ भी। हनुमानजीने सायंकाल अन्धकार होनेपर लंकामें प्रवेश किया था। उन्हें राक्षस जप, पाठ, पूजन, हवन, स्तुति करते बहुत मिले ; किंतु—बात किंतु की ही है। उनमें बहुतसे तो रावणके नामका जप, रावणकी स्तुतिका पाठ कर रहे थे। कुछ तामस यज्ञ करनेमें, शक्तिके उग्रतम रूपोंकी आराधनामें लगे थे। वहाँ उन्मत्त भैरव, उग्रतारा, चामुण्डा, कंकालीकी आराधना चल रही थी। कोई महिष-बलि दे रहा था तो कोई सुराकी आहुति देनेमें लगा था। नाना प्रकारके मण्डल, यन्त्र, मुद्राएँ और विचित्र-विचित्र अनुष्ठान-आराधनाएँ—गीध, काक, कृकलास तककी बलि देकर कामनापूर्ति अथवा पौरुष-वृद्धिके प्रयत्न चल रहे थे।

महावीरके प्रवेश करते ही उग्र आराधनाएँ स्वतः निष्प्रभाव हो गयीं। अग्निसे नाना प्रकारकी रङ्गीन लपटें उठनेके स्थानमें दुर्गन्धि उठने लगी। उन अभिचार-पटु तामस आराधनाके मर्मज्ञोंको प्रतिकूल लक्षण प्राप्त होने लगे। उनमें अधिकांशने विघ्न-निवारणके उपाय किये ; किंतु आहुतियोंकी—रक्तमांसादि आहुतियोंकी दुर्गन्धि दूर नहीं हुई, तब मान लिया कि इष्ट आज किसी कारण असन्तुष्ट अथवा उग्रतर हो गया है अथवा कोई अज्ञात विघ्न उपस्थित हुआ है। किसी प्रकार अपने अभिचार कर्म उस दिन पूरे करके वे सब शीघ्र उठ गये।

हनुमानजीने अंगुष्ठके बराबर रूप बनाया था—छोटी चुहियासे भी छोटा रूप। विशालकाय राक्षसोंका ध्यान ही नहीं जा सकता था कि इतना क्षुद्र प्राणी वानराकार है। फिर भी जहाँ प्रकाश अधिक हो, वहाँ राक्षसोंके सम्मुख जानेसे हनुमान बचते थे। वे ऐसे स्थानोंपर-से निकलते थे तो पूरे वेगसे दौड़ जाते थे। प्रायः राक्षसोंके पीछेसे अथवा खड़े लोगोंके पैरोंके बीचसे निकलते थे।

शीघ्र ही चन्द्रोदय हो गया। राक्षस अभिचारानुष्ठानों तथा रावणके स्तवनसे उठे तो नृत्य-गीत आदिमें लग गये। मदिरालयोंमें भीड़ बढ़ने

लगी। सुरापान करके वे उन्मत्त नाचने-गाने लगे। बहुत थोड़े वृद्ध मिले जो एकत्र बैठकर कुछ गम्भीर विचार करते हों। इन विद्वान वृद्धोंके भी विचारका विषय प्रायः यही था कि दशग्रीवको कहाँ आक्रमणके लिए उत्तेजित करना चाहिये। कहाँ कौन जप, तप, वेदपाठ या सुरोंको सन्तुष्ट करनेमें लगा है और उसका उच्छेद कैसे होगा।

हनुमानजीको राजपथ, गलियाँ, भवन, बन्दीगृह, भवनोंके गुप्त स्थान, भोजनालय, मदिरालय, नृत्यशालाएँ, मल्लशालाएँ सब देखनी थीं। कहीं श्रीजानकीकी चर्चा करते कोई स्त्री-पुरुष मिल जायँ। कहीं श्रीसीता किसी स्थानपर मिल जायँ। सम्पातीने दिनमें उन श्रीजनक-नन्दिनीको राक्षसियोंसे घिरी देखा था। वे रावणके अन्तःपुरसे लगे किसी उद्यानमें उस समय थीं। अब रात्रिको पता नहीं, वे कहाँ रखी गयी होंगी।

इस अन्वेषणमें रावणके अस्त्रागार, अश्व, गज आदिके स्थान, अन्नागार, सैनिक-शिविर तथा दूसरे भी वे आवश्यक स्थान देख लेने थे जो युद्धके समय दशग्रीवकी शक्तिके आधार थे। युद्ध होनेपर लङ्काके किन स्थानोंपर प्रथम प्रहार आवश्यक है, वहाँ पहुँचनेके मार्ग क्या हैं, यह भी इसी समय देखना था।

लंकामें वृद्ध मिले; किंतु कोई रोगी नहीं मिला। हनुमानजी स्वयं उप-देवता थे। वे जानते थे कि राक्षस उपदेवताओंका एक वर्ग है। इनके शिशु उत्पन्न होते ही युवाके समान आकार वाले हो जाते हैं। वृद्ध भी तरुणोंके समान सशक्त रहते हैं। रोग तथा वार्धक्यकी अशक्ति उपदेवताओंमें आती नहीं। लेकिन लंकामें कोई उदास, हताश नहीं मिला। कोई स्त्री भी रुदन करती नहीं दीखी। सब प्रसन्न, सब प्रफुल्ल, सब उत्साहमें भरे ; किंतु सब भोगोंमें लिप्त। मद्यपान, मांसाहार, उन्मत्त नृत्य, गायन मिला सब कहीं। रावणका अद्भुत वैभव—अद्भुत प्रभाव। विषयोन्मुख प्राणी अतृप्त, विषण्ण नहीं थे। वे उन्मत्त थे। उन्हें भोगोंका उन्मद आवेश विस्मृत बनाये था।

कुम्भकर्णकी गुफा अवश्य कोलाहल-शून्य मिली। वह महाकाय लंकाके बहिर्भागसे रजत-शिखरके नीचे तक गयी गुफामें सो रहा था। उसमें उसके खर्राटोंका घन-गर्जन गूँज रहा था और श्वासोच्छ्वाससे अन्धड़ चल रहा था। वहाँ उसकी वैसी ही पर्वताकार पत्नीके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं था।

माली, सुमाली, माल्यवान, ये तीनों प्रसिद्ध दैत्य अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ अपने दौहित्र दशग्रीवके पुरमें रहने लगे थे। सुमालीका पुत्र प्रहस्त तो रावणका प्रधानमन्त्री हो गया था। इन सबके भवन हनुमानजीने देखे। मेघनाद, अतिकाय, अकम्पन, शुक-सारण प्रभृतिके भी भवन, अन्तःपुर, भवनोंके गुप्त स्थान देखें। 'पता नहीं श्रीवैदेही कहाँ हों। कहीं भी तो मदिरामत्त राक्षस उनकी चर्चा करें।'

उद्यान, कुञ्ज, देवालय—अधिकांश उग्रतम उपासनाओंके स्थान और उनमें मध्यरात्रिमें ही भीड़ होनी थी। आपान गृहोंमें भी भीड़ बढ़ती गयी। बड़ा वीभत्स दृश्य—राक्षस पूरे भुने या तले भैंसे, गर्दभ, खच्चर खा रहे थे। कुछ कच्चा मांस खानेके अभ्यस्त थे। मदिरा ही नहीं, पशुओंका उष्ण शोणित वे पानीकी भाँति पीकर नृत्य करते थे। उन अतिभोजियोंके चबाने, निगलनेका दृश्य बहुत घृणास्पद था। उनके वस्त्र, शरीर उनके उस घिनौने आहारसे सनते जा रहे थे। इस ओर कोई ध्यान नहीं देता था। अपने शरीर या वस्त्रसे ही वे मुख, हाथ पोंछ लेते थे।

राक्षसोंके—प्रधान राक्षसोंके गृहोंमें सुन्दरी, सुकुलोद्भवा, सुशीला कुलवधुएँ थी; किंतु राक्षसोंने देवता, नाग, गन्धर्वादि असंख्य कन्याओंका अपहरण करके गणिका बना डाला था उन्हें। विवशताने उन्हें लज्जाहीना कर दिया था। वे विवस्त्रा या अत्यल्पवस्त्रा नृत्यालयोंमें उन्मद नृत्य कर रही थीं अथवा मदिरालयोंमें, भोजनालयोंमें राक्षसोंको मद्य-मांसादि देकर स्वयं उनके साथ पीने-खाने और निर्लज्ज विनोदमें लगी थीं।

कला—नृत्य, वाद्य, सङ्गीतकी उत्कृष्टतम कला थी लंकामें। त्रिभुवनके प्रख्यात कलाकार, नर्तकियाँ, गायक दशग्रीव ले आया था। रात्रिमें रावणके यहाँ, मेघनादके सदनमें अथवा लंकाके सार्वजनिक समारोह-सदनोंमें वह कला भी मूर्त्तिमान हो रही थी—मध्य रात्रिके पश्चात्, राक्षसोंका महाभोज समाप्त होनेपर ही उसका प्रारम्भ होना था। लेकिन हनुमानजीको यदि राक्षसोंका जुगुप्सित आहार, सुरापान विचलित नहीं कर सका तो लंकाकी सुरदुर्लभ सौन्दर्य प्रतिमाओंका नृत्य, संगीत और वाद्य भी आकर्षित नहीं कर सका। उनके कर्ण सीताकी चर्चा सुननेको उत्कर्ण थे। उनकी दृष्टि वैदेही-दर्शनकी भूखी थी। वे एकसे दूसरे स्थानपर अपने उस क्षुद्र रूपसे दौड़ते प्रायः घूम रहे थे।

उस पीतवर्ण क्षुद्र प्राणीसे दीखने वाले पर अनेकोंकी दृष्टि पड़ी। किसीका ध्यान नहीं गया। सर्रसे दौड़ता वह प्राणी निकल जाता था। उसके आकारका पता ही नहीं लगता था। दशग्रीवके दारुण प्रतापसे निर्भय, शङ्काहीन राक्षस, राक्षसियोंको इतने छोटे प्राणीकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं थी। वे सब खाने-पीने, नृत्य-सङ्गीतमें, विनोद-विलासमें मग्न थे।

दशग्रीवका दारुण आतङ्क—सीताकी चर्चा ही वर्जित थी। मद्यपानके उन्मादमें भी वह किसीके मुखपर नहीं आती थी। लङ्काके प्रायः सब गृहों, स्थानोंको देखनेके पश्चात् हनुमानने दशग्रीवके राजसदनमें रात्रिके तृतीय प्रहरके उत्तरार्धमें प्रवेश किया। सतर्क प्रहरियोंसे अत्यन्त सुरक्षित, प्रकाशसे पूर्ण राजसदनमें इससे पूर्व प्रवेश अशक्य था। जब राक्षस नृत्य-गीत-सभाओंसे उठकर अपने गृहोंमें चले गये, अपनी विलास-क्रीड़ाओंसे श्रान्त सोने लगे, तब राजसदनके प्रहरी भी उनींदे हो उठे थे। उनके तन्द्रिल क्षणोंका लाभ उठाकर हनुमान उनके समीपसे राजसदनमें प्रविष्ट हुए।

राजसदनके भीतर भी नाना प्रकारके यान थे, पालकीसे लेकर पुष्पक विमान तक। अश्वशाला, गजशाला, आहारके लिए पालित पशु-पक्षियोंका स्थान, अन्नादिका भण्डार, शस्त्रागार, भोजनालय, आपानक-गृह, नृत्यशाला--सब देखा हनुमानने। नृत्यशालामें नग्न, अर्धनग्न सुन्दरियाँ श्रान्त होकर वाद्योंको गोदमें लिये जहाँ-तहाँ सो गयी थीं। निद्रामें उनका अस्त-व्यस्त शृङ्गार, मुखसे गिरी सुरा-लार—वे घृणास्पद लगती थीं। सुरागन्धसे परिपूर्ण वह नृत्यशाला और उसकी सुन्दरियाँ—स्वर्गकी अप्सराएँ तुच्छ थीं उनके सम्मुख। दशग्रीवके सदनमें त्रिभुवनकी श्रेष्ठतम सुन्दरियाँ वह दुर्दान्त राक्षसाधिप ले आया था।

सीता-सीता-सीता ! हनुमानकी दृष्टि एकको देखनेको आतुर थी। स्त्रियोंको विशेष रूपसे देखना था ; किंतु—'यह वैदेही नहीं हो सकतीं।' दृष्टि क्षणार्धमें अन्यत्र दौड़ती थी। कोई आकर्षण नहीं, कहीं पुनः लौटना नहीं दृष्टिको। जैसे नग्न, अर्धनग्न स्त्रियाँ नहीं (सुन्दर-असुन्दरका प्रश्न ही नहीं) भेड़ोंके रेवड़ कोई देखता भटक रहा हो।

स्पष्ट था उन नारियोंके मुखसे, भङ्गीसे कि वे सन्तुष्ट हैं। वे दश-ग्रीवको पाकर परम सन्तुष्ट हैं। उनमें कोई अन्यमनोलग्ना नहीं थी।

लङ्कामें केवल श्रीवैदेही परस्त्री थीं, असन्तुष्टा थीं, दुःखिनी थीं और वही कहीं दीख नहीं रही थीं।

दशग्रीवका अन्तःपुरका सिंहासन—उसकी ज्योति, उसके महा-मणियोंकी प्रभा ; किंतु हनुमानको यह सब देखनेका अवकाश कहाँ था। दशानन दीखा अपने कक्षमें शयन करता। उनके प्रचण्ड शरीर, प्रशस्त भाल, विशाल भुजाओंको देखकर हनुमानके मनमें आया—'यह त्रिभुवन-विदित पराक्रमी, विख्यात वेदज्ञ विद्वान – कहीं यह धर्मात्मा होता, कहीं भगवद्भक्त होता, निश्चय त्रिभुवनका शासक होने योग्य था यह। सुरेन्द्र इसके सेवक होकर भी तब गौरवान्वित होते ; किंतु यह अधर्मी, वेद-विप्र-विरोधी !'

जिसके भ्रू के कुटिल होनेसे लोकपाल काँपते थे, उसके एकान्त कक्षमें अभय, अशङ्क हनुमान उसके समीप खड़े दो क्षण देखते रहे। बहुत दया आयी उन्हें दशग्रीवपर।

उसी कक्षमें पृथक शय्यापर शयन करती मन्दोदरीको देखकर हनुमान चौंके—'यह अनिन्द्य सुन्दरी ! इतना सौन्दर्य तो लङ्कामें कहीं दीखा नहीं। स्वर्गमें भी सम्भव नहीं है। यही श्रीजनक-नन्दिनी हैं ?'

'यह सीता हैं, यह बात मनमें आते ही हनुमान हर्षातिरेकमें समीपके स्तम्भपर चढ़ने-उतरने लगे। उन्होंने अपनी पूँछ चूम ली। कई बार उछले-कूदे ; किंतु यह उत्साह टिका नहीं। हृदयने कहा—'व्यर्थ प्रसन्न मत हो। यह वैदेही नहीं हैं।'

'श्रीरामके वियोगमें सीता आभूषण धारण नहीं कर सकतीं। अङ्गराग, अलक्तक, ताम्बूल उन्हें किसी प्रकार स्वीकार नहीं होगा।' स्मरण आया कि कल ही सम्पातीने उन्हें अन्यत्र देखा है। 'यह सुप्रसन्न है। इसके मुखपर बीते दुःखका भी चिह्न नहीं। इसने आभूषण, अङ्गरागादि धारण किये हैं। षोडश शृङ्गार-सज्जिता यह दशग्रीवकी पट्टमहिषी होगी।'

बड़ी निराशा हुई। पशुशाला, पक्षीशाला तक देख चुके थे। रावणके राजसदनसे निकले तो अत्यन्त निराश, एक ओर खिन्न चल पड़े। लगता था कि समुद्र-लङ्घन व्यर्थ चला गया। इसी निराशामें मनमें एक शङ्काने सिर उठाया—'हनुमान ! तूने नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका व्रत लिया है। कहाँ

गया तेरा व्रत ? आज राक्षसोंके भवनोंमें तू स्त्रियोंको—केवल स्त्रियोंको ही तो ध्यानसे देखता घूमा है। अर्धनग्न, सम्पूर्ण विवस्त्रा स्त्रियोंको—कितनी स्त्रियोंको देखा तूने, कुछ गणना है ? इसका प्रायश्चित्त ? '

' ठीक बात है कि मैंने प्रसुप्त नग्न स्त्रियोंको देखा है। भोगरताओं-को देखा है। ध्यानसे देखा है ; किंतु मैं उनमें अम्बा वैदेहीको ढूँढ़ रहा था। प्रयोजनवश देखा मैंने। मेरे मनमें विकार तो नहीं आया ?' विशुद्ध अन्तःकरणमें प्रबुद्ध विवेकका वास होता है। प्रभञ्जन-तनयकी प्रज्ञा प्रदीप्त हो उठी। जैसे हृदयसे अन्तर्यामी हृषीकेश ही बोलते हों—' मन ही इन्द्रियोंका नियन्ता है। मन निर्मल है तो इन्द्रियोंमें विकार सम्भव कैसे है। तुम्हारे व्रतके भङ्ग होनेका प्रश्न कहाँ उठता है। श्रीजनकनन्दिनीको ढूँढ़ना है तो स्त्रियाँ नहीं देखोगे, क्या पशु-पक्षियोंमें पाओगे उन्हें ? इन्द्रिय-के सामने शुभ या अशुभ कुछ आवे, मन निर्विकार है तो तुम निर्विकार हो। '

एक बड़ी मानसिक ग्लानि मिट गयी। कठोर संयमी ही समझ सकता है कि ऐसी ग्लानि किसी दृढ़व्रतीको कितनी पीड़ा देती है।

' सीताने देहत्याग तो नहीं कर दिया ?' दूसरी शङ्का उठी। राक्षसियोंके उत्पीडनसे, रावणके व्यवहारसे दुःखी, निराश होकर वे ऐसा कर लें, असम्भव तो नहीं है। ' दुष्ट रावणने या राक्षसियोंने ही उन्हें मार-कर खा लिया हो ? '

बड़ी भयावह शङ्का। ' मैं उन्हें देखे बिना क्या मुख लेकर लौटूँगा ?' एक बार फिर नगरमें ढूँढ़ने लगे। बड़े वेगसे दौड़ने लगे। अब प्रहरी भी उनीदे, असावधान थे। राक्षस सो गये थे। मदिरालय, निकुञ्ज, विमान, रखी पालकियाँ, रथ, गुफाएँ, भूगर्भगृह, बावली, उद्यान सब घूम आये। अपनी समझसे कोई स्थान नहीं छोड़ा, जहाँ न गये हों। रावणके द्वारा अपहृता कन्याएँ देखीं ; किंतु वे सब तो अब प्रसन्न, सन्तुष्ट थीं।

' सम्पातीने कल ही कहा था कि वह श्रीसीताको रुदन करती देख रहा है। ' बड़ी चिन्ता, बड़ी वेदना। रावण उन्हें आज ही कहीं अन्यत्र तो नहीं रख आया ? अब क्या करूँ ? '

' मैं रावणको मार दूं ? ' निराशाकी प्रतिक्रिया प्रचण्ड क्रोधके रूपमें प्रकट हुई—' नहीं, इसे पकड़ ले चलूँगा। इसे श्रीरामके पदोंमें पटक दूँगा और वही इससे वैदेहीका पता पूछेंगे। '

' नमोऽस्तु रामाय स लक्ष्मणाय । '

पवनपुत्रने हृदयमें ध्यान किया आराध्यका कुछ भयानक पौरुष प्रकट करनेसे पूर्व । सहसा जैसे प्रकाश प्राप्त हुआ । चौंके—' अरे ! यह भवन तो अबतक मैंने देखा ही नहीं था । लङ्कामें यह भवन ? तुलसी-कानन, पृथक मन्दिर चक्रमण्डित और द्वारपर राम-नाम ? कौन रहता है इसमें ? '

विभीषण-मिलन

अद्भुत भवन था वह लङ्काकी दृष्टिसे। आञ्जनेय उसे देखकर विस्मयमें पड़े सोचने लगे—'सम्भव है श्रीजनक-नन्दिनी यहाँ हों। उनको प्रसन्न करनेके लिए दशग्रीवने उनके निवासकी अनुकूल व्यवस्था कर दी हो।'

'रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥'

यह शब्द कानमें पड़े और हनुमान अधिक चौंके। इस लङ्कामें कोई सत्पुरुष वैष्णव? इस ब्रह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें जब कि सब राक्षस सो रहे हैं, निद्रासे उठते ही स्वाभाविक रूपसे श्रीरामका स्मरण करनेवाला कोई सत्पुरुष ही तो होगा।

'इनसे परिचय करना चाहिये।' हनुमानजीने निश्चय किया—'जो प्रभातमें—जागरणके प्रथम क्षणमें श्रीरामका स्मरण कर रहे हैं—वे राम-कार्यमें सहायता न भी कर सकें तो बाधक नहीं बनेंगे। कुछ सूचना इनसे मिल सकती है।'

'जय श्रीसीताराम' हनुमानजीने ब्रह्मचारी ब्राह्मणका वेश बनाया और द्वारके समीप जाकर सामान्य स्वरमें पुकारा। उच्चध्वनि करना यहाँ असामयिक होता।

विभीषण चौंके—'रावणकी जय-जयकार जहाँ गूंजती है, उस लङ्कामें श्रीसीतारामकी जय करनेवाला कौन?' वे उठकर शीघ्रतापूर्वक द्वारपर आये। एक अपरिचित ब्रह्मचारी ब्राह्मणको देखकर समझ गये कि ये कोई असाधारण पुरुष हैं। यह वेश कृत्रिम हो सकता है। जहाँ सुर भी आनेका साहस नहीं कर सकते, समुद्रसे घिरी उस लङ्कामें कोई सामान्य ब्राह्मण आवे, असम्भव बात। केवल दिव्य लोकोंके कोई तपःसिद्ध हों तो··· लेकिन दशग्रीवसे वे लोग भी डरते हैं।

'दशग्रीवका कनिष्ठ अनुज विभीषण श्रीचरणोंमें प्रणाम करता है।' विभीषणने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'विप्रवर! आप कौन हैं? कैसे अनुकम्पा की आपने इस सेवकपर? मैं कोई सेवा कर सकूँ तो अपना सौभाग्य मानूँगा। थोड़े ही समयमें यह स्थान असुरक्षित हो जायगा। आप भीतर पधारनेकी कृपा करें!'

ऐसे विकट स्थानपर आनेवाला अत्यन्त आवश्यक कार्यसे ही आया होगा। आतिथ्यमें समय नष्ट करके उसकी सुरक्षा, संदिग्ध नहीं बनानी थी। अतः विभीषणने आतिथ्य स्वीकार करनेका आग्रह अधिक नहीं किया।

'आप जिनका स्मरण करते रहते हैं (निद्रा त्यागते ही जिनका स्मरण किया, उनका स्मरण जीवनका अभिन्न अङ्ग न बन गया होता तो निद्रा टूटते ही स्वयं नहीं आता।) मैं उन्हीं श्रीदशरथ-नन्दन श्रीरामका दूत, पवनपुत्र हनुमान हूँ।' हनुमानजीने भी विप्रवेश त्यागकर अपना रूप धारण कर लिया—'आपके अग्रज श्रीजनक-नन्दिनीका अपहरण कर लाये हैं। मैं अपने स्वामीकी आज्ञासे उनका पता लगाने आया हूँ। मुझे उनके दर्शन करने हैं। वे कहाँ हैं? कैसे उन तक पहुँचा जा सकता है? आप कुछ सहायता कर सकते हैं? एक बात और, इस पुरीमें आपकी यह सात्विकता, संयम, भगवद्भक्ति चल कैसे पाती है?'

'आप अपने आराध्यकी अपार शक्ति, अहैतुकी कृपाका प्रभाव जानते हैं।' विभीषणने विनयपूर्वक कहा—'राक्षसेन्द्रका मैं अनुज हूँ, अतः दूसरा कोई मुझे छेड़ने, सतानेका साहस नहीं कर सकता। आपके सर्व-उर-प्रेरक आराध्यने दुर्दान्त दशग्रीवको सुझा दिया कि उसे अपनी पुरीकी, परिवारकी व्यवस्थाके लिए भी एक शान्त, निष्पक्ष, संयमी, स्वार्थरहित व्यक्तिकी आवश्यकता है। मैं इन गुणोंसे युक्त तो नहीं हूँ; किंतु लङ्कापति-को और दूसरोंको भी ऐसा लगता है। अतः वे रहन-सहनको सह लेते हैं। मैं भी यथाशक्ति उनकी सेवा करता हूँ। मेरी स्थिति वैसी है, जैसे दाँतोंके मध्य जीभ। मुझे सावधान रहना पड़ता है और वे प्रयत्न करके मुझे सताते नहीं।'

'हनुमानजी! मुझ अधम असुरपर भी कभी श्रीरघुनाथ कृपा करेंगे? यह राक्षस भी कभी उनका चरण-दर्शन पा सकेगा?' विभीषण-का कण्ठ भर आया।

'वे अनन्त कृपापारावार हैं। कृपा करना ही उनका स्वरूप है। शरणागतकी उपेक्षा उनके द्वारा सम्भव नहीं।' हनुमानजीने भी श्रद्धा-शिथिल स्वरमें कहा—'वे कहाँ अपनाते समय किसीकी जाति, कुल, वर्ण, विद्या, वैभव या सद्‌गुण, सदाचार, जप-तपादि साधन देखते हैं। मैं ही कौन-सा कुलीन हूँ। चपल वानर, शौच-शीलहीन ; किंतु उन्होंने तो एक क्षण भी अपनानेमें नहीं लगाया।'

'अब मुझे भरोसा हो गया ; क्योंकि आप मिले मुझे।' विभीषण बोले—'उनकी महती कृपाके बिना उनके निजजन नहीं मिला करते। यदि मुझ राक्षसको अपनाना न होता तो वे सर्वसमर्थ आपको यहाँ क्यों भेजते !'

'मैं आया हूँ अम्बा सीताका समाचार लेने।' हनुमानजी सावधान हुए। यहाँ सत्सङ्ग चल पड़ा तो समयका पता ही नहीं लगेगा। 'मैंने पूरी लङ्का देख ली ; किंतु उन श्रीमैथिलीके दर्शन नहीं कर सका।'

'मैं भी साथ चलकर आपको वहाँ तक पहुँचानेमें असमर्थ हूँ। वहाँ कभी-कभी मेरी पत्नी जाती है।' विभीषणने पता बतलाया—'दशग्रीवके अन्तःपुरसे लगा अशोकोपवन है। वहाँ पहुँचनेका एक मार्ग राक्षसेन्द्रके अन्तःपुरसे है और दूसरा मार्ग राजसदनके वाह्य परकोटेके भीतरसे है। अशोकोपवन उच्च सुदृढ़ परिखासे घिरा है। सशस्त्र प्रहरी तथा राक्षसियाँ उसकी सावधानीसे रक्षा करती हैं। उसका दूसरा द्वार जो उसकी परिखामें है, प्रहरियों, सेविका राक्षसियोंके आवागमनके लिए है। लेकिन वह भी राजसदनके परकोटेके भीतर है। राजसदनके मुख्य द्वारमें प्रवेश किये बिना वहाँ तक पहुँचा नहीं जा सकता। राजसदनका मुख्य द्वार बहुत अधिक सुरक्षित है।'

'मैं उसमें प्रवेश कर चुका हूँ।' हनुमानजीने कहा—'आप मुझे इतना बता दें कि मुख्य द्वारमें प्रवेश करके अशोकोपवनकी परिखा तक किधर जाकर पहुँचा जा सकता है। उस परिखापर मैं चढ़ जाऊँ तो किधर जानेसे श्रीजानकीके दर्शन कर सकूँगा।'

'बहुत कठिन है, असम्भवप्राय।' विभीषणके स्वरमें वेदना थी। 'उस स्वर्णकी सुचिक्कन परिखापर चढ़ना दुर्गम है। उसके द्वारपर आप प्रतीक्षा कर सकते हैं। भीतरसे कोई बाहर आना चाहेगा तो द्वार रात्रिमें

खुलेगा। अन्यथा प्रभातसे पूव नहीं खुलेगा। उद्यानके मध्य सरोवर है। एक देवीका मन्दिर है। उससे थोड़ी दूरीपर विशाल शिंशुपा-वृक्ष है। समीप कई अशोक-तरु हैं। सीता उन्हींमें-से किसी तरुके मूलमें बैठी रहती हैं। वे रात्रिमें भी शयन नहीं करतीं। यद्यपि उनके लिए वहाँ एक उत्तम पर्णकुटी दशग्रीवने बनवा दी है; किंतु उसमें उन्होंने कभी प्रवेश नहीं किया।'

'पत्नी कहती है कि सूर्य उनपर कभी प्रखर आतप नहीं डालता। वर्षाके मेघ उन्हें आर्द्र नहीं करते। शीतकालमें वायु उनके समीप उष्ण बना रहता है।' विभीषणने बतलाया—'दशग्रीव इसे अपना प्रताप मानता है। सुरोंको उसने सेवक बना रखा है। लेकिन पत्नी उन देवीके तपका प्रभाव मानती है इसे।'

'जय श्रीसीताराम!' हनुमानजीने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया। उनके लिए अब समय बहुत कम था। जब वे अंगुष्ठ बराबर बनकर दौड़ चले, विभीषण विश्वस्त हो गये—'अवश्य ये महाप्राण सफल होंगे। इनके इस आकारपर वहाँ कौन ध्यान देने चला है।'

मन-ही-मन उन्होंने हनुमानजीकी मङ्गल-कामना की। लेकिन विभीषण भी अनुमान नहीं लगा सकते थे कि हनुमानजी कितनी सरलतासे सफल होनेवाले हैं।

'तुम राक्षसेन्द्रके द्वारपर शीघ्र चले जाओ।' विभीषणने लौटते ही अपने विश्वस्त अनुचरको आदेश किया—'वहाँ यदि कोई नवीन सन्देश आवे, कोई अपरिचित आ जाय या किसी वाह्य व्यक्तिकी कोई चर्चा हो तो मुझे तत्काल सूचना देना।'

अपने स्नान-पूजनादि दैनिक कृत्य भी विभीषणने शीघ्र सम्पन्न किये; किंतु राजसभामें वे शीघ्र नहीं जा सकते थे। या तो दशग्रीव बुलाये अथवा अपने नित्यके समयपर जाया जाय। शीघ्रता करनेसे उनपर सन्देह किया जा सकता था।

अपने सदनमें पत्नी तकसे भी उन्होंने कोई चर्चा नहीं की। लेकिन हनुमानकी सुरक्षाके सम्बन्धमें उनका मन तबतक सशङ्क रहा, जबतक उन्होंने सुन नहीं लिया कि अशोकोपवनमें कोई कपि आया है और उत्पात मचा रहा है।

'उत्पात मचा रहा है!' सुनकर विभीषण प्रसन्न भी हुए—सचिन्त भी हुए –'इसका अर्थ है कि हनुमानने अपना कार्य पूरा कर लिया। वे सीताजीसे मिल चुके। लेकिन अब उत्पात करके यह दशग्रीवको सतर्क करना क्यों ?'

'क्या कोई और कपि आया है उनके साथ ? सीताका समाचार उसके द्वारा श्रीरामके समीप भेजकर हनुमान उसकी ओरसे राक्षसों और रावणका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करनेके लिए स्वयंको विपत्तिमें डाल रहे हैं ?' विभीषण रावणकी लंकाके व्यवस्थापक, वास्तविक प्रशासक थे। उनपर व्यवस्था छोड़कर दशग्रीव, मेघनाद आदि या तो दिग्विजय करते घूमते थे या अपनी विलास-क्रीड़ाओंमें लगे रहते थे। अत: परम नीतिज्ञ विभीषण अपनी नीतिज्ञताके अनुसार अनुमान कर रहे थे—'अथवा हनुमानका बल-पराक्रम इतना अनुमानसे परे है कि अपने आराध्य-को युद्ध करने ले आनेसे पूर्व वे दशग्रीव तथा उसके समस्त सहायकोंकी शक्तिका अनुमान कर लेना चाहते हैं। ऐसा हो तो भी आश्चर्य नहीं, क्योंकि दशग्रीवकी पुरीमें कोई अल्पशक्ति एकाकी आनेका साहस ही कैसे कर सकता था।'

हनुमानके बन्दी होनेका समाचार मिलते ही विभीषण अपने मंत्रियों-के साथ दशग्रीवकी सभाके लिए चल पड़े थे।

वैदेही-दर्शन

अशोकोपवनमें प्रवेशके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ा हनुमान-जीको। वे राजभवनके द्वारमें-से पहिलेकी ही भाँति भीतर चले गये। राक्षस प्रहरी भी उनींदे हो रहे थे। भवनके मध्यम कक्षमें गये बिना वाह्य कक्षसे अन्तःपुरकी ओर घूमे तो उद्यानकी परिखा आ गयी। उसपर कूदकर पहुँचनेमें उन्हें क्या कठिनाई थी कि द्वार खुलनेकी प्रतीक्षा करते। स्वर्ण परिखापर एक कोई अंगुष्ठ प्रमाण स्वर्णिम प्राणी भी है, इसे कोई भी लक्षित नहीं कर सकता था।

त्रिकूटके रजत-शिखरसे निकली एक छोटी सरिता नगरमें-से राज-सदनमें आयी है, यह हनुमानजी पहिले देख चुके थे। नगरमें सरिताके दोनों तटोंपर मणि-सोपान थे। सीतान्वेषणमें लगे होनेसे यह ध्यान नहीं गया था कि वह सरिता राजसदनमें नहीं दीखी। अब पता लगा कि वह इस उद्यानमें आयी है। उसके जलको इस प्रकार पहुँचाया गया है कि उद्यानमें बहुत सुन्दर सरोवर, वापी, अनेकों फुहारे स्थान-स्थानपर बन गये हैं।

त्रिभुवनजयी दशग्रीवका वह अत्यन्त प्रिय उद्यान था। वायुदेव उसकी स्वच्छता रखते थे। मेघोंको ठीक समयपर उसकी सिंचाई करते रहना था। उसमें स्वर्गीय उद्यानके पुष्पतरु, लताओंके कुञ्ज और स्वर्णिम पत्रोंके वृक्ष लगे थे। सुस्वादु फलोंके वृक्षोंमें सब ऋतुओंमें पक्व फल मिलते थे। उसके सरोवरमें, बापियोंमें नाना रङ्गोंके कमल थे और रात्रिमें अनेक रङ्गोंकी कुमुदिनियाँ खिली थीं। जल-पक्षी सरोबरमें क्रीड़ा कर रहे थे। क्रौञ्च, चक्रवाक, चकोर, हंस सभी थे। उद्यानके वृक्षोंपर अब कोकिल कुहकने लगी थी। मयूरोंकी केकाध्वनि उठती थी। पपीहे बोल रहे थे। इन्द्र-का नन्दन वन भी इतना सुन्दर नहीं था।

दशग्रीवके अन्तःपुरकी रमणियोंका, रावणका यह क्रीडोपवन था। सशस्त्र राक्षसियाँ ही उसकी देखभाल करती थीं; किंतु उद्यानके बाहर

प्रथम परिखामें बहुतसे राक्षस उद्यान-रक्षक थे। उन्हें चाहे जब पुकारा जा सकता था द्वार खोलकर। सामान्यत: किसी पुरुषका—रावणके पुत्रोंका भी इसमें प्रवेश वर्जित था।

उद्यानके मध्य सरोवरके समीप विशाल मन्दिर था देवीका। उसके तोरण, स्तम्भ, भित्तियाँ—सब मणिजटित स्वर्णसे बनी थीं। सरोवरसे कुछ दूर, उद्यानके एक ओर एक सुन्दर पर्णकुटी भी दीखी और पर्याप्त विशाल शिंशुपा-वृक्ष दीख गया। उस ज्योत्स्ना-धवल रजनीमें उद्यानका सौन्दर्य देखनेका अवकाश नहीं था। शिंशुपा-मूलमें राक्षसियोंसे घिरी श्रीवैदेहीको ज्योति-रेखाके समान देखते ही हनुमान परिखापर-से उद्यानमें कूद गये।

हनुमान एक ओरसे नन्ही गिलहरीके समान दौड़ते गये और उस शिंशुपा-वृक्षपर चढ़ गये। ऊपरसे ही उन्होंने श्रीजनक-नन्दिनीके पावन पदोंमें मन-ही-मन प्रणाम किया। बहुत कठिनाईसे अपने हर्षके वेगको रोक सके। फिर भी अनेक बार अपनी पूँछ चूमी उन्होंने।

'यही श्रीसीता हैं। इन्हींके लिए श्रीराम व्याकुल रहते हैं।' पूरा निश्चय हो गया। वही फटा उत्तरीय, कृशगात्र, अविरल अश्रुधारा, नेत्र-कमल अपने ही पदनखोंपर लगे और पल्लव-अधर हिलते—सम्भवत: आराध्यका नाम जपते। मनमें आया—'धन्य हैं श्रीराम जो इनके बिना जीवित हैं! सृष्टिमें इतना भी सौन्दर्य सम्भव है, यह कल्पनासे परेकी बात है।'

दशग्रीवपर दया आयी। उसकी पट्टमहिषी मन्दोदरी भी इनकी सेविका होने योग्य नहीं; किंतु वह राक्षसाधिप इन अग्नि-शिखामें पतङ्ग होकर भस्म ही हो सकता है। हनुमानने ताराका सौन्दर्य देखा था, जिसमें गरिमा थी, जैसे वह शासनके लिए ही उत्पन्न हुई हो। रूमाका सौन्दर्य, सुकुमार वीरवधूटी जैसा और मन्दोदरीका सौन्दर्य मानों अत्यन्त मादक मदिरा हो; किंतु ये निखिल सृष्टि-सौन्दर्यैकमूर्त्ति—इनके श्रीविग्रहकी ओर तो दृष्टि ही नहीं उठती। इन्हें देखकर मन, शान्त, निर्विकार हो जाता है। दौड़कर इनके श्रीचरणोंमें सिर रख देते थे। हृदय आतुर होता है। ये तो आराध्या हैं। दशग्रीव देख कैसे पाता है इनकी ओर? रामकी शराग्नि अवश्य लङ्काके राक्षसोंकी आहुति चाहती है।

हनुमानको अवसर अपेक्षित था। राक्षसियाँ हटें कहीं तो वे इन आराध्याको प्रणाम करें। इन्हें अपने स्वामीका सन्देश दें। राक्षसियाँ

अनेकों थीं—सैकड़ों और सब भयङ्करा। कोई कङ्कालिनी और कोई घटोदरी। भयानकमुखी, विकराल दंष्ट्रा, कोई बड़े-बड़े गोल नेत्रों वाली, कोई एक छोटे, एक बड़े नेत्रकी, कोई ऐंचातानी, सब प्राय लाल, रूक्ष नेत्रा, उन्मुक्तकेशा, नरकपाल एवं अस्थिके आभूषण पहिने।

'तू राक्षसेश्वरको स्वीकार नहीं करती ! मैं अभी तुझे निगल लूंगी।' कोई मुख फाड़कर जैसे निगलने ही जा रही हो। कोई तलवार नासिकापर रखने लगती थी और कोई भाला या त्रिशूल वक्षसे लगाती थी। बड़ा क्रोध आया यह देखकर हनुमानको। जी चाहता था, कूद पड़ें और एक-एकको उठाकर समुद्रमें फेंक दें।

'रुको सब !' एक उनमें भी सौम्याकृति थी। तीन चोटियाँ बना रखी थीं उसने। काली थी, दीर्घाकार थी, सुपुष्ट थी ; किंतु कुरूपा नहीं कही जा सकती थी। लगता था कि दूसरी राक्षसियाँ उसका तनिक सम्मान करती थीं। उसने केवल हाथका संकेत किया राक्षसेन्द्रके अन्त:पुरकी ओर। सबने उधर देखा और सहमकर दूर चली गयीं। उस त्रिजटाने भी दूर जाते-जाते झुककर श्रीवैदेहीके कानके समीप मुख ले जाकर धीरेसे कहा—'महाराज दशग्रीव आ रहे हैं।'

रावण आ रहा है, यह सुनते ही श्रीमैथिली अपने शरीरको सिकोड़-कर बैठ गयीं। भयसे काँपने लगा उनका श्रीअङ्ग। हनुमानने भी अन्त:पुर-के द्वारकी ओर देखा। दशग्रीव निद्रासे उठकर चला आ रहा था। उसने मुकुट नहीं धारण किया था। केवल कटिमें खड्ग लगा रखा था। उसके पीछे मन्दोदरी तथा दूसरी अनेक रानियाँ चली आ रही थीं। अनेकों राक्षसियाँ हाथोंमें मशाल लिये दोनों ओर चल रही थीं।

'दशग्रीवसे व्यर्थ डरा मत करो !' त्रिजटाने जाते-जाते फुसफुसा-कर कहा था—'वह तुम्हें कभी मार नहीं सकता। उसका हाथ तुमपर नहीं उठेगा और उस अप्सराके शापके कारण किसी नारीपर बल-प्रयोग नहीं कर सकता। उसे अपनेपर ही विश्वास नहीं है, अतः तुम्हारे समीप कभी अकेले नहीं आता। आज भी बहुत-सी रानियोंको साथ लेकर आ रहा है।'

हनुमानने भी त्रिजटाकी फुसफुसाहट सुन ली थी। सचमुच रावण इतनी रानियोंको जगाकर साथ ला रहा था तो कोई अशिष्टता नहीं कर

सकता था। अतः उससे अभी यहाँ संघर्ष नहीं होगा। हनुमान पत्तोंमें छिपकर दृढ़तापूर्वक बैठ गये थे।

'ये लक्ष्मणकी वन्दनीया श्रीराम-भार्या भी दुःखिनी हैं तो काल ही बलवान है।' पत्तोंमें छिपे हनुमान सोच रहे थे—'राम-लक्ष्मणके बल-विक्रमके विश्वासपर ही इनका जीवन बचा है। इनके लिए ही रामने विराध, कबन्ध एवं बालिका वध किया। इनके लिए वे समर्थ पृथ्वी भी पलट दें तो अनुपयुक्त नहीं होगा। सीताकी समता त्रिलोकीका समस्त सौन्दर्य एवं शील मिलकर भी नहीं कर सकता। यहाँ ये कितनी यातना सह रही हैं। राक्षसियोंका यह अहर्निशिका उत्पीडन, ये न पुष्प देखतीं, न फल, न पक्षी—निरन्तर राम-नाम-जप और वे मिलेंगे, इस आशामें जीवित हैं।'

चन्द्रमा पश्चिम चला गया। वे राक्षसियाँ दूर चली गयी थीं, जो सीताको डरा-धमका रही थीं। उनमें एक-कर्णा, कर्णहीना, केशहीना, ठुड्ढी तक लटकते होठवाली, ललाट-नासा, वाराह-कूर्म-सिंह-भैंसे-बकरे या श्वान जैसे मुखवाली थीं। वे वहीं सुरापान करतीं तथा कच्चा मांस खाती थीं। उनके मध्य बिना किसीकी ओर देखे वैदेहीके दारुण विपत्ति-भरे समयकी कल्पना भी करनी सम्भव नहीं। वे चिल्लाती रहती थीं, शूल दिखाती थीं; किंतु सीताका तेज अर्धषित था। लेकिन इस समय उनके हट जानेपर भी वे भयभीत हो गयी थीं।

रात्रिका अन्तिम प्रहर था। लङ्कामें भी ब्रह्मराक्षसोंके द्वारा वेदोच्चारणकी ध्वनि उठी। यद्यपि राक्षसोंको इससे निद्रा ही आती थी, लेकिन रावण उस ध्वनिसे जाग उठा था। वह अभी उनींदा था। बीस बाहु, दस सिर रावणके अङ्गोंमें अङ्गराग लगा था। उसकी रानियोंके नूपुर, किंकिणी, कङ्कणकी झङ्कार आ रही थी। वे सब सर्वाभरणभूषिता थीं। अञ्जन, अङ्गराग, ताम्बूल, पुष्पमाल्यादिसे सज्जिता थीं वे।

रावण समीप आया तो सीताने उरुसे उदर और भुजाओंसे वक्ष छिपा लिया। वे सिकुड़ी, दोनों घुटनोंको भुजाओंसे घेरे, मुख नीचे किये रुदन करती हुई भयसे काँप रही थीं। वे एक वेणी, उलझे केश, ऐसी दीखती थीं जैसे वृक्षसे छिन्न शाखा सूखती जा रही हो।

'सुन्दरि! सर्वलोकमनोहरे! मुझे देखकर तुमने अपने अङ्गोंको छिपा लिया है। यहाँसे भाग जाना चाहती हो। भय मत करो!' दशग्रीव

समीप आ गया। हनुमानने देखा कि उस राक्षसाधिपका साहस भी सीधे श्रीजानकीकी ओर देखनेका नहीं हो रहा है। वह भी नीचे अथवा दिशाओं-की ओर देखता ही बोल रहा है—' राक्षस-धर्म बलात्कारको वर्जनीय नहीं मानता ; किंतु मैंने तुम्हारे साथ कोई बल-प्रयोग कभी नहीं किया। यहाँ दूसरा कोई राक्षस आ नहीं सकता। तुम्हें अपनेसे विरक्ता देखकर मैं स्पर्श नहीं करता ; किंतु मुझमें प्रबल काम है। मैंने अपनेको संयमित करना सीखा नहीं है। दशग्रीवने जो चांहा है, उसे प्राप्त किया है। मलिन वस्त्र धारण करना, पृथ्वीपर बिना आसन बैठना-सोना, संस्कारहीन शरीर रखना तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम स्त्री-रत्न हो। तुम्हारी युवावस्था बीती जा रही है, यह फिर नहीं लौटेगी। त्रिभुवनजयी दशग्रीव तुमसे अनुनय करता है। इसे अपनाकर लङ्काके सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी स्वामिनी बनो।'

' तुम्हारा सौन्दर्य त्रिभुवनमें दुर्लभ है। कौन ऐसा है जो तुम्हें देख-कर धैर्य रख सके। मैं तो तुम्हारे करपल्लव अथवा पादांगुलियोंको देखकर वहाँसे दृष्टि नहीं हटा पाता हूँ।' रावणने अनुनयके साथ प्रलोभन देना प्रारम्भ किया—' तुम कहो तो तुम्हारे पिता जनकको मैं पूरी पृथ्वीका राज्य जीतकर दे दूँ। आज तुम अनुमति दो, ये मन्दोदरी आदि मेरी रानियाँ तुम्हारी सेविका बनकर तुम्हें उबटन लगाकर स्नान करावें। सुन्दर वस्त्राभरण एवं अङ्गरागसे तुम्हें सज्जित करें। जो कहो—वह पदार्थ, मणि-रत्न तुम्हारे लिए प्रस्तुत कर दूँ। तुम्हारे सब भाई-बन्धु सम्पन्न होकर पृथ्वीका राज्य भोगें !'

' तुम यहाँसे छूटकर जा सकोगी, यह आशा त्याग दो।' रावणने डराया—' देवता भी यहाँ आनेका साहस नहीं कर सकते। रामको तुम अब कभी नहीं देख सकोगी। वे सौ योजन समुद्र पार नहीं कर सकते, यह तुम्हें समझना चाहिये। राम तपस्वी हैं। पता नहीं, जीवित भी हैं या नहीं। जीवित भी हों तो अन्तमें उन्हें निराश ही होना है। तुम अब दुःख त्याग-कर लंकाकी स्वामिनी बनो।'

' तुम और तुम्हारा सब वैभव मेरे लिए इस तृणके समान तुच्छ है।' सीताने एक तृण उठाकर अपने और रावणके मध्यमें रख दिया। उस विपत्तिमें भी उनका स्वर सुनकर हनुमान हर्षित हुए। पतिव्रता आर्यनारी-के उपयुक्त स्वर—' राक्षस ! एक अबलाके सामने डींग मारते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? तुमने केवल राक्षसियाँ देखी हैं—सती नहीं देखी। मेरे पिता

तथा श्वसुरके सदनमें भोगोंकी कमी थी कुछ ? मुझे भोगोंका लालच देने-की धृष्टता करते हो ? भूलते हो कि अयोध्याके वैभवको ठुकराकर सीता स्वामीके साथ स्वेच्छासे वन आयी थी।'

'तुम त्रिभुवनजयी हो ? ऐसा ही साहस और शौर्य था तो मेरे स्वामीके सामनेसे मुझे ले आये होते। उनकी अनुपस्थितिमें मुझे उठा लाये चोरके समान और अब सर्पकी भाँति मुझे घेर रखा है ; किंतु मेरे स्वामी गरुड़के समान हैं। वे तुम्हें मारकर मुझे ले जायँगे। तुमने उन बृहद्बाहुके धनुषकी टङ्कार नहीं सुनी। यह सौ योजन सागर उनकी शराग्निमें पलक मारते सूख जायगा। उन नरसिंहोंकी गन्ध भी मिली तो तुम जैसे श्वानोंको भागनेका भी मार्ग नहीं मिलेगा।' सीताका स्वर उत्तरोत्तर ओजस्वी होता गया—'राक्षस ! इस स्वर्णपुरी और अपने स्वजनोंका शत्रु मत बन ! जबतक वे कमललोचन क्रुद्ध नहीं होते, उनकी शरण ग्रहण कर। वे धनुष चढ़ा लेंगे, तब तेरे इन सिरों और भुजाओंको शृगाल ही नोचेंगे। अभी कुछ बिगड़ा नहीं, वे शरणागतवत्सल हैं।'

'मैं जैसे-जैसे समझानेका प्रयत्न करता हूँ, तुम उतनी ही उद्धत होती जा रही हो !' रावण चिल्लाया—'बड़ा क्रोध आता है, तुम कटु-भाषिणी वधके ही योग्य हो। उस मिथ्या तापससे प्रेम करती हो और मुझे कठोर शब्द सुनाती हो ! कान खोलकर सुन लो कि अब केवल दो मासका समय और मैं तुम्हें दे रहा हूँ। इस अवधिमें मेरी बात नहीं मानी तो मेरे रसोइये कलेऊ बनाकर तुम्हें मेरे सम्मुख प्रातराशमें परस देंगे।'

'रावण ! तेरी इतनी रानियोंमें कोई तेरी हितैषिणी नहीं है ? तू दुरात्मा मुझ श्रीराम-भार्याको दुर्वचन कहनेका साहस करता है ?' सीताका स्वर कठोर हो गया। रावणकी गर्जना सुनकर गन्धर्व, सुर, नाग-कन्याएँ जो रानियोंमें थीं, उनके नेत्र सजल हो गये थे। अब मन्दोदरी आदि दैत्य, दानव-कन्याएँ काँप उठीं कि सीता कहीं शाप तो नहीं देने जा रही हैं। लेकिन श्रीजनकनन्दिनी सरोष बोलती गयीं—'अब तेरी मृत्यु निश्चित है। शशकके समान तू तबतक सिंहिनीको कटुवचन कह ले, जब तक इसके स्वामीके शर तेरे सिरोंको इन विषवर्षिणी जीभोंके साथ गिरा नहीं देते। मैं तुझे अभी भस्म कर सकती हूँ। तू भस्म कर देने योग्य है ; किंतु तू स्वामीका आखेट है। तू मेरा हरण कर सकता था ? तू तुच्छ शृगाल ? लेकिन वे समर्थ तुझे मारना चाहते हैं, अतः उन्होंने यह बहाना बनाया है।'

'मैं अभी तुझे मार देता हूँ।' रावणने खड्ग खींच लिया। उस त्रिभुवनजयीको कोई इस प्रकार दुत्कार सकता है? उसकी रानियोंके सम्मुख उसे इतने कठोर वचन कोई कहे?

'स्वामी! आप मेरी ओर—मेरे सिन्दूरकी ओर देखें!' मंदोदरीने रावणके दाहिने पैरको दोनों करोंसे पकड़ लिया। मयतनयाके नेत्रोंसे अश्रु-धार चल पड़ी। भयसे उसका उत्तरीय गिर पड़ा था। ऊपर मुख उठाये कातर कण्ठ बोली—'वह अत्यन्त भयंकरी है। उसे शाप देनेके लिए जल-की भी आवश्यकता नहीं होगी!'

'अच्छा, तुम उठो!' रावणका स्वर शान्त हो गया। खड्ग कोशमें रखकर पट्टमहिषीको स्नेहपूर्वक उसने उठाया। दानव विश्वकर्मा, त्रिपुर-निर्माता, मायावी मुकुटमणि मयकी दुहिताका सम्मान करता था दशग्रीव। मंदोदरीकी उपेक्षा नहीं कर सकता था।

'एकाक्षी! एककर्णा, अश्वपादा! हस्तिपादा, अपादिका! शूकरमुखी! अनासिका! व्याघ्रमुखी!' रावणने राक्षसियोंको पुकारा। समीप आयीं वे दौड़ीं तो आदेश दिया—'ऐसा प्रयास करो कि सीता शीघ्र मेरे वश हो जाय। जो सफल होगी, उसे प्रचुर पारितोषिक मिलेगा।'

'उस कृशा, विवर्णा, विमुखा सीतामें धरा क्या है।' रानियोंमें-से प्रगल्भा धान्यमालिनीने दशग्रीवके कण्ठमें भुजाएँ डाल दीं—'वह आपके उपयुक्त नहीं है। आप मेरे साथ विहार करें।'

दशग्रीवको हँसी आ गयी। वह रानियोंसे घिरा लौट पड़ा। उसके पीठ फेरते ही राक्षसियोंने सीताजीको घेर लिया। हरिजटा विडालाक्षी बोली—'सृष्टिकर्त्ताके मानसपुत्र महर्षि पुलस्त्यके यशस्वी पौत्र रावणको तुम अस्वीकार करती हो तो मार दी जाओगी।'

'तुम लोग ऐसी बातें क्यों करती हो। मुझे मार डालो।' सीताने रुदन करते कहा—'मैं मानुषी राक्षसियोंकी सपत्नी नहीं बन सकती। तुम मुझे खा लो। मेरे पति चाहे जैसे हैं, मैं उनकी ही हूँ, जैसे अनुसूया अत्रि की।'

राक्षसियाँ—'हम फिर राक्षसेन्द्रको बुलाती हैं।'

हनुमान पत्तोंमें छिपे क्रोधसे दाँत पीसने लगे। सीताजी खड़ी हो

गयीं। उन्होंने शिंशुपाकी एक शाखा पकड़ ली। चण्डोदरी, प्रघसा, अजामुखी उन्हें डाँटने तथा समझाने लगीं—'तेरी बुद्धि मारी गयी है? राक्षसेन्द्रके अन्तःपुरका दास्य दुर्लभ है शचीको और वे तुझे साम्राज्ञी बनानेको उद्यत हैं!'

'मेरे स्वामी! मेरे आराध्य! मेरे जीवनको धिक्कार है कि मैं ऐसी बातें सुनकर भी मर नहीं जाती हूँ। मुझे मृत्यु दे दो!' श्रीजनकनन्दिनी भूमिपर पड़कर छटपटाने लगीं—'मुझे रावण मार देता तो उत्तम था। मेरा हृदय वज्रका बना है जो ऐसे क्लेशमें भी फट नहीं जाता' राक्षसियो! मुझे काटो, मारो या खा डालो, मैं बाएँ पैरसे भी रावणका स्पर्श नहीं करूँगी। मैं उस क्रूर, निर्दयको कभी स्वीकार नहीं करूँगी। तुम मुझे अग्निमें भूनकर या कच्ची ही खा लो। मेरे सर्वस्व श्रीराम हैं। वे दयालु हैं, समर्थ हैं, यह मेरा ही कोई दोष है जिससे वे मेरी रक्षा करने नहीं आते! विराधको जिन्होंने मार दिया, वे मेरे नाथ मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? मेरे स्वामी! आप तो वहाँसे भी बाण चढ़ाकर लंकाको ध्वस्त कर सकते हैं, इस किंकरीको क्यों भूल गये? अवश्य उन्हें पता नहीं है। वे मेरी दुर्दशा जानते तो शान्त बैठे नहीं रह सकते थे। तात गृद्धराजने इस हतभागिनीके लिए देहत्याग दिया। कोई श्रीरामसे मेरी दशा सुनाने वाला भी नहीं है। उन्हें पता हो जाय तो समुद्र सुखाकर वे अवश्य मेरा उद्धार करेंगे।'

'हाय! कोई मुझे विष देनेवाला भी नहीं मिलता। मैं मरना चाहती हूँ।' श्रीवैदेहीकी व्याकुलताकी सीमा नहीं थी—'मेरे स्वामीको कल्पना भी नहीं होगी कि उनके वियोगमें जानकी इतने दिनों जीवित रहेगी। कहीं मेरे वियोगमें उन्होंने शरीर न छोड़ दिया हो; किंतु वे तो सर्वज्ञ हैं, परमपुरुष हैं। उन धर्मके परमाधारने मुझमें ही कोई दोष देखा, इसलिए मेरी ओरसे उदासीन हो गये हैं। उनके बिना मेरा मरना ही श्रेष्ठ है।'

'मेरी ओरसे उदासीन होकर उन अक्लिष्ट कर्माने संन्यास तो नहीं स्वीकार कर लिया? दारुण दशग्रीवने उन दोनों भाइयोंका कोई अनिष्ट किया?' नाना प्रकारकी शंकाओंसे हृदय मथित होने लगा। 'जो प्रिय-अप्रियमें सुखी-दुःखी नहीं होते, उन महापुरुषोंको मेरा नमन। अब मेरा तो मरण ही श्रेयस्कर है।'

'यह नहीं मानेगी ! इसे मार दो !' राक्षसियाँ क्रुद्ध हो गयीं। उन्हें भय भी लगा—'यह मर गयी तो राक्षसेन्द्र हममें एकको भी जीवित नहीं छोड़ेंगे। उन्हें शीघ्र समाचार दो ! यह मरने जा रही है।'

'मेरी बात सुनो !' तभी भूमिमें लेटी वृद्धा त्रिजटा घबड़ाकर उठी। उसने सबको पुकारा—'मूर्खाओ ! तुम सीताको खा नहीं सकतीं। मैंने अभी-अभी स्वप्न देखा है, उसके अनुसार राक्षसोंका विनाश निश्चित है और सीताका कल्याण आसन्न है।'

'स्वप्न ? अभी सबेरेके समयका स्वप्न ! इस समय देखा गया स्वप्न सत्य होकर रहता है।' राक्षसियोंने त्रिजटाको घेर लिया—'क्या देखा है तुमने ?'

'मैंने देखा है कि गजदन्त पालकीमें सहस्र हंस जुड़े हैं। उसमें श्वेत-वस्त्र, श्वेतमाल्यधारी श्रीराम-लक्ष्मण सीताके साथ बैठे हैं। वह पालकी श्वेत पर्वतपर उतरी।' त्रिजटाने अपना स्वप्न सुनाया—'आकाशसे चतुर्दन्त श्वेतगज उतरा। उसपर-से उतरकर रामने जानकीको उसपर बैठा लिया। सीताने पतिकी गोदसे उठकर अपने करोंसे सूर्य और चन्द्र दोनोंका मार्जन किया। श्रीरामने हाथसे पकड़कर सूर्य-चन्द्र दोनों सीताको दे दिये। श्वेत वृषभोंके रथपर बैठकर सीता राम-लक्ष्मणके साथ पुष्पक विमान तक गयी। तीनों उसपर बैठकर उत्तर चले गये।'

'सीताका उद्धार निश्चित है। राम इसे अवश्य ले जायँगे।' सब राक्षसियाँ सशंक बोलीं--'दशग्रीव भी दीखे स्वप्नमें तुम्हें ?'

'मुझे भूमिमें तेलसे भरे गड्ढेमें स्नान करता दशग्रीव दीखा। उसने लाल वस्त्र पहिने थे। रक्त कनैरके पुष्पोंकी माला थी गलेमें। सुरापान कर रहा था। मुण्डित मस्तक था।' त्रिजटाने सुनाया—'उसे काले वस्त्र पहिनाकर एक भयानक काली स्त्री भूमिमें घसीटने लगी। वह कूदा तो सिरके बल गिरा।' गर्दभोंसे जुड़े रथमें बैठकर दक्षिण भागा। रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद अपने सब पुत्र-पौत्र-स्वजनोंके साथ चिल्ला रहे थे। उन्हें मकर, वाराह निगल रहे थे।'

'मैंने केवल विभीषणको श्वेत गजपर श्वेत छत्र लगाये देखा।' त्रिजटा उन भयातुरा राक्षसियोंको स्वप्नका शेषांश सुना गयी—'सब राक्षसियोंको—रावण, मेघनादादि सबकी पत्नियोंको मैंने मुण्डित मस्तक

विधवा-वेशमें देखा। अन्तमें एक सुनहला वानर आया और वह लङ्कामें अग्नि लगा रहा था, तभी मैं चौंककर उठ गयी।'

'ओह! अरुणोदय हो रहा है।' त्रिजटाने आकाशकी ओर देखा—'इसका अर्थ है कि वह स्वप्नमें देखा वानर चार दिनके भीतर आवेगा और लंका जलाकर रहेगा।' त्रिजटाने भयसे मूक बनी राक्षसियोंसे कहा—'भूल जाओ रावणको। अपनी कुशल चाहो तो सीताको प्रणाम करके इनकी शरण लो। इनसे क्षमा माँगो। विपत्ति सिरपर समझो। ये जानकी ही प्रसन्न हों तो तुम्हें महाभयमें बचा सकती हैं। देखो! देखो! इन श्रीराम-भार्याकी वाम भुजा फड़क रही है।'

'त्रिजटाने मुझे देख लिया है?' श्रीहनुमान सोचने लगे—'अथवा यह स्वप्न सुना रही है? मैं सचमुच इन राक्षसियोंके लगभग सिरपर ही तो हूँ।'

'देवि! आप हमें क्षमा करना। हम तो राक्षसाधिपकी दासियाँ हैं। उनके आदेशकी वशवर्तिनी दासियाँ।' राक्षसियोंने भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया—'अब आप तनिक विश्राम कर लें! हम सब भी शयन करने जाती हैं।'

'त्रिजटे! तुम मेरी धर्ममाता हो। तुमने अनेक बार मुझे आश्वासन दिया है। मुझे समय-समयपर बचाया है।' सीताने हाथ जोड़कर त्रिजटासे अत्यन्त कातर होकर प्राथना की—'थोड़ी और सहायता कर दो मेरी। मैं अब जीवन-धारणमें असमर्थ हो गयी हूँ। अब सहा नहीं जाता। तनिक-सा विष अथवा अग्नि मुझे दे दो। मैं देहत्याग करूँगी।'

'राजकुमारी! विष तो लंकामें केवल हम राक्षसोंकी वाणी और हृदयमें है।' त्रिजटाने कहा—'तुम नहीं जानती हो कि यह सूर्योदयका समय हमारा शयनकाल है। इस समय कहीं अग्नि सुलभ नहीं। अब तुम मुझे भी विश्राम करनेकी अनुमति दो।'

जाते-जाते दूरसे त्रिजटाने घूमकर सीताकी ओर देखा तो उसे लगा कि वृक्षपर कोई छोटा सुनहला पक्षी बैठा है। वह सीताको देख-देखकर प्रसन्न हो रहा है और उन्हें मधुर स्वरमें आश्वासन दे रहा है। त्रिजटा इससे प्रसन्न हुई और अपने घर चली गयी।

'यह सीताका अभाग्य कि स्वर्णमृण देखकर मैं लुब्ध हुई और आर्य-पुत्रको उसके पीछे भेजा !' सीताजीने भी मधुर वचन कहते हनुमानको वृक्षपर देखकर पहिले पक्षी ही समझा—'अब यह स्वर्णिम पक्षी छलना बनकर आया है !'

'मेरी वेणी तो पर्याप्त बड़ी है। मैं इसीको कण्ठमें लपेटकर शाखासे लटकी जाती हूँ।' हाथमें वेणी लेकर वे भुवन-वन्दनीया उठीं शाखामें लपेटने, तभी वाम भुजा और नेत्र फड़के—'यह अंग-स्फुरण ! यह तो शुभ-सूचक है। मुझ भाग्यहीनाका क्या शुभ होने वाला है ?'

'मैं श्रीरामका दूत बनकर आया। अम्बा जानकीका दर्शन मैंने कर लिया ; किन्तु इतनेसे मेरा कर्तव्य पूरा हो गया ?' वृक्षकी शाखापर बैठे हनुमान सोच रहे थे—'इनको आश्वासन देना चाहिये। इन्होंने देह त्याग दिया तो सब प्रयत्न ही व्यर्थ हो जायगा। इनसे बात करके ही स्वामीको सन्देश दे सकूँगा। अब ये अत्यल्प क्षण ही शेष हैं, किन्तु मैं छोटा वानर हूँ। संस्कृत बोलूँ तो ये मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायँगी। वानर-भाषा ये जानती नहीं। मुझे ऐसा करना है कि ये डरें नहीं। इन्हें सुख हो। इन्हें मुझपर विश्वास हो।'

'सूर्यवंशमें अयोध्या-नरेश महाराज दशरथ अत्यन्त प्रतापी हुए। लेकिन अपनी रानी कैकेयीके कहनेसे अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको उन्होंने चौदह वर्षके लिए वनमें भेज दिया।' हनुमान इतने नीचे उतर आये, जहाँ-से धीरे बोलनेपर भी श्रीजानकी सुन सकें। मधुरवाणीमें, मानव-प्राकृत भाषामें बोलने लगे—'उनके प्रेमवश उनके अनुज लक्ष्मण तथा भार्या सीता भी साथ वनमें आयीं। चित्रकूटमें भाई भरतके आनेपर भी धर्मज्ञ राम अयोध्या नहीं लौटे। भार्या तथा अनुजके साथ दक्षिण बढ़े तो मार्गमें दानव विराधको उन्होंने मारा। अनेक वर्षों तक दण्डकारण्यके मुनियोंके आश्रमों-में सत्कृत होते घूमते रहे।'

'श्रीरामने गोदावरी-तटपर पञ्चवटीमें पर्णकुटी बनायी। तब दशग्रीवकी दुरात्मा बहिन शूर्पणखा वहाँ पहुँची। उसकी दुष्टताके कारण लक्ष्मणने उसकी नाक और कान काट दिये।' श्रीजानकीके मानो प्राण श्रवणोंमें आ गये थे। वे निस्पन्द सुन रही थीं। 'शूर्पणखाकी सहायता करने आकर खर-दूषण-त्रिशिरा चौदह सहस्र राक्षसोंके साथ रामकी

शराग्निमें स्वाहा हो गये। लेकिन शूर्पणखाके उभाड़नेपर दशग्रीव मायावी मारीचको लेकर पञ्चवटी पहुँचा। स्वर्णमृग बनकर मारीच श्रीरामको दूर ले जानेमें सफल हो गया और उसने कातर कण्ठसे लक्ष्मणको भी पुकार लिया। दोनों भाइयोंकी अनुपस्थितिमें दशग्रीवने राम-भार्याका हरण किया। गीधराज जटायु सीताकी रक्षामें रावण द्वारा मार दिये गये।'

'मारीचको मारकर श्रीराम लौटे। मार्गमें ही लक्ष्मण मिल गये। भार्या-रहित पर्णकुटी देखकर वियोग-व्याकुल राम भाईके साथ बनमें भटकने लगे।' हनुमानजी मधुर स्वरमें संक्षिप्त कथा सुना रहे थे। इतनी कथा सीताजी भी जानती थी अथवा अनुमानमें आ सकती थी। वे अत्यन्त उत्सुक हो उठीं और बोल पड़ीं—'मेरे कर्णोंमें अमृत उँडेलनेवाले मेरे अदृश्य हितैषी ! आप कौन हैं जो इस भाग्यहीना विवशापर कृपा करने पधारे हैं ? सम्मुख क्यों नहीं आते ? मैं आपको देखने और आगेका वृत्त जाननेको उत्सुक हूँ।'

सीता इधर-उधर देख रही थीं। वृक्षकी ओर ऊपर देखा तो हनुमान दीख गये। व्याकुल हो गयीं—हाय ! हाय ! मैं स्वप्नमें वानर देख रही हूँ ? स्वप्नमें वानर-दर्शन तो बड़ा अशुभ है। अनुजके सहित स्वामीका मंगल हो ! यदि मैं सत्य देख रही हूँ, सचमुच कोई बानर वृक्षपर है तो वह सामने आ जाय !'

मूँगेके समान लाल मुख, स्वर्ण वर्ण, बद्ध-कच्छ हनुमान वृक्षसे उतरे। हाथ जोड़कर भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया—'अम्ब ! मैं श्रीरामदूत, पवनपुत्र हनुमान आपके पादपद्मोंमें प्रणाम करता हूँ। आप तेजोमयी अपनी तपस्या, रुदनसे श्रीराम-भार्या ही लगती हैं।'

'सचमुच यह भाग्यहीना महाराज दशरथकी पुत्रवधू, जनकपुत्री, राम भार्या सीता है।' सशङ्क सीताने मुख दूसरी ओर करके कहा—'लेकिन तुम सत्य कहो, कौन हो ? मुझ दुःखियाको माया करके ठगनेकी अपेक्षा अच्छा है कि मार ही डालो।'

'मैं सत्यकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं करुणा-निधान श्रीरामका दूत हूँ।' हनुमानने हाथ जोड़कर कहा—'वानरेन्द्र सुग्रीवने आपका पता लगाने लक्ष-लक्ष वानर दिशाओंमें भेजे हैं। उनमें-से मैं हनुमान समुद्र पार कर यहाँ आया और आपके श्रीचरणोंके दर्शन करके आज मेरा जन्म सफल हो गया।'

'वानरेन्द्र सुग्रीव—उन्होंने इतना कष्ट क्यों किया ?' सीताजीका सन्देह दूर नहीं हुआ—'श्रीराम मानवोत्तम हैं। वानरेन्द्रसे उनका परिचय कैसे हुआ ?'

'आपका अन्वेषण करते वनमें भाईके साथ भटकते श्रीरामको आहत पक्षिराज जटायु मिले। उन्होंने श्रीरामके अंकमें ही शरीर छोड़ा। उनकी अन्त्येष्टि अपने हाथों सम्पन्न करके कमल-लोचन श्रीराम आगे बढ़े।' हनुमानने अधूरी छोड़ी कथा पूरी की—'मार्गमें दानव कबन्ध मिला। उसे मारकर श्रीरामने शाप-मुक्त किया तो उसने उन्हें तपस्विनी शवरीके समीप भेजा। शबरीसे समाचार पाकर दोनों भाई पम्पासरोवर पहुँचे।'

'आपको स्मरण होगा कि आपने अपना यह उत्तरीय फाड़कर उसमें आभूषण बाँधकर ऋष्यमूक शिखरपर बैठे पाँच वानरोंको देखकर फेंका था।' हनुमानने बतलाया—'अपने अग्रज बालि द्वारा निर्वासित सुग्रीव वहाँ ऋष्यमूकपर उन दिनों रहते थे। मैं और अन्य तीन मन्त्री उनके साथ वहाँ थे। श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर पहिले सुग्रीव डरे। मैं दोनों भाइयोंका परिचय लेने गया। परिचय पाकर उन्हें शिखरपर ले आया। श्रीरामने अग्निकी साक्षीमें सुग्रीवको मित्र बनाया। इस मैत्रीके पुरस्कारमें वालिको मारकर उन्हें किष्किन्धाका राज्य दिया। सुग्रीव श्रीरामके बनानेसे वानरेन्द्र हुए। अब उन्होंने प्रत्युपकारमें आपका पता लगाने वानर भेजे हैं। जटायुके बड़े भाई सम्पातीने समुद्र-तटपर आपका पता दिया, इससे मैं यहाँ आ सका।'

'ओह, सत्य है कि मनुष्य जीवित रहे तो सौ वर्ष पर भी उसे अभीष्ट मिलता है।' सुप्रसन्ना जानकी तनिक आश्वस्त हुईं। हनुमान चरण-स्पर्श करने बढ़े तो डरकर सशंक हो गयीं—'तुम कहीं मायावी रावण तो नहीं हो ? लेकिन तुम्हें देखकर मेरा चित्त प्रसन्न होता है। तुमने श्रीरामको देखा है ? वे कैसे हैं ? सकुशल हैं ? कैसे रहते हैं ? उनके शरीर-चिह्न क्या हैं ?'

'अम्ब ! वे कमल-लोचन, विशाल-स्कन्ध, वृहद्-वक्ष, प्रलम्बबाहु, क्षीण-कटि, कम्बु-कण्ठ, पद्म-पाद, अरुण-कर-नेत्र-अधर श्रीरामकी कुशल यह आपके श्रीचरणोंका सेवक क्या कहे ?' हनुमानने हाथ जोड़कर कहा—'वे मत्त-गयन्द-गति, मेघ-गम्भीर-स्वर, परम-कृपालु, अमित-पराक्रम, परमोदार आपके वियोगमें व्याकुल अपने श्रीअङ्गपर बैठे दंश-मशक भी

नहीं उड़ाते। उनको आपकी स्मृति निरन्तर व्याकुल रखती है। उन्होंने अपनी यह मुद्रिका आपको पहिचानके लिए प्रदान की है।'

हनुमानने मस्तकके केशोंमें-से निकालकर वह ज्योतिर्मयी मुद्रिका दोनों हाथोंमें लेकर आगे बढ़ा दी। श्रीजानकीने एक बार आश्चर्यसे मुद्रिकाकी ओर देखा और आतुरतापूर्वक उठा लिया। उस राम-नामांकित मुद्रिकाको उन्होंने नेत्रोंसे, मस्तकसे लगाकर वक्षपर दोनों करोंसे दबा लिया। उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा। शरीरसे स्वेद-धारा और नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चलने लगा। उनका श्रीअङ्ग काँपने लगा। अनेक क्षणों तक वे नेत्र बन्द किये निस्पन्द बनी रहीं।

'वत्स हनुमान! तुम सचमुच मेरे स्वामीके दूत हो।' आर्द्रकण्ठ कुछ देरपर बोली—'मैं क्या दूँ तुम्हें? इस उपहार एवं सन्देशकी समता तो त्रिभुवनमें है नहीं। सीता सदा तुम्हारी ऋणी रहेगी। तुम अजर, अमर, समस्त सद्‌गुणोंके धाम हो जाओ!' वे आद्या महाशक्ति आशीर्वाद दिये चली जा रही थीं—'समस्त सिद्धियाँ तुम्हारी सेवा करें। तुम जहाँ भी निवास करो, सदा-सर्वत्र सब भोग तुम्हारे समीप उपस्थित रहें। तुम्हारे स्मरणसे लोगोंके संकट-अरिष्ट शमित हों। श्रीराघवेन्द्र तुमपर सदा सानुकूल रहें। तुम दूसरोंको राम-भक्ति सुलभ करनेमें समर्थ रहो।'

'अम्ब! आज मेरा जीवन धन्य हो गया।' हनुमान गद्‌गद साष्टाङ्ग पड़ गये उनके पादपद्मोंमें—'आपके श्रीचरणोंके दर्शनसे आज मैं कृतकृत्य हो गया। अब आप अपनेको आश्वस्त करें।'

'वत्स! दुष्ट दशग्रीवने केवल दो मास मेरी जीवनावधि निश्चित की है।' फिर व्याकुल हो गयीं वैदेही—'मैं अपने आराध्यके श्रीचरण देख सकूँगी? वे सकुशल भी हैं? और उनके अनुजने मुझ अपराधिनीको क्षमा कर दिया है?'

'मेरे अनन्त दयार्णव स्वामी श्रीराम सकुशल हैं। वे केवल आपके वियोगसे व्याकुल हैं। उनके अनुज लक्ष्मण सदा श्रद्धा-सहित आपका स्मरण करते हैं।' हनुमान हाथजोड़े कह रहे थे—'अम्ब! यदि आपका पता श्रीरामने पाया होता तो वे क्या विलम्ब करते? अब वे वानरोंकी विपुल वाहिनी लेकर शीघ्र आवेंगे। दुष्ट दशग्रीवकी बात मैंने सुन ली है; किन्तु स्वयं उसका जीवनकाल अब दो मास नहीं रहा है।'

'वत्स ! तुमने महाकाय राक्षसोंको देखा नहीं है।' श्रीमैथिलीके मुखपर उस विपत्तिमें भी हनुमानके आकारको देख कर मन्दस्मित आया—'तुम्हारा उत्साह प्रशंसनीय है ; किन्तु सब बानर तो तुम्हारे समान ही आकारवाले होंगे ? वे यहाँ आकर राक्षसोंका क्या कर लेंगे ?'

'इन्हें आश्वस्त करके ही जाना उत्तम है।' हनुमानने मनमें कहा और बोले—'अम्ब ! यह मेरा वास्तविक आकार नहीं है। यह आकार तो मैंने आपका अन्वेषण करनेके लिए धारण किया है। आप मेरा वास्तविक आकार देख लें।'

जैसे स्वयं सुमेरु उतर आया हो—प्रचण्ड गगनव्यापी आकार। भयङ्कर मुख, सूर्यमण्डलतक उठी लगती लांगूल, मानो समस्त लङ्का मुखमें डाल लेनेको उद्यत प्रलयङ्कर प्रकट हो गये हों। लंकामें कठिनाईसे कुम्भकर्ण उनके कन्धे तक आ सके इतने विशाल और उग्रतेजा पौरुषकी प्रत्यक्ष मूर्ति पवनात्मज दूसरेही क्षण पुनः लघुकाय वानर बने हाथ जोड़े विनम्र खड़े बोले—'सुग्रीवके सेवकोंमें यह क्षुद्र दूत आपके श्रीचरणोंमें पहुँचनेसे पूर्व प्रायः पूरी लंका देख चुका है। मैंने सभी प्रधान राक्षसोंको देखा है।'

'पुत्र ! तुम समर्थ हो, बुद्धिमान हो ; किंतु, श्रीजानकीके अश्रु बारबार लौटते थे—'तुमने मेरी दारुण दशा देखी है। मेरे लिए क्षण-क्षण मृत्यु तुल्य कष्ट देनेवाला है। तुम प्रभुसे प्रार्थना करना कि वे इस किंकरी पर कृपा करके शीघ्र पधारें।'

'आप मेरे कन्धे पर बैठ जायँ ! मैं अभी आपको श्रीरामके समीप ले चलता हूँ।' हनुमान कुछ बड़ा आकार बनाकर हाथ जोड़कर सम्मुख बैठ गये।

'तुम बलवान हो, बुद्धिमान हों; किंतु बानरबुद्धि हो। तुम मुझे लेकर चलोगे तो रावण तुम्हें ऐसे ही जाने देगा! राक्षसोंसे—इन्द्रजित और दशाननसे युद्ध नहीं करना पड़ेगा तुम्हें ? युद्धके समय तुम संग्राम करोगे या मुझे सम्हालोगे ?' सीताजीने स्नेहपूर्वक कहा—'तुम मेघनादके दिव्यास्त्रोंसे आधे क्षणको भी मूर्छित होगये या युद्धमें लगनेसे मेरी ओरसे ध्यान हटा तो मैं तो समुद्रमें गिरकर डूब ही जाऊँगी।'

'वत्स! मान लो यह कुछ भी न हो, फिर भी मैं स्वेच्छासे तो परपुरुषका स्पर्श कर नहीं सकती। दशग्रीवने हरण किया तो मैं विवश थी। तुम्हारे

स्कन्ध पर मैं स्वयं बैठूं, यह उचित नहीं है। अत्यन्त स्निग्ध वात्सल्य-भरे स्वरमें सीताजीने समझाया —'स्वामी स्वयं आकर मेरे अपहरणकर्त्ताको दण्ड दें और मेरा उद्धार करें, इसीमें उनकी शोभा और सुयश है। तुम्हें उनके यशको समुज्वल करनेवाला बनना चाहिये !'

'धन्य अम्ब ! अन्ततः आप मेरे लोकाराध्य स्वामीकी सहधर्मिणी हैं।' हनुमानका स्वर श्रद्धा-विभोर हो उठा—'इस दारुण दशामें, ऐसी असह्य विपत्तिमें भी अपने कष्टको भूलकर केवल स्वामीके सुयशकी चिन्ता करनेवाली आपके अतिरिक्त त्रिभुवनमें दूसरी कोई सती न कभी हुई, न हो सकनेकी सम्भावना है।'

सूर्योदय हो चुका था; किंतु राक्षसोंके तो शयनका—प्रगाढ़ निद्राका यही काल था। अतः हनुमानके विशाल आकारको किसीने देखा नहीं था। श्रीजानकीसे वार्तालापका भी उन्हें समुचित समय मिल गया था।

'हनुमान! तुमने अद्‌भुत कार्य किया है। समुद्र-लङ्घन करके एकाकी राक्षसोंकी पुरीमें आये हो।' सीताजीने प्रशंसाकी—'मेरे स्वामी बिना बल-विक्रम जाने किसी अपरिचितको मेरे समीप नहीं भेज सकते। वे बहुत व्याकुल तो नहीं हैं? पुरुषार्थ-तत्पर तो हैं ? अपने मित्रों-को प्रिय हैं ? तुम राक्षसोंके सिरपर पैर रखकर यहाँ आये हो। अयोध्याका कुछ समाचार है तुम्हें ? भरतको मेरे अपहरणका पता लगा ? वे सेना भेजेंगे ? राज्य त्यागनेपर भी जिनका धैर्य अभंग रहा, वे मेरे स्वामी परम धर्मात्मा हैं, उनका धैर्य भङ्ग तो नहीं हुआ ?'

'अम्ब ! अयोध्या समाचार देना अनावश्यक है। श्रीरघुनाथ स्वयं समर्थ हैं और उनकी सेवामें वानरेन्द्र सुग्रीव असंख्य वानरोंको लिये हैं। सब उनके लिए प्राण देनेको प्रस्तुत हैं।' हनुमानने बतलाया—'अभी तक आपका समाचार मिला नहीं था। श्रीराम कभी भग्नोत्साह हो सकते हैं ? वे आपके लिए अत्यन्त व्याकुल हैं। उन्हें आया ही समझें। यह राक्षसपुरी विनष्ट होकर रहेगी।'

'वत्स ! युद्ध अनिवार्य है; किंतु तुम रावणके अनुज विभीषणका ध्यान रखना। उनकी पत्नी सरमा कभी-कभी मेरे समीप आती हैं। उनकी पुत्री अनलाने मुझे बतलाया कि विभीषण बार-बार रावणको समझाते हैं मुझे लौटा देनेको; किंतु वह दुष्ट मानता नहीं।' सीताने कहा—'मेरे

कारण विभीषण अनेक बार तिरस्कृत हुए हैं। वे सत्पुरुष हैं। युद्धमें उनका कोई अनिष्ट नहीं होना चाहिये।'

'अम्ब ! मैं उन महानुभावसे मिल चुका हूँ। मुझपर उनका असीम उपकार है।' हनुमान भाव-भीने हो गये—'उनकी अनुकम्पासे ही मुझे आपका पता प्राप्त हुआ। वे तो प्रभुके प्रियजन हैं।'

'स्वामीको स्मरण दिलाना कि चित्रकूटमें मुझपर तनिक प्रहार करनेवाले काक बने शक्रसुतपर उन्होंने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर दिया था।' विह्वल हो गयीं वैदेही—'वह प्रीति क्यों विस्मृत हो गयी कि राक्षस मुझे उठा लाया, यन्त्रणा दे रहा है और आप उसे अबतक क्षमा कर रहे हैं।'

'हनुमान ! कहना कि उन-सा नाथ पाकर भी सीता आज अनाथा हो रही है। इस राक्षसके वधार्थ क्या अब त्रोणमें बाण नहीं रहे ? सुरासुर, किन्नर, नाग किसीमें सामर्थ्य है कि आपके सरोष होनेपर समरमें सम्मुख ठहरे।' सीता व्याकुल हो गयीं।

'मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि श्रीराम आपको विस्मृत नहीं हुए हैं। आपके दुःखका कारण विस्मरण नहीं है।' हनुमान उठ खड़े हुए—'अब वे इस विपत्तिका अन्त करने शीघ्र आवेंगे।'

'हनुमान! उन कौसल्यानन्दवर्धन लोकभर्त्ताके चरणोंमें मेरी ओर-से सिर रखकर प्रणाम करना।' सीताजीने समझा कि हनुमान जा रहे हैं तो कहना प्रारम्भ किया—'परमोदार लक्ष्मणको भी मेरा प्रणाम करके कहना, वे इस कटुभाषिणी दीना, विपत्तिमें पड़ी अनाश्रयाके अपराधको क्षमा कर दें और इसके उद्धारके लिए सचेष्ट हों।'

'आप विश्वास करें, मेरे पहुँचते ही प्रभु प्रस्थान करेंगे।' हनुमान-ने आश्वासन दिया।

'इसे मेरे स्वामीको देना।' श्रीजानकीने चूड़ामणि उतारकर दी—'मेरे सौभाग्य वे ही हैं। सीताका सर्वस्व, जीवन उनके करोंमें है। यदि वे अवधि रहते न आये तो इस दासीको जीवित नहीं पावेंगे।'

हनुमानने चूड़ामणि अञ्जलि फैलाकर आदरपूर्वक ली और अपने केशोंमें वैसे ही सावधानीसे सुरक्षित कर ली जैसे पहिले आते समय मुद्रिका-को लाये थे।

'वत्स ! तुम आये तो जैसे शुष्क होती कृषिको वर्षाका जल प्राप्त हुआ। मुझ मरणासन्नाको अमृत बनकर तुमने उज्जीवित किया ; किंतु अब तुम भी जाना चाहते हो।' अत्यन्त दुःखी होकर वैदेही बोल रही थीं—'तुम्हें रोक नहीं सकती। दिनका प्रकाश फैल चुका है। थोड़ी देरमें राक्षस जाग जायँगे। उनके जागनेसे पूर्व तुम प्रस्थान करो तो तुम्हारा मार्ग निर्विघ्न रहेगा।'

'मेरे आराध्यको स्मरण कराना कि काकपर ब्रह्मास्त्र-प्रयोगसे पूर्व उन्होंने मेरे कपोलोंपर मनःशिलासे पत्र-रचना की थी।' श्रीसीताने रुदन करते कहा—'मैं उन्हीं स्नेहपूर्ण करोंका स्मरण करती किसी प्रकार एक मास और यहाँ इन राक्षसियोंकी दारुण यातना सह लूँगी। इस अवधि-में स्वामी नहीं आये तो मैं अवश्य शरीर त्याग दूँगी।'

'इनके मनमें राक्षसोंका भय जमकर बैठ गया है। उसे दूर किये बिना जाना उचित नहीं है।' हनुमान मस्तक झुकाये सोचने लगे—'मैंने रात्रिमें लङ्का देखी अवश्य ; किंतु मेरा ध्यान तो इन अम्बाके अन्वेषणमें लगा था। इस पुरीको अच्छी प्रकार देखा जाना चाहिये।' दशग्रीवकी शक्तिका भी अनुमान करना चाहिये मुझे और यदि सम्भव हो तो आगामी अवश्यम्भावी संग्राममें स्वामीको सुविधा हो, शत्रु आतङ्कित रहें, ऐसा भी कुछ करके ही जाना चाहिये।'

वाटिका-विध्वन्स

'अम्ब ! मैं समुद्र पारसे चला, तब भी उपोषित ही था और आपके अन्वेषणमें पूरी रात इस पुरीमें भटकता रहा हूँ।' हनुमानने छोटे बालकके समान उदास मुख बनाया—' इस वाटिकामें इतने अधिक फल लगे हैं। इन मधुर पक्व फलोंको देखकर मेरी क्षुधा बहुत बढ़ गयी है।'

'वत्स ! बड़े विकट बलवान् राक्षस इस वाटिकाकी रक्षा करते हैं।' श्रीजानकीका मुख उदास हो गया। कौन माता पुत्रको भूखा सुनकर शान्त रह पाती है ; किंतु क्या करें वे ? ' रावणको यह वाटिका बहुत प्रिय है।'

'आप उस दुष्टकी बात क्यों करती हैं ? मैं उसे और उसके रक्षकोंको देख लूँगा।' हनुमानने आग्रहके स्वरमें कहा—' आप इस वाटिकामें विराजमान हैं, अतः मुझे आपकी अनुमति चाहिये। आप प्रसन्न हों तो मुझे किसीकी चिन्ता नहीं।'

'आराध्यका स्मरण करके भली प्रकार फल खाओ !' सीताजीने प्रसन्न मनसे अनुमति दे दी।

'अम्ब ! मैं वानर हूँ। उछल-कूदकर खाये बिना मेरा पेट नहीं भरेगा।' हनुमानने फिर कहा—' इसमें कुछ शाखाएँ टूट सकती हैं, कुछ वृक्ष भी—आपको खेद तो नहीं होगा ?'

'मेरा कोई ममत्व इस वाटिकापर नहीं है। तुम यथेच्छ विचरण करो !' श्रीजनक-नन्दिनी समझ गयीं कि उनके स्वामीका यह पराक्रमी बुद्धिमान चर अब दशग्रीवका दर्प-दलन करना चाहता है। उन्होंने आज्ञा दे दी—' मैंने इस वाटिकाको न देखा है, न देखना चाहती हूँ। केवल मेरे इस आश्रय-वृक्षपर मत कूदना।'

क्षणार्धमें हनुमानका अपना स्वर्णशैलाभ शरीर प्रकट हो गया। वे उछले तो उनके वक्षके धक्केसे अनेक वृक्ष टूट गिरे। उन्हें देखते ही

वाटिका-रक्षिका राक्षसियाँ दौड़कर सीताके समीप आयीं— यह कौन है ? कहाँसे आया ? किसका है ? तुमसे इसने क्या बात की? '

'तुम राक्षसोंकी माया तुम्ही जानो।' श्रीजनक-नन्दिनीने रूखे स्वरमें कहा—' मैंने तो इसे देखकर राक्षस ही समझा था। तुम सबके समान यह भी कामरूप है। उसीसे पूछो कि वह कौन है. कहाँसे आया है।'

राक्षसियोंको पता था कि राक्षसाधिपको उद्यान कितना प्रिय है। वह विकट वानर वृक्ष तोड़ रहा था, उखाड़ रहा था। उसके पैर, हाथ वेगसे चल रहे थे। बड़े वृक्षोंको वक्षके धक्केसे धराशायी कर रहा था। छोटे वीरुध पैरोंसे कुचल रहा था। कुछ लताएँ, पुष्प वृक्ष उसने उखाड़ फेंके थे। लगता था कि पूरी वाटिका उजाड़ देनेपर तुला है। राक्षसियोंको सीताजीसे अधिक पूछनेका अवकाश नहीं था। वे दौड़ीं द्वारकी ओर। उन्होंने रक्षकोंको पुकारा।

अधूरी नींदसे उठे, अस्त-व्यस्त, अत्यन्त क्रुद्ध रक्षक अस्त्र-शस्त्र लिए दौड़े। किसीने सोचा भी नहीं कि लङ्कामें वानर कहाँसे आ गया। लेकिन कोई वन्य कपि था कि पत्थर मारनेसे भाग जाता। हनुमानने वृक्ष उखाड़ा और उन रक्षकोंको एक ही झटकेमें मार दिया।

'महाराज ! महाराज ! अशोकोद्यानमें विकट वानर आ गया है। उसने वाटिका-विध्वंस कर डाली। लगभग सब रक्षक मार दिये !' चीखती चिल्लाती राक्षसियाँ रावणके अन्तःपुरमें पहुँचीं।

अत्यन्त विषम समाचार था। अन्तःपुरकी रक्षिकाओंने दशग्रीवको जगाया। वह झल्लाकर उठा और शयनकक्षसे बैठनेके कक्षमें वैसे ही आ गया। सुनकर उसकी भौंहें चढ़ गयीं—' किङ्कर क्या कर रहे हैं ? उन्हें कहो कि इस वानरको मार दें।'

'वानर ? वानर आया है ? तब क्या बालिने अपनी मुझसे की गयी मैत्री-सन्धि भङ्ग कर दी ?' रावण सचिन्त हो गया। स्वप्न देखता उठाया गया था। स्वप्नमें भी उसे एक विकट-मुख वानर नोच-नोचकर सता रहा था। दशग्रीवको अभी बालिके मारे जानेका पता नहीं था। वह सोचता था—' वानरेन्द्र बालिकी अनुमतिके बिना उसके मित्रके नगरमें उत्पात् करने कोई वानर कैसे आया ? कहीं स्वयं बालि तो नहीं आया है ? दूसरा कौन है जो सौ योजन सागर कूदकर इतना साहस करे ?'

दशग्रीवको इतना सोचना नहीं पड़ा। जो सागर कूदकर आया था, वह अपना परिचय स्वयं देने लगा था। उसकी वह वज्र-घोष गर्जना वाटिकासे पूरे नगरमें गूँजने लगी थी। जैसे ही दशग्रीवके भेजे अस्सी किंकर राक्षस उद्यानमें पहुँचे, उन्हें देखते ही हनुमानने अपनी पूँछ भूमिपर पटकी और वाटिकाके मध्यमें बने देवी-मन्दिरके शिखरपर चढ़कर गर्जना की—

'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥'
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥

वा० सु० ४२ (३३-३६)

'अत्यन्त बलशाली श्रीरामकी जय हो! महाबलशाली लक्ष्मणकी जय हो! श्रीरामके द्वारा पालित वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय हो! मैं उदार-कर्मा कौसलेन्द्र रामका दास, शत्रु-सेनाका संहारक पवनपुत्र हनुमान हूँ। युद्धमें निरन्तर शिलाओं और वृक्षोंसे प्रहार करनेवाले मेरे सम्मुख टिकने योग्य सहस्रों रावण भी नहीं हैं। इस लङ्कापुरीको रौंदकर, जगदम्बा जानकीको प्रणाम करके, सब राक्षसोंके सम्मुख ही मैं सफल मनोरथ होकर जाऊँगा।'

'धन्य वत्स! तुम सफल मनोरथ सकुशल जाओ!' उल्लासपूर्वक श्रीजानकीने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया।

'ओह! कितना बिकट वानर है।' राक्षसियाँ-रक्षिकाएँ सशङ्क देखती रह गयी दूर भयभीत खड़ी—'वह स्वयं अपना परिचय दे रहा है। पुरीमें उत्पात करनेकी घोषणा कर रहा है।'

'त्रिजटाका स्वप्न इतनी शीघ्र सत्य हो गया?' सीताजीके समीप रहने वाली भयङ्करा राक्षसियाँ काँपने लगीं—'वानर तो आ गया। यह अवश्य पुरी-प्रदाह करेगा। राक्षसोंका विनाश आसन्न है। अब तो सीता ही शरण दे सकती हैं।'

'वानर ! विकट वानर ! उसकी गर्जना !' पूरी लङ्कामें भाग-दौड़ पड़ गयी। दूरसे वानरको देखने ही सब दौड़े; किंतु वह तो अशोक काननमें था।

'वानरेन्द्र सुग्रीव ?' दशग्रीव सोचने लगा—'तो रामने बालिको मार दिया और सुग्रीवको वानरेन्द्र बनाया ? यह आनेवाला कौन है ?'

हनुमानने तो उस विशाल चैत्यप्रासादका एक अनुष्ठान-भवन पदाघातसे ध्वस्त कर दिया और उसका एक स्वर्ण-स्तम्भ उखाड़कर आये राक्षसोंकी कपाल-क्रिया सम्पन्न कर दी। उनमें-से रक्त-स्नान, भग्नगात्र एक भाग सका। उसने रावणको समाचार दिया। इस बार दशग्रीवने अपने प्रमुख शूर, प्रधान योधा मामा और महामन्त्री प्रहस्तके पुत्र जम्बु-मालीको सेनाके साथ भेजा।

'उस क्रूर कपिने सबको मार दिया।' जैसे वाटिका पहुँचकर फिर तत्काल दौड़ आया हो, ऐसे ही एक राक्षस दौड़ा आया; किंतु वह भी रक्त-लथपथ, अत्यन्त आहत था। उसने सुनाया—'वह उत्पाती वानर सम्पूर्ण प्रासाद ध्वस्त करके स्वर्ण-स्तम्भ लिए गोपुरपर बैठा है। पता नहीं इतने श्रमसे थक गया है या कोई नवीन उत्पात सोचने लगा है।'

'गोपुरपर बैठा है ?' दशग्रीव ऐसे चौंका मानों कपि यहाँ राज-प्रासादके गोपुरपर पहुँच गया हो।

'अभी तो वह वाटिकाके चैत्यप्रासादके गोपुरपर ही बैठा है' आगत राक्षसने कहा—'किंतु किसी क्षण यहाँ आ सकता है। उसे कौन रोकेगा ?'

रावणने एक साथ पाँच मन्त्री-पुत्र सेनाके साथ भेजे; किंतु उनका भी वही समाचार। विरूपाक्ष, प्रघस आदि सात सेनापति भेजे गये। उन्हें आदेश था—'वानर पकड़ ले आओ !'

साधारण वानर था वह कि उसे कोई पकड़ ले जाता ? उसके समीप जो पहुँचता था, वानरके करोंमें स्थित रक्तस्नात स्वर्ण-स्तम्भ उसी-को मृत्युको पकड़ाता चला जा रहा था। ये सेनापति भी मारे गये तो रावणने अपने पुत्र अक्षयकुमारको बुलाया—'कोई बहुत पराक्रमी वानर आया है। तुम सावधान होकर पौरुष प्रकट करो।'

अक्षयकुमार लंकामें मेघनादके पश्चात् सबसे पराक्रमी योधा था। वह ससैन्य चला तो सागर क्षुब्ध हो उठा। वायुका वेग शिथिल पड़ गया। सूर्यकी किरणें मन्द पड़ गयीं। स्वर्गमें सुर सशंक हो उठे। लेकिन हनुमान तो आज प्रलयङ्कर बने बैठे थे। अक्षयकुमारके साथकी सेनाका संहार प्रथम वेगमें करके अक्षयकुमारके वक्षपर एक घूँसा धर दिया उन्होंने। रावण-पुत्रको धनुष चढ़ानेका समय भी नहीं मिला। वक्षकी अस्थियाँ चूर-चूर हो गयीं। रक्त-वमन करता गिरा और शान्त हो गया। हनुमान फिर स्तम्भ लेकर तोरणपर जा बैठे।

'अक्षयकुमार मारा गया!' सुनते ही रावण शोकसे मूर्छितप्राय हो गया। क्रोधोन्मत्त होकर पुकारा उसने—'मेघनाद कहाँ है?'

जब मेघनादने आकर पिताके पदोंमें प्रणाम किया, रावण अपने चित्तको स्थिर कर चुका था। उसने इन्द्रजितसे शान्त स्वरमें कहा—'पुत्र! तुम दिव्यास्त्र-ज्ञाता हो। मन्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ हो। सुरासुर-जयी हो। संग्राममें कभी श्रान्त नहीं होते। तप तथा वरदानसे रक्षित हो। तुम देश, कालको भली प्रकार समझते हो। अशोकोद्यानको उजाड़ करनेवाले इस वानरको पकड़ो। यह उसीका निष्ठुर निनाद गूँज रहा है। इसने अभी तुम्हारे अनुज अक्षयकुमारको मार दिया है। लेकिन उसे मारना मत। पता लगाना है कि उसका प्रेषक कौन है। कितनी शक्ति है इस वानरके पीछे।'

'वह वायुके समान उछलता है। बहुत वेगवान है।' दशग्रीवने पुत्रको सावधान किया—'अपने सब दिव्यास्त्र ले जाओ। अक्षय त्रोण ले लो। बहुत प्रबल वानर है। सचेत रहकर संग्राम करना।'

इन्द्रजित अपने दिव्य रथपर बैठा। पिताको उसने आश्वासन दे दिया। विचित्र धनुष लिये अशोक-वाटिका पहुँचा तो हनुमान देखते ही समझ गये कि इस बार बलवान वीर आया है। उन्होंने मेघनादकी उपेक्षा कर दी और स्तम्भ लिये उसकी सेनाका संहार करने लगे। मेघनादने बाणोंकी झड़ी लगा दी; किंतु उसके बाण केशरी-किशोरकी वज्रकायासे टकराकर टूटते जा रहे थे।

मेघनादके साथ आये राक्षस सैनिकोंमें अधिकांश मारे गये। कुछ बचे, वे प्राण बचाकर दूर भाग गये और वहींसे युद्ध देखने लगे। अब हनुमान मेघनादपर टूटे। बड़े-बड़े वृक्ष तथा ध्वस्त चैत्यप्रासादके स्तम्भ,

शिखर, भित्ति-खण्ड फेंकने लगे। मेघनाद बाणोंके द्वारा उन सबको चूर्ण करता गया ; किंतु इस प्रकार बची-खुची वाटिकाका भी विनाश हो गया।

साधारण शरोंसे वानरको अप्रभावित देखकर मेघनादने दिव्यास्त्र उठाये ; किंतु व्यर्थ। आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, पर्वतास्त्र, पार्जन्यास्त्र सब व्यर्थ। मेघनाद चकित था कि यह वानर कैसा है ? दिव्यास्त्र इसके समीप पहुँचते ही क्यों निष्प्रभाव हो जाते हैं ? वानर थकनेका नाम ही नहीं लेता, यह देखकर मेघनादने अन्तमें धनुषपर ब्रह्मास्त्र चढ़ाया।

'ब्रह्माजीने तो अपने इस अस्त्रसे भी मुझे अभय दिया है ; किंतु इस अमोघ अस्त्रकी मर्यादा मान लेनी उचित है।' हनुमानने तत्काल निश्चय कर लिया—'अन्ततः मुझे दशग्रीवको भी तो देखना है। उसका दर्प-दलन करनेका अवसर इस बहाने मिल सकता है।'

मेघनादने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया तो आञ्जनेय मूर्छित होकर गिरे और निश्चेष्ट पड़े रहे। बलवेगोद्दीप्त ही थे वे और तत्काल उठकर प्रहार करनेमें सक्षम थे। न पीड़ा, न भय ; किंतु ब्रह्मास्त्रकी मर्यादा मानकर हनुमान शिथिल नेत्र बन्द किये पड़े रहे।

अब दूर खड़े राक्षस दौड़े और जिसे जहाँ भी मिल सकी मोटी-मोटी रस्सियाँ ले आये। मेघनाद उन्हें रोके, इससे पहिले ही वे जुट गये निश्चेष्ट हनुमानको भली प्रकार बाँधनेमें।

'इन मूर्खोंने तो अनर्थ कर दिया।' मेघनाद खिन्न हो गया। 'ब्रह्मास्त्र दूसरा बन्धन सह नहीं सकता। वह तो प्रथम रज्जुका बानरके शरीरसे स्पर्श कराते ही इसे त्याग गया होगा। अब वानरको यह पता न हो, यह भ्रमसे अपनेको ब्रह्मास्त्रमें बँधा बन्दी मानता रहे तभी कुशल है। अन्यथा इन रज्जुओंको तो यह तोड़ फेंकनेमें सहज समर्थ है।'

मेघनाद कुछ बोलकर वानरको सावधान नहीं करना चाहता था। दुबारा ब्रह्मास्त्रका एक ही व्यक्तिपर प्रयोग करो तो वह प्रयोक्ताको नष्ट कर देगा। अतः अब मेघनादको विवश होकर मौन रहना था। वह समझता था वानर बन्धनके भ्रममें है और हनुमान जानबूझकर शान्त बने राक्षसोंका उत्पात सहन कर रहे थे।

'इसे जला दो ! मार दो इसे ! कच्चा ही खा डालो इस वानर-को।' राक्षस उत्साहमें बकते जा रहे थे। बहुत-सी रस्सियोंसे कसकर बाँध रहे थे। घूसोंसे, पदसे भी प्रहार कर रहे थे।

'उसे बहुत तङ्ग मत करो !' मेघनादने डाँटा। वह डर रहा था कि कहीं पीड़ित होकर वानर छटपटाया तो बन्धन टूट जायँगे और ब्रह्मास्त्रके बन्धनका भय मिट जायगा—'वह राक्षसेन्द्रका बन्दी है। मर गया तो राक्षसाधिप किसीको क्षमा नहीं करेंगे।'

राक्षस मेघनादके धमकानेसे थोड़े शान्त हुए। वे पकड़कर पवनपुत्रको दशग्रीवके समीप ले चले।

दशग्रीवके सम्मुख

अबतक हनुमानने रावणके पाँच सेनापति, आठ मन्त्री और रावण-पुत्र अक्षयकुमारको मार दिया था। प्रज्ञा और प्राणके मूलतत्त्व उन अञ्जनीनन्दनको बाँधकर राक्षस रावणकी सभामें ले आये। उनको सम्मुख खड़े करके मेघनादने पिताको प्रणाम किया। दशग्रीवने पुत्रको प्रशंसा-भरी दृष्टिसे देखा और विश्राम करनेकी अनुमति दे दी।

आञ्जनेयने देखा—अञ्जन कृष्ण-वर्ण, बीस भुजा, दस मस्तक रावण रत्नजटित स्फटिक सिंहासनपर भारी नीलमेघ छत्रके नीचे बैठा है। प्रहस्तादि मन्त्री उसके दोनों पार्श्वोंमें छोटे आसनोंपर विनम्र बैठे हैं। दिक्पाल, लोकपाल भी विनम्र हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये आते हैं और खड़े रहते हैं। वायु, अग्नि, वरुण—सब रावणके भ्रू-कुञ्चनसे भयभीत खड़े हैं।

रक्तनेत्र हनुमानको फिर दया आयी दशग्रीवको देखकर—'इतना भव्य शरीर, इतना पराक्रम, ऐसा प्रकाण्ड पण्डित ! यदि यह अधर्मी न होता तो इन्द्रका भी रक्षक होने योग्य था।'

'इतना निर्भय वानर !' दशग्रीवने देखा कि हनुमानने न मस्तक झुकाया, न कोई हिचक है उनमें। वे सीधे उसीकी ओर देख रहे हैं। मनमें सिहर उठा—'कहीं ये भगवान नन्दीश्वर तो नहीं ? उन्होंने मुझे शाप दिया था। मैंने अपने दस मस्तक चढ़ाकर दस रुद्रोंको सन्तुष्ट किया; किंतु ग्यारहवें रुद्र अपूजित रह गये। कहीं वे ही तो वानर बनकर नहीं आये ?'

'प्रहस्त ! पूछो इससे कि यह दुरात्मा कहाँसे आया ? क्यों आया ?' क्रुद्ध स्वरमें रावण बोला—'वाटिका-विध्वंस क्यों किया इसने ? मेरे सेवकोंको क्यों मारा ? कौन है यह ?'

'तुम्हारा कल्याण हो, डरो मत !' प्रहस्त हनुमानकी अपेक्षा राक्षसोंपर अपना प्रभाव डालना चाहता था। साम नीतिका आश्रय लेकर

बोला—'इन्द्रने तुम्हें भेजा है ? तुम यदि सच-सच कहोगे तो हम तुम्हें छोड़ देंगे। राक्षसेश्वरके सम्मुख अन्याय नहीं होगा। तुम्हारा रूप ही वानरका है; किंतु तुम वानर हो नहीं। यदि झूठ बोलोगे तो मार दिये जाओगे। तुमको किसने भेजा है ? तुमने वाटिका क्यों उजाड़ी ? देवजयी राक्षसोंको तुमने क्यों मारा ?'

'मैं वानरेन्द्र सुग्रीवकी आज्ञासे आया हूँ। सुग्रीवने तुमसे कुशल पूछी है। वे तुम्हारे मित्र हैं।' हनुमानने प्रहस्तकी उपेक्षा कर दी। वे सीधे रावणकी ओर मुख करके उसीसे बोले—'अयोध्या नरेश महाराज दशरथके लोकस्तुत्य ज्येष्ठ पुत्र पिताकी आज्ञासे अनुज तथा भार्याके साथ वनमें आये थे। दण्डकारण्यमें उनकी पत्नी खो गयी। उसे ढूँढ़ते वे ऋष्य-मूक पहुँचे तो श्रीरामने एक ही बाणसे बालिको यमलोक भेजकर सुग्रीवको वानरेन्द्र बना दिया। बालिसे तुम भली प्रकार परिचित हो। श्रीरामकी शक्तिका अनुमान इसीसे कर लो।'

'सुग्रीवने श्रीराम-भार्याको ढूँढ़ने सहस्रों वानर विभिन्न दिशाओंमें भेजे हैं। उनमें-से ही एक मैं हूँ, जो यहाँ आ गया हूँ।' हनुमानजीने सहज स्वरमें कहा—'मुझे भूख लगी थी, फलोंपर वानरोंका नैसर्गिक स्वत्व है। वाटिका तुम्हारी है, यह देखनेकी मुझे आवश्यकता नहीं थी। वानर स्वभाव-वश मैंने उछल-कूदकर फल खाये। तुमने इतने दुर्बल वृक्ष क्यों लगाये कि वे मेरी तनिक उछल-कूदमें टूट गये ? जो राक्षस मुझे मारने आये, मैं उन्हें मारता नहीं तो छोड़ देता ? अपराध तो तुम्हारे पुत्रका है कि मैंने किसी-को बाँधा नहीं, पर वह मुझे बाँध लाया। इस युद्धमें तो केवल मारना-मरना चल रहा था। वह मुझे मार देता या मेरे हाथों मर जाता।'

'अच्छा सुनो ! मैंने श्रीराम-भार्याको तुम्हारी वाटिकामें देखा है। बहुत बुरी बात है कि तुमने परस्त्रीका चोरकी भाँति अपहरण किया और उन्हें अपने यहाँ रोक रखा है।' हनुमानका स्वर असाधारण गम्भीर हो गया—'तुम वेदज्ञ हो, धर्म-अर्थके ज्ञाता हो, महाप्राज्ञ हो। तुम्हें परायी स्त्रीको रोक नहीं रखना चाहिये। श्रीरामको दुःख पहुँचाकर कौन सकुशल रह सकता है। श्रीराम-लक्ष्मण जब धनुष चढ़ा लेंगे, कोई उनके सम्मुख टिक नहीं सकता।'

'मैंने देखा है, श्रीजनक-नन्दिनी बहुत दुःखी हैं। राक्षसेन्द्र ! मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ, उन्हें जल्दी छोड़ दो। तुम जानते हो कि

बालिके अनुज सुग्रीव अपने अग्रजके समान बलवान हैं। उनको कोई दैत्य-दानव मार नहीं सकता। वे शीघ्र करोड़ों वानर लेकर आनेवाले हैं यहाँ। अपने दान-पुण्य-तपका फल तुमने भोग लिया। अब तुमने जो अधर्म किया है, उसका फलोदय-काल आ गया है।' पवनपुत्रने चुनौतीके स्वरमें कहा--'देखते हो, मैं एकाकी, शस्त्रहीन तुम्हारी पुरीमें आया हूँ। मेरे स्वामी श्रीरामकी आज्ञा नहीं है, अन्यथा मैं तुम सबको मारकर, इस स्वर्णपुरीको वाटिकाके चैत्य प्रासादके समान ध्वस्त करके माता सीताको ले जाता।'

'दशग्रीव ! भूल जाओ कि ये बन्धन या ब्रह्मास्त्र मुझे बाँध सकते हैं। मैं अपनी इच्छासे अनुकम्पा करके, तुम्हें सचेत करने, मृत्यु-मुखमें कूदनेसे बचाने आया हूँ।' हनुमान उसी गम्भीर स्वरमें कह रहे थे--'अभी कुछ बिगड़ा नहीं। क्रुद्ध श्रीरामसे तुम्हारी रक्षा चतुर्मुख सृष्टिकर्त्ता और शूलपाणि त्रिनयन शिव भी नहीं कर सकेंगे। लेकिन वे शरणागत-वत्सल हैं ! सीताको लेकर मेरे साथ उनकी शरण चलो !'

'वानर ! बकवाद बहुत हो चुकी ! मैं तेरी बड़बड़ाहट और नहीं सुन सकता।' रावण चिल्लाया। लाल-लाल नेत्र करके बोला--'वानराधम ! मैं राम-लक्ष्मण, सुग्रीव सबको मार दूँगा।'

'दुष्ट ! दुर्मुख ! तू सबको मार देगा ?' हनुमानने दाँत कटकटाये--'तेरे जैसे सहस्रों रावण उनके इस दासका भी कुछ बिगाड़ नहीं सकते।'

'मार दो इसे !' दशग्रीवने भी दाँत पीसकर आज्ञा दी।

'लेकिन यह अवध्य है। दूत प्रायः कटुभाषी होते हैं; किंतु उन्हें क्षमा कर देना ही शूरोंने उचित माना है।' विभीषण अपने मन्त्रियोंके साथ राजसभामें आ गये थे। हनुमानको इन्द्रजितने बाँध लिया, यह सुनकर ही वे आये थे। दशग्रीवको प्रणाम करके उसके दाहिने अपने निश्चित आसनपर बैठ गये थे। अब उठे और हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक बोले--'महाराज ! यह आपके यशके विरुद्ध होगा। आप धर्मज्ञ हैं, नीतिज्ञ हैं, आप जैसे विद्वान भी क्रोधवश नीति-विस्मरण कर देंगे तो अध्ययनका श्रम व्यर्थ गया।'

'इस आततायी पापिष्ठको मारनेमें मैं दोष नहीं देखता।' दशग्रीवने विभीषणकी ओर देखा।

'इसने आपका अप्रिय किया है, उद्धत है और कटुभाषी है; किंतु दूत है।' विभीषणने विनम्र स्वरमें कहा—'यह दण्डनीय तो है, परन्तु मारने योग्य नहीं है। इसका सिर घुटा दें, कशाघातका दण्ड दें, अङ्ग-भङ्ग करा दें, ऐसा ही कुछ दण्ड दें।'

'इसे मार देनेसे क्या लाभ होगा?' रावणको अपनी ओर देखते देखकर विभीषणने कहा—'यह नहीं लौटेगा तो जिन्होंने इसे भेजा है, वे और चर भेजेंगे। हम सबको सदा सशङ्क रहना पड़ेगा कि कब कोई आ जाय। यह लौट जायगा तो अपने स्वामीको ससैन्य ले आवेगा। उनसे एक साथ आप निबट ले सकेंगे।'

प्रहस्तने सिर झुका दिया हाथ जोड़कर। दूसरे मंत्रियोंकी भङ्गीमें भी विभीषणका समर्थन था। ऐसे विकट वानर किसी क्षण आ सकते हैं, लङ्का-में कहीं कोई उत्पात कर सकते हैं, किसीको मार सकते हैं, कोई भवन नष्ट कर सकते हैं, इस आशङ्कामें रात-दिन रहनेकी अपेक्षा एक बार खुलकर युद्ध बुला लेना ही उत्तम लगा सबको। भय-आतङ्क-आशङ्काका नारकीय जीवन हो जायगा, यदि यह कपि मार दिया गया, यह सबने समझ लिया।

'तुम ठीक कहते हो, दूत अवध्य होता है।' दशग्रीवने शान्त स्वर-में कहा। उसने देख लिया था कि उसके सब मन्त्री विभीषणके पक्षमें हो गये हैं। सबको असन्तुष्ट करना वह नहीं चाहता था और वानरको छोड़ देना भी उसे अभीष्ट नहीं था। उसने युक्तिपूर्वक कहा—'वानरको अपनी पूँछ बहुत प्रिय होती है, यद्यपि यह उसका अनावश्यक अङ्ग है। इसकी पूँछमें वस्त्र लपेटकर तेलसे भिगाकर अग्नि लगा दो। इस प्रकार पूँछ-हीन कुरूप करके इसे यहाँसे भगा दो। पूँछरहित होकर जायगा, तब अपने स्वामीको ले आवेगा। देखना है कि इसके स्वामीमें यहाँतक आनेका साहस है भी या नहीं।'

विभीषण अब बोलनेकी स्थितिमें नहीं रह गये। उन्हें मौन रह जाना पड़ा। दशग्रीवके मनमें दुरभिसन्धि थी—'स्वभावसे चञ्चल वानर पूँछमें अग्नि लगनेपर उछल-कूद करेगा और स्वयं अपने शरीरमें अग्नि लगा लेगा। इससे यह जल-भुनकर मर जायगा। मुझे दूत-वधका दोष भी कोई नहीं दे सकेगा।'

'महाराजका सुझाव बहुत उपयुक्त है।' चाटुकार राक्षसोंने प्रशंसा की। समर्थन किया--'यह उत्पाती इसी दण्डके योग्य है। वैसे तो उदार महाराजने इसपर कृपा की है। इसे केवल कुरूप बनानेका दण्ड दिया है।'

दशग्रीव आदेश देकर राजसभासे उठ गया। मन्त्रियोंको, विभीषणको भी अपने सदन जाना था। राक्षस पकड़कर हनुमानको राजसभासे बाहर ले आये और उनकी पूँछमें वस्त्र, रुई, सूखी लकड़ियाँ तक बाँधने लगे। हनुमानको भी कुतूहल सूझा। उन्होंने अपनी पूँछ बहुत लम्बी कर दी। राक्षस उत्साहमें थे। उन्होंने इसपर ध्यान ही नहीं दिया कि वानरकी पूँछ कितनी विशाल है। वे तो दौड़-दौड़कर घरोंसे रुई, वस्त्र, ईंधन ला रहे थे और पूँछमें भली प्रकार लपेटते जा रहे थे।

'केवल कपड़ा रहेगा तो ठीक नहीं जलेगा।' राक्षस बुद्धिमानी दिखा रहे थे--'बीच-बीचमें रुई और सूखी लकड़ी लगाओ। पूरी पूँछ भली प्रकार लपेटो।'

बड़ा कोलाहल, बड़ा उत्साह था राक्षसोंमें। उन्होंने प्रायः सभी घरोंसे अनुपयोगी, कुछ उपयोगी वस्त्र भी लाकर हनुमानकी लांगूलमें लपेट दिया। नगरके सामान्य घरोंमें अनुपयोगी वस्त्र, रुई, सूखा काष्ठ बचने नहीं दिया।

'इतना लपेटो कि यह अपनी पूँछ हिला नहीं सके।' सबको यह शङ्का तो थी कि पूँछ हिला सका तो वानर समीपके भवनोंमें अग्नि लगा सकता है; किंतु कोई नहीं समझता था कि यह बन्धनसे छूट भी जा सकता है।

'मेरे आराध्यने अच्छा सुयोग दिया है।' हनुमान मनमें प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने पूरी योजना मनमें बना ली और हँसे—'सरस्वतीने समयपर सहायता की है। राक्षसोंको ऐसी बुद्धि देकर वे वीणापाणि बधाई पाने योग्य हो गयी हैं।'

'इसे पूरे नगरमें घुमाओ। सब देख लें कि लङ्कामें चोरीसे घुसे गुप्तचरकी क्या दशा होती है।' किसीने कहा—'तबतक खूब सारा घी, तैल, मेद (चर्बी) एकत्र कर लो यहाँ।'

राक्षसोंने पवित्र-अपवित्र सब प्रकारके वस्त्र हनुमानजीकी पूँछमें लपेटे थे। उसमें पुरुष-स्त्री, बालक सबके अनेक रङ्गोंके वस्त्र थे। पवन-

कुमारकी लांगूल वस्त्रादिसे लिपटी बहुत मोटी और इन्द्रधनुषके समान हो रही थी। वे भी उसे ऐसे सीधी किये थे, जैसे सचमुच पूँछ हिलानेमें असमर्थ हो गये हों।

राक्षस उन्हें गालियाँ दे रहे थे। घूसे, थप्पड़ तथा पाद-प्रहारसे ताड़ित कर रहे थे। राक्षस-बालक कूद रहे थे। ताली बजा रहे थे। दुर्वचन कह रहे थे। उनके कान या केश पकड़कर खींचते थे। पाषाण या लगुडका प्रहार भी करते थे। बालकोंको कुछ डाँटते भी थे--'अरे दूर रहो ! इसके मुख या हाथोंके पास मत जाओ। यह बहुत दुष्ट है। अब भी किसीको नोच ले सकता है। काट खा सकता है। दूर रहो इससे।'

'हमने गुप्तचर पकड़ा है। यह चोर है।' राक्षस अनेक प्रकारके अपशब्द सुना रहे थे। वे रस्सियोंमें बँधे हनुमानको पकड़कर नगरमें घुमाने लगे। सहस्रों राक्षसोंने रस्सियाँ पकड़ रखी थीं।

'प्रभुने कैसा उत्तम सुयोग दिया। मैंने लङ्का रात्रिमें अन्यमनस्क भावसे देखी थी। अब दिनके प्रकाशमें भली प्रकार देखनेका यह अच्छा अवसर मिला है।' राक्षसोंकी गालियाँ, घूसे, थप्पड़ आदिकी ओर तो हनुमानका ऐसे ही ध्यान नहीं गया, जैसे भिनभिनाती मक्खियोंके शब्द और उनके शरीरपर बैठनेपर कोई ध्यान नहीं देता। वे तो देख रहे थे—बहुत ध्यानपूर्वक देखते जा रहे थे लङ्काके राजपथ, वीथियाँ, चतुरष्क। उनका ध्यान इस ओर था कि रावणका शस्त्रागार कहाँ है, उसका अन्न-भण्डार कहाँ है, गज-अश्वादि कहाँ हैं और कहाँ हैं उसके सैनिकोंके—सुरक्षित सैनिकोंके भी स्थान। युद्धके समय किन पथोंका उपयोग होना है, किन स्थानोंको पहिले ध्वस्त किया जाना चाहिये, इस ओर हनुमानका पूरा ध्यान था। शत्रु स्वयं उन्हें अपना पूरा नगर दिखला रहे थे।

राक्षसियाँ भवनोंके ऊपरसे, पथपर आकर वानरको देख रही थीं। वे भी ताली बजाकर हँसती थीं। त्रिजटासे जिन्होंने उसका स्वप्न सुना था, केवल वे भयभीत सशङ्क थीं--'अब यह पूँछ घुमाकर पूरी लङ्का जला देगा !' लेकिन उनकी कौन सुनता। राक्षस उत्साहमें थे। वे भेरी, डमरू, ढोल पीटते चिल्लाते हुए हनुमानजीको नगरमें घुमा रहे थे। अद्भुत थी हनुमानकी यह नगर-यात्रा।

पूरा नगर घुमाकर राक्षस पवन-पुत्रको फिर नगरके पश्चिम द्वारके पास ले आये। अब उनकी लांगूलका घृत-तैलाभिषेक प्रारम्भ हुआ। सहस्रों

चर्मकुप्पे तैल, घृत, वसाके एकत्र थे वहाँ। दौड़-दौड़कर राक्षस और ले आ रहे थे। दशग्रीवका राजकीय तैल-घृत भण्डार भी रिक्त कर दिया सबोंने उत्साहमें आकर।

शत-शत राक्षसोंने हनुमानकी पूँछ पकड़ रखी थी। दूसरे बहुतोंने उन रस्सियोंको पकड़ रखा था, जिनमें वे बँधे थे। सैकड़ों घृत, तैल, वसाके कुप्पे उठाकर उनकी पूँछपर धारा गिरा रहे थे। बहुतसे पूंछको हाथोंसे थपथपाते थे, जिससे घृत या तैल, वस्त्र, रुईमें भीतर तक प्रवेश कर जाय। भूमिपर तैल-घृत न गिरे, इसकी वे सावधानी रख रहे थे।

'अब आनन्द आवेगा !' राक्षस उछल रहे थे—'यह कूदेगा और चिल्लायेगा।'

'अब आनन्द आवेगा !' हनुमान भी मनमें प्रसन्न हो रहे थे—'मैं कूदूंगा, चिल्लाऊँगा और सब राक्षस भागेंगे, चिल्लायेंगे।'

उनकी पूँछ पूरा तैल, घृत, वसा पाकर स्निग्ध हो चुकी थी।

लङ्का-दहन

'अरी सीता ! वह वानर पकड़ लिया गया है, जिसने तुमसे बातें की थीं।' राक्षसियाँ दौड़ी-दौड़ी अशोकोद्यान पहुँचीं। उनको अब त्रिजटा-का स्वप्न सत्य होता दीखता था। श्रीजानकीकी सहानुभूति अपेक्षित थी उन्हें; किंतु अपने स्वभाव, संस्कारका क्या करें। उनकी वाणी सहज रूक्ष। उन्होंने समाचार दिया—'उसे बाँधकर मारते-पीटते पूरे नगरमें घुमाया है। बड़ी दुर्गति की उसकी। उसकी पूँछमें वस्त्र लपेटकर उसे घृत-तैलादिसे भिगा रहे हैं। अब उसकी पूंछमें आग लगा देंगे। वह बन्दर जलनेसे कदाचित ही बचे।'

'अग्निदेव ! यदि मैं पतिव्रता हूँ तो आप हनुमानके लिए शीतल हो जायँ !' उन जगद्धात्री सर्वेश्वरीने नेत्र बन्द करके मनमें सङ्कल्प किया—'हव्यवाह ! भले आप क्रव्याद हों; किंतु यदि श्रीरामका मुझपर स्नेह है तो आप पवनपुत्रके लिए शीतल रहें ! अनलदेव ! आपकी प्रलयङ्करी विषमज्वाला रामदूतके लिए सुखद शीतल रहे यदि सीता सदा-चारिणी है।'

जिनके भ्रूभङ्गसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति-प्रलय होती है, उनको इस प्रकार सङ्कल्पकी आवश्यकता थी ? उनका इङ्गित पर्याप्त था अग्निदेवको; किंतु माँका वात्सल्य—वे तो इतना सङ्कल्प करके भी व्याकुल बनी थीं। लेकिन अग्नि उनके सङ्कल्पका अतिक्रमण करें तो स्वयं उनकी सत्ता रहेगी ?

राक्षसोंने पश्चिम द्वारपर बँधे हनुमानकी घृत-तैलसिक्त विशाल लांगूलमें सैकड़ों उल्मुक लेकर एक साथ अग्नि लगा दी। अब हनुमानने सहसा अपना शरीर छोटा किया। केवल पूँछ विशाल बनी रही। शरीरको बाँधनेवाली रस्सियाँ ढीली होकर गिर पड़ीं। अब पवनपुत्र बन्धनसे स्वतंत्र हो गये। राक्षस भयसे भागे। उनका उत्साह भङ्ग हो गया; किंतु हनुमानने पूँछ घुमा दी। कूदकर पश्चिम द्वारसे एक स्तम्भ उखाड़ लिया।

जो राक्षस बाँधने, पकड़नेवाले आसपास थे, वे पूँछकी लपटोंमें झुलस गये और स्तम्भके प्रहारसे मार दिये गये।

'अग्निकी लपटें इतनी सुखद शीतल होती हैं?' हनुमान भी चौंके। वे जानते थे कि अग्निदेवने शैशवमें ही उनको अपनेसे अभयका वरदान दिया है; किंतु लपटें जलाती नहीं थीं, तो भी उष्ण तो लग रही थीं। अचानक वे ऐसी शीतल हो गयीं जैसे शरीरको अङ्गराग लगाकर सहला रही हों। हनुमानको स्वभावसे लगा—'मेरे सर्वसमर्थ स्वामी श्रीरामकी असीम शक्ति अपने सेवककी रक्षार्थ सर्वत्र सतर्क रहती है। यह उसीका अचिन्त्य प्रभाव है।

'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।'

हनुमानकी हुङ्कारके साथ उनका जयघोष गूँजने लगा। उनकी पूँछ घूमने लगी और वे लङ्कामें एकसे दूसरे भवनपर छलाँग लेने लगे। पश्चिम द्वार, उसपर लगे महायन्त्र प्रथम धक्केमें ध्वस्त हो गये। द्वार-रक्षक मारे गये।

पवनपुत्रका शरीर पर्वताकार हो गया था। उनके असह्य तेजके सम्मुख देख पाना कठिन था। वे प्रलयङ्कर बने पल-पलपर बिकट हुङ्कार कर रहे थे। उनकी पूँछ उठती थी तो लगता था कि सूर्य भी उसकी लपटों-में झुलस जायँगे। पवनदेव अपने पुत्रकी सहायतामें प्राणपणसे लगे, अपने उनचासों रूपोंसे अग्निको प्रज्वलित, प्रसारित कर रहे थे।

आञ्जनेय पाद-प्रहारसे भवन ध्वस्त कर रहे थे। करोंसे कंगूरे झटक देते थे। उनके वक्षके धक्केसे प्रासादोंके शिखर चूर हो रहे थे। पहिले उन्होंने चुन-चुनकर शस्त्रागार, धान्यागार, वाहनस्थान, सैन्यशिविर भस्म किये। इस प्रयासमें नगरके चारों द्वार गिरा दिये। पूरी परिखा पादाघातसे गिराकर खाईं पाट दी। सब महायन्त्र नष्ट कर दिये। इतना करके एक ओरसे लङ्का-दहन करने लगे।

लङ्कामें चारों ओर लपटें उठ रही थीं। राक्षस, राक्षसियाँ क्रन्दन कर रहे थे। गवाक्ष बन्द करो तो प्रतप्त स्वर्णका ताप असह्य था और गवाक्ष या द्वार खोलो तो प्रज्वलित पूँछ भीतर आकर पूरे कक्षमें आग लगा जाती थी। राक्षस अपनी स्त्रियों, बच्चोंको लेकर भाग रहे थे। वापी,

सरोवर, सरिताके जलमें खड़े होनेपर भी परित्राण नहीं था। हनुमानकी जलती पूँछ वहाँ भी लोगोंको लपककर भुलसा जाती थी।

'इस वानरको मार दो!' दशग्रीवने अपने सदनसे बाहर आनेका साहस नहीं किया। वहीसे उसने आज्ञा दी; किंतु जो अस्त्र-शस्त्र लेकर निकले, उन्हें प्रहारसे पहिले ही वानरकी प्रज्वलित पूँछने अपनी लपेटमें ले लिया। मेघनाद तक छिपा बैठा था। जीवित जलनेका उत्साह उसमें भी नहीं था।

'वर्षा करके अग्नि बुझा दो और वानरको समुद्रमें बहा दो!' राक्षसेन्द्रने मेघोंको आज्ञा दी। आकाश काली घटाओंसे ढक गया। विद्युत कड़कने लगी। राक्षसोंको तनिक आशा हुई कि अब अग्नि बुझ जायगी।

यह क्या? वर्षाकी धारा पड़ती है तो अग्नि ऐसी प्रचण्ड होती है, जैसे उसमें घृताहुति पड़ी हो। प्रतप्त स्वर्ण भवनोंका प्रबलतम ताप, पानी पड़ते ही विखण्डित होता है और विखण्डित जलकी दोनों वाष्पें तो अग्निको बढ़ाती ही हैं। वर्षाके धाराबद्ध वेगसे बढ़ी लपटें आकाश तक जा पहुँचीं। लङ्का लपटोंमें अदृश्यप्राय हो गयी।

'बचाओ! कोई प्राण बचाओ! इस दुष्ट दशग्रीवको घर बैठे मृत्यु बुलानी थी।' जो पहिले वानरको गालियाँ दे रहे थे, हँस रहे थे, ताली बजा रहे थे, वही अब राक्षसेश्वरको कोस रहे थे—'हमने पहिले कहा था कि यह वानर नहीं है। वानरके रूपमें कोई देवता है। तब बीस लोचनके अन्धेको कुछ दीखा ही नहीं। बाप रे! यह पानीसे प्रज्वलित होनेवाला प्रलयानल!'

'वर्षा बन्द करो! कालको बुलाओ!' दशग्रीवको मेघोंको रोकना पड़ा और काल सुबेलपर बन्दी होता भी तो वहाँ तक हनुमानकी पूँछ किसीको पहुँचने देती?

'दुहाई रामदूत! तुम्हें अपने स्वामी श्रीरामकी दुहाई!' हनुमान कुम्भकर्णकी गुहा-द्वारपर पहुँचे। उन्होंने पूँछ भीतर डालना चाहा तो कुम्भकर्णकी पत्नी आँचल फैलाकर कातर कण्ठसे चिल्लायी—'मेरे पति निर्दोष हैं। सो रहे हैं। इन्हें जलाओ मत!'

हनुमान तत्काल उस गुहासे दूर कूद गये। इस प्रकार वह गुफा अग्नि-संस्कार शुद्ध होनेसे रह गयी। राक्षसोंके अनाचार, मद्यपान,

मांसाहारसे अपवित्र लङ्काको हनुमान अग्नि-संस्कार-शुद्ध करनेमें लगे थे। आगे उनके आराध्य यह पुरी विभीषणको देनेवाले हैं तो इसे शुद्ध कर देना ही उचित था।

अब पुरीमें स्थान चुन-चुनकर अग्नि लगाना अनावश्यक हो गया था। समूची पुरी प्रज्वलित थी। जहाँ लपटें तनिक शिथिल होती थीं, हनुमानकी पूँछ वहीं पहुँच जाती थी। पुरीमें प्रतिक्षण विस्फोटका भयङ्कर नाद हो रहा था। कहीं स्वर्ण पिघलनेसे भवन गिरते थे, कहीं कुप्पे अथवा कोई अस्त्र फटते थे।

ताप—प्राणान्तक ताप और ऊपरसे गूँजती हृदय विदीर्ण करती पवनपुत्रकी हुंकार। उनकी जलती पूँछकी ज्वाला राक्षसोंको खदेड़-खदेड़कर जला रही थी। लोगोंके शरीरके वस्त्र जलने लगे तो उन्हें उन्होंने उतार फेंके। कुलवधुएँ तक नग्न भाग रही थीं और उनके केश भी झुलस गये थे। जो राक्षस इस प्रलयसे बचे भी, उनके भी श्मश्रु, केश जल गये थे। लङ्कामें झुलसे मुख-मस्तक, बिना श्मश्रु, केशके ही अधिकांश राक्षस-राक्षसियाँ पीछे बची थीं।

आहारके लिए अथवा क्रीड़ाके लिए पाले गये पशु बहुत थे लङ्कामें। महिष, बकरे, गर्दभ, खच्चर, व्याघ्र, सिंह और अश्व-गज तो थे ही। ये पशु अपना आश्रय-स्थान ध्वस्त होनेसे मार्गोंमें ज्वालासे व्याकुल, जलते-झुलसते भाग रहे थे। ये राक्षसोंको कुचलते, घायल करते उन्मत्त होकर दौड़ रहे थे। इनमें-से अधिकांशको राक्षसोंने मार दिया। इसमें दशग्रीव-की आज्ञा भी अपेक्षित नहीं हुई। इनको न मारा जाता तो ये राक्षसोंको ही मारे दे रहे थे।

क्रन्दन, चीत्कार, भाग-दौड़ और शवोंके जलनेकी दुर्गन्धि—लङ्का महाश्मशान भी कहने योग्य नहीं रह गयी थी। प्रलयके समय जब प्रलयङ्कर तृतीय नेत्र खोले उद्दाम ताण्डव करते हैं, कदाचित ऐसा ही दृश्य होता होगा।

दशग्रीवका नगर—दुर्दान्त सुरासुरजयी दशग्रीवकी राजधानी अनाथके झोपड़ेके समान जल रही थी और वह स्वयं, उसका इन्द्रजित पुत्र, उसके दूसरे महाशूर अपने परिवारोंको, स्त्रियोंको लिये मूषकोंके समान भूगर्भ गृहोंमें दुबके थे। वहाँ भी प्रबलतम तापसे शुष्क कण्ठ व्याकुल हो रहे थे। किसीको कुछ करणीय सूझ नहीं रहा था।

हनुमानने नगर परिखाका नाम नहीं छोड़ा। पूरी खाईं पाट दी। खाईंके मकरादि जन्तु मारे गये। नगरकी सरिताका, सरोवरोंका जल उबलने लगा। पक्षी पहिले ही भाग गये थे और सुवेल अथवा रजत शिखरपर मँडराते क्रन्दन करते थे। किसी सरोवरमें कमल, कुमुद कुछ नहीं रहा। मध्यके स्वर्ण-शिखरपर बसी पुरी वृक्ष-लताओंसे रहित हो गयी। अवश्य ही पिघलते स्वर्णका ताप और ज्योति उधर दृष्टि नहीं टिकने देती थी।

नीचे अधिकांश भवन ध्वस्त हो गये। राक्षस भूगर्भ गृहोंमें जा छिपे। भवनोंकी सामग्री, वस्त्र, खाद्य सबकी आहुति हो चुकी। एक नहीं, कई-कई बार हनुमानने घूम-घूमकर दशाननकी पुरीपर अपनी पूँछ फिरायी। इस सब समय उन्हें विभीषणका स्मरण बना रहा। वे विभीषणके भवनसे दूर रहे। उनकी पूँछ भूलसे भी उधर नहीं भटकी।

विभीषणके उद्यानकी तुलसी तकको ताप नहीं पहुँचा। इस सुरक्षाके कारण विभीषणके भवनके दोनों ओरके दो भवन भी ज्वालासे अस्पृष्ट रहे। राम-भक्तके पड़ोसमें बसनेका पुरस्कार मिला यह उन्हें। संयोगकी बात थी कि उनमें-से एक भवन त्रिजटाका था और दूसरी ओर विभीषण-के ही मन्त्रियोंका।

विभीषणका भवन रावणके राजप्रासादसे दूर हटकर था; किंतु राजप्रासादकी ओर मध्यमें कोई दूसरा भवन नहीं था। एकान्त-प्रिय विभीषणने भवन ऐसा चुना था कि उनके पीछे भी भवन नहीं थे। उधर सुवेल शिखर तथा समुद्र पड़ता था। केवल दोनों पार्श्वोंमें भवन थे और वे भी केवल दो। इसीलिए रात्रिमें सीतान्वेषणके समय हनुमान बहुत पीछे इधर पहुँचे थे। लङ्का-दहनके समय भी इस एक ओर बने भवनको सुरक्षित छोड़ देनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई थी।

'वानरने विभीषणका भवन छोड़ दिया।' हनुमानजीके चले जाने-पर लङ्कामें यह चर्चा चली।

'विभीषणने उसे प्राणदण्ड पानेसे बचानेकी चेष्टा की थी। उन्होंने ही उसे दूत कहकर अवध्य कहा था।' सबको ही यह समाधान प्राप्त था—'वानर अकृतज्ञ नहीं था। उसने अपने प्राण बचानेका प्रयत्न करने वालेका सदन उसे शत्रुका भाई जानते हुए भी छोड़ दिया।'

विभीषणके सम्बन्धमें दशग्रीव सन्दिग्ध अवश्य हो उठा इस घटना-से ; किंतु स्पष्ट सन्देह व्यक्त करनेका कोई कारण उसे भी नहीं मिला।

हनुमानने लङ्का-दहन पूरा कर लिया तब समुद्रमें कूद गये। उन्होंने पूँछ सागरजलमें बुझा दी। समुद्रकी लहरोंने उन्हें स्नान कराया और उनकी पूँछमें लिपटे जले, अधजले वस्त्रोंको, रुईको धोकर स्वच्छ कर दिया।

'हाय ! मुझ मूर्खने तो सब कार्य ही नष्ट कर दिया।' आवेश शान्त होते ही स्मरण आया—'सीताजी भी जल गयी होंगी। वे तो रावणके अन्तःपुरसे सटी वाटिकामें ही थीं। मैंने क्रोधवश रावणके सदनमें बार-बार अग्नि लगाया है। इतने प्रचण्ड तापमें वे कैसे बची होंगी। क्रोध-में मैंने महापाप किया। मैं अधम दूत हूँ। क्या मुख दिखलाऊँगा किसीको। मेरा मरण ही अब उत्तम है।'

इतने प्रचण्ड पौरुषके पश्चात् हतोत्साह, पश्चातापसे अत्यन्त पीड़ित पवनपुत्रने समुद्रमें ही अपना वक्ष विदीर्ण करनेका निश्चय करके आराध्यका स्मरण किया—'स्वामी ! दयामय ! इस अज्ञ अपराधी भृत्य-को क्षमा करना। श्रीराम···!'

सहसा हाथ रुक गया। 'सीता अपने तेजसे ही सुरक्षित नहीं होंगी?' हृदयने कहा—'श्रीरामके प्रभावसे अग्नि तुम्हारे लिए शीतल हो गया, तुम्हारी बालधिका एक बाल नहीं जला, तो अग्नि श्रीरामकी प्रियाको कैसे जला सकता है ?' तभी समुद्रतटसे भेरी-घोषके साथ होती घोषणा श्रवण-में पड़ी—'आश्चर्य है, सीता और वह शिंशुपा वृक्ष जिसके नीचे वह बैठी है, तनिक भी नहीं झुलसा। यह कालाग्नि ही कपि बनकर आया था। उसने विभीषणका भवन और सीताका वृक्ष बचा दिया है।'

'राजसदन, शस्त्रागार, महाद्वार, प्रहस्त-महापार्श्वादिके गृह, प्रेक्षागार, गजशाला, उद्यान सब ध्वस्त हो गये !' भेरी-घोषसे घोषणा हो रही थी—'किंतु अब भयकी बात नहीं है। उत्पाती वानर चला गया लगता है। वह कहीं दीखे भी तो राक्षसेन्द्रकी आज्ञा है, कोई उसके समीप न जाय। उसे जानेमें कोई बाधा न दी जाय।'

'लोग अपने भवनोंको लौटें ! राक्षसेन्द्र शीघ्र भवनोंको पूर्ववत बनवा देंगे। सबके सदनोंमें आवश्यक सामग्री तत्काल पहुँचानेकी व्यवस्था कर दी गयी है।' भेरी-घोष सुनकर हनुमानका मनस्ताप शान्त हो गया। दशग्रीवकी तत्परताकी मनमें प्रशंसा की उन्होंने। घोषणा हो रही थी— 'आहतोंकी चिकित्सा, व्रणरोपणादिमें वैद्य श्रेष्ठ सुषेण सहायकोंके साथ लग गये हैं। सुलगती अग्निको अब मेघ शान्त कर रहे हैं। भय त्याग दो! मृत स्वजनोंका शव प्राप्त हो तो उसका संस्कार कर दो। नगरको स्वच्छ करने तथा इसके पुनर्निर्माणमें शासनकी सहायता करो!'

'सन्देह नहीं कि पवनपुत्र कृत-कार्य हुए।' समुद्रतटपर प्रतीक्षा करते वानरोंसे जाम्बवानने कहा—'यह गर्जना उन्हीं की है। वह आकाश-में लहराती उनकी लांगूल दीख रही है।'

वानर हर्षसे उछलने लगे। वे अपनी पूँछ हिलाने-चूमने लगे। वृक्षों-पर, पर्वतपर चढ़ने-उतरने, कूदने लगे। किसे आशा हो सकती थी कि कल प्रभातमें गये पवनकुमार आज सूर्यास्तसे पूर्व ही लौट आवेंगे।

हनुमान महेन्द्र पर्वतपर धीरेसे उतरे। लङ्का-दहनके पश्चात् उन्होंने विश्राम नहीं किया था। लङ्कामें प्रात: अशोक वाटिकाके फल खाये थे ; किंतु कल प्रात:से जल नहीं पिया था। उन्हें प्यास लगी थी। महेन्द्र पर्वत-पर महर्षि लोमशका आश्रम था उस समय। उनके यहाँ जल पीने चले गये।

'सरोवरमें स्नान कर लो। जल पी लो!' हनुमानके प्रणाम करने-पर महर्षिने कहा। हनुमानने सीताजीसे प्राप्त चूड़ामणि और मुद्रिका वहीं ऋषिके समीप धर दी और स्नान करने चले गये।

'मुद्रिका?' पवनकुमार लौटे तो चूड़ामणि रखी थी, पर मुद्रिका वहाँ नहीं थी।

'वह तुम्हें चाहिये तो कमण्डलुमें-से निकाल लो।' ऋषिने कहा—'मैंने तो उसे कमण्डलुमें डाल दिया है।'

'भगवन्! मेरी मुद्रिका?' हनुमानने कमण्डलुमें हाथ डाला तो उसमें बहुत मुद्रिकाएँ लगीं! मुट्ठीभर निकाल लीं और देखकर चकित रह गये। सब मुद्रिकाएँ एक जैसी थीं।

'उसीमें ढूँढ़ो।' ऋषिके मुखपर स्मित आया।

हनुमानजी हाथ डालकर मुट्ठी भर-भरकर मुद्रिकाएँ निकालते गये। कई मुट्ठी निकालकर चकित ऋषिकी ओर देखने लगे।

'सब श्रीरामकी हैं। सब तुम्हीं यहाँ लाये हो।' महर्षिने कहा—'प्रत्येक कल्पमें जब रामावतार होता है, हनुमान ऐसे ही लङ्कासे लौटते समय मुद्रिका यहाँ धर जाते हैं। चिन्मय श्रीरामके आभरण भी चिन्मय हैं। उनमें अन्तर नहीं हुआ करता। अब तुम्हें मुद्रिकाका प्रयोजन क्या है? चूड़ामणि ले लो श्रीरामके लिए और उनके समीप जाओ।'

'भगवन्! आपकी आयु?' हनुमानने पूछा।

'देखते ही हो कि तुम्हारे समान मेरा शरीर भी लोमसे भरा है।' लोमशने कहा—'जब अपनी सौ वर्षकी आयु पूरी करके एक ब्रह्मा मरते हैं तो उनके सूतकसे शुद्ध होनेके लिए मैं एक रोम तोड़ देता हूँ। इतने रोम तो टूट गये। जब सब रोम टूट जायँगे, तब मेरी आयु समाप्त हो जायगी।'

महर्षिके बाएँ घुटनेपर बहुत थोड़ी दूरीमें रोम नहीं रहे थे। हनुमानजीने उन्हें प्रणाम किया और चूड़ामणि उठाकर उठ खड़े हुए। उन्होंने अपूर्व पौरुष लङ्कामें प्रकट किया, यह बात मनसे निकल गयी। श्रीराम अपने जनमें अभिमानका लेश भी रहने नहीं देते, यह उन्हीं अनन्त करुणावरुणालयकी कृपा है, यह समझना आञ्जनेयको शेष नहीं था।

वानर बड़ी व्यग्रतासे वृक्षोंपर, पर्वत-शिखरपर चढ़कर प्रतीक्षा कर रहे थे। हनुमानने अपना आकार सामान्य बना लिया था। उन्होंने आकर अपनेसे आयुमें बड़े जाम्बवान आदिको प्रणाम किया। अङ्गदको हृदयसे लगाया।

'मैंने अम्बा सीताको देखा है।' हनुमानने कहा—'सम्पातीने जो विवरण दिया था, वह अक्षरशः सत्य निकला।'

'अब हम मार्गमें तुमसे यात्रा-वर्णन सुनेंगे।' जाम्बवान उठ खड़े हुए —'हमें शीघ्र वानरेन्द्र सुग्रीवके समीप पहुँचना चाहिये।'

सभीको जाम्बवन्तकी बात अच्छी लगी। हनुमानजीने मार्गमें उन्हें अपनी यात्राका वर्णन सुनाया। अब तो सीधे ही किष्किन्धा लौटना था। सब पूरे वेगसे उछलते, दौड़ते चल रहे थे। सुग्रीवका दिया समय समाप्त हो गया, इसकी चिन्ता करनेकी अब आवश्यकता नहीं थी।

किष्किन्धासे कुछ दूर दक्षिणकी ओर वानरेन्द्रका फलोद्यान मधुवन था। उसमें बहुत अधिक मधु-छत्रक लगे थे। पूरे मार्ग वानर उत्साहमें कूदते—नृत्य करते आये थे। वे बार-बार कूदकर पवनकुमारका स्पर्श करते, उनके कंधोंपर कूद जाते, उनका गुणगान करते। मार्गमें पर्वतपर, वृक्षोंपर वे उत्साहतिरेकमें चढ़ते रहे थे। अङ्गदने बार-बार भरे कण्ठ कहा था—'आञ्जनेय! सत्व, बल, वीर्यमें तुम अतुलनीय हो। तुमने हम सबको जीवनदान दिया।'

प्रत्यावर्तन

'अम्ब ! आपके अनुग्रहसे और श्रीरघुनाथकी कृपासे दशग्रीव दलित-दर्प हो गया।' हनुमानने समुद्र-स्नानके पश्चात् छलाँग लगायी और सीधे अशोकोपवनमें जाकर श्रीजानकीके सम्मुख प्रणिपात किया। अब उन्हें न छोटा रूप बनानेकी आवश्यकता थी, न छिपकर आने की। उन्हें देखते ही राक्षसियाँ भयके मारे दूर भाग गयीं। हाथ जोड़कर खड़े होकर बोले—'मैं आराध्यके आनेका पथ आपकी अनुकम्पासे प्रशस्त कर सका। यहाँ जो देखना था, सब देख चुका। अब आप मुझे अनुमति दें।'

'वत्स ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है। तुम अकेले ही स्वामीका कार्य करनेमें सक्षम हो।' श्रीजानकीने हर्ष और स्नेहसे कहा—'किंतु उनका सुयश इसमें है कि वे आवें, अपने बाणोंसे लङ्का ध्वस्त करके मुझे ले जायँ। तुम बहुत श्रान्त हुए हो, एक दिन विश्राम करके तब जाना ठीक होता।'

'आपके आशीर्वादसे मुझे तनिक भी श्रान्ति नहीं है।' हनुमानने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया—'मेरा यहाँ रुकना अनुचित है। वहाँ श्रीराम अत्यन्त व्याकुल होंगे और यहाँ रावण मेरे रुकनेसे आपको अधिक तङ्ग करेगा। मुझे भी शान्तिसे बैठने नहीं देगा।'

'तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो !' श्रीवैदेहीने आशीर्वाद दिया—'स्वामी जैसे शीघ्र आवें, वही करना।'

'आप आश्वस्त रहें ! वे मेरे पहुँचते ही प्रस्थान करेंगे ?' हनुमानने पुनः प्रणिपात किया और वहाँसे कूदकर अरिष्ट पर्वतपर—रजत-शिखरपर पहुँचे। वहाँसे उन्होंने कूदनेसे पूर्व जो गर्जना की, समूची लङ्का काँप उठी। बहुत अधिक लोग खड़ेसे गिर पड़े। राक्षस इधर-उधर भयसे भागने लगे।

सुबेलपर शनिदेव इसी गर्जनाकी प्रतीक्षामें थे। अब अपने लोक प्रस्थानसे पूर्व उन्होंने दृष्टि उठाकर लङ्काको देखा। लङ्काका स्वर्ण-शिखर

और भवनोंका सम्पूर्ण स्वर्ण, भित्तियाँ आदि तत्काल काले पत्थरमें परिवर्तित हो गयीं। अब भी लकद्वीप समूह इन काले भुलसे पत्थरोंसे परिपूर्ण है।

'क्या ? यह क्या हुआ ?' दशग्रीवके सभी मन्त्री चौंके। उन सबने देखा भवनोंकी भित्तियोंको, पिघले स्वर्णको काले पाषाणमें परिवर्तित होते। स्वर्ण भी पाषाण बन जाता है ?

'पाषाणके भवन स्वर्णसे अधिक सुखद होते हैं।' दशग्रीवने अपने मन्त्रियोंका चौंकना देखा तो हँसकर बोला—'अब अग्नि लगनेपर ये न ताप देंगे, न पिघलकर बहेंगे। वह उत्पाती कपि चला गया, यह सूचना है। वह जाते-जाते हमारी यह सेवा कर गया।'

'वानर चला गया !' इस बातसे सबको आश्वासन ही मिला; किंतु सबके हृदयमें भय बैठ गया—'वह इतना प्रभावशाली कि जब तक रहा, लङ्काका स्वर्ण, स्वर्ण बना रहा और उसने यह भूमि छोड़ी तो यहाँकी समस्त श्री समेटता गया ! यहाँके स्वर्णको भुलसे पत्थर बना गया ? वह कुछ सदाको तो गया नहीं। अब वह अपने स्वामीको और पता नहीं कितने अपने जैसे साथियोंको लेकर लौटेगा !'

'अब प्रथम कार्य है, ध्वस्त परिखा एवं भवनोंका शीघ्र पुनर्निर्माण !' दशग्रीवने सबको दूसरे कार्यमें अविलम्ब लगा देना ही इस आतङ्कके विस्मरणका उपाय समझा—'कोई बाहरी सहायता इस कार्यमें नहीं मिलेगी। किसीको भी आलस्य करते पाया गया तो क्षमा नहीं किया जायगा।'

अन्न-भण्डार, शस्त्रागार, अश्व-गजादिके नष्ट होनेकी चिन्ता किसीको नहीं करनी थी। नवनिधियाँ दशग्रीवके समीप थीं। सभी सिद्धियाँ उसकी सेविका थीं। अतः सम्पत्ति, अन्न-धन तो तत्काल भर जाना था। बन तो जाती पुरी भी पूर्ववत् क्योंकि विश्वकर्मा रावणके आदेशकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे। दानव विश्वकर्मा मय स्वयं दशग्रीवके स्वसुर थे; किंतु रावण नहीं चाहता था कि देवता अथवा दानव देखें कि अकेले वानरने उसकी पुरीकी कैसी दुर्गतिकी है। अतः पुरीका पुनर्निर्माण करनेमें उसने किसी बाहरी व्यक्तिको बुलाना अस्वीकार कर दिया। यह कार्य, लङ्काके ही शिल्पियोंको—वास्तु विशेषज्ञोंको करना था। स्वयं दशग्रीव इसकी देख-रेखमें लग गया।

× × ×

जबसे वानरोंको सीतान्वेषणके लिए भेजा गया था, सुग्रीव दिनका अधिक समय श्रीरामके समीप ही व्यतीत करते थे। वानरोंके दल लौटने लगे। सबका एक ही समाचार—'कोई पता नहीं लगा।'

'दक्षिण गया दल अभी आया नहीं।' सुग्रीवको, श्रीरामको भी एक ही आशा थी—'लङ्का दक्षिण ही है। इस दलको अवश्य सफल होना चाहिए।'

विलम्ब होता गया। विलम्बसे व्याकुलता बढ़ती गयी तो सम्भावना भी बढ़ती गयी। समाचार पानेकी आशा न होती तो वानर विलम्ब करनेका साहस नहीं करते!'

आज लक्ष्मणने सम्वाद दिया—'आर्य! सुग्रीव दक्षिण गये दलके साथ आ रहे हैं। सब प्रसन्न लगते हैं।'

श्रीराम उत्साहमें उठ खड़े हुए।

सम्वाद-निवेदन

'आ गये तुम लोग, सीताको देखा ? वे कहाँ हैं ? कसी हैं ? क्या करती है ?' श्रीरामने आगे आकर आतुरतापूर्वक पूछा—'जीवित हैं जनक-नन्दिनी ? क्या अवस्था है उनकी ?'

सुग्रीवने और दूसरोंने भी प्रणाम किया। जाम्बवानने कहा—'पवनपुत्रने सीताजीका दर्शन किया है। ये स्वयं सुनावेंगे।'

'देव ! अम्बा सीता जीवित हैं !' हनुमानने उठकर श्रीरामकी प्रदक्षिणा की। उनके चरणोंमें प्रणिपात किया। अबतक श्रीराम स्वयं सुग्रीवके साथ शिलापर बैठ गये थे। दूसरे सब नीचे बैठे थे। हाथ जोड़ खड़ हनुमान सम्वाद सुनाने लगे—'भारतभूमिके दक्षिण छोरसे सौ योजन दूर समुद्री द्वीपमें त्रिकूट पर्वतके मध्य शिखरपर रावणकी लङ्कापुरी है। रावणके अन्तःपुरसे लगे उद्यानमें मैंने उन तेजोमयी परम तपस्विनीके दर्शन किये।'

'वे पर्णकुटीमें भी प्रवेश नहीं करतीं। शिंशुपावृक्षके नीचे बिना आसन भूमिमें ही बैठी रहती हैं। 'राम-राम' का अखण्ड जप करती हैं। आपमें ही उनका जीवन है। आप उनका उद्धार करेंगे, इस आशापर ही जीवित हैं।' हनुमानके नेत्र भर आये—'देव ! उन्हें राक्षसियाँ रात-दिन डराती धमकाती रहती हैं। स्वयं रावण उन्हें मार देनेकी धमकी देता रहता है। उन्होंने तो मरनेका निश्चय कर लिया था। अपनी वेणी वृक्षमें उलझाकर कण्ठमें लपेट ली थी। सौभाग्यवश मैं उस समय पहुँच गया। उनसे इक्ष्वाकुवंशका यश बढ़ा है। आपकी चर्चा चलनेपर वे आनन्दमग्न हो गयीं।'

'उन्होंने अभिज्ञान दिया है, कहा है—'मेरे स्वामी ! आपने मेरे कपोलपर जो मनःशिलाका तिलक किया था, वह पुँछ गया है। आपने मेरे लिए एक वायसपर ब्रह्मास्त्र चला दिया था, अब इस अधम राक्षसको क्यों क्षमा कर रहे हैं ?' हनुमानने केशोंमें-से चूड़ामणि निकालकर अञ्जलिमें

'युवराज ! हम भूखे हैं।' अब वानरोंने मधुबनको देखकर कहा—'हनुमानजीका भी सत्कार किया जाना चाहिए। ये कितना परिश्रम करके लौटे हैं।'

'यथेच्छ फल खाओ और मधु पियो !' युवराजने आज्ञा दे दी—'उद्यान अपना ही है।'

'अरे ! तुम सब क्या करते हो ?' उद्यान-रक्षक दौड़े—'यह वानरेन्द्र सुग्रीवका रक्षित उद्यान है। इसमें फल तोड़ना या मधु-छत्रक लेना वर्जित है।'

'वर्जित है ! तुम भी मधु पियो !' वानरोंने रक्षकोंका परिहास किया। उन्हें नोचा भी और उनके मुखपर भी मधुछत्रक फेंके। अङ्गदने उपवन-रक्षकोंके प्रधान सुग्रीवके मामा दधिमुखका भी उपहास किया। वे भागे सुग्रीवके समीप पहुँचे।

'युवराज अङ्गदने आपका मधुबन उजाड़ दिया। वे सब वानरोंको लेकर उद्यानमें घुस आये। कच्चे फल तोड़ फेंके और मधुछत्रक तोड़-तोड़कर सब मधु पीनेमें लगे हैं।' दधिमुखने आक्रोश-भरे स्वरमें कहा—'युवराजने मेरा उपहास किया। मेरे रक्षकोंको वानरोंने मारा है। वे सब वहाँ उत्पात कर रहे हैं।'

'इसका अर्थ है कि वे श्रीजानकीका पता लगा आये। ऐसा न होता तो फल खाने, उत्पात करनेका साहस उन्हें नहीं होता। वह उद्यान तो युवराजका ही है।' सुग्रीवने प्रसन्न होकर कहा—'उनसे कहो कि मैं उनसे मिलनेको आतुर हूँ। वे शीघ्र यहाँ आवें।'

वानरोंने भरपेट फल खाये। बहुत अधिक मधु पिया—इतना अधिक कि सब शिथिल होकर हनुमानजीको घेरकर बैठ गये थे। अब हनुमान उन्हें सुना रहे थे—'श्रीरामके प्रतापसे, वानरेन्द्र सुग्रीवके तेजसे, आप सबके आशीर्वादसे मैंने लङ्का जला दी। अब जो कार्य शेष रहा है, उसे आप सब पूर्ण करेंगे।'

'अम्बा सीताका शील और तप ऐसा है कि वे तीनों लोकोंको धारण करनेमें समर्थ हैं। उनको ले आनेके लिए लङ्कापर चढ़ायी करना सर्वथा उचित है।' हनुमानने बतलाया—'मैंने राक्षसोंके सब महायन्त्र नष्ट कर दिये हैं। भले समुद्र अपनी मर्यादा त्याग दे, हमारी विजय

सुनिश्चित है। सुग्रीव, जाम्बवान और अङ्गदके सम्मुख युद्धमें कौन टिक सकता है।'

'पवनपुत्रने यह सब किया; किंतु हम सबने तो कुछ भी नहीं किया है।' युवराज अङ्गद खिन्न स्वरमें बोले—'हमें तो रावणको राक्षसों-के साथ मारकर सीताको ले आना था। अब हम क्या मुख लेकर श्रीरामके समीप चलेंगे?'

'युवराज! हम वह भी करेंगे। पवनपुत्र कहते ही हैं कि उन्होंने राक्षसियोंसे पीड़िता वैदेहीको देखा है। हम उन तपोमयीके प्रभावसे ही सफल होंगे।' जाम्बवानने समझाया—'हम असमर्थ नहीं हैं; किंतु हमें श्रीरामकी आज्ञानुसार चलना चाहिये। स्वामीके सुयशको समुज्वल करना चाहिये। अतः अब हम सब उनके समीप ही चलें।'

'युवराज! आप तो हमारे स्वामी हैं, हमारी अविनय क्षमा करें।' दधिमुखने लौटकर अङ्गदसे नम्रतापूर्वक कहा—'वानरेन्द्रने कहा है कि उद्यान आपका ही है। वे तो यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए कि आपने उद्यानके फलों, मधु-छत्रकोंका यथेच्छ उपयोग किया। क्या हुआ जो कुछ उद्यान नष्ट हो गया। अब वानरेन्द्र आप सबसे मिलनेको अत्यन्त उत्सुक हैं।'

'हम यहाँ रुके, इसका तात्पर्य वानरेन्द्रने समझ लिया है।' अङ्गद-ने हँसकर कहा—'यदि सब लोग भली प्रकार खा-पीकर तृप्त हो गये हों तो अब हम वानरेन्द्रके समीप चलें।'

सब उठ खड़े हुए। वहींसे उछले और सीधे किष्किन्धामें राजसदनके सम्मुख भूमिपर उतरे। सुग्रीव स्वयं द्वारपर प्रतीक्षा करते मिले। अङ्गद और हनुमानने उन्हें प्रणाम किया। हनुमानने कहा—'नियम तपोलीना देवी सीताका दर्शन हमने किया है।'

'अङ्गद! तुमने युवराजके योग्य कार्य किया।' सुग्रीवने अङ्गदके कन्धेपर हाथ रखा—'सब लोग मार्ग-श्रमसे श्रान्त, भूखे-प्यासे आये थे। कार्य सम्पन्न करके लौटे सहायकोंका सत्कार कर्त्तव्य होता है। अब यदि सब लोगोंकी श्रान्ति दूर हो गयी हो और सबने क्षुधा-पिपासा मिटा लिया हो तो हम सब ऋष्यमूकपर लक्ष्मणके समीप चलें। श्रीरामके साथ ही मैं श्रीवैदेहीका पूरा समाचार सुनूँगा।'

श्रीजनक-नन्दिनीको लाना ही है। आप बुद्धिको व्याकुल मत बनावें। आप धनुष लेकर खड़े होंगे तो समुद्रको शुष्क कर देनेमें आपको विलम्ब होगा ? आप अब दशग्रीवपर क्रोध करें। मैं तो ऐसे शकुन स्पष्ट देख रहा हूँ कि आपकी विजय होगी।'

'पवनपुत्र ! तुम सीताका पता लाये हो। हम कैसे भी समुद्र पार करेंगे ही।' श्रीरामको तो सुग्रीवको प्रोत्साहित करना था। अब बोले—'तुमने लङ्का देखी है। उसकी स्थिति क्या है ? उसके द्वारादि कैसे हैं ?'

'त्रिकूटके मध्य शिखरपर बसी लङ्का सब प्रकार समृद्ध है। उसके सभी निवासी रावणसे प्रेम करते हैं। राक्षस सुखी हैं। उसके चारों ओर चार द्वार थे। उनपर महायन्त्र लगे थे। अत्यन्त बलशाली राक्षस उन द्वारोंके रक्षक थे।' हनुमानने विवरण दिया—'बहुत सुदृढ़ चिकनी परिखा नगरके चारों ओर थी, जिसपर चढ़नेको सहारा नहीं था। परिखा-के बाहर चौड़ी खाई थी, उसमें ग्राह पले थे। स्वतःचालित यन्त्र बाहर और जलमें भी थे।'

'लङ्का दुर्ग अत्यन्त दुर्धर्ष था। उसकी प्रत्येक दिशामें खाईसे बाहर भी सरिता, वन अथवा खड़े पर्वतकी सुरक्षा है। नौकाका मार्ग नहीं है।' हनुमानने पूरा विवरण दिया—'लङ्का ऊँचाईपर बसी है। उसकी परिखा-पर यन्त्र लगे थे। सब ओर मुख किये शतघ्नी सजी थीं। पूर्व द्वारपर दस सहस्र योधा द्वार-रक्षक थे। दक्षिण, उत्तर, पश्चिमके द्वारोंपर इतने योधा थे कि मैं अनुमान नहीं कर सका। नगरकी मध्यम कक्षामें भी महायन्त्र लगे थे।'

'हनुमान ! तुमने सब वर्णन 'थे' कहकर भूतकालके किये हैं।' श्रीरामके मुखपर स्मित आया। 'अब लङ्काकी क्या स्थिति है ?'

'देव ! मैंने पुरीकी प्रायः पूरी परिखा गिराकर खाई पाट दी है। द्वार ध्वस्त कर दिये। कह नहीं सकता कि दशग्रीव कितनी कैसी परिखा हमारे पहुँचने तक बना लेगा और द्वार कहाँ कैसे बनवायेगा।' हनुमानने हाथ जोड़े निवेदन किया—'मैंने सब महायन्त्र तथा शतघ्नियाँ लात मार-कर नष्ट कर दी हैं। शत्रु उनका पुनर्निर्माण बहुत शीघ्र नहीं कर सकता। मैं अनुमान लगानेकी स्थितिमें नहीं था; किंतु मैंने राक्षसोंको कहते सुना कि इस उत्पाती वानरने लङ्काकी चौथाई सेना मार दी।'

'नगरके बहुत अधिक भवन नष्ट किये हैं मैंने।' हनुमानने कहा— 'शत्रुको सबसे पहिले नगर-परिखा और भवन बनानेमें व्यस्त होना पड़ेगा। वह महायन्त्रोंपर ध्यान अभी नहीं दे सकेगा।' आञ्जनेयने विवरण पूरा किया—'नगरके बाहरकी सरिता भी अग्निके तापसे मकरादि-रहित हो चुकी है। दशग्रीव अनुमान भी नहीं कर सकेगा कि उसका उत्तर शिखरसुवेल, काल तथा शनिश्चरको मुक्त करके अरक्षित कर दिया गया है।'

'शत्रुको जितना अधिक समय मिलेगा, वह अपनी सुरक्षा उतनी दृढ़ कर सकेगा। अतः उसे समय नहीं देना चाहिए!' अब आञ्जनेयने प्रस्ताव किया—'आप अविलम्ब प्रस्थान करें। आपके प्रताप-प्रभावने ही इतना कार्य किया है। अन्यथा मुझ तुच्छ वानरमें तो केवल शाखाओंपर कूदनेकी शक्ति है। अम्बाका उस दारुण विपत्तिसे यथाशीघ्र परित्राण परमावश्यक है। दशग्रीवको समय नहीं मिलना चाहिये। अतः शेष कार्यको सम्पन्न करनेके लिए अब प्रभुको प्रयाण करना चाहिये।'

लेकर आगे बढ़ाया—' इसे देते कहा है कि इसकी मर्यादाकी सुरक्षा आपके करोंमें है। '

' सीते !' श्रीरामने दाहिने हाथसे चूड़ामणि उठाकर हृदयसे लगाया और उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा चलने लगी। कुछ क्षणोंतक वे ध्यानस्थ बने रहे।

' कुमार ! भगवती वैदेहीने आपको प्रणाम कहा है। ' हनुमान लक्ष्मणके समीप आये। सुनते ही लक्ष्मणने घुटने टेककर भूमिपर उन आराध्याके निमित्त मस्तक रखा।

' उन्होंने कहा है कि कुमार इस कटुभाषिणी अज्ञा अपराधिनीको क्षमा कर दे !'

' मत कहो—मत कहो हनुमान !' लक्ष्मणने दोनों कानोंपर हाथ रखे और फूट-फूटकर रोने लगे—' वे मेरी आराध्या हैं। अम्बा हैं। ये शब्द सुनने भी पाप हैं। '

' देव ! अब शत्रुपर तत्काल आक्रमण करके उन आर्याके उद्धारका प्रयत्न करना उचित है। ' हनुमानने देखा कि श्रीराम तनिक स्वस्थ हुए हैं तो पुनः उनके सम्मुख आ गये।

' जैसे मरणासन्न रोगी महौषधि पाकर जीवित हो जाता है ' श्रीरामने कहा—' आञ्जनेय ! इसी प्रकार सीता-समाचार देकर तुमने मुझे जीवित किया है। '

' स्वामी ! अम्बाने काक-जयन्तका बार-बार स्मरण कराया है। ' हनुमान रुदन करते बोले—' उन्होंने कहा है कि मुझे प्राप्त करनेके लिए शीघ्र रावणको मार दें। कुमार लक्ष्मण ही क्यों मुझे छुड़ानेका यत्न नहीं करते ? अवश्य ही मेरा ही कुछ पाप है कि अग्रज एवं अनुज दोनोंने मेरी उपेक्षा कर दी है। '

हनुमानने देख लिया कि लक्ष्मणके नेत्र अङ्गार हो उठे थे। वे क्रोध और दुःखसे रुदन करते हुए अपने दोनों त्रोण पीठपर बाँधने लगे थे। बिना एक शब्द बोले अग्रजके समीप उनके दोनों त्रोण उन्होंने लाकर रखे और धनुष तथा खड्ग ला रखा।

' वे अत्यन्त दुःखी हैं। निरन्तर रुदन करती हैं। उन्होंने कहा है कि आप एक मासमें न आये तो प्राण त्याग देंगी। ' हनुमानने अनुरोध किया— ' आप शीघ्र प्रस्थान करें ! मेरे आते समय वे बहुत व्याकुल थीं। मुझे एक

दिन रुकनेको कहा ; किंतु इससे उनकी विपत्ति बढ़ जाती। मैंने आश्वासन दिया है कि मैं वानरेन्द्र सुग्रीवका सबसे तुच्छ अनुचर हूँ। सुग्रीव असंख्य वानर लेकर आवेंगे। वे अतुल पराक्रम हैं। उन्होंने एक बारमें भू-परिक्रमा की है। शीघ्र आकर वे रावण तथा राक्षसोंका विनाश करेंगे।'

प्रशंसा गुरुजनोंकी उनके सम्मुख की जाती है, मित्रकी पीठ पीछे की जाती है, पुत्रकी कभी नहीं की जाती और सेवककी तब की जाती है, जब वह कार्य सम्पन्न करके आता है। श्रीरामने मुक्तकण्ठसे हनुमानकी प्रशंसा की।

'केवल वायु, गरुड़ और पवनपुत्र ही समुद्र पार कर सकते हैं। सुग्रीवका कार्य हनुमानने सम्पन्न किया है। बिना आज्ञा भी निर्दिष्ट कार्यसे अधिक कार्य किया। आगामी कार्यके लिए भूमिका प्रशस्त कर दी। हनुमान उत्तम सेवक हैं।' श्रीराम आभार-गद्गद स्वर कहते गये—'मुझे, लक्ष्मणको, भरतको, माता कौसल्याको, रघुवंशको, पूरी अयोध्याको हनुमानने जीवन दिया है। सबकी पवनपुत्रने रक्षा की है।'

'मेरे नाथ ! मेरे स्वामी !' हनुमानने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिये।

'इतना प्रिय सम्वाद लाने वालेको देने योग्य मेरे पास कुछ नहीं है। राम कङ्गाल है।' श्रीराम उठ खड़े हुए—'मेरे पास मेरा हृदय ही है, अतः मैं आञ्जनेयको आलिंगन देता हूँ। यही मेरा सर्वस्व है। सब साक्षी रहें, राम अपने आपको हनुमानको दे रहा है।'

दोनों विशाल बाहु बढ़ाकर, झुककर श्रीरामने बलपूर्वक हनुमानको उठाकर हृदयसे लगाया और देरतक लगाये रहे।

'यह अन्वेषण-कार्य तो पूरा हो गया।' कुछ क्षणोंके पश्चात् श्रीराम जब स्वस्थ होकर बैठ गये, सुग्रीवकी ओर देखकर बोले—'अब समुद्र पार कैसे होगा ?'

'आप यहीं इस प्रकारकी बात क्यों करते हैं ? आप लीलामय हैं, जानता हूँ ; किंतु यह असङ्गत लीला क्यों ?' सुग्रीव उठ खड़े हुए—'श्रीजानकीका पता लग गया, अब उन्हें प्राप्त करनेकी युक्ति ढूँढ़नी है। हम निश्चय समुद्र पार करेंगे। वानर शूरवीर हैं। इनके मनमें आपके प्रति भक्ति है। हम पराक्रम करके समुद्रको पाट देंगे। रावणको मारकर

तटपर न पहुँचें। नीलकी गतिको आगे रखना है। अब सब कूदें—
'जय श्रीराम !'

श्रीरामने मुख पीछे करके प्रशंसाकी दृष्टिसे सुग्रीवकी ओर देखा। वानरेन्द्रने सुरक्षा, सावधानीके सब निर्देशोंको अनावश्यक बना दिया था। कपि सेनाको सर्वथा सुरक्षित रखनेकी निर्दोष योजना कर दी थी। गगनमें भी वे छायाकी भाँति अङ्गदके पीछे ही थे। वन, पर्वत, आकाशको घेरती वह असंख्य वानर-सेना उछलते समय भी इतनी व्यूहबद्ध रह सकती है, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। केवल सामान्य वानरोंने पृथ्वीपर मध्यमें पद टेके; किंतु इतनी शीघ्र फिर कूदे कि उनका भूमिपर उतरना लक्षित करना कठिन था। सब गगनमें मानों उड़ रहे हों, ऐसे सीधे जाकर दक्षिण-सागर तटपर उतरे।

किसीका ध्यान नहीं गया कि नीचे अरण्यमें उनके उड़ते जानेसे कितना अन्धकार हो गया था। कितने वृक्ष और शाखाएँ उनके वेगसे उठी आँधीने तोड़े-उखाड़े। वन पशुओं और पक्षियोंमें कितनी व्याकुलता, दौड़ा-दौड़ मची। सबकी दृष्टि आगे थी। सब लक्ष्यदर्शी थे। सबको नीलका पीछा करना था और नीलको सीधे वहाँ उतरना था, जहाँसे हनुमान लङ्का-से लौटकर उतरे थे। नीलका देखा था वह स्थान। नील वहीं उतरे तो पलोंमें पूरी वानर-सैना वहाँ उतर गयी।

वर्तमान भूगोलकी भाषामें बोलना हो तो दक्षिण भारतका वह पूरा भाग जो रामेश्वरम्‌से तिरु-इन्द्रम् तक सीधी रेखा खींचनेसे नीचे आवेगा, वानर-सेनासे भर गया। सम्भवतः पश्चिम समुद्रतटका और ऊपर तकका भाग।

'वानरेन्द्र ! अब सबको खाने-पीनेकी अनुमति दे दो।' श्रीरामने हनुमानके कन्धेसे उतरते ही कहा—'हम लोग यहाँ सागरके समीप ही अपना शिविर स्थापित करें।'

वानर पूँछ पटककर, उछलकर गर्जना कर रहे थे। बार-बार जयनाद गूँज रहा था। वे पर्वतोंपर चढ़ते थे, वृक्ष उखाड़ते तोड़ते थे। समीपमें सरोवर थे, सरिता थी। जलका सम्यक् सुयोग था। वन पक्व फलोंसे लदा था। कदाचित उन मर्यादा पुरुषोत्तमका ही प्रभाव होगा कि

उस प्रदेशमें (कन्याकुमारीके आसपास) अबतक सभी महीनोंमें पका आम मिलता है।

वनपशु व्याकुल होकर भाग खड़े हुए। पक्षी चिल्लाते दूर चले गये। वानर पर्वतपर चढ़कर पानीमें कूदते थे। उनका सायङ्कालीन स्नान चल रहा था।

'सबको अपना-अपना दल सम्हाल लेना चाहिए।' सुग्रीवने यूथपों-को आदेश दिया—'हम शत्रुके समीप हैं, अत रात्रिमें भी हम सबको सावधान रहना है।'

नीलने तत्काल सबकी व्यवस्था देखी। वानरोंको फल-कन्द ही आहार करना था। उसका यहाँ कोई अभाव नहीं था। नीलको केवल निर्देश करना था कि कौनसे यूथप अपने यूथको लेकर कहाँ रात्रिमें रहेंगे। सुरक्षाकी सबसे अधिक आवश्यकता समुद्रकी ओरसे थी। हनुमान, अङ्गद, सुग्रीव, जाम्बवान, सुषेण नील आदि प्रमुख यूथप श्रीराम-लक्ष्मणको घेरकर समुद्रकी ओरसे सावधान थे।

श्रीराम-लक्ष्मणने स्नान करके सायं-संध्या सम्पन्न की। स्वयं सुग्रीव पर्णपुटकमें जल और मधुर फल लेकर उपस्थित हुए। अङ्गद-हनुमानने कोमल पत्र तोड़कर श्रीरामके लिए पत्र-शय्या सजा दी।

'कब सीताका समुद्धार होगा! कब यह शोक दूर होगा!' श्रीराम सचिन्त हो उठे।

लक्ष्मणने आश्वासन दिया—'आर्य! अब आप दशग्रीवपर क्रोध करें, केवल इतना ही विलम्ब आर्या अम्बाके उद्धारमें है। अब तो शोकका नहीं, उत्साहका समय है।'

'रात्रिमें सबको बहुत सावधान रहना चाहिये।' श्रीरामने सुग्रीव-को समीप बुलाया—'दशग्रीव और उसके अनुचर, निशाचर हैं। रात्रिमें उनका बल बढ़ जाता है।'

'आपका प्रताप और अशोक बाटिकामें बैठी तपस्विनी अम्बाका आशीर्वाद आपके जनोंकी कैसी रक्षा करता है, मैं इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर चुका हूँ।' हनुमानने कहा। वे अङ्गदके साथ श्रीरामका चरण-संवाहन करने आ बैठे थे।

विजय-यात्रा

'अभिजित—मध्याह्नका यह विजय-मुहूर्त है। वानरेन्द्र सुग्रीव ! हम तत्काल यात्रा करें !' श्रीरामने देख लिया कि लक्ष्मणको पल-पल असह्य हो रहा है, अत: उठ खड़े हुए। अपने त्रोण कसते हुए ही कहा—'मेरा दाहिना नेत्र, दक्षिण भुजा फड़क रही है। हमारी विजय निश्चित है। सेनाके आगे वानरोंके साथ नील चलें।

'मार्गमें जल, फल, कन्द, मधु मिलेंगे। उन्हें तबतक कोई स्पर्श न करे, जबतक उनकी परीक्षा न कर ली जाय। दुरात्मा राक्षस उन्हें दूषित कर दे सकते हैं।' श्रीरामने सबको सावधान किया—'जलादिकी परीक्षा करनेवाले अग्रिम दलके साथ चलें।'

'आप चिन्ता न करें।' सुग्रीवने कहा—'हम उपदेवता सही; किंतु वानर हैं। हमारे सब लोग दृष्टि पड़ते ही विष-मिश्रित पदार्थ पहिचान लेते हैं।'

'फिर भी सावधानी आवश्यक है।' श्रीरामने सूचित किया—'शत्रु महामायावी है। कहीं नीची भूमि पड़े तो कपि उछलकर पहिले देख लें कि शत्रु वहाँ छिपे तो नहीं हैं। गुफाओंके समीप पर्वत-शिखरोंपर चढ़नेसे पूर्व भी यह सावधानी रखी जाय। सेनाके निर्बल अंशको यहीं रक्षार्थ रखो।'

'आप हनुमानके कन्धेपर विराजें। कुमार लक्ष्मण अङ्गदके कन्धोंपर बैठेंगे।' सुग्रीवके कहते ही हनुमान और अङ्गद सम्मुख आकर वीरासनसे बैठ गये। सुग्रीवने शेष व्यवस्था सूचित की—'जाम्बवान और सुषेण दोनों अनुभवी वृद्ध आपके पार्श्वरक्षक होकर चलेंगे। मैं पृष्ठ रक्षक रहूँगा। आपके अनुग्रहसे हमारी राजधानी उत्तर, पूर्व और पश्चिमसे पूर्णत: रक्षित है। दूरतक कोई ऐसा नहीं जो विरोध करे। वानरोंके दल अभी दिशाओंमें जाकर देख आये हैं। दक्षिण हम चल रहे हैं। इधर भी

केवल लङ्का है, जिसपर हमीं आक्रमण कर रहे हैं। कोई सेनाका अंश दुर्बल नहीं है। कोई आपकी सेवासे वञ्चित नहीं रहना चाहता।'

श्रीरामने गणपतिको मस्तक झुकाया। मनमें सिंहवाहिनीका स्मरण किया और गगनमें उन अष्टभुजा ज्योतिर्मयीको प्रत्यक्ष सानुकूल देखकर प्रसन्न हो गये। वे तो स्वतः सेवाको समुत्सुक थीं।

'प्रचण्ड-पराक्रम श्रीरामकी जय !'

'अमित-विक्रम लक्ष्मणलालकी जय !'

'उग्रवीर्य वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय !'

गगन वानरोंके जयघोषसे गूँज उठा। उधर लङ्कामें भगवती वैदेही-का वाम नेत्र, वाम भुजा फड़की तो दशग्रीव और प्रायः सब राक्षसोंके भी वही अङ्ग फड़कने लगे; किंतु मन्दोदरी और राक्षसियोंके दक्षिण नेत्र, दक्षिण बाहु फड़के। रावणके भवनपर गीध आकर बैठा। वह उड़ानेपर भी बार-बार वहीं बैठता था। पता नहीं कहाँसे असंख्य काले काक आ गये। वे इतने धृष्ट कि राक्षसोंके ही नहीं, राक्षसेश्वर तकके मस्तकोंपर बैठकर ललाटपर चञ्चु प्रहार करते थे। लङ्काके भवनोंपर, मन्दिरोंपर भी लगी ध्वजाएँ बिना वायु टूट गिरीं।

यहाँ अङ्गदके कन्धेपर बैठे लक्ष्मणने आगे चलनेको उद्यत हनुमानके कन्धेपर बैठे अग्रजसे कहा—'आर्य ! हम लोग शीघ्र रावणको मारकर अम्बा मैथिलीको लेकर लौटेंगे। देवता हमारे अनुकूल हैं। देखिये, नीलकण्ठ और श्वेत चील बार-बार हमारे साथ आगे चलना चाहते हैं। वायु पीछेसे आगे गति दे रहे हैं। मृगमाला दाहिने आगे दौड़ती जा रही है। मैने गत रात्रिमें गगन ध्यानसे देखा था। इस समयके लग्नके अनुसार मङ्गल हमारे षष्टम और शनि अष्टम हैं। शेषग्रह उच्चके या स्वगृही अनुकूल स्थानोंमें हैं। यह यायी-जयद योग चल रहा है।'

सहसा सुग्रीवने सिंहनाद किया। गर्जना करते सूचना दी सम्पूर्ण सेनाको—'सब लोग जहाँ तक सम्भव होगा पृथ्वीपर कम पैर रखेंगे। आकाशमें उछलते ही चलेंगे। मार्गमें कहीं विश्राम नहीं। जल-फलका आहार सागर तटपर पहुँच कर होगा। हनुमान और अङ्गद इतनी मन्द गतिसे उछलेंगे कि हम सबके मध्य ही रहें, हमसे पहिले सागर

'मित्र सुग्रीव ! इस अपार उदधिको हम सब कैसे पार करेंगे ?' अधलेटे श्रीरामने अपने वाम भागमें बैठे सुग्रीवकी ओर देखा—'अब हम सागरतट तक तो आ चुके हैं।'

'देव ! हम वानर रात्रिको निष्क्रिय हो जाते हैं।' सुग्रीवने सरलतापूर्वक कह दिया—'समुद्र आपके प्रतापसे सूख जायगा, यह मुझे विश्वास है। लेकिन इसपर विस्तारसे विचार कल प्रातः करना अच्छा है। अभी सब वानर यूथप भी श्रान्त हैं। सबको विश्राम करना चाहिये।'

श्रीराम सदाके सङ्कोचीनाथ हैं। उन्होंने शीघ्र लोचन बन्द कर लिये। लक्ष्मण धनुष चढ़ाये वीरासनसे बैठ ही गये थे। हनुमान, अङ्गद, जाम्बवान, नील और स्वयं सुग्रीव पूरी रात्रि सतर्क जागते रहे।

दशग्रीवका दर्प

'अब क्या होने वाला है ?' लङ्कामें हनुमानजीके लौटनेके क्षणसे ही सब अत्यन्त आतङ्कग्रस्त हो गये थे। दूसरे तो सामान्य थे, मेघनाद तकका मन कोई समाधान नहीं पाता था। वह भी सोचता था—'मेरे सब दिव्यास्त्र उस बानरपर व्यर्थ हो गये। ब्रह्मास्त्रसे भी वह पूरा मूर्छित नहीं हुआ था। अब उसके स्वामी और उसके जैसे असंख्यों वानर आवेंगे ? उसके जैसे तो सम्भव नहीं। उसके स्वामीने अवश्य अपना सर्वश्रेष्ठ सेवक भेजा होगा ; किन्तु वह फिर आवेगा। उसके असंख्य सहायक साथ होंगे और उसके स्वामी ? अब इस पुरीका विनाश निश्चित है।

'इस पुरीका—राक्षस कुलका विनाश निश्चित है।' इसमें अब किसीको सन्देह नहीं था ; किन्तु सब जानते थे कि दशग्रीव विरोध सुननेका अभ्यासी नहीं है। अतः कोई कुछ कहनेका साहस नहीं करता था। राक्षसोंमें चाहे जितने दुर्गण हों ; किन्तु वे मनस्वी थे। स्वामि-भक्त थे। उन्होंने दशाननके लिए प्राणदानका मनमें प्रण कर लिया—'जिनके संरक्षणमें हमने दीर्घकाल तक सब सुख भोगे, अब उनका साथ, उनका अनुगमन करनेमें यदि मृत्यु आती है तो आवे।'

'हरि या हरिका भजन करके, इनकी शरण होकर अथवा ज्ञानी या योगी तो सदासे मुक्त होते आये हैं। धर्माचरण करनेवालोंकी सद्गति हो, इसमें किसी की विशेषता क्या है ?' दशग्रीवको भी राक्षस कुलका विनाश सुनिश्चित दीखता था; किन्तु उसका दर्प था—'दशाननके भक्तोंका–रावणका अनुगमन करनेवालोंका उद्धार होगा ! जिन्होंने हठ पूर्वक सम्पूर्ण जीवन अधर्म किया है, गौ-ब्राह्मणोंकी हत्या तथा सुरापान-अनाचार, उत्पीड़नको व्यसन वनाया है, रावणका अनुगमन करके उनका उद्धार होगा। लङ्कामें केवल वे रह जायँगे पीछेके लिए जो रामके अथवा उनमें अनुरक्त विभीषणके अनुगामी होंगे। दशग्रीव अपने अधर्मी, अत्याचारी, लोकोत्पीडक अनुयायियोंका उद्धार करा सकता है, यह त्रिभुवन देखेगा।'

'विभीषण ? इस विभीषणको यहाँसे हटाना होगा।' रावण अपने ढंगसे सोचता था—'अब इसके लिए यहाँ स्थान नहीं है। अन्ततः इस पुरीका कोई राक्षक भी तो रहना चाहिये ; किन्तु अभी यहाँ नहीं। अभी यहाँ दशग्रीवका दर्प नृत्य करेगा और दर्पसे समुद्धार होता है, यह संसार देखेगा।'

'दर्पसे समुद्धार !' अपने एकान्त कक्षमें उसने अट्टहास किया। उस परम वेदज्ञ, सकल शास्त्र निष्णात तन्त्रोंके सर्वश्रेष्ठ विद्वानका दर्प हुंकार कर रहा था—'आगम और निगमोंके मार्ग ठीक हैं, उनसे उद्धार होता है ; किन्तु ये हीनसत्व प्राणियोंके लिए हैं। दशग्रीवने सदा अपना मार्ग स्वयं बनाया है। अपने और अपने आश्रितोंके समुद्धारका स्वतन्त्र राजपथ प्रशस्त करेगा वह।'

राक्षसोंमें सबके सब विश्वसनीय और दशग्रीवके भक्त ही नहीं थे। उनमें भी दुर्बल हृदय थे। उनको जब विनाश सुनिश्चित दीखा तो उन्हें एकमात्र विभीषणसे कुछ आशा लगी। उन्होंने विभीषणसे चुपचाप मिलना और अपनी आशङ्का प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया।

विभीषणके स्वभावमें छल-कपट, षटयन्त्र नहीं था। वे निश्छल, सरल हृदय थे। अग्रजके हृदयसे हितैषी थे और जब भाईने निकाल दिया, श्रीरामके शरणापन्न हुए तो सच्चे हृदयसे उनके हो गये। उस समय उनको लङ्कासे दो वर्गके राक्षसोंसे सहायता-सूचनाएँ मिलती रहीं। एक तो ये दुर्बल हृदय जो अभी उनसे मिलते थे। दूसरे उनके स्वजन पत्नी, पुत्री, सेवक जो लङ्कामें छूट गये थे। क्योंकि लङ्काके वे वास्तविक व्यवस्था नियन्त्रक रहे थे, उनके विश्वसनीय और उनमें आस्था रखने वाले लोग भी लङ्कामें पर्याप्त थे। वे भी इन दिनों बहुत व्याकुल थे।

सबसे अधिक आतङ्क ग्रस्त थीं वे राक्षसियाँ जिन्हें रावणने सीताजी को सन्त्रस्त करनेके लिए नियुक्त कर दिया था। उन्होंने त्रिजटा स्वप्न सुना और सबेरे ही उस स्वप्नको सत्य होते देखा था। वानर आ गया, यह सुनते ही वे सब स्वप्नके शेष भागको सत्य समझने लगी थीं। जब वानरको बाँधकर उसकी पूँछ जलानेका उद्योग राक्षस कर रहे थे तब भी वे भयभीत थीं! परस्पर कह रही थीं—'ये हमारे सब लोगोंकी मति मारी गयी। अब यह वानर अपनी पूँछ फिराकर पुरी भस्मकर देगा।'

उनकी आशङ्का सत्य सिद्ध हो गयी थी। अतः राक्षसोंके विनाशमें, दशग्रीवके मारे जानेमें और विभीषणके राजा होनेमें अब उन्हें तनिक भी सन्देह नहीं रहा था। अब मनसे वे विभीषणकी सेविका हो गयी थीं। लुक-छिपकर विभीषणके घर चली जाती थीं और उनकी पत्नी सरमाके पदोंमें प्रणामकर आती थीं। अब वे बार-बार श्रीजानकीसे क्षमा माँगती थीं। उनसे कहती थीं—'देवि! हम अब भी यदा-कदा अभिनयको विवशा हैं।'

'कोई अशोकोद्यानकी ओर न जाय!' दशग्रीवने अपने अन्तःपुरमें कठोर निर्देश दे दिया था। उसकी कोई रानी उधर नहीं जाती थी। वाटिका ही नहीं थी और न इतनी शीघ्र लगायी जा सकती थी, अतः वाटिकाकी सेविकाएँ हटा ली गयी थीं। मध्यम कक्षमें रहने वाले वाटिका-रक्षकोंको हमुमानने मार ही दिया था। वाटिकाके अभावमें दूसरे रक्षक नियुक्त नहीं हुए। कहना यह चाहिये कि दशग्रीवको इधर ध्यान देनेका अवसर नहीं मिला।

श्रीजनक-नन्दिनीने अपनी रक्षामें नियुक्त राक्षसियोंको अभय दे दिया था। अब यदा-कदा किसीके आगमनकी आशङ्का होनेपर चौंककर वे शस्त्र उठाकर भय दिखानेका अभिनय करती थीं। वे अपनेमें-से एक-दो-को नियुक्त रखती थीं यह देखनेको कि अन्तःपुरकी ओरसे कोई आता तो नहीं दीखता। हनुमानजी भले आकर चले गये थे, किन्तु उनके आतङ्कने भी वैदेहीका रात-दिन सन्त्रस्त किया जाना समाप्त कर दिया था।

'जो भी उपलब्ध पाषाण हों, उनसे ही परिखा और ध्वस्त भवन शीघ्र बना दिये जायँ!' रावणने यह आदेश दिया था। उसके वास्तु शिल्पियोंकी प्रशंसा करनी होगी। अत्यल्प कालमें उन्होंने परिखा पूर्ववत् सुदृढ़ बना दी। ध्वस्त भवनोंको भी आवास योग्य बना दिया और ऐसा बना दिया कि भले वे स्वर्णके नहीं रहें, कम सुन्दर नहीं बने। उनमें और परिखामें भी आकर्षक कला व्यक्त हुई। महायन्त्रोंकी ओर ध्यान देनेका अवकाश नहीं मिला। क्योंकि छलांग लगाने वाले वानरोंके आनेकी ही सम्भावना थी, खाईको पुनः खोदना अनावश्यक मानकर छोड़ दिया गया।

अवसर ही कितना मिला? रात-दिन परिखा या भवन निर्माण और वह कठिनाईसे पूरा भी नहीं हुआ था कि पता लगा, वानर सेना

समुद्र पार आ पहुँची। दशग्रीवने आदेश दिया—'पुर्नर्निर्माण कार्य अत्यधिक गतिसे अहर्निश चलाते रहा जाय। उसे इसी सप्ताह पूरा करो।'

'शत्रु सुना समुद्र पार आ गया। अब हमें क्या करना है?' रावणने अपने सब मन्त्रियोंको बुलाया। संयोगवश कुम्भकर्णका जागरण दिन था। अतः उसे और मेघनादको भी बुला लिया गया मन्त्रणा सभामें। रावणने एक बार सबकी ओर देखा—'राम सम्भवतः हमपर घेरा डालना चाहते हैं।'

'हम न नीति जानते, न शत्रु पक्षकी शक्ति। इसे जाननेकी हमें आवश्यकता भी नहीं है।' सब हाथ जोड़कर बोले। वे जानते थे कि उनका अधीश्वर क्या सुनकर सन्तुष्ट होगा। उन्हें उसको सन्तुष्ट रखना था। परिणामकी चिन्ता करने वैठो तो दुर्दम दशग्रीव अभी मार दे सकता है। अतः उनका एक स्वर—'हमारे पास अमोध अस्त्र हैं। हमने देवता-दैत्य सबको जीता है। लोकपाल कुवेरसे पुष्पक हमने छीना। दूसरे लोक-पाल वरुणकी पुत्री छीनकर हम ले आये। हमारे सम्मुख ठहरे ऐसा त्रिलोकीमें है कौन! वर प्राप्त सुरासुर अजेय युवराज इन्द्रजित शत्रुको सेना सहित अकेले मार सकते हैं। अतः इसमें विचार करने जैसी तो कोई बात नहीं है।'

'कोई देवता, दानव, दैत्य आपको जीत नहीं सकता।' महामन्त्री प्रहस्तने कहा—'हमने प्रमाद किया, उपेक्षाकी, इसलिए वह वानर वचकर चला गया। अब या तो वे सागरसे इस ओर आवेंगे ही नहीं, या हम आनेपर सबको मार देंगे।'

'मैं अकेले सबको मार आता हूं।' दुर्मुख उठ खड़ा हुआ। उसके साथ वज्रनख, यमदंष्ट्रा, महोदर, महापार्श्व, विरूपाक्ष, अग्निजिह्व भी अस्त्र-शस्त्र लेकर उठे—'आप हमें आज्ञा दे दें। हम उन्हें अभी मार आते हैं।'

'ये सब भाग तो नहीं जाना चाहते? अथवा शत्रुसे मिलनेका सुयोग चाहते हैं?' दशग्रीवने सशङ्क सवकी ओर देखकर विभीषणकी ओर देखा। वह अनुमान करना चाहता था कि विभीषण इनसे मिलकर कोई षटयन्त्र तो नहीं कर रहे हैं।

'शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिए साम-दान और भेदसे काम न चले तब दण्ड अर्थात् युद्धकी घोषणा अनिवार्य होती है।' विभीषण हाथ जोड़कर उठे और बोलने लगे—'शत्रु असावधान हो तब उसपर आक्रमण उचित होता है।'

'परायी स्त्रीका अपहरण आयु और यशका नाशक होता है।' विभीषणके स्वरमें रोष आया—'अब ये लोग वकवाद करने उठे हैं, आपके सम्मुख बातें बनाते हैं कि आप आज्ञा दे दो तो ये संसारमें एक भी वानर और मनुष्य जीवित नहीं छोड़ेगे ; किन्तु एक अकेला वानर आया था, उसने पूरी पुरी जलादी, तब ये कहाँ गये थे। इनके अपने भवन भस्म कर रहा था वह, तो ये सो रहे थे या प्रवासमें पधारे थे ?'

'राक्षसेश्वर ! इन सबकी बातें सुननेसे विपत्ति बढ़ेगी। इनकी वीरता केवल बातों तक है।' विभीषणका स्वर गम्भीर हुआ—'जानकीके कारण ही यह भय आया है। उनकी सेनामें पता नहीं हनुमान जैसे और कितने होंगे। अतः जबतक राम समुद्र पार करके लङ्कापर चढ़ाई नहीं कर देते उससे पूर्व उनकी भार्याको छोड़ देना चाहिये। इसमें सबका हित है, सबका जीवन है। अतः क्रोध त्यागकर आप हमपर प्रसन्न हों। ऐसा करें जिससे हमारे पुत्र तथा बन्धु-बान्धव जीवित रहें।'

'यह बात क्या है ? मैं पुरीको दूसरे प्रकारकी देखता हूँ। तुमने रामकी पत्नीका हरण किया है ?' कुम्भकर्ण क्रुद्ध स्वरमें सीधे रावणकी ओर देखकर अपने घन गर्जन स्वरमें बोला 'यह काम ही अन्यायका हुआ। अनुचित हुआ। उस समय तो तुमने मुझसे पूछा नहीं। अपने मनसे सीताका हरण किया। सौभाग्यकी बात है कि उस हरणके समय ही रामने तुम्हें मार नहीं डाला। अवश्य वे वहाँ रहे नहीं होंगे। लेकिन जब सीताको ले ही आये हो तो पट्टमहिषी बना लो।'

'सीता किसी प्रकार रामके अतिरिक्त दूसरेको स्वीकार करनेको प्रस्तुत नहीं है।' रावणने शान्त स्वरमें कहा।

'उसकी स्वीकृतिकी प्रतीक्षा आपने बहुत कर ली।' महापार्श्व उठा—'आप ईश्वरोंके भी ईश्वर हो। एक स्त्रीकी इच्छाका इतना आदर आपकी उदारता है ; किन्तु वह नहीं मानती तो बल प्रयोग राक्षसोंमें बुरा तो नहीं माना जाता और आपकी भुजाओंमें असीम शक्ति है।'

'तुम कदाचित नहीं जानते कि मैंने अप्सरा श्रेष्ठ पुञ्जिक स्थलीसे बलात्कार किया था।' दशग्रीव वैसे ही शान्त बोल रहा था—'वह रोती ब्रह्माके समीप गयी तो सृष्टिकर्ताने शाप दे दिया कि रावण अब यदि दूसरी किसी स्त्रीको बल पूर्वक धर्षित करना चाहेगा तो उसके सिरके सेंकड़ों टुकड़े हो जायँगे।'

'फिर भी तो कोई समस्या नहीं है। हम राक्षसोंमें छल भी कहाँ वर्जित है?' कुम्भकर्ण बोला—'तुम रामका रूप भी तो बना सकते हो।'

'मैंने प्रयत्न किया था।' रावणने बताया—'जानते ही हो कि मायासे किसीका रूप धारण करनेके लिए उसके रूपका गाढ़ चिन्तन करना पड़ता है। दूर्वादल श्याम रामका चिन्तन करते ही चित्तसे सब अधर्म वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं। उस समय परस्त्री पानेकी तो कल्पना ही अत्यन्त घृणास्पद लगती है।'

'धन्य श्रीराम!' विभीषणके मुखसे सहसा निकला।

'धन्य राम!' कुम्भकर्णने भी कहा। फिर दो क्षण चुप रहकर बोला—'तुमने काम तो बहुत बुरा किया; किन्तु अब चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे सब शत्रुओंको खा लूँगा। तुम निश्चिन्त सुरापान करो और मन-माना भोग भोगो।'

कुम्भकर्ण यह कहकर उठा और सभागृहसे बाहर गया तो रावणभी खुलकर हँसा। वह उठ खड़ा हुआ। सभा विर्सजित हो गयी। दशग्रीव ठीक समझ गया था कि अब सायंकाल कुम्भकर्ण सीधे अपनी गुफामें जायगा। वहाँ उसके लिए महिष और मद्यघट हैं। खा-पीकर उसे सो जाना है। एक बार सो गया तो उसे आजकी कोई बात स्मरण भी आवे तो ६ महीने पीछे आवेगी।

'राम कहाँ हैं?' सभागृहसे निकलते ही कुम्भकर्णने द्वारपालसे पूछा।

'सुना है—समुद्र पार हैं।' द्वारपालने बतलाया।

'अच्छा!' कुम्भकर्णको लगा कि समुद्रपार जानेसे पूर्व उसे अल्पाहार कर लेना चाहिये। वह उनीदा हो उठा था। अपनी गुफामें जाकर जो मिल सका, मुखमें डालकर तनिक लेटा। अब उसे निद्रा आगयी तो उसका अपराध?

दशग्रीव अपने अन्तःपुरमें पहुँचा तो मन्दोदरीने चरण पकड़ लिये—'मेरे स्वामी ! आप मुझपर कृपा करें ! जिनका दूत इतना समर्थ है, उनके आनेपर राक्षस कुलका क्या होगा ? सीता कालरात्रि होकर लङ्कामें आयी है। उसे शीघ्र विदा कर दें यहाँसे कि मेरा सौभाग्य सिन्दूर अम्लान रहे।'

'सचमुच स्त्रियाँ बहुत भीरु होती हैं!' दशग्रीवने उठाकर पट्ट-महिषीको हृदयसे लगाया—'तुम व्यर्थ मत डरो। अभी तो मैं अपने शूरोंसे मन्त्रणाकर रहा हूँ।'

वह अन्तःपुरसे भवनके निजी मन्त्रणा कक्षमें आ गया। मेघनाद तथा दूसरे मन्त्रियोंको उसने बुलवा लिया। विभीषण अग्रजके हितकी चिन्तासे व्यस्त स्वयं दशग्रीवसे उसके सदनमें मिलना चाहते थे। उन्हें देखते ही दशग्रीवके मनमें आया—'कितना सरल, निश्छल है। इसे अब राक्षसोंके मध्य नहीं रहना चाहिये।'

'आप जानते हैं कि मुझे साम नीति प्रिय है। अतः आप मेरी धृष्टता क्षमा करें।' यद्यपि विभीषणकी रावणने उपेक्षा की थी, उन्हें सदा-की भाँति आसनपर बैठनेका संकेत नहीं किया था; किन्तु इस ओर ध्यान न देकर हाथ जोड़कर विभीषण स्वयं कहने लगे—'आप विद्वान हैं, अलक्ष्यके इंगितको अच्छी प्रकार जानते हैं। जबसे जानकी लङ्का आयी हैं तबसे यहाँ अपशकुन आरम्भ हो गये हैं। अग्नि चिनगारियाँ फेंकते हैं। दूध फट जाता है और दही शीघ्र सड़ने लगता है। दिनमें गीध और रात्रिमें उलूक राजसदनपर बैठकर बोलते हैं। मोह या लोभवश आपको मेरी बात न रुचे तो मेरा अभाग्य। सबके लिए अनिष्टका समय आ गया है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि सीता रामको लौटा दें।'

'विभीषण ठीक कहते हैं।' रावणके नाना सुमालीके जयेष्ठभ्राता माल्यवन्तने कहा—'मुझे भी यही उचित लगता है कि एक नारीके लिए सबका विनाश बुलाना अच्छा नहीं।'

'ये दोनों दुर्मुख मुझे भयभीत करना चाहते हैं। इन्हें किसने बुलाया?' रावण क्रुद्ध हो उठा—'मुझे किसीका भय नहीं है। देवताओंको लेकर इन्द्रभी रामकी सहायता करने आता हो तो आ जाय। हमारा वे सब कुछ बिगाड़ नहीं सकते।'

'तेरी मति भ्रष्ट हो गयी है। हमने समझा था कि तुझ दौहित्रके आश्रमसे हमें पृथ्वीपर रहना सुलभ होगा ; किन्तु तू अपने विनाशपर उतर आया है।' वयोवृद्ध दैत्य श्रेष्ठ माल्यवन्त उठे और जाते-जाते कहते गये— 'हमने इसी प्रकार अनेक बार वरदर्पित दैत्य-दानवोंका विनाश देखा है। हमको फिर पातालमें ही जाना पड़ेगा।'

'सब उद्यत हो जाओ ! सेनाको सन्नद्ध कर दो ! सब योधा सजग रहें। रामको समुद्रपार करते समय ही नष्टकर दो।' रावणने आज्ञा दे दी।

मन्त्रियोंको एक बार फिर जाना पड़ा। दशग्रीव फिर राजसभामें आगया। अब सेनाको सावधान करके प्रधान शूर तथा मन्त्री आकर नाम लेकर राक्षसेश्वरको प्रणाम करके अपने निर्दिष्ट स्थानपर बैठने लगे। सभी मन्त्री, प्रधान योधा आगये। पता लग गया कि कुम्भकर्ण सो चुका है। सबके बैठ जानेपर दशग्रीवने प्रधानमन्त्री प्रहस्तकी ओर देखा—' मातुल ! तुम क्या ठीक समझते हो ?'

'राक्षसेश्वर मन उदास मत करें।' प्रहस्त पुराना घाघ था। अपने इस प्रचण्ड भागिनेयका रुख समझकर इसे प्रसन्न रखते हुए ही प्रधानमन्त्री बन सका था। बोला—' शत्रुपर आक्रमण करें। अवश्य हम विजयी होंगे।'

'आप सब कृतविद्य हैं। आपकी सम्मतिसे किये गये कार्य सदा सफल हुए हैं। एक कपिने आकर लङ्काका अपमान किया है, अतः सीताको देनेका प्रश्न ही नहीं उठता।' दशग्रीवने सबकी ओर देखा— 'हमें दशरथके पुत्रोंको मारना है, यह मानकर उचित सम्मति दें।'

'मैं आपसे पुनः प्रार्थना करता हूँ।' विभीषण हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र होकर बोले— 'सीता इस पुरीके लिए सर्पिणी सिद्ध हो चुकी है। उसे लौटा दीजिये। ये आपके सम्मुख बड़ी डींगें हाँकनेवाले कोई रामके संग्राममें खड़े नहीं होंगे। रामके क्रुद्ध होनेपर त्रिभुवनमें भागकर भी बचना सम्भव नहीं होगा।'

'आप हमारा अपमान कर रहे हैं। हमें भयभीत क्यों करते हैं ? प्रहस्त क्रोध पूर्वक बोला— 'हम मानवोंसे डरते नहीं। वे हमारे आहार हैं।'

'आपके समीप भोगोंका अभाव तो नहीं है।' विभीषणने प्रहस्तकी उपेक्षा कर दी। वे सीधे रावणसे बोले—'ये मित्र रूपी शत्रु आपको घेरे

हैं। ये इतना भी नहीं समझते कि इस महा अनर्थसे स्वामीको बचाना चाहिये।'

'ये छोटे चाचा सदाके स्त्रियों जैसे डरपोक हैं। इनमें सत्व, धैर्य, पराक्रम, तेज, वीर्य कुछ नहीं है।' इस बार इन्द्रजितने उठकर आक्षेप किया— 'ये सदा छोटी बातें करते हैं। इन्द्रभी मुझसे डरते हैं। मैंने ऐरावतके दाँत पकड़कर उखाड़ लिये, यहाँ केवल आप हैं जो मेरे पूज्य हैं और मैं आपका अनुशासन मानता हूँ।'

'मेघनाद! तुम अभी बालक हो। सम्मति देने योग्य परिपक्व बुद्धि, तुम्हारी नहीं हुई। तुम पिताको अनुपयुक्त सम्मति दे रहे हो।' विभीषणने मेघनादको डाँट दिया। रावणसे बोले— 'मैं आपका अनुज हूँ। आपसे याचना करता हूँ। मेरे स्नेहकी रक्षा करके सीताको धन-रत्न-मणिके साथ अर्पित कर दें और सदाको शोक रहित हो जायँ!'

'अर्थात् त्रिलोकजयी रावण एक अनाश्रित वनवासी तापससे भीत होकर उसे अर्थदण्ड देकर सन्धि करे?' क्रोधसे काँपता चीत्कार करता दशग्रीव सिंहासनसे उठकर खड़ा हो गया। भयके मारे सब सभासद उठ खड़े हुए। विभीषणकी ओर पूरा हाथ फैलाकर आग्नेय नेत्रोंसे देखता बोला— 'यह घरका सर्प है! मित्रके रूपमें शत्रुका सेवक है यह। जातिको जातिसे ही भय होता है। हाथी ही हाथीके बन्धनका कारण बनते हैं। अपना कोई शत्रुसे मिला हो तो वह महान भयका कारण होता है। हमें अपने इस कुल कलङ्कसे ही भय है। तू जिनकी प्रशंसा करता है, उनको ही जाकर सम्मति दे। उनके समीप जा। अविलम्ब लङ्कासे मुख काला कर।'

रावणने विभीषणके वक्षपर पाद-प्रहार किया। विभीषणने आसनके समीपसे अपनी गदा उठायी और सीधे आकाशमें उठ गये। उनके साथ उनके चार मन्त्री भी गगनमें पहुँचे। वहींसे क्रुद्ध स्वरमें विभीषणने पुकार-कर कहा— 'आप मेरे पिता तुल्य हैं। ज्येष्ठ भ्राता हैं। सम्मान्य हैं। मैं आपका पाद-प्रहार और कटु बचन क्षमा कर देता; किन्तु आप धर्मविमुख हैं, अधर्माचरणमें मैं आपका साथ नहीं दे सकता। अप्रिय सत्य बोलने और सुन लेनेवाले संसारमें कम मिलते हैं। सब बातोंका समर्थन करनेवाले चाटुकार बहुत हैं। आप मेरे बिना सुखी हो, निर्भय होते हो तो सुखी और

निर्भय रहो। इस पुरी और राक्षसोंकी रक्षा करो। मरणासन्न व्यक्तिको हितकी बात सुहाती नहीं। अब आपको सच्ची बात कहनेवाला, पापसे रोकनेवाला यहाँ कोई नहीं रहा। अच्छी प्रकार सुन लो, तुम्हारा और तुम्हारे इन सब समर्थकोंका नाश निश्चित है। मैं रावणको सत्पथपर लानेके अपने प्रयत्नसे निराश होकर अब श्रीरामके समीप जारहा हूँ।'

भवन, पत्नी, पुत्र, पुत्री, परिवार सब त्यागकर विभीषण लङ्कासे गगन मार्गसे चल पड़े। जीव सबका मोह त्यागे बिना कहीं उन परमपुरुषके सम्मुख हो पाता है।

'उसे जाने दो!' प्रहस्तको अपनी ओर देखते दशाननने देखा तो कठोर स्वरमें आदेश दिया– 'उसका यहाँसे जाना अच्छा हुआ। वह मुझसे मिलकर नहीं रह सकता तो जाय; किन्तु वह दशग्रीवका अनुज है। दूसरा कोई उसका शत्रुपक्षमें खड़े होनेसे पूर्व अपमान करे अथवा उसके परिवारको उत्पीड़ित करे, यह दशानन सह नहीं सकेगा। सबको इसका ध्यान रखना चाहिये।'

'शुक-सारण! तुम दोनों छिपकर, वानर बनकर इसके पीछे जाओ।' दशग्रीवने दूसरी आज्ञा दी— 'देखो कि यह वहाँ क्या करता है। शत्रुकी सेनाका, बल पराक्रमका पता लगाकर लौटो, तब हम निर्णय करेंगे कि हमें क्या करना है।'

सभा भङ्ग करके दशग्रीव दर्पके साथ उठ गया। वह अब सब निर्णय स्वयं लेगा। उसके ये सब चाटुकार हैं यह वह भली प्रकार समझता है। उसे इनकी भीरुताका लाभ उठाना है इनके उद्धारमें।

विभीषण-शरणागति

'आकाश मार्गसे अपनी ही ओर आते ये मेघकृष्ण पर्वताकार पाँच व्यक्ति कौन ?' विभीषण जैसे ही लङ्काके गगनसे समुद्रपर आये, वानर चौंके।

'लङ्कासे पाँच सशस्त्र राक्षस आ रहे हैं।' वानरोंने आकृति बहुत दूरसे पहचानकर सुग्रीवको समाचार दिया।

'सावधान रहो।' सुग्रीवने आदेश दिया— 'वे सशस्त्र हैं और अपने वेशमें ही आ रहे हैं, कृत्रिम माया वेश भी नहीं बनाये हैं तो आक्रमण करने ही आते होंगे।'

'आपकी आज्ञा हो तो हम उन्हें मार द।' वानरोंमें बहुत अधिक उत्साह था।

'और निकट आने दो।' सुग्रीवने सचेत किया— 'वे केवल पाँच चले हैं, हमारी इतनी विशाल सेना जानकर भी तो सामान्य नहीं होंगे। समुद्रके ऊपर उनसे संघर्ष करना उनके अनुकूल हो सकता है। उन्हें इस की आशा होगी; किन्तु शत्रु जो चाहता हो, चाह सकता हो, उसे नहीं करना चाहिये।'

रावणकी सभा प्राय: रात्रिभर चली थी। प्रभातमें ही विभीषणको तिरस्कार पूर्वक निकालकर वह सभासे उठा था। समुद्रके इस पार श्रीराम अनुजके साथ स्नान-सन्ध्या करके, सूर्यको अर्घ्य देनेके उपरान्त अभी बैठे ही थे। अब समुद्रपार करनेकी समस्यापर विचार करने सुग्रीव, जाम्बवान आदि श्रीरामके समीप आये थे, तभी यह समाचार वानरोंने दे दिया।

विभीषणने गगनसे देख लिया कि उनको देखकर वानरोंमें दौड़ धूप हुई है। श्रीरामके अत्यन्त समीप बैठे वानर श्रेष्ठ स्वयं उठकर समुद्रतटपर पर्वतके ऊपर आ गये हैं। वानरोंका उनके प्रति सम्मान देखकर समझ लिया— 'ये वानरेन्द्र सुग्रीव होंगे।'

वानर वृक्ष-पर्वत उठाये युद्धोद्यत दीखे। सुग्रीवके समीप अनेक यूथप आ खड़े हुए थे। विभीषण समझ गये कि उन्हें शंकाकी दृष्टिसे देखा जा रहा है। यह स्वाभाविक था। ऐसा न होता, तभी आश्चर्यकी बात थी।

'आप सब महात्मा हैं! आप श्रीरामके सेवक हैं! आप मेरी प्रार्थना सुनें और मुझ दीन अशरणकी सहायता करें!' विभीषणने दूर गगनसे ही पुकारा— 'आप शरणागत वत्सल, समस्त सृष्टिको शरण देनेमें समर्थ श्रीरामको मेरा निवेदन सुना दें! जिसने उनकी भार्याका हरण किया है, जिसने पञ्चवटीमें गीद्धराज जटायुका वध किया है, जिसने सीताको लङ्कामें रोक रखा है, उसी त्रिलोक-कण्टक, सुर-साधु, विप्र-वेद शत्रु दशग्रीवका अधम अनुज राक्षस मैं विभीषण रावणसे तिरस्कृत, निष्कासित होकर उन अनाथ-नाथ, अशरण-शरणकी शरण आया हूँ।'

'सब सावधान और सन्नद्ध रहें!' सुग्रीवने वानरोंको आदेश दिया। और स्वयं श्रीरामके समीप पहुँचे— 'देव! रावणका छोटा भाई आपकी शरण आया है। आपको बहुत सावधान रहना होगा। मन्त्रणा, नीति, गुप्तचर, योजनाके विना युद्धमें सफलता नहीं मिला करती। राक्षस मायावी होते हैं, कामरूप होते हैं। यह गुप्तचर हो सकता है। हमारे बीचमें रहकर हममें भेद उत्पन्न करनेका यत्न करेगा। बुद्धिमान होगा तो विश्वासपात्र बनकर प्रहार करेगा। शत्रु-सेनाके लोगोंको सेनामें रखना ठीक नहीं है। इसे रावणने भेजा हो सकता है। उस कुटिल बुद्धिके सिखलाने-से आया होगा।'

'मित्र! तब इसके सम्बन्धमें तुम्हारी सम्मति क्या है?' श्रीरामने सुग्रीवकी ओर देखा।

'मुझे तो इन पाँचोंका वध भी अनुचित नहीं लगता।' सुग्रीवने कहा— 'कमसे कम जब तक हमारी युद्धमें विजय न हो जाय, तब तक तो इन्हें बन्दी बनाकर रखना ही चाहिये।'

'हनुमान! अङ्गद! जाम्बवान! सुग्रीवकी बात तुम सबने सुनली है।' श्रीरामने गम्भीर मुखसे कहा— 'बात तो सप्रयोजन है, युक्तियुक्त है। मैं सङ्कट-ग्रस्त हूँ। आप सब मेरे हितैषी हैं। आप सबकी क्या सम्मति है?'

हनुमान चौंके—'विभीषण शरण आये हैं और उन्हें बन्दी बनानेकी चर्चा ? आज मेरे स्वामी यह किस प्रकार बोल रहे हैं ? ये सङ्कट-ग्रस्त हैं ? हम वानर इन्हें सम्मति देंगे ?

'आपसे कुछ अज्ञात नहीं है।' जाम्बवानने दोनों हाथ जोड़े—'आप सब जानते हुए भी अपने शील सौहार्दके कारण पूछते हैं। हम आपको क्या सम्मति देंगे। वैसे यह शत्रुगृहसे आया है। उचित देश-कालमें नहीं आया, अतः शङ्का होती है।'

'आप वानरेन्द्रकी बात मानें या न मानें ; किन्तु पहिले इसकी परीक्षा अवश्य करलें।' अङ्गदका कहना था—'सहसा विश्वास न करें। यदि हितैषी लगे तो साथ ले लें ; अन्यथा त्याग करें।'

'इसके साथ किसीको गुप्तचर नियुक्त कर दें।' शरभकी सम्मति थी—'वह जैसी सूचना दे, वैसा किया जाय।'

'सहसा त्याग तो उचित नहीं है।' मैन्दका कहना था—'इसे बुलाकर पूछिये। बात करनेके पश्चात् निर्णय कीजिये।'

'मेरे स्वामी ! आप जैसी बुद्धि हम वानरोंमें नहीं है। लेकिन आप पूछते ही हैं तो अपनी बुद्धिके अनुसार हमें कुछ बतलाना है।' हनुमानकी मृदु, विनयपूर्ण स्वरमें अर्थयुक्त वाणी गूँजी—'देवगुरु भी आपको सम्मति देनेका साहस नहीं कर सकते। विवाद, संघर्ष, बड़प्पनमें सुर भी आपके समान नहीं हैं। इसके परीक्षाकी बात योग्य नहीं है। जब तक इसे कामकी आज्ञा नहीं दी जायगी, परीक्षा कैसे होगी ? कामकी आज्ञा देनेपर भी तो धोखा दे सकता है। गुप्तचर साथ भी लगा दें तो वह हृदयकी बात कैसे समझेगा ? विश्वासघात तो कोई एक ही समय—बहुत कठिन समय कर सकता है। इस युद्धमें किसीको दूर तो भेजना नहीं है। सब साथ रहेंगे। अतः गुप्तचर साथ लगानेका अर्थ क्या ? अदेश-कालकी बात भी ठीक नहीं है। किसीपर आपत्ति क्या देश-काल देखकर आती है ? आपत्ति-ग्रस्त होनेपर, अपमानित होनेपर आर्तप्राणी देश-काल देखकर शरण्यके समीप आवेगा ?'

'अधम पुरुष रावणका त्यागकर पुरुषोत्तम आपकी शरण यह आया है। आपके पराक्रमका, गुणका विचार करके आया है। आपने वानरेन्द्र सुग्रीवको शरण दी, यह सुनकर आया है।' पवनपुत्रने दूसरी सब

सम्मतियोंका युक्तिपूर्वक खण्डन कर दिया—'आप समीप बुलाकर पूछेंगे भी तो सशङ्क होगा। मित्र बननेवाला भी होगा तो सन्दिग्ध हो जायगा। इसने जो प्रार्थना की है, जैसे की है, उसमें कोई कपट नहीं लगता। यह प्रसन्न नहीं है, दुःखी है। पूछताछ करके इसे सशङ्क बना लेना ठीक नहीं है। रावणका भाई सहायक मिल रहा है। शठ लगता नहीं है। अतः मैं तो इसे अपना लेनेके पक्षमें हूँ। यह भी राज्य चाहता होगा। सुग्रीवको आपने अपनाया, यह सुनकर इसे आशा हो गयी होगी। आपको, वानरेन्द्रको या हममें किसीको लङ्कापति होना नहीं है, अतः इसे शरणमें स्वीकार करें, यह मुझे अच्छा लगता है। स्वामीकी जो आज्ञा हो।'

'यह दुष्ट हो या शिष्ट, हम इसे स्वीकार करेंगे!' श्रीरामने मेघ-गम्भीर स्वरसे कहते हुए प्रफुल्ल नेत्रोंसे पवनकुमारकी ओर देखा—'जो मित्रभावसे मेरे समीप आवेगा, उसका दोष भी हो तो भी मैं उसका त्याग नहीं कर सकता। दुष्टसे दुष्टको भी शरण आनेपर मैं त्यागता नहीं।' सत्पुरुष शरणागत रक्षा की प्रशंसा करते हैं, मेरा व्रत है कि जो भी शरणकी पुकार करता आवेगा, वह कैसा भी हो, मैं उसे शरण दूँगा।

'यह दुष्ट हो या अदुष्ट; किन्तु अपने भाई रावणको विपत्तिमें त्यागकर भाग आया है।' सुग्रीवने फिर आपत्ति की—'अतः हमें विपत्ति-में त्यागकर भाग नहीं जायगा, इसका क्या विश्वास?'

'सुग्रीवने उत्तम बात कही है। बिना वृद्धोंकी सेवाके समय पर ऐसी बात सूझती नहीं।' शीलसिन्धु श्रीरामने सुग्रीवको झिड़का नहीं कि आप शरण आये थे तो किसके विरुद्ध थे? सुग्रीवकी प्रशंसा करके बोले—'राजा लोग परिवारपर, उत्तराधिकारीपर शङ्का करते हैं, अतः रावण यदि विभीषणपर शङ्का करे तो उचित होगा। लेकिन हमारी हानिसे तो विभीषणको कोई लाभ नहीं होना है, यदि ये राज्य चाहते होंगे तो हमारी विजयसे मिलेगा या हमारी हानिसे? अतः यह अपनाने योग्य हैं। लङ्कामें इनपर शङ्का होगी, इन्होंने हनुमानको बचानेकी चेष्टा की थी। इन्हें वहाँ भय होगा। सुग्रीव! सब भाई भरत जैसे नहीं होते। सब पुत्र मेरे समान नहीं होते। सब मित्र तुम्हारे जैसे नहीं होते।'

'इसे रावणने गुप्तचर बनाकर भेजा होगा।' सुग्रीवने फिर शङ्का की—'इसे बन्दी कर लें, अन्यथा यह हम सबको विश्वासमें लेकर आपपर या लक्ष्मणपर धोखेसे आघात करेगा।'

'मित्र सुग्रीव ! तुम्हारी बात मान भी लें कि सच हो, तो भी वह हमारा अहित कर सकनेमें असमर्थ है।' श्रीराम क्षणभर मौन रहकर अत्यन्त गम्भीर स्वरमें बोले— 'मेरे अनुज लक्ष्मण क्रोध करें तो समस्त सृष्टिका संहार करनेके लिए इन्हें धनुषपर दो वाण नहीं चढाने पड़ेंगे। मेरा प्रण है कि यक्ष, राक्षस, पिशाच कोई शरण आवे, मैं उसका त्याग नही करूँगा। शरणागतका त्याग भी अधर्म है। स्वयं रावणभी शरण आवे तो मैं उसे स्वीकार करूँगा। यह भयसे, कामनासे, मोहसे चाहे जैसे आया हो, उसे ले आओ। राम भय, स्वार्थ या मोहसे शरणागतका त्याग नहीं कर सकता। शरणागत-रक्षामें मरण भी श्रेयस्कर है। वधार्ह भी शरण आया हो तो उसकी रक्षा उचित है।'

'एक बार भी जो पुकार लेता है कि मैं आपका हूँ, आपकी शरण हूँ, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।' श्रीरामने आदेशके स्वरमें कहा— 'मैंने विभीषणको अभय दिया। उसे सादर ले आओ। दशग्रीवभी शरण आवे तो बिना पूछे ले आना।'

'लोकनाथ ! धर्मज्ञ ! करुणामय ! आपके लिए यह आश्चर्यकी बात नहीं है।' सुग्रीवने हर्षमें भरकर कहा— 'मैं नीतिकी बात कर रहा था; किन्तु मेरी अन्तरामा उसे विशुद्ध कहती है। वह मेरा मित्र बने।'

हनुमान और अङ्गद संकेत मिलते ही उठकर दौड़े। अभी विभीषण मन्त्रियों सहित समुद्रके ऊपर गगनमें प्रतीक्षाकर रहे थे। हनुमानको देखते ही प्रसन्न हो गये। हनुमानने तनिक दूरसे ही कहा— 'पधारिये ! प्रभु आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'यह रावणानुज अधम राक्षस विभीषण आपका सुयश सुनकर शरण आया है।' विभीषणने दूरसे पुकार की— 'शरणागतवत्सल, अनाश्रयाश्रय स्वामी ! पाहि ! पाहि।'

मन्त्रियोंके सहित विभीषण थोड़ी दूर ही पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणिपात करते गिरे। श्रीरामने लगभग दौड़कर उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया। हाथ पकड़कर ले आये। विभीषणने लक्ष्मणके चरणोंमें प्रणाम किया। उनसे अङ्कमाल मिली। सुग्रीवने स्वयं अपना परिचय देकर हृदयसे लगाया उन्हें।

'मैं समस्त प्राणियोंके शरणदाता आपकी शरण आया हूँ।' विभीषण हाथ जोड़े गद्गद कण्ठ थे। उनके मन्त्री वैसे ही हाथ जोड़े पीछे खड़े थे। 'मैं परिवार, सदन सब त्यागकर आप परमाश्रयके पास आया हूँ।'

'अभीष्ट वरदान माँग लो!' सुप्रसन्न श्रीरामने कहा।

'स्वामी! स्वीकार करता हूँ कि चला था तो हृदय निष्काम नहीं था। राक्षसका हृदय निष्कल्मष हो कैसे सकता था; किन्तु इन पतित-पावन पादारविन्दोंका दर्शन करनेके पश्चात् कोई कामना शेष रह सकती है? विभीषण विह्वल बोल रहे थे— 'अब आप प्रसन्न हैं तो वर दें कि आपके श्रीचरणोंमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे।'

'एवमस्तु!' स्थिर स्वरमें स्वीकार करके श्रीरामने कहा— 'मित्र तुम यद्यपि निष्काम हो; किन्तु मेरे समीप आनेका पुरस्कार तो तुम्हें स्वीकार ही करना चाहिये।'

'लक्ष्मण! सागर समस्त तीर्थमय है।' अनुजकी ओर देखकर उन उदार चक्र-चूड़ामणिने कहा—'मुझे वह तीर्थोदक चाहिये।'

लक्ष्मण समुद्र-जल लेने उठे तब श्रीरामने समीप बैठाकर विभीषणसे पूछा—'दशग्रीवकी क्या दशा है? उसका बलाबल क्या है? आश्चर्य है कि अधर्मरत राक्षसोंके मध्य रहते भी तुम अपने धर्मपर स्थिर रह सके।'

'तामस कुलमें उत्पन्न राक्षस क्या धर्म जाने। यह तो आपका अपार वात्सल्य है कि इसे अपने श्रीचरणोंके समीप बैठने योग्य मानते हैं। मैं प्रयत्न करूँगा शक्तिके अनुसार सेवा करनेकी।' विभीषणने संक्षिप्त विवरण दिया—'दशग्रीव ब्रह्माके वरदानसे दर्पान्ध है। उसको अपने महाकाय भाई कुम्भकर्णका गर्व है। सेनापति प्रहस्तको मणिभद्रका आशीर्वाद प्राप्त है और इन्द्रजित तप तथा वरके प्रभावसे अन्तर्हित रहनेमें समर्थ है।'

'हनुमानके लौटनेके पश्चात् दशग्रीव मुझपर सन्देह करने लगा था। उसने किसी कार्यमें फिर मेरी सम्मति नहीं ली।' विभीषणने बतलाया—'परिखा सुदृढ़ बनवा ली है। भवन सब बन गये हैं। खाई अनावश्यक मानकर खोदी नहीं गयी। महायन्त्रोंकी ओर ध्यान देनेको

समय नहीं मिला। नगरमें खाद्य तथा अस्त्र-शस्त्रका किञ्चित् भी अभाव नहीं है।'

विभीषणने विस्तारसे दशग्रीवकी सेनाका वर्णन किया। इसी समय लक्ष्मण कमण्डलुमें सागर-जल ले आये। श्रीरामने हाथ पकड़कर विभीषण-को शिलापर बैठाया और सागर-जलसे तिलक करके जयघोष किया—'लंकेश विभीषणकी जय।'

वानरेन्द्र सुग्रीवने भी श्रीरामके संकेतपर तिलक किया। फिर जयनाद गूँजा—'राक्षसेन्द्र विभीषणकी जय।'

'मैंने तुम्हें लङ्काका राज्य दिया।' श्रीरामका स्थिर स्वस्थ स्वर—'सहायकोंके साथ रावणको मारकर इसकी औपचारिकता अवश्य पूरी कर दूँगा। रावण पाताल या ब्रह्मलोक चाहे जहाँ भागे, चाहे जिसकी शरण जाय, अब वह बच नहीं सकता।'

'यदि वह आपकी ही शरण आ जाय तो?' अङ्गदने शङ्का प्रकट-की। उचित थी शङ्का। थोड़ी देर पहिले श्रीराम सुग्रीवको आज्ञा दे चुके थे—'रावण भी शरण आवे तो विना पूछे ले आओ।'

'लङ्काका राज्य विभीषणका हो चुका।' बिना हिचके श्रीरामने अङ्गदकी ओर देखा—'दशग्रीवको सद्बुद्धि आ जाय और वह शरणापन्न हो तो अयोध्याका राज्य उसका। रघुवंशी अपने धनुषके बलसे अरण्यमें दूसरा राज्य स्थापित कर लेंगे।'

'भक्तवत्सल श्रीरामकी जय!' सुग्रीवने उछलकर जयनाद किया।

'शरणागतवत्सल राघवेन्द्रकी जय!' विभीषण हर्ष-विह्वल वोले।

'कृपापारावार श्रीरघुनाथकी जय!' हनुमान, अङ्गद, सभी वानर जयघोष करते उछलते-कूदते हर्षोन्मत हो गये। ऐसे उदार-शिरोमणि स्वामीकी सेवाका सौभाग्य मिलना क्या सहज सुलभ होता है।

'हम सब इन परमपुरुष श्रीरामके किंकर हैं।' सुग्रीवने विभीषणको हृदयसे लगाकर कहा—'अबसे तुम हममें प्रधान हुए।'

'युवराज! तुम वानरेन्द्रके युवराज हो, मैं भूल तो नहीं करता?' विभीषणने अङ्गदकी ओर देखकर धीरेसे कहा—'तुम्हारी बात कदाचित सत्य हो जाय तो विभीषणसे अधिक प्रसन्न दूसरा कोई नहीं होगा। मैं

चरण पकड़कर अपने इन अनन्त दयाधाम स्वामीको मना लूँगा। दशग्रीव लङ्काका अधीश्वर बना रहेगा। लेकिन मैं अपने उस अभिमानी अग्रजको भली प्रकार जानता हूँ। वह दर्पकी पराकाष्ठा है। राक्षस-कुलका विनाश-काल आ गया है। झुकना दूर, वह अपनी इच्छाके विरुद्ध आधा वाक्य भी सुन नहीं सकता।'

'अभाग्य उसका।' अङ्गदका स्वर अत्यन्त खिन्न था—'ऐसे उदार-शिरोमणि स्वामीकी शरण भी जिसे न सूझे, उसके जैसा भाग्यहीन दूसरा कौन होगा।'

अङ्गदको अपने पिताका स्मरण आ रहा था। दशग्रीव उनके पिताका मित्र बन चुका था। उसने अक्षम्य अपराध किया था; किन्तु अङ्गदको उसपर दया आ रही थी। उनके मनमें आता था—'एक बार उसे ठीक ढंगसे समझाया जा पाता! सम्भव है उसे सद्बुद्धि आ ही जाय। न भी आवे तो पिताके मित्रके प्रति कर्तव्य-पालन न करनेका खेद तो मनमें नहीं रहता।'

श्रीराम सर्वज्ञ हैं और भक्तवाञ्छा-कल्पतरु हैं। अङ्गदकी इस कामनाको भी मन-ही-मन उन्होंने 'एवमस्तु' कह दिया। अङ्गदको समझानेका अवसर मिलना उसी समय सुनिश्चित हो गया। यद्यपि उसकी चर्चा उस समय किसीके भी मुखपर नहीं आयी। उस चर्चाका अवसर तो सुबेलपर पहुँचनेपर आना था।

सागरपर रोष

'अब समुद्र कैसे पार किया जाय ?' विभीषणको अभिषिक्त करके श्रीराम मूल प्रश्नपर आ गये। उन्होंने विभीषणकी ओर ही देखा।

'आपको सागरकी शरण लेना चाहिये।' विभीषणने कहा— 'आपके पूर्वज महाराज सगरके पुत्रोंने अभिवर्धन किया है। वैसे भी यह नारायणाङ्ग-समुद्भव है। अतः आपकी प्रार्थनापर उदधिके अधिदेवताको प्रकट होकर स्वयं पार होने का पथ बतलाना चाहिये।'

'यह उत्तम सम्मति है।' स्वभावसे शान्त, धर्मशील श्रीरामको विभीषणकी बात रुची। सुग्रीवने भी विभीषणकी सम्मति मानने योग्य माना। दूसरा कोई विकल्प भी उनके समीप नहीं था।

'आप सर्वलोक-शरण्य समुद्रकी शरण लेंगे? कुमार लक्ष्मणको यह बात बुरी लगी। उन्होंने विरोध किया— 'धनुष उठाइये या इस सेवकको आज्ञा दीजिये। समुद्रको शुष्क करने-में कितने क्षण लगने वाले हैं।'

'तुम ठीक कहते हो।' श्रीरामने भाईकी ओर देखा— 'लेकिन यह उपाय तब आवश्यक है, जब सौम्य उपाय असफल हो जाय। अतः तनिक धैर्य रखो।'

आज्ञा पाकर हनुमान कुश उखाड़ लाये। उत्तराग्र कुश बिछाकर उसपर श्रीराम अपनी बाम भुजाका उपधान बनाकर लेट गये समुद्रकी बेलापर। उन्होंने मौन धारण कर लिया। आहार और जलका त्याग कर दिया। एक ही प्रकारसे समुद्रकी ओर देखते स्थिर लेटे रहे।

× × ×

दशग्रीव प्रमत्त नहीं था। उसने जैसे ही सुना कि श्रीराम ससैन्य सागर-तटपर पहुँच गये हैं, बिना किसीको सूचित किये एक चर भेज दिया था। वह रावणका गुप्तचर शार्दूल अदृश्य रहकर आया था और

शीघ्र लौट गया था। वानरोंके अपार समुदायको देखकर उसका साहस ही समीप आनेका नहीं हुआ था।

'वानरी सेना समुद्रके समान असीम है। उसकी संख्या करना सम्भव नहीं है और उनमें-से एक भी इतना दुर्बल नहीं कि उससे द्वन्द्व युद्धका साहस कर सकूँ।' शार्दूल बिना पूरा दल देखे लौट गया था तब जब विभीषण लङ्कामें ही थे। उसने विवरण देते कहा था—'राम और उनके अनुज भी दुरतिक्रम हैं। आप कोई अधिक निपुण दूत भेजिये। साम, दान और भेदमें जो उचित लगे कीजिये ; किन्तु दण्डकी—युद्धकी कल्पना भी त्याग दीजिये। इससे विनाश निश्चित है।'

दशग्रीवने इस सन्देशके पश्चात् ही मन्त्रियोंको मन्त्रणाके लिए बुलाया था। जब विभीषण लंकासे चले, तब उनके पीछे ही उसने शुक-सारणको भेज दिया था। दोनों कामरूप राक्षस वानर बनकर सुग्रीवके दलमें मिल गये। वे जहाँ जाते थे, उसी यूथके वानर उन्हें अपने दलके किसी दूसरे यूथका समझ लेते थे। इस प्रकार वे वानर-यूथोंमें घूमते, वानरी सेना देखनेमें लगे थे।

प्राणी अपनी भावनापर कब तक नियन्त्रण रख सकता है। दोनोंने श्रीरामका अत्यन्त उदार स्वभाव देखा। उन शरणागत-वत्सलने विभीषणको अपनाया ही नहीं, लंकेश्वर कहकर अभिषिक्त कर दिया। उदारताकी सीमा टूट गयी जब उन्होंने कह दिया—'रावण शरण आवे तो अयोध्याका राज्य उसका।'

अब जब श्रीराम बिभीषणकी सम्मति मानकर समुद्रके तटपर अनशन करने लेट गये, शुक-सारण विभोर हो गये। विस्मृत हो गये कि वे शत्रु-सेनामें है और वानर नहीं हैं। शुक बोल उठा—'धन्यशील ! असीम शक्ति, अकल्पनीय औदार्य और इतना सरल स्वभाव आजसे पूर्व सोचा भी नहीं था कि सृष्टिमें सम्भव है।'

'अभागा दशग्रीव इनसे शत्रुता करता है?' सारण बोल पड़ा—'इनके समीप रहस्य क्या है कि कोई छिपकर देखेगा।'

'ये वानर नहीं हैं। ये गुप्तचर हैं—शत्रुके गुप्तचर।' समीपके वानरोंने सुना तो चौंक गये—'पकड़ो इन्हें!'

सारण पकड़ लिया गया। पकड़ तो शुक भी लिया गया; किन्तु उसी क्षण शुक (तोता) बनकर हाथसे छूट निकला और सुग्रीवके समीप जाकर आकाशमें उड़ते-उड़ते बोला—'राक्षसेश्वर दशग्रीवने आपसे कहा है कि सुग्रीव तो मेरे भाई हैं। बालिने मुझे बन्धु स्वीकार कर लिया था। मैंने राजकुमारकी पत्नीका हरण किया, इससे सुग्रीवकी तो कोई हानि हुई नहीं। वे क्यों अकारण विपत्ति मोल लेते हैं? वानरेन्द्र ससैन्य लौट जायँ। मैं वचन देता हूँ कि बालिसे की गयी सन्धिका पालन करूँगा। लङ्का और किष्किन्धाकी मैत्री बनी रहे।'

'उस मूर्खसे कहना कि सुग्रीवने अपने सगे भाई बालिका वध करवा दिया है।' सुग्रीव सरोष बोले- 'अब बालिके दूसरे भाई तेरा वध करवाने आया हूँ।'

इस सन्देश देने-सुननेमें शुक तनिक असावधान हुआ। इतनेमें वानरोंने उसे कूदकर पकड़ लिया। उसे अपना स्वरूप धारण करना पड़ा; क्योंकि वानरोंने पक्ष नोंच फेंके। अब उसपर थप्पड़ घूसे पड़ने लगे। किसीने पुकारा—'दोनोंके नाक-कान काट लो! दूतके अंग-भङ्गकी परम्परा दशग्रीवने ही प्रचलितकी है।'

'आप सबको अपने स्वामी श्रीरामकी दुहाई।' दोनों राक्षस चिल्लाये —'हमारे नाक-कान मत काटिये। हम श्रीरामकी शरण हैं।'

'इन्हें यहाँ लाओ! कुमार लक्ष्मणने समीप बुलाया। दोनोंको आश्वस्त किया। एक पत्र वाणकी नोकसे तालपत्रपर लिखकर दिया—'इसे दशग्रीवको दे देना।'

'देव! ये गुप्तचर हैं।' इतनेमें विभीषण समीप आ गये और हाथ जोड़कर बोले—'समुद्रपार जब तक सम्पूर्ण सेना न पहुँच जाय, इन्हें बन्दी बनाकर रखना चाहिये। इनसे समाचार पाकर दशग्रीव सागरपार होनेमें बाधा उपस्थित कर सकता है।'

'लङ्काके चरोंके सम्बन्धमें लंकेशका निर्देश सम्मान्य है।' लक्ष्मणने हँसकर कह दिया। दोनों बन्दी बना लिये गये। उनके ऊपर दृष्टि रखनेको वानर नियुक्त हो गये।

× × ×

'लक्ष्मण ! मेरा धनुष दो मुझे ! ' चौथे दिन सूर्योदयके पश्चात् श्रीराम उठे । वे तीन दिन-रात्रि पश्चिम पाद किये, वामभुजाके उपधानपर दक्षिणाभिमुख लेटे रहे थे । इस मध्य केवल स्नान-सन्ध्याको वे उठे थे । अब उनके स्वरमें रोष था— 'सत्पुरुषके सद्गुण शान्ति, क्षमा सरलताको हीनसत्व उसकी दुर्बलता मानते हैं । यह मूढ़ सागर मेरी क्षमाको मेरी विवशता समझता है । मैं इसे शुष्क कर दूंगा ।'

उन अखिलेश्वरकी भृकुटिका कुटिल होना पर्याप्त था । उनके धनुषपर ज्या चढ़ाते ही प्रचण्ड पवन चलने लगा । धनुषपर आग्नेयास्त्र चढ़ा और सागरका अतलजल खौल उठा । मत्स्य, कच्छपोंकी चर्चा व्यर्थ है, मकर, तिमिंगल तक व्याकुल होकर उछलने लगे । गगनमें सुर 'त्राहि ! त्राहि ! ' पुकार उठे ।

'पाहि पुरुषोत्तम प्रणतबन्धु ! ' समुद्रकी उत्तालतरंगोंने श्रीरामके चारु चरण धोये और उनपर मौक्तिक राशि बिखेर दी । तरंगवसन, नीलकाय, फेनिलकेश, मुक्ताभरण सागराधिदेव करबद्ध, कटिपर्यन्त जलमें खड़े काँप रहे थे— 'अपराध क्षमा करो क्षमाधाम ! आपने ही पृथ्वी, जल, वायु आदिको स्वभावसे जड़ बनाया है । मेरी जड़ता आपका ही निर्माण है । आप मर्यादा पुरुषोत्तमने जो मर्यादा-मेरी निश्चित कर दी है, मैं उसे मानता रहा यही तो मेरा अपराध है ? आप निग्रह-अनुग्रह समर्थकी मैं शरण हूँ ।'

'मेरा शर अमोघ है । इसका लक्ष्य बतलाओ । ' श्रीरामका स्वर शान्त हो गया था । वाण चढ़ा भी रहता तो उसके प्रभावसे जलजीव समाप्त हो जाते । असंख्य दुर्बल जीव अब तक जलकी ऊष्मासे मर चुके थे ।

'मेरे उत्तर तटपर द्रुमुकुल्य प्रदेश दारुण दस्युओंका वास बना है । आप उसे इस वाणका लक्ष्य बना लें ।' सागरने कहा— 'इससे लोकोत्पीडकोंका विनाश कर दें ।'

श्रीरघुनाथका वाण धनुषसे छूटकर जहाँ गिरा, वह पूरा प्रदेश मरुस्थल बन गया सदाके लिए । आरब्य देशोंका वह दुर्गम मरुस्थल आज वहाँके अनेक राज्योंमें विस्तीर्ण है । दस्यु ही नहीं, वनस्पति भी वहाँ भस्म हो गयी । ' वह धराका व्रण बन गया ।

'इस सम्पूर्ण सेनाको लङ्का पहुँचना है।' वह वाण जब लक्ष्य भस्म करके त्रोणमें लौट आया, श्रीरामने समुद्रके अधिदेवतासे आदेशके स्वरमें कहा—'इसे मार्ग दो।'

'आपके प्रभावसे मैं सूख जा सकता हूँ और सेना उस पार चली जायगी; किन्तु' समुद्रदेव अत्यन्त नम्र स्वरमें बोले—'देव! आप मर्यादा-पुरुषोत्तम मेरी मर्यादा मिटाकर प्रसन्न हों तो मैं यही करूँ।'

'तुम्हारी मर्यादा रक्षित रहते कोई और सुगम मार्ग है?' श्रीरामने पूछ लिया।

'है प्रभु! आपका सुयश अनन्तकाल तक प्राणियोंको पवित्र करता रहेगा, यदि आप मुझपर सेतु-निर्माण करके सेनाको पार ले जाते हैं।' समुद्र वैसे ही करबद्ध प्रार्थना कर रहे थे—'मैं अपनी शक्तिके अनुसार सहायता करूँगा।'

'सेतु-निर्माण?' सुप्रसन्न श्रीरामने सागरकी ओर देखा।

'आपकी सेनामें विश्वकर्माके पुत्र नल-नील महाशिल्पी हैं।' सागरने सूचना दी—'उनके करसे स्पृष्ट भारी पर्वत भी जलमें तैरते हैं।'

'अच्छा!' श्रीरामने स्वीकार कर लिया। समुद्राधिदेव अपने जलमें अन्तर्हित हो गये।

सेतु बन्ध

'अपनी यह विशेषता तबतक प्रकट मत करना, जबतक कोई दूसरा ही तुमसे न कहे।' सुग्रीवके पूछनेपर नल-नील दोनों भाइयोंने स्वीकार किया—'बचपनमें हम दोनों भाई अत्यन्त चञ्चल थे। आस-पास ऋषियोंके आश्रम बहुत थे। हम दोनों अवसर पाते ही उनके आराध्य शालिग्राम अथवा शिवलिङ्ग उठाकर सरोवरमें डाल देते और हँसते— 'अब ये भली प्रकार स्नान करेंगे।'

ऋषिगणोंने दुःखी होकर शाप दिया—'इन दोनों वानरोंके करसे स्पृष्ट शिलाएँ जलमें डूबेंगी ही नहीं।'

'उन कृपालु क्षमाशील महात्माओंने हम दोनोंका कोई अहित नहीं किया। केवल अपने आराध्य विग्रहको प्राप्त करने, सुरक्षित रखनेका उपाय किया।' नीलने कहा—'लेकिन वह उपाय हमारे लिए इतना सौभाग्यदायी वरदान बनेगा, यह तो हम जानते ही नहीं थे। अपने कुल-वृद्धोंके आदेशानुसार मैं अबतक मौन था। आप वानरोंको शिलाएँ पर्वत ले आनेका आदेश दें। हम दोनों सेतु-निर्माणका श्रीगणेश करते हैं।'

'हम लंका पहुँचनेके लिए समुद्रपर सेतु-निर्माण करेंगे। वानर-विश्वकर्मा नल-नील इसमें समर्थ हैं।' सुग्रीवने घोषणाकी—'सब वानरों-को पर्वत, शिलाएँ और विशाल वृक्ष लाकर नल-नीलको देना चाहिये। सब अविलम्ब उद्योगमें लग जायँ।'

'हम सेतु-निर्माण करेंगे।' वानरोंमें अपार उत्साह जागा। समुद्रकी विशालता देखकर उत्पन्न निराशा समाप्त हो गयी। नल-नीलने तनिक घूमकर स्थान देखा। श्रीरामके द्वारा गणपति-पूजन, नवग्रह-पूजनादि स्थापत्यवेदमें वर्णित आरम्भिक कार्य सम्पन्न कराये और सागर-वेलाके समीप एक भाई एक ओर, दूसरे भाई दूसरी ओर एक दूसरेकी ओर मुख करके बैठ गये। उन्हें दस योजन चौड़ा सेतु बनाना था। वर्तमान रामेश्वरम्-के समीपसे लेकर कन्याकुमारी तक सेतुकी चौड़ाई उन्होंने निश्चित की थी।

आरम्भमें ही एक समस्या उपस्थित हो गयी। दो शिलाओंको परस्पर आबद्ध करनेका कोई साधन नहीं था। प्रथम पर्वत सागरके पानीपर रखकर जबतक दूसरा पर्वत लिया दोनों भाइयोंने, दोनों भाइयोंके द्वारा जलपर रखें दोनों पर्वत समुद्रकी उत्ताल तरंगोंके थपेड़े खाकर दूर चले गये।

'हम सेतु-निर्माण कर सकते हैं।' दोनों भाइयोंका गर्व गलित हो गया। नीलने नलको पुकारा—'भाई ! सेतु बनेगा तो श्रीरामके प्रतापसे ही बनेगा। हमारे नामको अमर करनेका अनुग्रह किया इन समर्थ स्वामीने ; किन्तु हम निमित्त मात्र हैं। इनके नामको ही शिला-संयोजनका साधन बनाओ।'

'इनके नामको साधन ?' नलने पुकारकर पूछा।

'हाँ !' नीलने हाथके पर्वतपर नखसे रा' लिखा और उसे जलपर रख दिया। वह तैरता रहा, स्थिर बना रहा। दूसरा पर्वत लिया, उसपर 'म' लिखा। जलपर रखते ही वह पहिले पर्वतसे स्वत. सट गया। नलने भी यह प्रक्रिया सीख ली। चल पड़ा अब यह क्रम। सागरकी तरंगें अब पर्वत-शिलाओंको ऊपर-नीचे तो हिलाती थीं ; किन्तु स्थानान्तरित नहीं कर पाती थीं। एक शिलापर 'रा' दूसरी पर 'म' यह दो अक्षर शिला-संयोजक बन गये।

हनुमान, अंगद, जाम्बवान, मैन्द, द्विविद, गय, गवाक्ष, शरभ आदि बलवान यूथपोंने निर्णय किया—'समीपके पर्वत सामान्य वानरोंको लानेके लिए छोड़ दो। हम सबको दूरसे पर्वत लाने चाहिये।'

सभी वानर उत्साहमें थे। वे अपनी शक्तिके अनुसार भारीसे भारी शिला या पूरा शिखर उठा लाते थे। नल-नील सामान्य ईंटकी भाँति लेते थे और नखसे 'रा' या 'म' लिखकर जलपर पहिली शिलासे सटाकर रख देते थे। वृक्ष—विशाल वृक्ष भी लाये जा रहे थे ; किन्तु केवल नल या नीलके कहनेपर। जब उन्हें दो शिलाओंके मध्यकी विषमता पाटनेकी आवश्यकता हो। वे स्वयं भी भारी पर्वतोंको पटककर आवश्यकतानुसार समतल करते जा रहे थे।

श्रीरामने सुग्रीव तथा विभीषणको रोक दिया था इस उद्योगमें लगनेसे—'आप दोनों केवल निर्माणको देखें और वानरोंको प्रोत्साहित करते रहें।'

विभीषणके चारों मन्त्री पर्वत ढोनेमें स्वयं लग गये थे। अनुजके साथ श्रीराम यह कौतुक कुछ देर खड़े देखते रहे। पवनपुत्रकी दृष्टि पड़ी कि प्रभु अचानक चुपचाप एक ओर चल पड़े तो वे पर्वत लाना छोड़कर अपनी उपस्थिति बिना सूचित किये अनुगमन करने लगे। इस समय स्वामीको अकेले अरक्षित छोड़ना उचित नहीं था।

श्रीराम सागरतटके सहारे नीलके समीपसे टहलते पर्याप्त उत्तर चले गये। अब वे रुके, इधर-उधर देखा। पीछे दूर छिपे खड़े आञ्जनेय दृष्टि नहीं पड़े। श्रीरामने समीपसे एक छोटा पाषाण उठाया। समुद्रके समीप आये। उसे धीरेसे जलपर रखा ; किन्तु वह जलमें डूब गया। श्रीराम उठ खड़े हुए। उनका कमलमुख उदास हो गया था।

'मेरे नाथ ! आपका नाम भव-सागरसे सबका समुद्धारक है।' अब पवनपुत्र हाथ जोड़े सम्मुख आ गये—'लेकिन आपके ये अभयद कर जिसका त्याग कर देंगे, वह तो डूबेगा ही। उसके तरनेकी सम्भावना कहाँ रह जाती है।'

'हनुमान तुम ?' श्रीराम हँस पड़े—'तुम्हारी मतिको कभी कहीं अविद्याका स्पर्श नहीं होगा। तुम आश्रितोंका अविद्यान्धकार दूर करनेमें समर्थ रहोगे।'

श्रीराम जब अनुज तथा सुग्रीवके समीप आ गये, हनुमान पुनः पर्वत उठाने, लानेमें लगे। वे पर्वत लेकर नीलको देने चले तो देखा कि एक अत्यन्त क्षुद्र प्राणी अबतक बने सेतुपर चढ़ आया है। वह एक गिलहरी थी। हनुमानने डाँटा—'सेतुपर मत आओ ! दीखता नहीं है कि वानर पर्वत लिये दौड़ते आते हैं। किसीका भी पैर तुमपर पड़ सकता है। अपने रक्तसे सेतुको अपवित्र करना है तुम्हें ?'

नन्ही गिलहरीने पूँछ हिलायी, केश फुलाये, पूँछके बलपर बैठकर दो पदोंपर आधी खड़ी होकर हनुमानजीको ही डाँट दिया—'तुम अकेलेने परम पुरुषोत्तमकी सेवाका ठेका लिया है ? जिसमें बल नहीं है, उसे अपनी क्षुद्र शक्तिके अनुसार उनकी सेवाका स्वत्व नहीं है ?'

'तुमसे उनकी क्या सेवा इस समय सम्भव है ?' हनुमान चकित रह गये।

'तुम्हें दीखता नहीं कि सेतुपर दो शिलाओंके मध्य कितनी सन्धि है।' गिलहरीने उसी रोष-भरे स्वरमें कहा—'इसपरसे उन सर्वेशको चलना है। उनके सुकुमार चरण पड़ेंगे यहाँ। मैं शक्तिभर इन सन्धियोंको मिटा देनेमें लगी हूँ। मेरे तुम्हारे समान शक्तिशाली हाथ तो नहीं हैं। सागर-जलमें शरीर भिगाकर, पुलिनपर लोट-पोट होकर थोड़ी रेत अपने केशोंमें ला पाती हूँ। केश हिलाकर यहाँ डाल जाती हूँ। प्राणी अपनी शक्तिके अनुसार ही तो उन परमप्रभुकी सेवा कर सकता है।'

'तुमने सेवा कर ली। तुम्हें चलो प्रभुके समीप पहुँचा दूँ।' पवन-कुमारने प्रमसे कहा—'अन्यथा किसीके पैरसे कुचल जा सकती हो।'

'तो क्या हो जायगा ? किसी रामभक्तके चरणों तले आ जाऊँगी तो मेरी मृत्यु धन्य हो जायगी। जो सर्वव्यापक हैं, जिनका स्मरण अपवित्र को पवित्र करता है, उनका सेतु कहीं गिलहरीके तनिकसे शरीरसे अपवित्र हो सकता है।' गिलहरीने झिड़क दिया–'तुम अपना काम करो। मुझे अपना काम करने दो। मुझे तुम्हारी सहायता अपेक्षित नहीं है। उन दीनवन्धु तक पहुँचने-में किसी क्षुद्र प्राणोपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। कोई दुर्बल असमर्थ भी हो जाय तो उसके समीप आकर उसे उठा लेना उन दयासिन्धु-को आता है।'

हनुमानजीको इस हठी गिलहरीपर दया आ रही थी। इसके कुचल जानेकी पूरी सम्भावना थी। वे चाहते थे कि यह डरकर हट जाय। उन्होंने पादाँगुष्ठसे उसकी पूँछ तनिक दबा दी। पीड़ासे गिलहरी तड़प उठी—'चीं चीं' पूँछ खिचकर लम्बी हो गयी। तनिक सी टूट गयी।

'चीं चीं' करती घायल पूंछ लिये गिलहरी भागी और सीधे श्रीरामके समीप गयी। उसने उन करुणा-वरुणालयके सम्मुख सिर उठाकर 'चीं चीं' की तो उन्होंने उसे उठाकर वाम करपर रख लिया। दक्षिण करकी अंगुलियोंसे उसे स्नेहपूर्वक थपथपा दिया। वे अंगुलीके चिह्न उसकी पीठपर नित्य हो गये पूरी वंश-परम्परामें। हनुमानजी उसके पीछे आये थे। उनकी ओर गिलहरीने सगर्व देखा।

'हनुमान ! तुमने सेवामें लगे इस क्षुद्र प्राणीको पीड़ा देकर अच्छा नहीं किया।' प्रभुने उपालम्भ दिया। पवनपुत्रका मस्तक झुक गया।

श्रीराम भक्तापराध क्षमा नहीं करते। आञ्जनेयका पुच्छ-भंग तो उसी समय अनकहा विधान बन गया।

× × ×

पहिले दिन सेतु-निर्माण कुछ बिलम्बसे प्रारम्भ हुआ था, अतः केवल चतुर्दश योजन ही बन सका। दूसरे दिन बीस योजन, तीसरे दिन इक्कीस योजन, चौथे दिन बाइस योजन और पाँचवें दिन तेइस योजन बनाकर नल-नीलने पूरे सौ योजन समुद्रको बाँध दिया। दस योजन चौड़ा वह सेतु सागरवक्षपर मनोहर हार लगता था।

स्पष्ट है कि वानरोंका उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता गया था। यद्यपि उनकी कठिनाई, श्रम भी उत्तरोत्तर बढ़ता रहा था। आसपासका प्रदेश पर्वत-रहित होता गया और उन्हें अधिक दूरसे पर्वत ढोने पड़े लेकिन उनका वेग उत्साहातिरेकसे बढ़ता ही गया था।

सेतु-निर्माणका अन्तिम दिन था। सायंकाल समीप था। पवनकुमार-को प्रातःकालसे ही हिमालयके शिखर लाने पड़ रहे थे। विन्ध्यको उन्होंने दूसरे वानरोंके लिए छोड़ दिया था। अन्तिम बार उन्होंने हिमालयपर द्रोणाचलके शिखर गोवर्धनको उठानेका प्रयत्न किया। उन्हें आश्चर्य हुआ, सम्पूर्ण शक्ति लगा देनेपर भी वह सामान्य शिखर उनसे हिला तक नहीं।

'तुम्हें पितृ स्थानसे इतना मोह है?' पवन कुमारने पर्वतको झिड़की दी— 'मैं तो तुम्हें परात्पर प्रभुके पादस्पर्शसे परिपूत होनेका अवसर देने ले जा रहा था।'

'तुम सच कहते हो?' पर्वतसे वाणी प्रकट हुई— 'तुम उन सर्वेश्वरके दर्शन करानेका बचन दो तो मैं भारहीन हुआ जाता हूँ। इस तपोभूमिको त्यागकर सामान्य मानवोंकी क्रीड़ा स्थलीमें जानेका उत्साह मुझमें नहीं है।'

'मैं प्रभुके पादस्पर्शको सुलभ करानेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।' हनुमानने भी देख लिया कि वे सामान्य पर्वत नहीं उठाने लगे थे। वह तो समूचा ही चिन्मय, दिव्यगिरि है। तब उसे आराध्यकी सेवासे अवश्य सार्थक होना चाहिये।

'तब ले चलो !' गोवर्धनने कहा। हनुमानने उठाया तो वह उनके करोंपर आ गया। भार हीन बन गया।

सायंकाल समीप था। सेतु-निर्माण पूरा हो गया। नल-नील उठ खड़े हुए। श्रीरामने आज्ञा दी— 'जो वानर जहाँ हैं, वहीं हाथकी शिला या पर्वत डालकर आ जायँ। दूसरोंको भी दौड़कर सूचना दे दें।

इस आदेशका परिणाम हुआ कि विन्ध्यसे दक्षिणका पूरा भारत पर्वतीय हो गया। अधिकांश प्रदेश शृंखला हीन जहाँ तहाँ अकेले अकेले पड़े पर्वतोंसे भर गया। थोड़े ही स्थान ऐसे बने जहाँ बहुतसे वानरोंने हाथके पर्वत साथ साथ फेंके।

'श्रीरामका आदेश है, जो वानर जहाँ हैं, हाथका पर्वत वहीं डालकर उनके समीप पहुँचें !' यह आदेश हनुमानने तब सुना, जब वे व्रजमें गोवर्धनको लिये पहुँचे। आराध्यकी आज्ञाके अनुसार पर्वतको पृथ्वीपर रखकर बोले— 'मैं स्वामीसे अनुमति लेकर आता हूँ।'

'मैंने उन पर्वत श्रेष्ठको श्रीचरणोंमें उपस्थित करनेका बचन दिया, तब वे उठनेको प्रस्तुत हुए।' हनुमानजीने श्रीरघुनाथके समीप पहुँचकर प्रार्थना की।

'तुम उन्हें माथुर-मण्डलमें ही तो छोड़ आये हो ?' वे लीलामय हँसे— 'वे जहाँके हैं, वहीं तुमने उन्हें स्थापित किया है। उन्हें मेरा यह स्वरूप प्रिय नहीं लगेगा। वे गोलोकके क्रीड़ा गिरि—उनसे जाकर कहो कि धरापर आ गये हैं तो इस कल्पके अट्ठाइसवें द्वापरान्त तक प्रतीक्षा करलें। मैं अपने मित्रों और गायोंके साथ उनपर विहार करूँगा। उनको करपर रखूँगा और उनकी पूजा कराऊँगा। विश्वमें सर्वोपरि सम्मान भाजन बनेंगे वे।'

हनुमानजीने जाकर गोवर्धनको अपने स्वामीका सन्देश सुनाया तो वे गिरिवर सन्तुष्ट हो गये। द्वापरमें उन्हें उठाकर ही तो मयूरमुकुटी, नन्दनन्दनको गिरिधर कहलानेका गौरव प्राप्त होना था।

× × ×

सेतु-सम्पूर्ण हो गया। श्रीराम-नामके प्रतापसे तैरती शिलाओंका सेतु। विश्वकर्माको भी विस्मयमें डाल दे ऐसा सेतु। भवसागर जिनके

नामका आश्रय लेकर प्राणी प्रमोद पूर्वक पारकर जाता है, उन्हींके उसी नामसे अङ्कित शिलाओंका सेतु। अद्‌भुत शोभा थी उसकी।

नाना रंगके पर्वतोंसे बना वह सेतु। पर्वतोंपर हरित, पुष्पित वृक्ष थे। नल-नीलने शिलाओंकी विषम सन्धिमें भी पूरे पूरे विशाल वृक्ष जमाये थे। शाखा, पत्र, पुष्पों सहित वृथा। वहाँ सम्पूर्ण समुद्र टूटे पत्तों, पुष्पों, फलों, टहनियोंसे भर उठा था और सागरकी लहरें वह सब दोनों तटोंपर दूरतक उसे सज्जित करनेमें लगी थीं। जैसे श्रीरामके स्वागतमें सागरके दोनों तटोंपर लम्बी बन्दनवार बिछायी गयी हो और सेतु—वह तो समुद्र वक्षपर इन्द्र धनुषके समान सुशोभित था।

रामेश्वर-स्थापन

'आशुतोष गङ्गाधर नीलकण्ठ महेश्वरके लिङ्ग विग्रहकी स्थापना यहाँ की जानी चाहिये।' सेतुको देखकर श्रीरामने कहा—'लङ्का-विजयके लिए उन उमाकान्तका अनुग्रह प्राप्त करना आवश्यक है।'

'उनका लिङ्ग-विग्रह कहाँसे आवेगा?' इस प्रश्नपर कोई विवाद नहीं उठा। नर्मदेश्वर लानेकी अपेक्षा सबको अच्छा लगा कि पवन-कुमार कैलास जाकर भगवान कृत्तिवाससे ही उनका लिङ्ग-विग्रह माँग लावें। हनुमान उसी समय कैलास चले गये।

'इस अनुष्ठानका आचार्य कौन बनेगा?' सबसे कठिन प्रश्न था। मतङ्ग आश्रमके पश्चात् कोई ऋषि-मुनि नहीं थे। मतङ्गाश्रममें भी सब वैष्णव थे। वेदज्ञ ब्राह्मण आचार्य आवश्यक था और शिव-स्थापनामें यह भी आवश्यक था कि वह नैष्ठिक शैव हो।

'पौलस्य दशग्रीव ब्राह्मण हैं, वेदज्ञ हैं और नैष्ठिक शैव हैं।' श्रीरामने सबको चौंका दिया—'हम आचार्यत्वके लिए उनको आमन्त्रित तो कर ही सकते हैं।'

'रावणको आप आचार्य बनावेंगे अपना?' सुग्रीवने सशङ्क स्वरमें पूछा।

'क्या दोष है?' श्रीरामने कहा—'दशग्रीव इतने छुद्र नहीं हैं कि आचार्य होकर आनेपर कोई कपटाचार करेंगे।'

'आपका अनुमान उचित है।' विभीषण बोले—'आनेपर मेरे अग्रज यहाँ कपटाचार नहीं करेंगे। आ गये तो अपने कर्तव्यमें किञ्चित् प्रमाद भी नहीं करेंगे। उनके जैसा वेदज्ञ विधि-बिशेषज्ञ भी दूसरा नहीं है। वे नहीं ही आवेंगे, यह भी मैं निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता। उनका स्वभाव अद्भुत है। वे कब किस विषयमें क्या निर्णय लेंगे कोई अनुमान नहीं कर सकता। आपकी इच्छा हो तो उन्हें आमन्त्रित करनेमें दोष मैं नहीं देखता।'

'दूत बनकर कौन जायगा ?' श्रीरामने सबकी ओर देखा। स्वयं बोले —'ऋक्षराज जाम्बवन्तजीको जाना चाहिये। सृष्टिकर्ताके ये मानसपुत्र दशग्रीवके भी सम्मान्य हैं। इनकी उपेक्षा वे भी सहसा नहीं कर सकेंगे।'

'इस बार रामने एक रीछ भेजा है!' लङ्कामें आतङ्क फैल गया। प्रथम कल्पके सतयुगमें—सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुए जाम्बवन्तजी आकारमें कुम्भकर्णसे तनिक ही छोटे थे। पूरे नगरमें यह समाचार विद्युत-वेगसे फैला। सबके हृदयकी धड़कनें बढ़ गयीं—'पहिले वानर और अब ऋक्ष ? ऋक्ष वानरसे अधिक ही भयावह होता है।'

जाम्बवन्तको किसीसे कुछ पूछना नहीं पड़ा। द्वारके प्रहरियोंने हाथ जोड़कर मार्ग दिखला दिया। बीचमें भी मार्ग प्रायः सुनसान मिला। कहीं कोई मिला भी तो भयके कारण बिना पूछे, एक शब्द बोले बिना ही संकेत कर देता था पथका। इस प्रकार जाम्बवन्त सीधे राजसभाके द्वार-पर पहुँचे।

'दशग्रीवसे कहो कि महर्षि पुलस्त्यका भाई ऋक्ष जाम्बवन्त श्रीरामका दूत होकर आया है।' जाम्बवन्तका समाचार द्वारपालने लगभग दौड़कर पहुँचाया। स्वयं दशग्रीव उन्हें द्वारतक लेने आया।

'राक्षसेन्द्र! मैं अर्घ्यका पात्र नहीं हूँ।' दशग्रीवको अर्चाका उपक्रम करते देखकर जाम्बवन्तने हँसकर कहा—'मैं इक्ष्वाकु गोत्रीय अयोध्या नरेश महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामका दूत होकर आया हूँ। उन्होंने तुम्हें सादर प्रणाम कहा है।'

'आप आसन ग्रहण करें।' दशग्रीवने सविनय कहा—'आप हमारे पितामहके भाई हैं। हमारे पूज्य हैं। आप एक राक्षसकी अर्चा स्वीकार कर लेंगे तो मैं आपका सन्देश भी सावधान होकर सुन सकूँगा।'

जाम्बवन्तने कोई आपत्ति नहीं की। उन्होंने अर्घ्यपाद्यादि स्वीकार कर लिये। अर्चाके अनन्तर दशग्रीव बैठ गया, तब जाम्बवन्तने फिर कहा—'ऐक्ष्वाकु गोत्रीय श्रीरामने तुम्हें प्रणाम कहा है। वे सागर-सेतु-बन्धपर भगवान् शङ्करके लिङ्ग-विग्रहकी स्थापना यथाशीघ्र करना चाहते हैं। इस अनुष्ठानको सम्पन्न करानेके लिए उन्होंने वेदज्ञ, परमशैव पौलस्त्य दशग्रीवको आचार्य पदपर वरण करनेकी इच्छा की है। मैं उनकी ओरसे आमन्त्रित करने आया हूँ।'

'यह शिव-स्थापन लङ्का-विजयकी कामनासे किया जा रहा है ?' दशग्रीवने हँसते हुए पूछ लिया।

'स्वाभाविक है।' जाम्बवन्तने स्वीकार किया—'श्रीरामकी भगवान शङ्करके चरणोंमें भक्ति है।'

'अत्यन्त धृष्टता ! नितान्त निर्लज्जता !' प्रहस्त चिल्लाया—'लंकेश्वर ऐसा प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकते।'

'मातुल ! तुम्हें किसने मध्यमें पड़नेको कहा ?' दशग्रीवने कठोर स्वरमें डाँट दिया। 'जीवनमें प्रथम बार किसीने रावणको ब्राह्मण माना, आचार्य बनाने योग्य माना और दशग्रीव इतना कापुरुष निकलेगा कि वह भारतके परम प्रशंसित महर्षि पुलस्त्यके सगे भाई वशिष्ठके यजमानका आमन्त्रण—अपने आराध्यकी स्थापनाके आचार्यत्वका आमन्त्रण अस्वीकार कर देगा ?'

'ऋक्षेश्वर ! तपस्वी राजकुमारने जब इतना बड़ा आचार्य आमन्त्रित किया है, देखना होगा कि वह उचित अधिकारी यजमान भी है या नहीं।' दशग्रीवने जाम्बवन्तकी ओर देखा—'आप जानते ही हैं कि आप त्रिभुवनजयी अपने इस शत्रुकी पुरीमें पधारे हैं। हम यदि आपको यहाँ बन्दी कर लें, आपको लौटने ही न दें ?'

'उचित होगा।' प्रहस्त चुप नहीं रह सका। राक्षसोंको भी यह ठीक लगा। किसीने जाम्बवन्तके सेतुबन्ध शब्दपर ध्यान नहीं दिया था। दशग्रीव तकने समझा था कि राम शिव-स्थापन करके समुद्रपर सेतु-निर्माणका उपक्रम करनेवाले हैं।

'यह सम्भव नहीं है।' जाम्बवन्त खुलकर हँसे—'मुझे निरुद्ध करनेकी शक्ति लङ्काके सब राक्षसोंके सम्मिलित प्रयासमें भी नहीं है; किंतु मुझे कोई धृष्टता करनेकी न अनुमति है, न आवश्यकता। मैं जब चलने लगा था, तब रामानुज लक्ष्मण समुद्र-तटपर वीरासनसे बैठ गये थे। उन्होंने आचमन करके अपने त्रोणसे पाशुपत निकाल लिया था और मुझसे कहा था—'ऋक्षराज ! दशग्रीवसे कह देना कि यदि एक मुहूर्तमें आप सकुशल मेरे दृष्टिपथमें नहीं आ गये तो यह अस्त्र सम्पूर्ण राक्षस-कुलके संहारका सङ्कल्प लेकर छूट जायगा !'

राक्षसोंके मुख भयपीत हो गये। प्रहस्तका शरीर स्वेदसे लथपथ हो गया। दशग्रीव तक काँप उठा। पाशुपतास्त्र—महेश्वरका यह अमोघास्त्र तो सृष्टिमें एक साथ दो पुरुष प्रयोग नहीं कर सकते। अब भले वह दशग्रीव तथा इन्द्रजितके भी त्रोणमें हो, जब लक्ष्मणने उसे निकाल लिया, स्वयं भगवान शिव भी अब उसे उठा नहीं सकते। उसका तो कोई प्रतिकार नहीं।

'आप पधारें!' दशग्रीवने अपनेको सम्हालकर कहा—'यजमान उचित अधिकारी है। उसे अपने दूतको संरक्षण देना आता है। रामसे कहिये, मैंने उनका आचार्यत्व स्वीकार किया। आवश्यक उपकरण जो यजमान उपलब्ध न कर सके, जुटा देना आचार्यका कर्तव्य होता है। मैं उनको लेकर आ रहा हूँ; क्योंकि जानता हूँ कि अरण्यवासी राजकुमारके समीप क्या हो सकता है।'

जाम्बवन्तको विदा देकर दशग्रीवने आवश्यक सामग्री संग्रह करनेकी आज्ञा दे दी और स्वयं सीधे अशोकोद्यान पहुँचा। उसने सीतासे कहा—'इस समय रावण तुम्हारे सामने रामके आचार्यके रूपमें आया है। वे शिव-स्थापन करने जा रहे हैं और पौलस्त्यको उन्होंने आचार्य वरण किया है।'

'सौभाग्यवती भव!' सुनते ही श्रीजनक-नन्दिनीने भूमिपर भाल रख दिया। स्वस्थ कण्ठसे, दक्षिण भुजा फैलाकर आशीर्वाद देनेके अनन्तर दशग्रीव बोला—'तुम जानती हो कि पत्नीके बिना गृहस्थके सब अनुष्ठान अपूर्ण रहते हैं। रामका अनुष्ठान पूर्ण हो, यह दायित्व उनके आचार्यका है। रथ आ रहा है, उसपर बैठ जाओ। लेकिन स्मरण रखना, तुम वहाँ रहकर भी रावणकी वन्दिनी रहोगी। कर्मान्तमें इसी प्रकार शान्त यहाँ आनेके लिए रथपर बैठ जाओगी।'

'स्वामीने योग्य आचार्यका वरण किया है!' श्रीजानकीने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया स्वीकृतिमें।

रथपर बैठकर जब रावण समुद्र-तटपर पहुँचा, सेतु देखकर उसके नेत्र खुले रह गये। रथ और सीताको उसने वहीं छोड़ा 'आदेश मिलने-पर आना' कहकर और स्वयं आकाश-मार्गसे अकेला आया। जाम्बवन्तसे समाचार पाकर श्रीराम भाईके साथ स्वागतको पहिलेसे प्रस्तुत थे। वानर-सेनाको समझा दिया गया था।

'ऐक्ष्वाकु गोत्रीय दाशरथि राम प्रणिपात करता है!' दशग्रीवके तट-पर उतरते ही श्रीरामने सानुज प्रणाम किया भूमिमें पड़कर।

'आयुष्मान् भव ! समर-विजयी भव !' पौलस्त्यके आशीर्वचनके स्वरने सबको चौंकाया। लेकिन दशग्रीवने सुग्रीव, विभीषण तककी उपेक्षा कर दी। जैसे वे वहाँ हों ही नहीं। किसीके प्रणामका प्रत्युत्तर नहीं दिया।

'यजमान-पत्नी कहाँ है ?' भूमि-शोधनके अनन्तर रावणने कहा तो श्रीरामने मस्तक झुका लिया।

'तुम संन्यासी नहीं हो। पत्नी-परिग्रह-हीन वानप्रस्थका भी तुमने व्रत नहीं लिया है।' दशग्रीवने आचार्यके लिए उचित ढङ्गसे कहा— 'तब पत्नी-रहित अनुष्ठान तुम कैसे कर सकते हो ?'

'यजमान असमर्थ हो तो श्रुति-तत्त्वज्ञ आचार्य उत्तम कल्पके अभावमें अन्य विधान भी तो कर सकते हैं ?' श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर अत्यन्त नम्र स्वरमें प्रार्थना की।

'कर सकते हैं; किंतु पौलस्त्य जैसा आचार्य प्रथम कल्पसे किंचिन्न्यून विधि भी स्वीकार नहीं करता।' दशग्रीव हँसा— 'किसीको भेज दो उस पार। रथ खड़ा है। यजमान जिन उपकरणोंको उपलब्ध करनेमें असमर्थ हो, उन्हें उपलब्ध कराना आचार्यका दायित्व होता है। लेकिन राम ! अनुष्ठानान्तमें वे उपकरण आचार्य लौटा ले जाया करता है।'

श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाकर मौन भावसे यह उचित तथ्य स्वीकार कर लिया। दशग्रीवने सेतुकी चर्चा तक नहीं की। श्रीरामके संकेतपर विभीषणके एक मन्त्री गये और श्रीसीताके साथ रथ इस तटपर आया। उसमें अन्य आवश्यक सामग्री भी सजाकर रखी गयी थी। सामग्री दशग्रीवके समीप रखी गयी।

'पतिके पार्श्वमें बैठो और अनुष्ठानमें आवश्यक सहयोग दो।' हाथ जोड़े, मस्तक नीचे किये वैदेहीको दशग्रीवने ही आदेश दिया। उसीका आदेश आवश्यक था क्योंकि यहाँ भी वे उसकी बन्दिनी थीं।

आवश्यक गणपति-पूजन, कलश-स्थापन, नवग्रह पूजनादिके अनन्तर रावणने पूछा— 'लिङ्गविग्रह ?'

'उसे लेने गत रात्रिके प्रारम्भमें ही पवनपुत्र कैलास गये।' श्रीरामने नम्रतापूर्वक निवेदन किया— 'वे अभी तक लौटे नहीं हैं।'

'विलम्व नहीं किया जा सकता। उत्तम मुहूर्त उपस्थित है।' दशग्रीवने आदेश दिया--'यजमान-पत्नीको बालुका-लिङ्ग बना लेना चाहिये।'

आचार्य ऐसा ही होना चाहिये जो कैसा भी यजमान हो, विधि सम्पन्न करानेमें उसका तनिक भी संकोच न करे। श्रीजनक-नन्दिनीने स्वकरसे समुद्रकी आर्द्र रेणुकासे बड़ी-सी लिङ्ग-मूर्ति निर्मित की। दशग्रीव निर्देश देता गया। रेणुकका ही आधार-पीठ बना। श्रीरामने वही श्रीविग्रह स्थापित किया। दशग्रीवने सविधि अर्चा सम्पन्न करा दी।

'आचार्यकी दक्षिणा!' विधिका निर्देश तो किया ही जाना था।

'आप जो आज्ञा करें?' श्रीराम अञ्जलि बाँधे प्रस्तुत थे। सम्पूर्ण वानरदलका हृदय वेगसे धड़क रहा था—'राक्षसेश्वर क्या माँगेगा?'

'राम! स्वर्णपुरीके त्रिभुवनजयी स्वामीकी दक्षिणा सम्पत्ति नहीं हो सकती।' दशग्रीवने कहा।

'आचार्य जानते हैं कि उनका यजमान इस समय वनवासी है।' श्रीरामका स्वर भी शान्त, स्वस्थ था—'फिर भी जो आज्ञा हो, राम उसे पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा करता है।'

'दशग्रीव जब समर-शय्या ग्रहण करे, तुम सम्मुख उपस्थित रहोगे!' रावणने अपनी दक्षिणा माँगी।

'अच्छा आचार्य!' श्रीरामके कमल-लोचन भर आये। अब लक्ष्मणने तथा दूसरे सबने सच्ची श्रद्धाके साथ इस अद्‌भुत आचार्यको भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया।

श्रीजनक-नन्दिनी संकेत पाकर रथपर बैठ गयीं। दशग्रीवने सेतुपर पद नहीं रखा। वह गगन-मार्गसे ही गया। श्रीजानकी रथपर बैठकर लङ्का लौट गयीं।

लङ्कासे गया रथ लौटा और पवनकुमार शिवलिङ्ग लेकर पहुँचे। वे दोनों कन्धोंपर दो लिङ्ग-विग्रह लिये आये थे। यहाँ स्थापना हो चुकी, यह देखकर बहुत दुःख हुआ। कुछ प्रणय-रोषसे लिङ्ग-विग्रहोंको रखकर प्रभुसे बोले—'मैं वहाँ गया तो भगवान् शङ्करके दर्शन नहीं हुए। देर तक स्तुति करनेपर वे प्रकट हुए। उनके द्वारा प्राप्त ही लिङ्ग-मूर्ति लानी थी। इसमें विलम्ब मेरा अपराध तो नहीं है?'

'बात अपराधकी नहीं है। मुहूर्त व्यतीत हो रहा था, अतः आचार्यके आदेशसे सीताने रेणुका विग्रह बना दिया। उसीकी स्थापना करके मैंने पूजा कर दी। श्रीरामने थोड़े शब्दोंमें रावणके आचार्य होने तथा सीताको लाने, लौटा ले जानेका समाचार देकर कहा—'तुमको बहुत क्षोभ हो तो इस स्थापित विग्रहको हटा दो। मैं तुम्हारे द्वारा लाये विग्रहोंमें-से एककी स्थापना कर दूँगा।'

'तुमको बहुत क्षोभ हो तो' श्रीरामके इन शब्दोंपर ध्यान देनेकी मनःस्थिति हनुमानकी नहीं थी। यह संकेत था कि स्वामीके कार्यसे क्षुब्ध होना सेवकको शोभा नहीं देता। उसे स्वामीके निर्णयसे सन्तुष्ट होना चाहिये। लेकिन हनुमानको बहुत क्षोभ था। रावण आचार्य बना, इसलिए भी। रावणपर तो वे अत्यन्त रुष्ट थे। अशोकोद्यानमें श्रीवैदेहीके प्रति उसका व्यहार उनका देखा था। अम्बा सीता उन्हीं दारुण राक्षसियोंमें लौट गयीं, इसलिए भी।

हनुमानको लगा कि उन्होंने लङ्का जलाया, है, इसलिए रावणने जानबूझकर उनको अपमानित किया। उनके लाये श्रीविग्रहको स्थापनाका अवसर नहीं दिया। रावणके ऊपर जो रोष था, वह उसके द्वारा स्थापित शिव-लिङ्गपर उमड़ा। उसे उठाकर फेंक देनेके लिए पहिले अवज्ञापूर्वक वामहस्तसे प्रयत्न किया। असफल होनेपर दोनों हाथ लगाये। दूध, दधि, घृतादिसे अभिषिक्त स्निग्ध शिव-लिङ्गसे हाथ सरक जाते थे। अन्तमें लांगूल लपेटकर पूरी शक्ति लगायी। शिव-लिङ्ग तो हिला नहीं, पूँछका कुछ भाग टूट गया और हनुमान दूर मुखके बल जा गिरे। मुखसे रक्त आने लगा। मूर्छित हो गये।

श्रीराम आतुरतापूर्वक उठे। उन्होंने हनुमानके मुखपर जल छिड़का। उन्हें उठाया। अपने कर-स्पर्शसे उनकी पीड़ा, व्रण दूर करके स्नेहपूर्वक समीप बैठाकर समझाया—'पवनपुत्र! तुमने आते ही क्रोधपूर्वक पैर पटके थे, इससे तुम्हारे पैर पृथ्वीमें धँस गये थे। अब यह लांगूल छिन्न हो गयी। अतः यहाँ तुम पादगुप्त छिन्नपुच्छ विग्रहके रूपमें सदा पूजित रहो।'

'हनुमान! तुम्हें सोचना चाहिये था कि निखिल विश्व-विधायिका सीताने जिसका स्वकरोंसे निर्माण किया, जिसका मैंने सविधि स्थापन करके पूजन किया, उस लिङ्ग-विग्रहको हिलाया-उखाड़ा कैसे जा सकता है।' श्रीरामने आदेश दिया—'अब तुम अपने लाये विग्रहोंमें-से एककी स्थापना

कर दो। उसका नाम हनुमदीश्वर होगा। उसका दर्शन किये बिना मेरे द्वारा स्थापित रामेश्वरके दर्शन-पूजनका फल नहीं होगा। दूसरा लिङ्ग-विग्रह अपूजित रहने दो। उसकी स्थापना मैं अगले कल्पमें कर दूँगा।'

श्रीहनुमानजीने आज्ञा पालन किया। हनुमदीश्वर लिङ्ग स्थापित कर दिया। दूसरा लिङ्ग-विग्रह, जो विश्वेश्वर कहा जाता है, अब भी अपूजित है। इसके पश्चात् श्रीराम सेतुपर आकर खड़े हुए।

'ये लीलामय ! इन्होंने तो हमें सुयश देनेके लिए ही सेतु-निर्माण कराया। इन्हें कहाँ इसकी आवश्यकता थी।' नीलने अपने भाई नलकी ओर देखा और समुद्रकी ओर संकेत किया। अब सेतुका कोई अर्थ नहीं रह गया था। श्रीरामके वहाँ खड़े होते ही समुद्रके महाकाय, योजन-शरीरी जलचरोंका समुदाय ऊपर आ गया था। सेतुके दोनों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी, केवल जलचर, एकके ऊपर एक लदे-से जल-जीव। वे केवल सिर ऊपर किये एकटक श्रीरामको देख रहे थे। स्थिर—शिलाके समान स्थिर देख रहे थे। उनके शरीरोंके कारण सागरका जल दीखता ही नहीं था।

सुग्रीवकी प्रार्थनापर श्रीराम हनुमानके कन्धेपर बैठे और लक्ष्मण अङ्गदके कन्धेपर। सौ योजनकी यात्रा थी समुद्रके ऊपर। गदा लेकर विभीषण मन्त्रियोंके साथ आगे चले। जाम्बवन्त और सुषेणने पार्श्व-रक्षा पकड़ी। सुग्रीवको पीछे चलना था।

वानरोंमें कम ही सेतुका सहारा लेते थे। बहुत-से गगनमें कूदते थे और जलचरोंमें किसीकी पीठपर उतरकर फिर छलाँग लगा देते थे। बहुत अधिक थे जिन्हें जलचरोंकी पीठपर चलना एक विनोद प्रतीत हो रहा था। अनेक तो पादक्षेपके साथ गिनते जा रहे थे कि कितने जलचरों-की पीठपर वे पैर रख सके।

जलचर स्थिर, अविचल पानीके ऊपर पड़े थे। उन्हें जैसे पता तक न हो कि उनकी पीठपर कौन चल रहे हैं, कौन कूद रहे हैं। केवल उनके सिर हिलते, घूमते थे श्रीरामको देखनेके लिए। असंख्य वानर-सेना; किंतु जलचरोंके शरीरोंसे बने सेतुका विस्तार भी बहुत बड़ा था। दस योजन चौड़े नल-नील द्वारा बनाये गये सेतुपर-से केवल यूथपोंमें कुछ प्रधान जा रहे थे। शेष सेना तो उछलते-कूदते, जलचरोंके शरीरोंसे बने इस सजीव सेतुसे सागर पार कर रही थी। श्रीरामके साथ ही उनके सम्पूर्ण कटकने समुद्र पार कर लिया। श्रीराम तब तक समुद्रतटपर हनुमानके कन्धेपर स्थित रहे, जब तक सेनाके वानरोंका अन्तिम यूथ सागर पार उतर नहीं गया। ●

सुबल-शिविर

'अपना सैन्य-शिविर कहाँ बनेगा ?' श्रीरामने विभीषणसे पूछा।

'इसी सुबेल-शिखरपर।' उत्तर हनुमानने दिया।

'सुबेलपर ?' विभीषण चौंके।

'मैं आपसे बतलाना भूल गया था कि इसपर हमारे जिन मित्रोंको रावणने बन्दी किया था, मैंने अपनी यात्रामें उन्हें बन्धन-मुक्त कर दिया है।' पवनकुमार बोले— 'शिविरके उपयुक्त स्थान तो है यह ?'

'श्रीरामके सेवकोंका स्वभाव ही बद्ध प्राणीको परित्राण देना है।' विभीषणने हनुमानजीकी ओर आदरके भावसे देखा— 'आप इसे निरापद कर गये हैं तो इससे अधिक उपयुक्त स्थान दूसरा त्रिकूटपर नहीं है।'

'लक्ष्मण ! इस शिखरपर प्रचुर शीतल जलके निर्झर हैं। सुपक्व फलोंसे लदे वृक्ष हैं। इसे घेरेमें ले लो।' श्रीरामने शिखर देखकर प्रसन्न मन अनुजसे कहा— 'सेनाको व्यूहबद्ध विश्राम दो। शकुनोंसे प्रकट हो रहा है कि युद्ध होगा। लङ्काका नाश निश्चित है। अब उन रावणके चरोंको मुक्त कर देना चाहिये। उन्हें सेना दिखला दो।'

विभीषणने भी स्वीकृति दे दी। घुमाकर सेना दिखला दी। शुक-सारण छोड़ दिये गये। वे श्रीरामकी प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम करके लङ्का पहुँचे। दशग्रीव प्रतीक्षा ही कर रहा था। उसने देखते ही शुकसे पूछा—'तेरे पङ्ख अब तक बँधे क्यों हैं ? ये इतने छोटे क्यों हैं ?'

'राक्षसेन्द्र ! वानरोंने मुझे पकड़ लिया था। मैं आपको सावधान किये देता हूँ, श्रीराम क्षमासिन्धु है ; किंतु वानर बहुत क्रोधी हैं।' शुकने सुनाना प्रारम्भ किया— 'मैं तो समुद्र-पार गया था ; किंतु अब श्रीराम सागरपर सेतु बनाकर त्रिकूटपर उतर आये हैं। उन्होंने सुबेलपर शिविर स्थापित किया है।

'सुबेलपर ?' रावण चौंका।

'श्रीराम धरापर प्राणियोंको कालसे अभय करने ही आये हैं। शनैश्चरको भी हनुमान मुक्त कर गये थे।' शुकने कहा— 'अब कुशल इसीमें है कि आप सीताको उन्हें लौटा दें।'

'उपदेश करनेकी आज्ञा तुझे किसने दी ?' रक्तनेत्र रावणने ऐसे शुककी ओर देखा जैसे उसे भस्म कर देगा— 'चाहे सब देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष रामकी सहायताको आ जायँ, मैं उन्हें सीता नहीं दूँगा। चल, उनका दल देखें। उनकी शक्तिकी सूचना लाने तुझे भेजा गया था।'

'रामने समुद्रपर अभूतपूर्व सेतु-निर्माण करके सागर पार किया है। विभीषणने हमें पहिचान लिया था। उनके बतलानेसे हम बन्दी बना लिये गये। अब अनुग्रह करके रामने मुक्त कर दिया।' सारणने विवरण देना आरम्भ किया, जब दोनोंको लेकर दशग्रीव दुर्गके उच्च भागपर चढ़कर सुबेल-शिखरकी ओर देखने लगा— 'वे श्रीरामके समीप आपके अनुजसे सटे वानरेन्द्र सुग्रीव बैठे हैं। उनका पराक्रम असीम है। वे हाथ उठाये बालिपुत्र अङ्गद इधर ही देख रहे हैं। उन स्वर्णवर्ण हनुमानसे आप परिचित हैं। वे नीलवर्ण विश्वकर्माके पुत्र नल हैं। वह हिमश्वेत वानर शरभ है।'

'ये सब वानर राक्षसोंके समान ही कामरूप हैं। इनसे युद्ध करना सरल नहीं है। जीवनका मोह त्यागकर ये श्रीरामके लिए युद्ध करेंगे।' सारणने दिखलाया—'समुद्रके समान यह असीम वानरी सेना है। इनमें श्वेत, पीत, नील, धूम्रवर्ण, गोपुच्छ सभी प्रकारके हैं। काले सचल पर्वतों-के समान वह रीछोंकी सेना है, जिनके यूथपति जाम्बवन्त हैं।'

'वह मत्तगजके समान चलता मैन्द है। दैत्य-दानव किसीको युद्धमें कुछ गिनता नहीं। उसके समीप उसका भाई द्विविद है।' शुकने थोड़ा परिचय देकर कहा— 'हनुमानके पराक्रमको आपने देखा है। इस समस्त सेनाके प्राण इन्दीवरसुन्दर वे श्रीराम हैं, जिन्हें छोड़कर धर्म कहीं नहीं जाता। कोई दिव्यास्त्र नहीं, जो ये न जानते हों। लेकिन शरणागत-वत्सल हैं। उदार-शिरोमणि हैं। आपके भाई विभीषणको जाते ही लङ्काके राज्यका तिलक कर दिया।'

रावण हँसा। शुकने दिखलाया— 'श्रीरामके पार्श्वमें अरुणनेत्र गौरवर्ण, असह्यतेजा उनके भाई लक्ष्मण हैं। ये सर्वास्त्रविशारद श्रीरामके

दाहिने हाथ हैं और उन्हींके लिए अपना जीवन मानते हैं। वह मूर्ख है जो इस असीम वानरसेनाकी गणना करना चाहे। इनका पराक्रम अचिन्त्य है। आप देख ही रहे हैं कि वानर लङ्कामें बजती भेरियोंकी ध्वनिपर नृत्य कर रहे हैं। गर्जना कर रहे हैं। आपकी नगर-परिखाके भीतर उनके फेंके पर्वत, वृक्ष गिर रहे हैं।'

'तुम लोग मूर्ख हो। वानरोंने तुम्हें बहुत मारा-पीटा लगता है। भयभीत हो गये हो।' दशग्रीवने शुक-सारणकी भर्त्सना की—'हमारा अन्न खाते हो और शत्रुकी प्रशंसा करते हो। मैं अभी तुमको मार देता; किंतु तुम दोनोंने पहिले मेरी बहुत सेवा की है, अतः क्षमा करता हूँ।'

'आप असन्तुष्ट न हों!' दशग्रीव आकर अपनी सभामें बैठ गया, तब शुकने नम्रतापूर्वक लक्ष्मणका दिया पत्र निकाला—'इसे रामके छोटे भाईने आपको देनेके लिए दिया है।'

'प्रहस्त! पढ़ो इसे।' दशग्रीवने तीन घेरेके सूत्रसे आवेष्टित वह पत्र वाम हस्तसे लेकर मन्त्री प्रहस्तको पकड़ा दिया। प्रहस्तने खोला, देखा और दशग्रीवको पुनः देते बोला—'मैं इस अशिष्टतापूर्ण पत्रको पढ़नेका साहस नहीं कर सकता।'

'अज्ञ! व्यर्थ तूने विद्याका भार ढोया। तुझे चार श्री भी लिखना सम्मान ही देना है। अब भी अभिमान त्याग और श्रीजनक-नन्दिनीको देकर श्रीरामके चरण पकड़। अन्यथा तेरा और तेरे वंशका विनाश आ पहुँचा है। तेरे संहारके लिए मुझ लक्ष्मणके त्रोणमें ही पर्याप्त बाण विद्यमान हैं।'

दशग्रीवने पत्र देखा और फाड़कर अग्निमें डालनेको दे दिया। शुकने हाथ जोड़े—'आप सचमुच पत्रकी बात मानकर सीताको दे दें तो आपका मङ्गल होगा।'

'तुम दोनों कृतघ्न हो!' रावण क्रुद्ध गर्जना कर उठा—'अभी लङ्कासे निकल जाओ।'

भयके मारे दोनों ऊपर उछले। आश्चर्य! गगनमें पहुँचते ही दोनोंका राक्षस शरीर मुनि रूपमें बदल गया। वस्तुतः शुक वेदपाठी ब्राह्मण था। भाई सारणके साथ वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करके वनमें तपस्या करने आ गया था। राक्षस कैसे सह लेते कि मतङ्गाश्रमसे दक्षिण

भी कोई आश्रम बना ले। लेकिन तपःतेजके सम्मुख तो राक्षसोका वश चला नहीं करता। शुक-सारण संयमी तपस्वी थे।

मायावी वज्रदंष्ट्र महर्षि अगस्त्यको सारणका रूप धारण करके आमन्त्रित कर आया। फिर अगस्त्यका रूप धारण कर इनके आश्रम आया। दोनों भाइयोंने स्वागत किया, पूजन किया। पूछा— 'आपने असमय कैसे कृपा की ?'

'तुम लोग जानते ही हो कि मुझे वातापि राक्षसने अपने भाई आतापिका मांस धोखेसे खिला दिया था।' मायावी राक्षसने कहा — 'फलतः मांसाहारकी वासना पुनः जाग गयी है। तुम्हारे यहाँ इसीलिए आया हूँ। थोड़ी देरमें स्नान करके आता हूँ।'

दोनों भाई बड़े सङ्कोचमें पड़े। संयोगसे व्याघ्र द्वारा मारा मृग उन्हें अपने आश्रमके बाहर मिल गया। दोनोंने उसे महर्षिका प्रभाव समझा। उस मृग-मांसका रन्धन किया।

धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। किसीके भी आदेशसे, किसी भी निमित्त धर्मका उल्लङ्घन अनर्थकारी होता है। महर्षि अगस्त्यको तो वज्रदंष्ट्र आमन्त्रित कर ही आया था। वे पधारे तो अपने सम्मुख मांस परोसा गया देखकर क्रुद्ध हो उठे। शाप दे दिया— 'तुम दोनों मुझे मांस खिलाना चाहते हो ? राक्षस हो जाओ।'

'भगवन् ! यह अपराध तो आपकी आज्ञासे ही हुआ है।' दोनों चरणोंपर गिर पड़े।

'तुम्हारे साथ छल हुआ।' अगस्त्यने ध्यान करके स्थिति समझ लिया— 'अनजानमें तुमने अपराध किया ; किंतु मेरा शाप मिथ्या नहीं हो सकता। राक्षस होकर लङ्कामें रहो। श्रीरामका दर्शन करके रावण द्वारा निष्कासित होनेपर शापमुक्त हो जाओगे।'

आज दोनों शापमुक्त हुए। सुबेलपर श्रीरामकी प्रदक्षिणा करके, उन्हें प्रणाम करके अपने आश्रम चले गये।

'ये राक्षस नहीं थे ?' शुक-सारणका मुनि-वेश रावणने देखा। 'इनकी सूचनापर विश्वास नहीं किया जा सकता।'

उसने महोदरको आज्ञा देकर दूसरे चर बुलवाये। आज्ञा दी— 'रामकी सेनामें जाकर उसका पूरा पता लगाओ।'

शार्दूल पहिले चर बनकर गया था। वही अग्रणी बना ; किंतु शीघ्र रोता-चिल्लाता लौट आया। रावणने पूछा—'शत्रुने तुझे पकड़ लिया था?'

'आप गुप्तचर भेजनेका व्यर्थ प्रयास मत करें। सब मार्ग वानरोंने घेर लिये हैं।' शार्दूलने कहा—'मैं अन्योंके साथ वानर बनकर गगन-मार्गसे चला ; किंतु विभीषणने शरीरगन्धसे हम सबको पहिचान लिया। हम पकड़ लिये गये। वानर हमें मार ही देते, यदि दयामय श्रीरामने रक्षा न की होती। श्रीरामने गरुड़-व्यूह बनाया है। अब आप युद्ध करें, अथवा शीघ्र सीता उन्हें लौटा दें।'

'तुझे सम्मति देनेको नियुक्त नहीं किया गया है।' दशग्रीवने डाँटा—'शत्रुकी सेनाका वर्णन कर।'

'वानर देवपुत्र हैं। उनकी गणना और उनके बल-पराक्रमका अनुमान कर पाना असम्भव है।' शार्दूल बोला—'इसी प्रकार राम-लक्ष्मणकी शक्ति एवं सद्‌गुणोंका भी अनुमान नहीं किया जा सकता।'

'शत्रुकी स्तुति करता है?' रावणने भर्त्सना की। शार्दूल चुप हो गया। सायंकाल हो चुका था। दशग्रीव उठा, वह आज राजसदनमें नहीं गया। उसने सन्देश भेज दिया मन्दोदरीको—'राक्षसेश्वरी रजत-शिखरपर मल्लयुद्ध देखने पधारें।'

लङ्काके तीसरे शिखरपर—रजत-शिखरपर रावणकी मल्लयुद्ध-भूमि (अखाड़ा) थी। सम्पूर्ण शिखर घेरकर प्रेक्षागार बनाया गया था। चारों ओर बैठनेके स्थान सीढ़ियोंकी भाँति और मध्यमें मल्लयुद्ध भूमि। दशग्रीवके वहाँ पहुँचते ही दुन्दुभियाँ बजने लगीं।

अत्यन्त विशाल मेघवर्ण महाछत्रके नीचे सिंहासनपर दशग्रीव मन्दोदरीके साथ बैठ गया। वाद्योंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी। मल्लयुद्ध भूमिमें राक्षस मल्ल उतरनेको प्रस्तुत हुए। उन्होंने उस रङ्गशालाका पूजन किया। दशग्रीव राक्षसोंको, लङ्काके लोगोंको दिखलाना चाहता था कि वह कितना निश्चिन्त है। सुबेलपर उतरी वानर-सेनाकी अवगणना करके वह सहज मनोरञ्जनमें सम्मिलित रह सकता है।

पूर्णिमाकी उज्वल ज्योत्सनासे धवल रजनी। श्रीराम सुबेलके शिखरपर पल्लव-शय्यापर विश्राम करने पधारे थे। अङ्गद और हनुमानने दोनों चरण अङ्कमें ले लिये थे और उनका बहुत कोमलतासे संवाहन कर

रहे थे। विभीषण और सुग्रीव मस्तकके समीप दोनों ओर बैठे थे। लक्ष्मण तनिक पीछे अभी खड़े थे। जाम्बवन्त, नल-नील प्रभृति वानरोंको व्यूह-बद्ध करनेमें लगे थे। असंख्य वानरोंका पूरा दल फलाहार कर चुका था। अब सब रात्रि-विश्राम करना चाहते थे।

'मित्र ! लगता है कि हम सबको गुहामें रात्रि-विश्राम करना होगा।' श्रीरामने गम्भीर वाद्य-ध्वनि सुनकर सिर उठाया और दक्षिण देखा—'उधर दक्षिण घटा उठती दीखती है। किञ्चित् विद्युल्लेखा भी झलकने लगी है।'

'देव ! वह उठते मेघ नहीं है।' विभीषणने विनम्र स्वरमें निवेदन किया—'वहाँ रजत-शिखरपर दशग्रीवकी मल्लशाला है। लगता है, वह वहाँ पहुँच गया है। यह मेघ-गर्जनके समान वाद्य-ध्वनि गूँज रही है। वह उठती घटाके वर्णका उसका महाछत्र है और विद्युत्के समान महारानी मयसुताके कर्णकुण्डल झलमला रहे हैं।

'दशग्रीवका यह दर्प-प्रदर्शन है।' लक्ष्मणने तनिक आगे आकर श्रीरामके करोंमें उनका धनुष दे दिया—'आर्यके करोंकी लक्ष्यवेध कुशलता भी नैकषेयोंको देखनी चाहिये।'

'अच्छा !' श्रीरामने अनुजके मुखकी ओर देखा। पल्लवतल्पपर तनिक बैठ गये। धनुष ज्यासज्ज हो गया और त्रोणमें-से एक बाण निकाल कर चढ़ाकर उस रजत-शिखरकी ओर छोड़ दिया।

श्रीरामने धनुषको प्रत्यञ्चा उतारनेके लिए सहज भावसे भाईके करोंमें जब दिया, रजत-शिखरसे उठती वाद्य-ध्वनि बन्द हो चुकी थी। वह घटाकार महाछत्र और बिजलीकी चमक अदृश्य हो गयी थी। सबने देखा कि वह बाण लौटकर स्वयं त्रोणमें प्रवेश कर गया।

उस रजत-शिखरकी मल्लशालामें बैठे लङ्काके मन्त्री शूर सेनापति आदि किसीकी समझमें नहीं आया कि हुआ क्या। दशग्रीवका महाछत्र, दसों मुकुट कटकर भूमिमें गिरे। साथ ही महारानी मन्दोदरीके दोनों ज्योतिर्मय मणि-कुण्डल कर्णपल्लियोंसे गिरे।

'क्या हुआ ? अशुभ शकुन ?' मन्दोदरी पहिले चौंकी। उसके कर कर्णपल्लियोंपर गये। एक मन्त्रीने ही कुण्डल उठाकर महारानीको सादर दिये ; किंतु वे अब पहिननेके अयोग्य थे। उनका आधार छिन्न हो

चुका था। छत्र-दण्ड कट गया था और महाछत्र भूमिमें पड़ा था। दशग्रीवने अपने मुकुट स्वयं झुककर उठाये।

'आशङ्का व्यर्थ है !' सबको भयभीत देखकर रावणने अट्टहास किया— 'मस्तकोंका गिरना जिसको वरदान दिलानेवाला बनता है, मुकुटका गिरना भी तो उसका शुभ-सूचक होगा !'

बाण किसीने देखा नहीं था। भूकम्प, आँधी कुछ कारण था नहीं। सबको - महारानी मन्दोदरीको भी दशग्रीवके दर्प-भरे वचनसे कोई आश्वासन नहीं मिला। वाद्य स्वतः बन्द हो गये थे।

'मैं इस असुरक्षित स्थानपर और नहीं बैठ सकती।' महारानी उठीं तो दूसरे सबको उनके सम्मानमें उठकर खड़ा होना पड़ा।

'आज इस क्रीड़ाको विरमित रहने दो !' विवश होकर दशग्रीव भी उठा। उसे अपनी महारानीका साथ देना पड़ा। वे भयभीत थीं। अन्तःपुर तक उनके साथ जाना इस समय आवश्यक हो गया था।

अङ्गदका दौत्य

'अभी वहाँ उस शिखरपर लोग आनन्द-उल्लास मगन थे और अब वहाँ श्मशान जैसी शान्ति है।' श्रीरामको दशग्रीवका दर्प-भङ्ग करके सुख नहीं मिला। वे उठ बैठे, खड़े हो गये। कुछ देर लङ्काकी ओर देखते रहे। इसके पश्चात् बैठे तो उनका स्वर अत्यन्त खिन्न था। अतिशय कोमल, सहज उदार स्वभाव वे बोले— 'कल या कुछ दिनोंके अनन्तर इस वैभव-शालिनी पुरीकी यही दशा होगी। यहाँ कुलवधुएं विधवा बनकर, केश खोले रुदन करेंगी। इन स्वर्गोपम सदनोंमें श्मशान जैसी नीरवता रहेगी। दशग्रीव-का दर्प, उसका अधर्म रामको यह क्रूर कर्म करनेको विवश कर रहा है।'

'सुग्रीव ! विभीषण ! जाम्बवन्त ! इस पुरीको बचाया नहीं जा सकता ?' श्रीरामका हृदय व्याकुल हो उठा था— 'सीताको तो आश्वासन है कि मैं मिलूँगा ; किंतु जब वीर राक्षस मार दिये जायँगे, उनकी विधवाओंको वह आश्वासन भी नहीं होगा।'

'देव ! हमारे यहाँ नारीका पुनर्विवाह अधर्म नहीं माना जाता।' विभीषणने कुछ दबे स्वरमें ही कहा—'किंतु कुछ अवश्य ऐसी सतियाँ निकलेंगी जो सहमरण स्वीकार करेंगी।'

'हमको एक प्रयत्न और करना चाहिये। दशग्रीव किसी भी प्रकार यदि समझ सके।' श्रीरामका स्वभाव ही शत्रुका भी सङ्कट सह पाना नहीं है। वे दूसरेका दुःख देखकर व्याकुल हो जाते हैं— 'यदि वह अधर्मका पथ छोड़ दे, उसे क्षमा कर देना सहज है।'

'बालि-तनयको दूत बनाकर उसके पास भेज देखिये।' जाम्बवन्तने प्रस्ताव किया—'ये बुद्धिमान हैं। बालिसे मैत्री हो गयी थी राक्षसेन्द्रकी। अतः ये उसके स्नेहभाजन भी हो सकते हैं। इनकी बात सुनेगा वह।'

'अङ्गद ! तुम्हें कुछ समझाना नहीं है।' श्रीरामने अविलम्ब जाम्बवन्तका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया — 'तुम स्वयं नीतिज्ञ हो। साम,

दान, भेद, दण्ड सबको अपना सकते हो। मेरा काम केवल सीताको पाना नहीं है। श्रुति, साधु, सुरोंकी सुरक्षा सङ्कटापन्न न बनी रहे, यह भी ध्यान रखना और उसका हित हो, ऐसा ही प्रयत्न करना।'

सुवेल-शिखरपर रात्रि-विश्रामसे पूर्व ही यह निश्चय हो गया। अङ्गदको भेजनेकी यह योजना लक्ष्मणको, सुग्रीवको अच्छी नहीं लगी। इससे सीताके समुद्धारमें एक दिनकी और देर हो रही थी ; किंतु किसीने विरोध नहीं किया। श्रीरामके आदेशका ही सबको पालन करना था। अवश्य जब प्रातः प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करके अङ्गद चले, सुग्रीवने उन्हें समझा दिया कि उनपर कोई सङ्कट आ ही जाय तो वे किसी भी प्रकार संकेत कर दें। स्वयं सुग्रीव दशग्रीवकी राजसभापर दृष्टि लगाये प्रतीक्षा करेंगे संकेतकी।

'इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।' अङ्गदने हँसकर कहा—'पवनकुमार भी लङ्का अकेले ही गये थे।'

अङ्गदने श्रीरामकी, लक्ष्मणकी, सुग्रीवकी पद-वन्दना की। प्रदक्षिणा करके इन सबकी प्रस्थान किया। वे परिखा कूद जा सकते थे ; किंतु दूतको द्वारसे ही प्रवेश करना चाहिये। रामदूत शब्द सुनते ही द्वारपालोंने द्वार खोल दिये। अङ्गदने देखा कि राक्षस प्रमत्त नहीं हैं। पूरी लङ्का आक्रमणका सामना करनेको सन्नद्ध है।

द्वारसे प्रवेश करते ही एक दुर्घटना हुई। रावणका एक पुत्र अक्षमाली अपने साथी— सखाओंके साथ क्रीड़ा करता द्वारके समीप आ गया था। उसने अङ्गदको देखा तो क्रोधसे चिल्लाया—'यह क्रूर कपि फिर आ गया ?'

अङ्गदको पाद-प्रहार करके वह अपमानित करना चाहता था ; किंतु अङ्गदने उसका वह उठा पैर पकड़ा और घुमाकर उसे वहीं भूमिपर पटक दिया। उसके सिरकी अस्थि टुकड़े-टुकड़े हो गयी। बेचारेके शवमें तड़पन भी नहीं हुई।

'जिसने नगर जलाया था, वह उत्पाती वानर पुनः आ गया।' राक्षसोंमें भगदड़ पड़ गयी। भाग-भागकर सब भवनोंमें छिपने लगे। भवन-द्वार भड़ाभड़ बन्द हो गये। राक्षस-नारियाँ ही नहीं, शूर राक्षस-सैनिक तक गृह-सामग्री भवनके भीतरी भूगर्भमें पहुँचाने लगे—'वह फिर नगर भस्म करेगा!'

अङ्गदको राजपथ सूने मिले। केवल चतुरष्क रक्षक—पथ-प्रहरी भाग नहीं सकते थे। वे पहिलेसे हाथ जोड़े काँपते खड़े हो जाते थे और समीप पहुँचनेसे पूर्व ही राजसभाकी ओरका पथ-प्रदर्शन करने लगते थे।

'मैं श्रीरामका दूत दशग्रीवको देखना चाहता हूँ।' राजसभाके द्वारपालसे अङ्गदने कहा तो वह सूचना देने दौड़ गया।

'आने दो!' दशग्रीवने अनुमति दे दी। आज वह सबेरे ही राज-सभामें आ बैठा था। उसके सब मन्त्री, सभी सेनानायक उपस्थित थे। सम्भवतः युद्धकी मन्त्रणा ही प्रारम्भ होने जा रही थी।

अङ्गदने प्रवेश किया तो आतङ्कके कारण दशग्रीवके सब सभासद उठ खड़े हुए। क्रोधसे जलकर रावणने हुंकार की। सब भयभीत होकर बैठ गये। दूतको आसन देनेकी आवश्यकता नहीं थी। दशग्रीव चाहता था कि दूत खड़े-खड़े अपनी बात कहे। अङ्गदने देखा कि उनके उपयुक्त कोई आसन नहीं है तो उन्होंने अपनी पूँछ बढ़ायी और उसे इतना मोड़ते गये कि जब वे उस लांगूलसे बने आसनपर बैठे, रावणके सिंहासनसे कुछ ऊँचे ही थे और रावणके ठीक सम्मुख तो थे ही।

'वानर! तू कौन है?' अङ्गदके इस प्रकार बैठनेसे कुछ चिढ़कर स्वयं रावणने ही पूछा। वह हनुमानसे पूछताछको प्रहस्तको नियुक्त करके देख चुका था कि ऐसा करनेसे उसके मन्त्रीकी अवज्ञा होती है।

'राक्षस! मैं श्रीरामका दूत हूँ।' अङ्गदने वैसे ही स्वरमें उत्तर दिया—'मेरे पितासे तेरी मित्रता थी, अतः तेरे भलेकी बात करने आ गया हूँ।'

'तुम्हारे पिताका और तुम्हारा नाम?' अब रावणने जानबूझकर अनजान बनते पूछा। अवश्य ही उसका स्वर कुछ परिवर्तित हो गया था—'त्रिभुवनजयी दशग्रीवसे अपने पिताकी मित्रता किस सम्बन्धसे मानते हो?'

'मैं वानरेन्द्र बालिका पुत्र अङ्गद हूँ।' अङ्गदको रावणका अनजान बनना अच्छा नहीं लगा। उन्होंने भी व्यङ्ग किया—'कभी बालिसे तुम्हारी भेंट हुई है? स्मरण है तुम्हें?'

'अच्छा किष्किन्धाके वानर बालिके पुत्र अङ्गद तुम्ही हो। अपने कुलमें कुलांगार उत्पन्न हुए तुम।' रावणने भी व्यंगपूर्वक कहा—'अब बतलाओ, बालि कहाँ है? कुशलपूर्वक तो है?'

'बहुत विलम्ब नहीं है तुम्हारे बालिके समीप पहुँचनेमें। श्रीरामने जिस मार्गसे उसे जहाँ भेजा है, उसी मार्गसे तुम्हें भी शीघ्र वहीं भेज देंगे। स्वयं मित्रसे मिलकर कुशल पूछ लेना। वह तुम्हें समझा देगा कि श्रीराम-का विरोध करनेसे कुशल कैसी होती है।' अङ्गदने कठोर स्वरमें कहा— 'मूर्खता मत करो! श्रीरामने अत्यन्त दया करके, तुम्हारे कल्याणके लिए मुझे भेजा है। उन सर्वसमर्थसे विरोध करके किसीकी कुशल सम्भव नहीं। अभी कुछ नहीं बिगड़ा। अधर्म-पथ त्याग दो और सीताको देकर उन शरणागतवत्सलकी शरण लो! तुम्हारा राज्य, सुख, ऐश्वर्य अखण्ड बना रहेगा।'

'अङ्गद! तुम वानरेन्द्र बालिके पुत्र हो! किष्किन्धाका राज्य तुम्हारा है।' अङ्गदकी ओर सीधे देखकर दशग्रीवने कहा— 'तुम्हें अपने मुखसे निर्वासित तपस्वीका दूत कहनेमें लज्जा आनी चाहिये। वानरोंमें तुम्हारा सम्मान है और न भी हो तो तुम मेरे मित्रके पुत्र हो। तुम्हें सहायकोंका अभाव नहीं है।'

बात आरम्भ ही इस ढङ्गसे हुई कि उसमें प्रारम्भसे उग्रता आ गयी थी। अब दशग्रीवकी कुटिलता—उसको भेद नीतिका आश्रय लेते देखकर अङ्गदको क्रोध आ गया। उन्होंने समझ लिया कि इसे समझाया नहीं जा सकता।

'दुर्मते! तू यह किससे कह रहा है? उससे जो तुझपर दया करके तुझे सत्पथ दिखलाने आया है?' अङ्गदका स्वर कठोर हो गया— 'जिनको श्रीरामके श्रीचरणोंका सान्निध्य नहीं मिला, उनकी ही बुद्धिको स्वार्थका प्रलोभन विकृत करनेमें समर्थ है। ये दुष्प्रयत्न त्याग और सीधा मार्ग अपना। अन्यथा मृत्यु अब तेरे मस्तकपर मँडराने लगी है।'

'अङ्गद! तुम किसे बार-बार डराना चाहते हो? त्रिभुवनजयी दशग्रीव वन्दरघुड़कीमें आवेगा?' रावणने खिल्ली उड़ायी— 'तुम्हारे दलमें है कौन जो मेरे सम्मुख समरमें खड़ा होगा? तुम्हारा स्वामी पत्नी-वियोगमें अधमरा हो चुका है और उसका भाई अपने अग्रजके दुःखसे दुर्बल हो गया है। तुम और सुग्रीव लड़ोगे? तुम दोनों तो स्वतः अन्तमें परस्पर सन्देह करके लड़ मरोगे। जाम्बवन्त वृद्ध है। नल-नील शिल्पी हैं। वानरोंमें कभी धैर्य रहा है कि अभी आवेगा? एक बलवान् वानर है तुम्हारे

दलमें, जो पहिले यहाँ आया था। जिसने लङ्का जलायी ; किंतु वह किस-किससे लड़ेगा ? उसे अकेले इन्द्रजितने बाँध लिया था।'

'सचमुच हमारे दलमें कोई ऐसा नहीं जो तुमसे समर करके शोभित हो, सुयश पावे।' अङ्गद अट्टहास करके हँसे— 'पाप-रत-प्राणी अपने अधर्मसे ही मृतकप्राय होता है। तुम और तुम्हारे सब राक्षस पापहत हो। लेकिन रावण ! क्षत्रियका क्रोध बहुत विकट होता है। अपना कुल बचाना है तो अब भी वैदेहीको देकर क्षमा माँग लो !'

'मैं क्षमा माँगूंगा उस तपस्वीसे जिसे अयोग्य मानकर उसके पिताने निर्वासित कर दिया ?' रावणने भी अट्टहास किया।

'अभागे ! तू उन दूर्वादल श्याम लोकाभिराम श्रीरामकी निन्दा करता है !' आराध्यपर आक्षेप सुनते ही अङ्गद अत्यन्त उग्र हो उठे। दाँत कटकटाकर उन्होंने दोनों भुजाएँ पूरी उठायीं और पृथ्वीपर दोनों हाथ पटक दिये। जैसे भूकम्प आ गया हो, समूची लङ्का हिल उठी इस प्रकार जैसे जलमें नन्हीं नौकाको सहसा बड़ी हिलोरका थपेड़ा लग जाय। दशग्रीवकी सभामें सबके-सब अपने आसनोंसे मुखके बल गिरे। स्वयं रावण गिरते-गिरते बचा ; किंतु उसके सब मुकुट भूमिपर गिर पड़े।

अङ्गदने झपटकर चार मुकुट उठा लिये, यह देखकर रावणने भी शीघ्रतामें शेष मुकुट अपने बीसो हाथोंसे समेटे और सिरपर रखे। उसके चार मस्तक मुकुटहीन रह गये। अङ्गदने चारों मुकुट सुबेल-शिखरकी ओर पूरे वेगसे झटक दिये।

'दिनमें ही उल्कापात !' रावणके ज्योतिर्मय रत्न-मुकुट सूर्यकी रश्मियोंसे चमकते वेगसे आते दीखे तो वानरोंमें भय व्याप्त हो गया— 'दशग्रीवने कोई चार दिव्यास्त्र तो नहीं चलाये !'

पवन कुमारने कूदकर चारोको पकड़ लिया और लाकर श्रीरामके चरणोंके समीप रख दिया। वानरोंका समूह उन अत्यन्त प्रकाश पुञ्ज मुकुटोंको देखने कुतूहलवश घिर आया। श्रीरामके संकेतपर उन्हें हाथमें उठाकर सुग्रीवने सबको दिखलाया— 'ये दशग्रीवके मुकुट हैं। लगता है, अपने युवराजने छीन कर फेंके हैं।'

'युवराज अङ्गदकी जय !' वानर जयघोष करते कूदने लगे।

'पकड़ लो इस वानरको ! मार दो इसे !' रावण सम्हलते ही चिल्लाया— 'राक्षस दौड़ जायँ और जहाँ भी वानर मिलें, सबको पकड़-पकड़कर खा लें ! पृथ्वीको वानरहीन बना दो !'

'तुझे बकवाद करते लज्जा नहीं आती ?' अङ्गदने डाँटा। सचमुच वहाँसे अधिकांश सेनापति, मन्त्री, सभासद जब गिरे थे, उठकर सीधे द्वारकी ओर भागे थे। अब रावणके भयसे चुपचाप आकर अपने आसनों-पर बैठ रहे थे ; किंतु अङ्गदके समीप जानेका साहस उनमें-से किसीमें नहीं था।

'ऐसा क्रोध आता है कि तेरे इन बकवादी दसों सिरोंको तोड़ दू और तेरी लङ्का उठाकर समुद्रमें फेंक दूँ ; किंतु क्या करूँ, स्वामीने आज्ञा नहीं दी है।' अङ्गदने वेगसे अपना दक्षिण पाद भूमिपर पटका— 'तू बड़ी डींगें बैठा-बैठा हांकता है ? तू और तेरे ये दिखावटी शूरोंमें कोई मेरे इस पैरको भूमि छुड़ा सके तो श्रीराम लौट जायँगे। सीताको मैं हार चुका—यह मान लिया जायगा।'

'पैर पकड़कर इस बन्दरको समुद्रमें फेंक दो ! 'दशग्रीवने आवेशमें आज्ञा दी।

'तू स्वय क्यों नहीं उठता। तू भी अपनी शक्ति देख ले !' राक्षस एक-एक करके उठे। पूरी शक्ति लगानेपर भी अङ्गदका पैर नहीं हिला तो स्वेद लथपथ सिर लटकाये, लज्जित अपने आसनोंपर जा बैठे। कोई शेष नहीं रहा तो अंगदने रावणको ललकारा— 'तू बड़ी डींग मारता है कैलास उठानेकी। उसके नीचे दबे-कुचले रहनेकी चर्चा भी नहीं करता। आज श्रीराम दूतका चरण ही उठा देख।'

'धन्य राक्षसेन्द्र !' रावणने उठकर जैसे ही अङ्गदके पैरको पकड़ा, अङ्गदने हँसकर व्यङ्ग किया— 'श्रीराम दूतके पैर पकड़ते तुम्हें लज्जा नहीं आती और उन सर्वेश्वरके चरण पकड़ते छोटे हुए जाते हो ? तुम्हारा उद्धार मेरे पैर पकड़नेसे होनेवाला नहीं है। यह सद्वुद्धि आयी है तो मेरे स्वामीके चरण चलकर पकड़ो।'

झल्लाकर रावणने अंगदका पैर छोड़ दिया। उसे लज्जा आयी। इस वानरने उसे प्रलोभित करके अपना पैर पकड़नेपर विवश कर दिया।

'असीम पराक्रम श्रीरामकी जय।'

'असह्य तेजा लक्ष्मणलालकी जय!'

'विपुल विक्रम वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय!'

बालि-तनयने शत्रुकी उस सभामें स्थिरकण्ठ जयनाद किया। वहाँसे निकलकर सीधे गगनमें उठे। किसका साहस था जो उन्हें रोके या उनका पीछा करे।

'अंगद! दुर्दान्त दशग्रीवके चार मुकुट तुम कैसे पा सके?' सुबेल-शिखरपर श्रीरामको प्रणिपात करके, लङ्काका समाचार जब अंगद दे चुके, शत्रुकी शक्ति और दुर्गका वर्णन कर चुके, तब श्रीरामने पूछा।

'स्वामी! वे मुकुट नहीं हैं। वे तो भूपतिमें रहनेवाले चार सहज सद्गुण हैं—१. ऐश्वर्य, २. औदार्य, ३. शौर्य, ४. न्याय।' अंगदने नम्रता-पूर्वक कहा—'मरणासन्न रावणको त्यागकर वे सकल सद्गुणैकधाम इन श्रीचरणोंमें आश्रय लेने आये हैं।'

युद्धारम्भ

अङ्गदसे लङ्का दुर्गके समाचार पाकर श्रीराम उठ खड़े हुए—'आज इस अभिजित मुहूर्तमें ही लङ्कापर चढ़ायी करनी है। चारों ओरसे नगरको घेरकर आक्रमण करना है।'

'अमित विक्रम श्रीरामकी जय !' लङ्काकी ओर श्रीराम चार पद चले। वानरोंने जयनाद किया। लङ्कामें बजती भेरियोंके तालपर ही वानर उछलने, नृत्य करने लगे।'

'लक्ष्मण ! लङ्का इतनी बड़ी है। इसमें अनेक विमान हैं। अतः हमें शास्त्रसम्मत व्यूह बनाना है।' श्रीरामने गरुड़ व्यूहका निर्देश किया—'अङ्गद और नील व्यूह-वक्ष रहेंगे। दक्षिण पक्ष ऋषभ और वाम पक्ष गन्धमादन। मैं मस्तकके स्थानपर। जाम्बवान और सुषेण कुक्षि, सुग्रीव जघन रक्षक रहेंगे। सम्पूर्ण वानर सेना व्यूहका शरीर है।'

उधर अङ्गदके लङ्कासे प्रस्थान करते ही रावण राजसभासे उठकर अपने अन्तःपुरमें पहुँचा। मन्दोदरीने फिर पतिके चरण पकड़े—'मेरे स्वामी ! अब भी आप सीताको देकर रामसे सन्धि कर लो ! उनके इस दूसरे दूतका भी पराक्रम आप देख चुके। यह भी मेरा एक पुत्र मार गया। आपके सब शूर जिसका पद नहीं हिला सके, उसके स्वामीके साथ संग्राम करके विजयकी आशा है ? ये दोनों दूत हनुमान-अंगद लङ्का उखाड़कर स्थानान्तरित कर सकते हैं। आप हठ त्याग दें।'

'मैंने युक्ति सोच ली है।' दशग्रीवने हँसकर पत्नीसे कहा और मन्त्रणा कक्षमें पहुँच गया। अपने महामायावी मन्त्री विद्युज्जिह्वको बुलाकर उसने कुछ समझाया और स्वयं सीधे अशोकोद्यान पहुँचा, जहाँ श्रीवैदेही अवनत मुखी बैठी थीं।

'जनककुमारी ! हमने तुम्हें समझाया था ; किंतु तुमने मेरी बात स्वीकार नहीं की। जिनका तुम्हें बहुत भरोसा था, उन रामको मैंने युद्धमें मार दिया।' दशग्रीवने समीप जाकर कहा ; किंतु श्रीमैथिलीने मस्तक

नहीं उठाया। वह कहता गया— 'वे वानरोंको लेकर समुद्र तक आ गये थे। अर्धरात्रिमें श्रान्त सोते रामको ससैन्य मार डाला गया। प्रहस्तने रामकी भुजा छिन्न कर दी। लक्ष्मण भयके कारण भाग गये। सुग्रीवकी ग्रीवा टूट गयी।'

उसी समय विद्युज्जिह्व रामका माया निर्मित मस्तक और धनुष लिये आया। उसने रावणको प्रणाम किया। दशग्रीवके संकेतके अनुसार वह सिर और धनुष सीताके सम्मुख रखकर, रावणको पुनः प्रणाम करके चला गया।

'ज्योतिषियोंने—ऋषियोंने भी कहा था कि सीताको वैधव्य योग नहीं है। वे सब भविष्यवाणियाँ असत्य हो गयीं!' श्रीजानकीके अश्रु सहसा सूख गये— 'मैं तो इस मस्तकको अङ्कमें लेकर अभी देहत्याग कर दूंगी; किंतु इस समाचारके पहुँचते ही अयोध्या नष्ट हो जायगी।'

'आप अविलम्ब राजसभामें पधारें! अत्यन्त आवश्यक कार्य है।' प्रहस्त अस्त-व्यस्त प्रायः दौड़ता आया था। उसके मुखकी ओर देखकर दशग्रीव लौट पड़ा।

श्रीजानकीने अपने स्वामीका मस्तक अङ्कमें उठानेके लिए हाथ बढ़ाया; किंतु वह मायामय मस्तक और धनुष तो रावणके पीठ फेरते ही अदृश्य हो गये थे।

'राजनन्दिनी! आप इतनी चकित, आर्त क्यों हैं? हम राक्षसों-की मायासे सावधान रहें।' विभीषणकी पत्नी सरमा उद्यानमें आ गयी थी। दूरसे, छिपकर दशग्रीवकी दुष्टता देख ली थी उसने। रावणके जानेपर समीप आकर उसने पद-वन्दना करके कहा— 'मैं अभी दर्शन करके आयी हूँ रजत शिखरसे। मेरे स्वामीके साथ वे आपके सर्वेश्वर आराध्य सकुशल हैं। समुद्रके इस पार सुवेल-शिखरपर उनका सैन्य शिविर है। आपने ध्यान दिया कि राक्षसेश्वर यहाँसे उतावला लौटा है।'

'आप भी राक्षसोंकी असत्य बातोंमें आ जाती हैं? श्रीरामपर सोते समय आक्रमण सम्भव है? आपने ही तो मुझसे कहा है कि लक्ष्मण कभी निद्रा नहीं लेते।' सरमाने तनिक स्मितपूर्वक कहा— 'यह आपने जो देखा था, वह मायासे निर्मित था। भयका कारण तो लंकेश्वरके लिए उपस्थित है। वे अपने सेनापतियोंके बुलानेसे भागे गये हैं यहाँसे।'

'अच्छा, यदि श्रीराम, सुग्रीव, हनुमान मार ही दिये गये हैं तो लङ्कामें यह किससे युद्धका उद्योग हो रहा है?' सरमाने उसी समय पुरीमें उठते कोलाहलकी ओर ध्यान दिलाया—'यह भेरी घोष, गज घण्टोंकी ध्वनि, रथोंका घर्घरनाद और सैनिकोंका कोलाहल इस पुरीमें इतना क्यों है ? आप आज्ञा दो तो मैं अदृश्य रहकर आपके आराध्यका दर्शन करके आपको लौटकर समाचार दे सकती हूँ।'

'सखि ! यदि तुममें शक्ति है, अपनेपर विश्वास है तो मुझे यह देखकर समाचार दो कि रावण क्या कर रहा है।' श्रीजानकीने कहा—'यह दुष्ट मुझे धमकाता है, अनेक प्रकारकी यातनाएँ देता है।'

श्रीजानकीको सन्देह था कि सरमाने उन्हें आश्वस्त करनेको झूठी बातें कही होंगी। यदि श्रीराम ससैन्य समुद्र पार हुए तो इसे जाकर लौटनेमें बहुत विलम्ब होगा। दशग्रीव उतावला गया था। वह अवश्य किसी अत्यन्त आवश्यक कार्यसे गया होगा। उसका समाचार मिलनेपर अनुमान करना सरल हो सकता है।

सरमा प्रणाम करके चली गयी। वह बहुत थोड़ी देरमें लौटी तो श्रीजानकीने उठकर उसे हृदयसे लगाकर समीप बैठा लिया।

'माता कैकसी अन्तःपुरमें बैठी थीं। दशग्रीवको रोककर समझा रही थीं। वे कह रह थीं कि सीता श्रीरामको लौटा दे।' सरमाने समाचार दिया—'मन्त्री अविद्धने भी उनका समर्थन किया; किंतु दशग्रीव बिना उत्तर दिये राजसभा चला गया। वह आपको छोड़ना नहीं चाहता। अब तो श्रीराम उसका वध करके ही आपको छुड़ावेंगे।'

'रामने समुद्र पार कर लिया है। उनके साथ असंख्य वानरी सेना है। राम पराक्रमी हैं।' राजसभामें मन्त्रियोंको बुलाकर प्रथम बार दशग्रीवने स्वीकार करके कहा—'तुम सब यह जानते हो, देखते हो; किंतु चुप क्यों हो ?'

'राजन् ! जो राजनीति और विनयका त्याग नहीं करता, वह स्थिर ऐश्वर्य पाता है।' माल्यवान्ने कहा—'राजनीति है कि समय-पर शत्रुसे सन्धि करना उचित है। अतः आप सीताको लौटाकर रामसे सन्धि कर लें तो संग्रामका कारण नहीं रह जायगा। स्पष्ट है कि सब देवता, गन्धर्व आपकी पराजय चाहते हैं। देवता और दैत्य ये दो पक्ष हैं।

सतयुगमें धर्मके द्वारा अधर्म ग्रस्त रहता है। धर्मका पक्ष देवपक्ष है। कलियुगमें अधर्मके द्वारा धर्म ग्रस्त होता है। दैत्य पक्ष प्रबल होता है। अभी त्रेता ही है। तुमने धर्मका विनाश करके अधर्मका पक्ष लिया है, पर यह अधर्मके अभ्युदयका काल नहीं है। अतः शत्रु बलवान् है। तुमने ऋषियोंका उत्पीडन किया है। राम ऋषियोंके तप, यज्ञके प्रभावसे बलवान हैं। तुमको मनुष्य, वानर, ऋक्ष, गोलांगूलोंसे अभयका वरदान प्राप्त नहीं है। मुझे इस युद्धमें राक्षस कुलका विनाश दीखता है। मेघोंसे बार-बार रक्तवर्षा होती है। ध्वजाएँ अकारण टूटती हैं। वाहन रोते हैं। बहुत उत्पात इस पुरीमें हो रहे हैं। जो सृष्टिमें सर्वोत्तम है, उससे तुम्हारा काम पड़ा है। अतः बहुत सोचकर कुछ करो।'

'माता यह माल्यवान मेरे हित चिन्तक कहे जाते हैं; किंतु शत्रुकी प्रशंसा कर रहे हैं।' क्रोध भरे स्वरमें रावण बोला—'पितासे निर्वासित, दीन मनुष्य शत्रु है और शाखामृग उसके सहायक हैं। उसे ये सृष्टिका सर्वोत्तम मानते हैं। मुझ सुरासुरजयीको छोटा समझते हैं।'

'तुम वृद्ध हो, सम्मान्य हो, अतः चाहे जो बोलते हो? तुमको शत्रुने उत्कोच दिया है?' दशग्रीवने सीधे माल्यवन्तपर आक्षेप किया—'मैं अज्ञ नहीं हूँ। सीताको मैं सोच समझकर लाया हूँ। अब भयसे उसे लौटा दूं? दशग्रीवका सहज दोष है कि यह टूट जायगा, झुक नहीं सकता। ये राक्षस अब तुम्हारे उपदेशसे धर्मात्मा बन जायँगे? इनका स्वभाव परिवर्तित कर दोगे या इनके ऐसे ही धर्मघातक रहते केवल सीताको देकर रामको लौटा सकोगे?'

युगदर्शी अत्यन्त दीर्घकालानुभवी दैत्य माल्यवन्तने मस्तक झुका दिया। उसे भी अपने इस दुर्दान्त दौहित्रकी दीर्घदर्शिताके सम्मुख मौन होना पड़ा। वह भी समझ गया कि अब युद्ध ही एकमात्र उपाय है। परिणामका विचार व्यर्थ है। वह चुपचाप मन्त्रणा सभासे उठ गया।

'मातुल प्रहस्त पूर्व द्वारकी सुरक्षा सम्हालेंगे। दशग्रीवने अविलम्ब व्यूह-निर्देश देना प्रारम्भ किया—'महापार्श्वको दक्षिण द्वार देखना चाहिये। मेघनाद पश्चिम द्वारपर रहेगा। मैं स्वयं उत्तर द्वारपर जाता हूँ। राम उत्तर द्वारपर ही हैं। विरूपाक्ष नगरमें रहकर नगरकी सुरक्षाका ध्यान रखे। कभी भी कोई वानर यहाँ कूद आ सकता है।'

× × ×

'अनल, शरभ, सम्पाती और प्रघस—ये चारों मेरे मन्त्री अदृश्य रहकर लङ्का गये थे। वहाँ अनेक अपने विश्वास-भाजन हैं जो हमें सूचना देते रहेंगे।' विभीषणने श्रीरामसे कहा—'मेरे इन मन्त्रियोंने शत्रु-व्यूह देखा है। रावणकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये।'

'पूर्व द्वारपर नील आक्रमण करेंगे।' श्रीरामने विभीषणसे रावणके व्यूहका वर्णन सुनकर अपने यूथपोंको आदेश दिया—'पश्चिम द्वारपर हनुमान, दक्षिण द्वारपर अंगद और उत्तर द्वारपर लक्ष्मणके साथ मैं प्रहार करता हूँ कोई वानर या ऋक्ष युद्धकालमें अब मनुष्यका रूप न धारण करे। मनुष्य रूपमें मेरे और लक्ष्मणके अतिरिक्त कोई मिले तो उसे राक्षस समझा जाय। परस्पर पहिचानके सूचक वाक्य प्रतिदिन परिवर्तित हुआ करेंगे।'

इस व्यूह-सज्जामें सायङ्काल हो गया। सूर्यास्त हुआ, चन्द्रदेव प्रकट हुए। श्रीराम हनुमानके स्कन्धारूढ़ हुए। अङ्गदने लक्ष्मणको उठाया। सुवेलके उच्चतम शिखरपर आज श्रीराम प्रधान यूथपोंके साथ चढ़ गये। समुद्र-स्तरसे दो योजन ऊँचाईपर चढ़कर लङ्काको, लङ्कामें राक्षसोंके उद्योगको देखने लगे।

'कोई शब्द न करे।' श्रीरामने आदेश दिया—'वानर यूथप शिखरके पृथक-पृथक स्थानोंसे पूरी लङ्का देख लें। कलके समरमें नगरपर आक्रमणकी अपनी योजना निश्चित कर लें।

दशग्रीव भी यही कर रहा था। वह भी अपने थोड़ेसे मन्त्रियोंको साथ लिये रजत-शिखरकी मल्लशालासे नगरका निरीक्षण कर रहा था। नगरकी सुरक्षाके सम्बन्धमें मन्त्रियोंको आदेश दे रहा था। श्रीरामके पार्श्वमें खड़े सुग्रीवकी दृष्टि दशग्रीवपर पड़ी तो उन्होंने छलाँग लगा दी।

श्रीराम, विभीषण, हनुमान, अङ्गदादि सब चकित रह गये। उधर रावण और उसके मन्त्री भी हक्के-बक्के रह गये—'मैं श्रीरामका सखा—श्रीरामका दास सुग्रीव!' इस गर्जनाके साथ सुग्रीव सीधे रावणके सिरपर ही पहुँचे थे। उन्होंने लात मारकर उसके मुकुट फेंक दिये। कन्धेसे सामने कूदे और उस दुर्दम राक्षसको पृथ्वीपर पटक दिया। जबतक मन्त्री सम्हलें, रावण उठकर पकड़नेका प्रयत्न करे, तबतक तो सुग्रीवने फिर उसके मस्तक-पर पाद-प्रहार किया और सुवेलकी ओर कूद गये—

'अनन्त विक्रम श्रीरामकी जय!'

सब राक्षस चकित रह गये। दशग्रीव तक स्तब्ध रह गया, उसे इस प्रकार कोई रौंदकर, अपमानित करके चला जा सकता है? सुबेलपर सुग्रीवके पहुँचते ही श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया। सुग्रीव श्रान्त थे, स्वेद सने थे। श्रीरामने स्नेहपूर्वक झिड़की दी—'मित्र! तुमने अति साहस करके मुझे सन्देहमें डाल दिया था। सभी आकुल हो उठे थे। तुमपर विपत्ति आवे तो मैं सीताको लेकर क्या करूँगा। फिर ऐसा साहस मत करना। मैं रावणका वध करूँगा, विभीषणको लङ्काका राज्य दूँगा; किंतु तुम्हारे प्राणोंपर सङ्कट आया तो भरतको राज्य देकर स्वयं तुम्हारे साथ देह-त्याग करूँगा!'

'मेरे स्वामी!' सुग्रीव विह्वल हो गये। चरण पकड़े उन्होंने—'मुझे क्षमा करें! आपकी पत्नीके हर्त्ताको देखकर मैं सहन नहीं कर सका। अब इस आदेशको स्मरण रखूँगा।'

'लक्ष्मण! आजसे तुम स्वयं दिनान्तमें देख लिया करो कि सब वानर आहार पा चुके या नहीं। सबको जल प्राप्त हुआ।' श्रीरामने सबको भाव-विह्वल देखकर प्रसंगान्तर किया—'एक-एक वानरकी सुविधा प्रतिदिन देख लिया करो। जो आहत हों, उनकी तत्काल चिकित्सा की जाय। किसीको कोई असुविधा न हो।'

'प्रातःकाल जब सुबेल-शिखरसे सेना सहित श्रीराम उतरने लगे, शुभ शकुनोंको मानों स्वागतका सुअवसर मिला। गगनसे सुरोंने पुष्प-वर्षा की। श्वेत चील मँडराती दीखी। नील कण्ठ दाहिने आ बैठा।

श्रीरामने स्वयं सबको ठीक स्थानोंपर नियुक्त किया। पूर्वमें नील, मैन्द, द्विविद। पश्चिममें हनुमान। दक्षिण अंगद, गय, गवाक्ष। उत्तर स्वयं श्रीराम। सुग्रीव, जाम्बवन्त, विभीषण सबको सहायता करने, पृष्ठ रक्षा-को स्वतन्त्र रखे गये। पर्वत शिखर, वृक्ष उठाये जयघोष करते वानरोंने लङ्काके द्वार घेर लिये। श्रीरामने घूमकर व्यूहका निरीक्षण करके आक्रमण-की आज्ञा दे दी।

'वानरोंके तुमुल जयघोषसे गगन गूंजने लगा। वे परिखा ध्वस्त करने लगे। नगरपर पर्वत फेंकने लगे। उच्च परिखापर चढ़ गये—श्रीराम अनुजके साथ उत्तर द्वारपर खड़े थे। सुग्रीवने वहींसे आक्रमण आरम्भ किया—'अमित विक्रम श्रीरामकी जय! असह्य पराक्रम लक्ष्मणकी जय!'

दशग्रीवने भी युद्धकी घोषणा की। अपने सैनिकोंको आज्ञा दी—'इन वानरोंको मार दो! समुद्रमें फेंक दो! खा डालो!'

राक्षस दुर्गपर अस्त्र-शस्त्र लेकर पहुँचे। वानरोंने उन्हें उछलकर पैर पकड़कर नीचे पटकना प्रारम्भ किया। वे महाबली वानर राक्षसोंको छातीसे दबा पीस देते थे, नखोंसे नोचते थे, दाँतोंसे काटते थे, घुमाकर समुद्रमें फेंक देते थे। अङ्गदके साथ इन्द्रजित, हनुमानके साथ जम्बुमाली जूझ रहा था। रावणके छः मन्त्री श्रीरामपर टूटे—यमशत्रु, महापार्श्व, वज्रदंष्ट्र, महोदर, महाकाय, उग्रकेश; किंतु श्रीरामने जब धनुष चढ़ाया, उनकी शरवर्षाके सम्मुख वे भाग खड़े हुए। युद्ध भूमिका आकाश राम-नामाङ्कित वाणोंसे व्याप्त हो गया।

सूर्यास्त हो गया। इस प्रथम दिनके संघर्षमें लङ्काकी एक चतुर्थांश सेना समाप्त हो गयी।

मायावी मेघनाद

अङ्गदने युद्धमें इन्द्रजितका रथ, अश्व, सारथि नष्ट कर दिया सायंकाल। अब अन्धकार फैलने लगा तो निशाचरका बल बढ़ गया। अभी चन्द्रोदय हुआ नहीं था। मायायुद्धके लिए रात्रि ही सबसे उपयुक्त अवसर है। मेघनाद मायासे अन्तर्धान हो गया।

अदृश्य रहकर मेघनादने बाण वर्षा प्रारम्भ की। उसने सभी वानरोंको और विभीषणको भी व्याकुल कर दिया। वह अन्तरिक्षमें ही श्रीरामके समीप आया और नागास्त्रका प्रयोग करके ऐसे बाण मारे कि वे सर्प होकर श्रीराम-लक्ष्मणके शरीरोंसे लिपट गये। दोनों भाई नागपाशमें बद्ध मूर्छित होकर गिर पड़े।

'मैंने राम-लक्ष्मणको मार दिया!' मेघनादने गर्वपूर्वक लंकामें लौटकर पिताके पदोंमें प्रणाम करके कहा। राक्षस प्रसन्न हो गये। लंकामें विजयोत्सव प्रारम्भ हो गया।

'शोक मत करो! दोनों भाई केवल मूर्छित हैं।' विभीषणने अपने वस्त्रसे रुदन करते सुग्रीवके नेत्र पोंछे। सभी वानर व्याकुल क्रन्दन कर रहे थे। विभीषणने धैर्य दिलाया—'इनकी मुखश्री म्लान नहीं हुई है। हतोत्साह होनेके स्थानपर इस विपत्तिको दूर करनेका प्रयत्न किया जाना चाहिये। अपने चिकित्सकको बुलाओ।'

सुग्रीवके स्वसुर सुषेण निपुण चिकित्सक थे। उन्होंने दोनों भाइयोंको तनिक समीपसे देखा। शरीरसे लिपटे सर्पोंके कारण स्पर्श सम्भव नहीं था। परीक्षा करके, लक्षण देखकर समझाया—'ये मूर्छित मात्र हैं।'

वानर इतने भयत्रस्त हो गये थे कि विभीषणको देखकर भागने लगेथे—'मे घनाद आ गया!'

'मैं आपका मित्र विभीषण हूँ। वानरोंको आश्वस्त करना पड़ा।'

श्रीराम यद्यपि नागपाशमें बँधे थे, उनकी मूर्छा दूर हो गयी। चेतना प्राप्त करते ही समीप आहत, नागपाश बद्ध, मूर्छित लक्ष्मणको

देखकर व्याकुल हो गये—'युद्धमें यदि भाई नहीं रहा तो पत्नी प्राप्त करके भी क्या करूँगा। अनुजसे रहित मेरा जीवन व्यर्थ है। लक्ष्मणके समान भाई संसारमें अलभ्य है। लक्ष्मणके बिना अयोध्या लौटकर मैं माता सुमित्राको क्या मुख दिखलाऊँगा। मुझे धिक्कार है ! जो सर्वस्व त्यागकर मेरे पीछे वनमें चला आया, उस छायाके समान साथ लगे रहने-वाले भाईकी मैं रक्षा नहीं कर सका।'

'सुग्रीव ! वानरोंकी सेनाके साथ तुम लौट जाओ।' श्रीराम क्रन्दन कर उठे—'विभीषणको राज्य देनेकी रामकी प्रतिज्ञा भूठी हो गयी। मेरा एक बारमें पाँच सौ बाण चलानेमें समर्थ भाई मारा गया। मैं लक्ष्मणके बिना शरीर धारण नहीं कर सकता।'

'देव ! कुमार लक्ष्मण केवल मूर्छित हैं।' सुग्रीवने आश्वासन दिया। 'मेरे स्वसुर भिषक् श्रेष्ठ सुषेण औषधि लेने गये हैं। वे अभी आते ही होंगे।'

सुषेण क्षीरसागरमें स्थित चन्द्र तथा द्रोण पर्वतसे अमृत सिञ्चित औषधियाँ विशल्यकरणी, संजीवनी, व्रणरोपिणी, संरोहिणी लेकर लौटे। उन औषधियोंकी गन्धसे दोनों भाइयों तथा सब वानरोके शरीरोमें जो टूटे वाणाग्र बच गये थे, स्वतः निकल गये। व्रण अपने आप भर गये। जो अङ्ग छिन्न हो गये थे, वे पुनः उग आये। मूर्छित, मरणासन्न वानर भी जीवित हो गये। लक्ष्मण सचेत हो गये। श्रीरामके समान उनका शरीर भी स्वस्थ, व्रण हीन हो गया।

जब संग्राम भूमिमें श्रीराम-लक्ष्मण मूर्छित पड़े थे, अधिकांश वानर-सेना मृतप्राय थी, शेष क्रन्दन कर रहे थे, लङ्कामें विजयोत्सव चल रहा था। उसी समय रावणने आदेश दिया—'राक्षसियाँ सीताको पुष्पकपर बैठाकर सग्राम भूमि ऊपरसे दिखा लावें।'

चन्द्रोदय हो चुका था। वन्दिनी, विवशा वैदेहीको राक्षसियोंके कहनेसे पुष्पकपर बैठना पड़ा। विमान समर भूमिके ऊपर बहुत समीप होकर मण्डलाकार उड़ने लगा। अपने स्वामी तथा देवर लक्ष्मणको श्रीजानकीने देखा। दोनों भाई मूर्छित पड़े थे। शरीर रक्त लथपथ, वाणोंसे बिद्ध था। कहीं कोई चेष्टा न थी शरीरमें।

'मुझे प्रख्यात तपस्वी ज्योतिर्विदोंने अविधवा तथा पुत्रवती होने-की भविष्यवाणी की थी। मेरे किसी अङ्गमें ऐसा कोई दोष नहीं कि मुझे वैधव्य प्राप्त हो ; किंतु दैव बलवान है । सबकी भविष्यवाणियाँ मिथ्या हो गयीं ! सतियोंका आशीर्वाद झूठा हो गया !' अत्यन्त शोकार्ता श्रीवैदेहीका स्वर सहसा स्वस्थ हो गया— 'स्वामी ! आपकी यह चरण-सेविका अभी सेवामें उपस्थित होती है।'

श्रीजानकी जैसे ही आसन लगाकर बैठी, विमान अस्त-व्यस्त हो उठा। जैसे वह प्रचण्ड अन्धड़में पड़ गया हो। त्रिजटाने घबड़ाकर श्रीजानकीको हिलाया— 'आप क्या करने जा रही हो ? श्रीराम-लक्ष्मण दोनों जीवित हैं !'

'आर्य पुत्र जीवित हैं ?' श्रीजनकनन्दिनीने नेत्र खोलकर त्रिजटा-की ओर देखा।

'आप विमानपर-से, रात्रिमें नीचे देख रही हो मूर्छाको आप नहीं पहिचान सकतीं तो भी देख सकती हैं कि वानरोंने रुदन बन्द कर दिया है। वे क्रुद्ध हैं, हर्षित हैं।' त्रिजटाने नीचे संकेत किया— 'मैंने कभी तुमसे झूठी बात कही है ? तुम्हारी पतिनिष्ठाके कारण मेरी श्रद्धा है तुमपर। देखो, वानर रामको ही देख रहे हैं। पूरी वानरी सेना दोनों भाइयोंकी रक्षाके लिए सतर्क है। दोनों भाइयोंके मुखपर कान्ति है। एक रहस्य सुन लो। यह पुष्पक दिव्य विमान है। यह किसी सूतक लगे व्यक्तिका वहन नहीं करता। तुम्हें मृत-सूतक होता तो यह उड़ता ही नहीं।'

'सखि ! तुम्हारी बात सत्य हो।' श्रीवैदेहीने आसन त्यागा। पुष्पक लंका लौट गया।

अचानक आकाशमें मेघ घिर आये। इतना प्रचण्ड पवन कि वृक्ष टूटकर गिरने लगे। वानर आशंका व्याकुल हुए—'रात्रिमें कोई और राक्षसी माया ?'

इतनेमें दिशाएँ आलोकित हो उठीं। सस्वर सामगान गूँजने लगा गगनमें। प्रतप्त स्वर्ण कान्ति विनता-नन्दन गरुड़के पक्ष चालनका प्रभाव था यह प्रचण्ड पवन। उनके पंखोंकी गतिसे ही श्रुतिके स्वर उठ रहे थे। उन्हें देवर्षि नारदने भेजा था। अपने पंख समेटे वे समर भूमिमें उतर पड़े। उनके उतरते ही श्रीराम-लक्ष्मणके शरीरोंमें लिपटे सर्प उन्हें छोड़कर अदृश्य हो गये।

श्रीराम प्रसन्न होकर गरुड़का स्वागत करने उठे। उन नारायणके वाहनने अपने दक्षिण पक्षसे लक्ष्मणका स्पर्श कर दिया। बल, तेज स्मृति, उत्साह द्विगुण हो उठा दोनों भाइयोंमें।

'मैं दाशरथि राम आपको नमस्कार करता हूँ।' मर्यादा पुरुषोत्तमने मस्तक झुकाया—'आप पक्षधर, दिव्याभरण, दिव्यवस्त्र, दिव्यदेह। हम विपन्नोपर अनुग्रह करनेवाले आप कौन हैं?'

'लीलामय! यह आपका सेवक है। नरलीलाको ही मानना है तो मैं आपका मित्र गरुत्मान हूँ।' गरुड़ने नम्रतापूर्वक कहा—'इन्द्रजितने आप दोनोंको नागपाशमें बाँध दिया है, यह समाचार देवर्षिसे पाकर मैं शीघ्रतापूर्वक आया हूँ। ये कद्रूके पुत्र नाग बहुत विषैले हैं। इनका विष बहुत दाह उत्पन्न करता है। ये मन्त्र-प्रभावसे आह्वान करनेपर आ जाते हैं। अब इस युद्धमें इनको इन्द्रजित पुनः नहीं बुला सकता। लेकिन राक्षस कूट युद्ध करते हैं। उनपर विश्वास मत करना।'

'अब आप मुझे अनुमति दें।' गरुड़ने श्रीरामकी प्रदक्षिणा की और गगनमें उसी समय उड़ गये। वानर प्रसन्न हो गये। वे उछलने-कूदने लगे। उनकी गर्जना और जयनादसे आकाश गूँजने लगा।

'जयत्यति बलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयतु सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥'

यह महाघोष गूँजा तो लंकाके बजते वाद्य बन्द हो गये। रावण चकित रह गया—'यह जय ध्वनि कैसी? वानर इस ध्वनिसे प्रसन्न लगते हैं? राम-लक्ष्मणको तो मार दिया था मेरे पुत्रने, फिर वानरोंके उत्साहका कारण?'

'पता लगाइये!' एक वृद्धने कहा—'कहीं हमारी प्रसन्नता पानीका बुलबुला ही तो नहीं था।'

'प्रहस्त! अविलम्ब चर भेजो!' रावणने आदेश दिया—'वे अदृश्य रहकर केवल यह देखकर लौटें कि दोनों तपस्वियोंकी क्या दशा है।'

'वे दोनों राजकुमार स्वस्थ हैं।' चरोंने लौटकर कहा—'उन्हें तो कुछ भी नहीं हुआ है। उनके और वानरोंके शरीरोंमें भी कोई व्रण-चिह्न नहीं है।'

'औषधिसे वाण शरीरसे निकल जा सकते हैं, व्रण भर सकते हैं, मूर्छित चेतनता पा सकते हैं, कटे अङ्ग रोपित हो सकते हैं; किंतु—'दशग्रीव चिन्तित हो उठा— 'नागास्त्रके द्वारा आहूत कद्रू पुत्र नाग और उनका विष ? '

'वहाँ किसी नागका कोई चिह्न नहीं।' चरोंने कहा— 'न विषका उन दोनों भाइयोंपर कोई प्रभाव दीखा।'

'उनपर नाग-विष भी निष्प्रभाव हुआ ? इन्द्रजितका पराक्रम, अस्त्र-प्रयोग व्यर्थ गया ?' दशग्रीवका मस्तक झुक गया। वह चिन्तित हो उठा। दो क्षण पश्चात् उसने सिर उठाया— 'धूम्राक्ष ! प्रातःसे पूर्व ही सेना लेकर उत्तर द्वारपर पहुँच जाओ। रामको मारनेमें प्रमाद मत करना ! '

धूम्राक्षका काल अन्तरिक्षमें हँस रहा है, यह स्वर धूम्राक्ष समझ गया ; किंतु उसे इस मरण-युद्धमें जाना तो था ही।

कुम्भकर्ण-कदन

अपनी शक्तिके अनुसार धूम्राक्षने बहुत पौरुष प्रकट किया ; किन्तु वानर अत्यधिक उत्साहमें थे । वे राक्षसोंको जीवित भी समुद्रमें फेंक देते थे । वहाँ समर-भूमिके समीप सागरतटका जल, मकर, व्याघ्रमुखी, तिमिंगल आदि मांसाहारी जल जन्तुओंसे भर उठा था । जहाँ आहार मिलनेकी सम्भावना हो, जलचर वहाँ स्वभावसे एकत्र हो जाते हैं । वानर मानो सेतु बनकर समुद्रपार करानेका पुरस्कार देनेमें लगे थे । कोई राक्षसोंको अधमरा करके उन्हें रेतमें ही गाड़ देते थे । वानरोंने अपने दलका विकट संहार किया है, राक्षस भागने लगे हैं, यह देखकर धूम्राक्षने भी भयंकर आक्रमण किया ; किन्तु पवनपुत्र पूरा पर्वत शिखर लेकर दौड़े और पटक दिया । धूम्राक्ष उसके नीचे पिस गया ।

रावण तक समाचार पहुँचा । क्रोध करके भारी सेनाके साथ उसने वज्रदंष्ट्रको भेजा । सेना वानरोंने समाप्तकर दी और वज्रदंष्ट्रको बालितनयने पटककर मार दिया ।

'तुम तो सुरोंसे संग्राममें भी अकम्पित रहते हो ;' इस प्रकार प्रशंसा करके सेनाके साथ रावणने अकम्पनको भेजा । अश्वकर्ण सहायक बनकर आया । उसका अभाग्य—पवनकुमार पर वाणवर्षा करने लगा । उन आञ्जनेयकी वज्र कायासे टकराकर वाण टूट ही तो सकते थे । आज पवनपुत्र पर्वत पटकनेमें लगे थे । अकम्पनकी काया भी इसी प्रकार पिस गयी । अश्वकर्ण हनुमानकी मुष्टिका पाकर मर गया । वानर कूदने लगे । हनुमानकी पूँछ चूमने लगे ।

अब रावण चिन्तित हुआ । उसने मन्त्रियोंसे मन्त्रणा की । अपने प्रधान मन्त्री प्रहस्तसे बोला—'मातुल ! वानरोंको हम लोग जैसा उपेक्षणीय मानते थे, बात उससे उलटी निकली । उन्होंने लङ्का घेर रखी है । उनको रोका न गया तो वे पुरीमें आ पहुँचेंगे । तुम सेनाको प्रिय हो । तुम्हीं वानरोंका वेग सम्हाल सकते हो । पहिले सेना भगा देना । राम-लक्ष्मण

एकाकी हो जायें तब उन्हें पकड़ लेना। तुम चाहे जितनी सेना ले जाओ। चाहे जिस द्वारसे आक्रमण करो।'

'पितृव्य माल्यवानने पहिले ही सम्मति दी थी कि सीताको लौटा देनेमें ही कल्याण है।' प्रहस्तने शान्त स्वरमें कहा —' लेकिन अब तो युद्ध चलने लगा है। आपने मेरा बहुत सत्कार किया है। आपके लिए मैं आत्माहुति देनेको प्रस्तुत हूँ।'

रोता जाये, मरेका समाचार लाये। प्रहस्त पहिले ही हतोत्साह था वैसे उसने आडम्बर बहुत किया। सेनाको कहा–'वानरोंका रक्त पिओ! उनके मांससे तृप्त हो। लङ्कामें तुम्हें और आहार नहीं मिलेगा।'

राक्षस पुरोहितोंसे हवन कराकर अभिमन्त्रित मालाएँ प्रत्येक सैनिकको पहिनायीं। नरान्तक, महाहनु, कुम्भहनु, महानाद प्रभृति दैत्य यूथपोंके साथ पूर्वद्वारसे निकला। लेकिन पहिला स्वागत अपशकुनोंने किया। मेघोंसे रक्त वर्षा हुई। रथकी ध्वजापर गीध आ बैठा। उसे उड़ानेके प्रयत्नमें सारथिके हाथसे कशा दूर जा गिरा। अश्व अकारण ठोकर खाकर गिरे।

'यह मातामह सुमालीका पुत्र प्रहस्त आ रहा है।' विभीषणने श्रीरामको परिचय दिया —' रावणका प्रधान सेनापति। लङ्काकी लगभग आधी सेना इसके साथ है।'

बड़ी सेना तो बड़ा संहार। द्विविद, जाम्बवान, नील, नल, गय, गवाक्ष सब एक साथ टूट पड़े राक्षसी सेनापर। प्रहस्तको तो युद्धका अवसर भी नहीं मिला। नीलने भारी शिला उसके ऊपर पटक दी। प्रहस्तका मस्तक सैकड़ों टुकड़े हो गया। राक्षसी सेनाका थोड़ा ही भाग बचकर भाग सका। शेष वानर यूथपोंने सागरके जीवोंको समर्पित कर दिया।

शत्रुकी उपेक्षा कभी उचित नहीं। इन्द्रको समरमें विचलित करने वाला मेरा प्रधान सेनापति मारा गया।' दशग्रीव प्रहस्तका मरण सुनकर अत्यन्त दुःखी हुआ। 'अब मैं स्वयं युद्ध करने जाऊँगा। पृथ्वी वानरोंके रक्तसे परितृप्त हो।'

'वानर बलवान नहीं हैं।' बातें बनाने वालोंके पास प्रत्येक परिस्थिति-में बातें विद्यमान रहती हैं। एक राक्षस बोला—' आप जानते हैं कि पेट

भरनेपर हम राक्षसोंको सो जानेकी सूझती है। वे युद्धमें भी ऊँघते जाते हैं। आपके प्रबन्धक अत्यन्त उदार हैं। राक्षसोंको भरपेट आहार देते हैं।'

'तुम कहना क्या चाहते हो ?' दशग्रीवने उसकी ओर देखा।

'सब राक्षसोंका भोजन बन्द करा दीजिये!' उसने सुझाव दिया—'भूखे जायँगे तो दस-बीस वानर प्रत्येक भक्षण करनेका प्रयत्न करेगा।

'अच्छी बात। अबसे लङ्कामें राक्षसोंको आहार नहीं मिलेगा।' युक्ति रावणको भी उचित लगी। 'लेकिन तुम अभी मेरे साथ युद्धमें चलो।'

'मुझे आज क्षमा करदें।' वह गिड़गिड़ाया। उसे क्या पता था कि बोलनेके पुरस्कारमें उसीको बलि पशु बनना पड़ेगा।' मैंने अभी-अभी भरपेट तरुण भैंसे खाये हैं। भरपेट भोजन कर लेनेपर मुझे पूरे सप्ताह भूख नहीं लगती।'

'बहाने बन्द ! हम सब आज शत्रु रक्तसे प्रहस्तका तर्पण करेंगे।' रावणने गर्जनाकी। भेरी, पणव बजने लगे। राक्षस जयनाद करने लगे। रावण स्वयं रथारूढ़ निकला तो वानरोंने 'हूँ-हूँ' करके एक साथ उसपर आक्रमणकर दिया।

'नाना पताकाओंसे युक्त, गज सेनासे पूर्ण यह कौन आ रहा है ? श्रीरामने विभीषणसे पूछा। वे दूर थे दशग्रीवके दलसे।

'आप इसकी ओर ध्यान दें। स्वयं राक्षसेश्वर युद्ध करने आया है।' विभीषणने विवरण दिया—'अकम्पन द्वितीय, अतिकाय, पिशाच महोदर, कुम्भ, निकुम्भ, नरान्तक और मेघनादसे घिरा मुकुट धारी, विन्ध्यके समान दीर्घकाय दशग्रीव समराङ्गणमें स्वयं आया है।'

'विभीषण ! सभी राक्षस पर्वताकार होते हैं ; किन्तु राक्षसेश्वरमें कितना तेज है।' श्रीरामने शत्रुकी प्रशंसा करके कहा—'सौभाग्यसे सीताका हरणकर्ता मेरे सम्मुख आ गया है। लक्ष्मण ! धनुष उठाओ और तुम मेरे पीछे रहो।'

'सब राक्षस यूथप गोपुरोंमें सावधान बैठ।' रावणने भी द्वारसे निकलते-निकलते अपने यूथपोंको आज्ञा दी—'वानर आक्रमण करके पुरी-ध्वंस न करें, इसके लिए सावधान रहो।'

सुग्रीवने पर्वत उठाकर युद्धका श्रीगणेश किया ; किन्तु दशग्रीवने वाणोंसे पर्वतको चूर-चूरकर दिया। उसके आघातसे आहत सुग्रीव चीत्कार करके मूर्छित हो गये।

सुग्रीवको सङ्कटमें देखकर गय, गवाक्षादि सब यूथप दौड़ पड़े। दशग्रीवने सबका सम्मिलित प्रहार सह लिया। उसके दसों धनुषोंकी अनवरत वाण-वर्षाने वानरोंको व्याकुलकर दिया। सब भागकर श्रीरामकी शरण गये।

'निसन्देह आप राक्षस-नाशमें समर्थ हैं।' अग्रजको धनुष उठाते देखकर प्रार्थनाकी–'किन्तु अभी तो यह सेवक विद्यमान है।'

'जाओ, किन्तु सावधान रहना !' श्रीरामने अनुजको आज्ञा दे दी– 'रावण असाधारण पराक्रमी है। वह अपनी रक्षा नेत्रोंसे भी कर लेता है। उसकी पलकें भी प्रबलतम वाणोंको व्यर्थकर देती हैं।'

लक्ष्मणने अग्रजको प्रणाम किया। उनकी परिक्रमाकी। तभी पवनकुमार रावणके समीप पहुँच गये। वाम हस्तसे उसका रथ-दण्ड पकड़कर दाहिना हाथ दिखाते धमकाया—'दशग्रीव! तुमको सबसे अवध्यता प्राप्त है ; किन्तु वानरसे तुम अवध्य नहीं हो। मेरे इस पाँच अंगुलियोंसे युक्त दक्षिण हस्तको देखलो ! यह तुम्हें प्राण मुक्तकर देगा।'

'वानर ! शीघ्र प्रहार करके अपनी साध पूरी कर ले ! दशग्रीव क्रूरता पूर्वक हँसा—'अन्यथा मैं प्रहार करूँगा तो तू मर ही जायगा।'

'तू मुझे अवसर देता है ?' हनुमानने भी अट्टहास किया—'भूल गया, मैंने तेरे पुत्र अक्षयकुमारको मारा है।'

क्रोधमें आकर रावणने हनुमानके वक्षपर घूसा मारा। हनुमान विचलित हो गये। लेकिन भूमिपर घुटने टेककर पुन: उठ खड़े हुए। अब उनकी वज्रमुष्टिका रावणके वक्षपर पड़ी। जैसेकोई पर्वत ढह जय डगमगाकर दशग्रीव गिर पड़ा। वानरोंने हर्षनाद किया 'पवनपुत्र' की जय !

'वानर ! तुम्हारा बल प्रशंसनीय है।' रावण भी सम्हलकर उठ खड़ा हुआ। प्रशंसाकी उसने–'साधु ! साधु! तुम सचमुच बलवान हो।'

'मेरे बलको धिक्कार है कि तू जीवित उठ गया।' हनुमानने ललकारा–'फिर प्रहारकर !

रावणने इस बार पूरी शक्ति लगाकर घूसा मारा। हनुमान इस आघातसे कुछ विह्वल हुए तो दशग्रीव डर गया–' अबकी बार इसे सावधान होकर प्रहार करनेका अवसर प्राप्त होगा तो यह मुझे अवश्य मार डालेगा।' वह नीलसे युद्ध करने लगा।

' रावण ! अन्य युद्ध-लग्नको मैं नहीं मारता। ' पवनकुमारने सावधान होने पर दशग्रीवको विमुख देखा तो छोड़ दिया। नील पर्वत, वृक्ष फेंकते गये, किन्तु राक्षसेश्वर उनको काटता गया। सहसा नील इतने छोटे बन गये कि कूदकर उसकी ध्वजापर, उसके मस्तकोंपर, उसके धनुष-की नोकपर उछलने लगे। नखोंसे उसकी नासिकापर, ललाटपर, घावकर दिये उन्होंने। उनकी स्फूर्तिसे दशग्रीव भी विस्मित हो गया।

' तू बहुत चंचल वानर है। अब अपना जीवन बचा !' झल्लाकर रावणने आग्नेयास्त्र चढ़ाया—' यह वाण तुझे भस्मकर देगा। '

ज्वाला उगलता वाण आया। उसकी लपटोंसे नील मूर्छित होकर गिरे अवश्य ; किन्तु अग्निदेव उन अपने पुत्रको जला तो नहीं सकते थे। पृथ्वीका स्पर्श करके वे पुनः उठ खड़े हुए। इस अल्प क्षणमें रावण लक्ष्मणकी ओर दौड़ पड़ा था।

' राक्षसराज ! मुझसे संग्राम करो ! वानरोंसे समर तुम्हें शोभा नहीं देता !' धनुष चढ़ाकर चुनौती देते सौमित्रने ज्याघोष किया। उस भुवनभेदी ध्वनिसे दशग्रीव भी एकबार काँप गया।

' तापस ! यह तेरा अन्तिम क्षण है। ' रावणने धमकी दी।

' प्रभावशाली डींग नहीं मारा करते ! ' लक्ष्मणने ललकारा—' तू परम पापिष्ट है। तेरा पौरुष-पराक्रम जानता हूँ मेरी उपस्थितिमें तुझे श्रीजनक-नन्दनीके हरणका साहस नहीं हुआ था। मैं धनुष लिये तेरे सम्मुख हूँ, पराक्रम प्रकट कर ! '

अब प्रचण्ड युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों ओरसे अनवरत वाण वर्षा, दोनोंने दिव्यास्त्रोंकी झड़ी लगा दी। अन्तमें दशग्रीवका धनुष कट गया। लक्ष्मणके प्रहारोंसे व्याकुल होकर उसने ब्रह्मासे प्राप्त अमोध शक्ति उठायी। वह निर्धूम अग्निके समान ज्वालमालावृता शक्ति चली तो लक्ष्मणने उसे भी काटनेका प्रयास किया ; किन्तु वह ब्राह्मीशक्ति उनके वक्षमें लगी। मूर्छित होकर श्रीरामानुज गिर पड़े।

रावणको अपने लिए एक सुयोग प्रतीत हुआ। यदि वह लक्ष्मणको उठाकर रथमें डाल लङ्का ले जा सके, रामपर लौट जानेका दबाव डाल सकेगा। वह रथसे कूदा; किन्तु भले उसने कैलास उठा लिया हो, बीसों भुजाएँ और पूरा बल लगानेपर भी लक्ष्मणको हिला तक नहीं सका।

'दुष्ट! पापिष्ठ!' अचानक पवनकुमारकी दृष्टि पड़ी। वे दौड़े और आते ही एक घूसा क्रोधमें भरकर धमक दिया। दशग्रीवके नेत्रोंसे, कर्णोंसे रक्त प्रवाह चलने लगा। वह किसी प्रकार अपने रथपर चढ़ तो गया, पर गिरकर मूर्छित हो गया। सारथि उसे लङ्का ले गया।

'तुम निखिल सृष्टि-धारक, कालके भी काल हो! तुम्हें कोई शक्ति संज्ञाशून्यकर सकती है!' हनुमान जब लक्ष्मणको उठा ले आये श्रीरामने अपने अमृत स्यन्दी कर अनुजपर फेरते कहा। लक्ष्मण उठ बैठे। शक्ति उनको त्यागकर ब्रह्मलोक चली गयी।

जब सचेत होकर रावण पुनः युद्धमें आया, श्रीरामने धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा ली। पवनकुमारने प्रार्थनाकी—'जैसे विष्णु गरुड़को वाहन बनाकर युद्ध करते हैं, आप मेरे स्कन्धारूढ़ होनेकी कृपा करें।'

'तूने मेरे साथ बहुत दुर्व्यवहार किया है। मेरे अनुजपर तूने आज ही शक्ति चलायी। अब मैं तुझे इस राक्षस शरीरसे छुटकारा दे दूंगा।' पवनपुत्रके कन्धोंपर बैठे श्रीरामने रावणको फटकारा। रावण कालानलके समान वाणोंसे हनुमान पर प्रहार करने लगा; किन्तु पवनकुमारके वज्रदेह पर लगकर वे वाण टूटते गये। श्रीरामने रावणके रथकी ध्वजा काट दी। रथको ध्वस्तकर दिया। उसके अश्व तथा सारथिको मार दिया। स्वयं रावण इतना आहत हो गया कि उसके हाथोंसे धनुष छूट गिरा।

'मैं श्रान्त शत्रुका वध नहीं करता।' अर्धचन्द्र वाणसे दशग्रीवका किरीट काटनेके अनन्तर उसे शिथिल देखकर श्रीरामने कृपाकी—'मैं अनुमति देता हूँ, लङ्का लौट जाओ। स्वस्थ होनेपर लौटोगे तब मेरे पराक्रमका अवसर आवेगा।'

'मेरी सब तपस्या व्यर्थ गयी। मुझ सुरासुरजयीको एक मनुष्यने पराजित करके प्राणदान किया!' दशग्रीव लङ्का लौटा तो उसका दर्प चूर्ण हो चुका था। वह भयभीत था। रात्रि-विश्रामके पश्चात् अपने अवशिष्ट मन्त्रियोंके सम्मुख कह रहा था—'मुझे अनरण्यने और वेदवतीने

भी शाप दिया है। कहीं वह वेदवती ही तो सीता होकर मेरे विनाशके लिए प्रकट नहीं हुई ? '

'कुम्भकर्णको जगाओ ! सृष्टिकर्ताने उसे ६ मास सोनेका शाप दिया है ; किन्तु वह कभी सात-आठ या नौ मासपर स्वतः उठता है। ' इस समय दशग्रीवमें स्वयं समर भूमिमें जानेका साहस नहीं था। यह भाईपर भरोसा कर रहा था—' वह महाकाय राक्षसोंकी ध्वजा है। इस समय काम नहीं देगा, तब कब काम आवेगा ; किन्तु स्वयं वह उठ नहीं सकता। अभी पिछले दिनों ही सम्मति देकर गया और सो गया। अत : उसे प्रयत्नपूर्वक जगाओ। उसके भोजन-पानकी व्यवस्था उसके समीप कर दो। अन्यथा उठनेपर वह अपना-पराया क्षुधाके कारण देख नहीं पाता। '

राक्षसोंने कुम्भकर्णकी गुफामें मदिरा-कलशोंकी ढेरी लगा दी। भैंसों और गजोंका समुदाय उपस्थित किया गुफामें। बहुत कठिन काम था यह। कुम्भकर्ण गुफाद्वारकी ओर मुख किये उत्तान पड़ा था। उसकी नासिका-वायुके थपेड़े गुफासे बाहर फेंक देते थे प्रवेश करने वालेको। उसकी श्वास-वायुसे बचकर उसकी गुफामें भागकर जाना था। उसकी ग्रीवासे नीचेके भागके समीप सामग्री रखो या खड़े रहो।

एक योजन चौड़ी उस गुफामें वह पर्वताकार महाप्राणी पड़ा था। उसके रोम सर्पोंके समूह प्रतीत होते थे। उसका कन्दराके समान मुख खुला था। महिषयूथ, मांसपर्वत, रक्त एवं सुरासे भरे सहस्रशः घट उसके आस-पास सजाकर राक्षसोंने उसके पूरे शरीरपर चन्दनका लेप किया। इससे तो उसके खुर्राटे उलटे बढ़ गये। तब शंख, नगाड़े बजाने लगे, चिल्लाने लगे।

कुम्भकर्णको जगा देना सहज नहीं था। लङ्का शब्दसे गूँजने लगी, पर उसने हिलनेका नाम नहीं लिया। उसके शरीरपर राक्षस कूटने लगे। उसे मुशलसे, गदासे पीटने लगे। उसके केश या कान खींचे। कठिनाई यह थी कि जो उसकी श्वासके सम्मुख पड़ता था, उड़कर गुफासे टकराता या बाहर जा गिरता था। श्वास खींचनेसे कुछ नासामार्गसे पेटमें पहुँच गये सैकड़ों घड़े जल डाला उसपर। जब कोई उपाय सफल नहीं हुआ तो उसके शरीरपर हाथियोंको दौड़ाने लगे।

अन्ततः गजोंकी दौड़ादौड़से जगा। अँगड़ाई ली तो सब गज गिर पड़े। पातालके समान मुख खोलकर जम्हाई ली उसने। सब राक्षस भाग-

कर एक ओर हटगये। वहींसे संकेत किया सबने सामग्रीकी ओर। कुम्भकर्ण हाथ बढ़ाकर हाथी, भैंसे, बाराह निगलने लगा। रक्त और मदिराके घट गटागट पी गया। जब यह अल्पाहार करके उसने डकार ली, राक्षस डरते-डरते उसके समीप आये।

'तुम लोगोंने इतने आदरपूर्वक मुझे क्यों जगाया है?' कुम्भकर्ण अपने प्रसन्न स्वरमें गर्जना करता लगता था—'मेरे अग्रज राक्षसेश्वर सकुशल तो हैं? अवश्य उनपर कोई भय आया होगा। अन्यथा वे मुझे जगाने नहीं देते। मैं आज ही वह भय मिटा दूँगा।'

'हमारे ऊपर भय तो आया है; किन्तु वह दत्य-दानव या देवताओंसे नहीं है।' दशग्रीवके मन्त्री यूपाक्षने निवेदन किया—'सीता-हरणसे क्रुद्ध रामने वानरोंको लेकर पुरी घेर ली है। आपके अग्रज राक्षसेश्वरको भी रामने युद्धमें आज आहत, अपमानित करके मृत समझ-कर छोड़ दिया।'

'मैं पहिले उन दोनों भाइयोंको मारकर तब अग्रजसे मिलूँगा।' कुम्भकर्ण उठकर गुहासे निकलने लगा।

'राक्षसेन्द्र आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।' महोदरने प्रार्थना की—'आप उनसे मिलकर किन-किनका वध तत्काल आवश्यक है, यह जानकर तब समरांगणमें पधारें।'

'तुम समझदार हो। कुम्भकर्णने प्रशंसा की। उसने मुख धोया। राक्षसोंने सहस्रों घट जल डालकर उसे स्नान कराया! दो सहस्र घट सुरापान करके जब मुकुट पहिनकर गुफासे निकला, वानरोंने उसे देख लिया। श्रीरामने विभीषणसे पूछा— 'त्रिविक्रमके समान गगनको छूता, मुकुटधारी यह लङ्कामें कौन दीखता है. दैत्य है या राक्षस?'

'यह रावणका भाई कुम्भकर्ण है।' विभीषण अब दशग्रीवके स्वजनोंको अपना स्वजन नहीं मानते थे। उन्होंने परिचय दिया—'युद्धमें इन्द्र और यमको भी इसने जीता है। इन्द्रके वज्रप्रहारसे यह केवल एक बार चिल्लाया था। यह स्वभावसे ही तेजस्वी है। जन्मते ही सहस्रों प्राणियोंको खा गया था। ऐरावतके दाँत उखाड़कर इसने उसीसे इन्द्रको मारा तो इन्द्र भाग खड़े हुए। ब्रह्मा भी अपने इस प्रपौत्रको देखकर डर गये थे। उन्होंने इसे मृतकल्प सोते रहनेका शाप दे दिया। यह वहीं सो

गया। रावणने बहुत प्रार्थना की सृष्टिकर्ताकी, तब उन्होंने निद्राकी मर्यादा बना दी, ६ महीने सोकर एक दिन जागनेकी। लगता है, इसे दशग्रीवने जगाया है।'

'यह राक्षस जैसा दीखता एक यन्त्र है, जिसे रावणने बनवाया है।' वानर कुम्भकर्णको देखकर भयसे भागने लगे थे, अतः विभीषणके एक मन्त्रीने यह प्रचार प्रारम्भ कर दिया। विभीषण हँस गये। उन्होंने नीलको सचेत किया—'अपना व्यूह भली प्रकार सुदृढ़ कर लो।'

कुम्भकर्णके चलनेसे पूरा त्रिकूट शिखर हिलने लगा था। रावणने आगे आकर उसका हाथ पकड़ा और अपने खुले प्राङ्गणमें सिंहासनपर समीप बठाया। कुम्भकर्णने अग्रजको प्रणाम किया—' आपने मुझे इतने आदरपूर्वक क्यों जगाया है ; मैं क्या सेवा करूँ ? आपको किसका भय है ? कौन मरनेको उत्सुक है !'

'तुम तो मुझे आश्वासन देकर गये और सो गये।' रावणने उपालम्भ दिया—'मुझपर राम-लक्ष्मणने भय उपस्थित किया है। सुग्रीवने वानरोंके साथ समुद्र पार करके लङ्का घेर रखी है। युद्धमें वानर घटते ही नहीं हैं। मेरा कोष रिक्त हो गया है, सेना समाप्तप्राय है। मैंने पहिले तुमसे कुछ करनेको नहीं कहा। तुमसे मुझे बड़ी आशा है। तुम विश्वमें अतुलनीय हो। लङ्काकी रक्षा कर लो। मुझे बचा लो !'

'मन्त्रणा-सभामें मैंने कहा था कि रामसे युद्ध करनेमें भला नहीं है। यह विपत्ति तुम्हारे पापसे आयी है। बलके दर्पमें तुमने पहिले कर्त्तव्यका निश्चय नहीं किया। देश-कालके विपरीत कार्य किया और उचित सम्मति-पर ध्यान नहीं दिया।' कुम्भकर्णने हंसकर कहा—' फिर भी बड़े हो, अब जो कहो, वह करूँगा।'

'मुझसे छोटे होकर विपत्तिमें पड़नेके कारण मुझे आचार्यके समान उपदेश करने लगे हो ?' दशग्रीवका स्वर दुःखी था—'यह उपदेशका नहीं, काम करनेका समय है। मैंने जो किया वह गर्वसे किया या मोहसे, इस विचारका समय नहीं है। मैंने अनुचित भी किया तो अब दोष दूर करो। मुझसे प्रेम है तो मेरी सहायता करो। विपत्तिमें सहायक ही भाई होता है।'

'राजेन्द्र ! क्रोध मत करो। निराश मत हो। मैं तुम्हारी कठिनाई दूर कर दूँगा। सीता राम-लक्ष्मणको मृत देखेगी।' महाप्राण कुम्भकर्ण

अत्यन्त गम्भीर हो गया—'सम्भव है, मैं मारा जाऊँ, तो भी तुम्हारे मरणका दुःख मुझे नहीं देखना पड़ेगा। अत: अब मुझे आज्ञा दो। अस्त्र-शस्त्रकी आवश्यकता मुझे नहीं है। चिन्ता मत करना। हनुमान सुग्रीव तो क्या, मैं सारा स्वर्ग भी चबा डालूँ तो मेरा पेट नहीं भरेगा। मैं प्राण देकर भी तुम्हें सुखी करनेका प्रयत्न करूँगा। तुम सुरापान करके सो जाओ।'

'कुम्भकर्ण! तुम उच्च कुलोत्पन्न हो; किन्तु तुम्हारी दृष्टि साधारण है। तुम अभिमान-ग्रस्त होकर राक्षसेन्द्रको अन्यायी कहते हो। स्वयं सोते रहते हो, अत: महाराजको भी सो जानेको कहते हो, तुमने कभी बड़ोंकी सेवा नहीं की, अतः ऐसी ओछी बात करते हो।' मन्त्री महोदर रुष्ट होकर बोला—'हम राक्षसेश्वरसे सहमत हैं कि अब शत्रुसे युद्धका समय है; किन्त तुम एकाकी युद्ध करने जाना चाहते हो, यह ठीक नहीं है। जिसने अकेले चौदह सहस्र मार दिये, वे राम खिलौने नहीं हैं।'

'आप नीतिसे काम क्यों नहीं लेते?' महोदरने रावणसे कहा—' वितर्दन, विजिह्व, संह्लादि, मैं और ये कुम्भकर्ण यहाँसे जाकर रक्तलथपथ बनकर लौट आवें। आपसे सीताके सम्मुख कहें—'हमने राम-लक्ष्मण-का वध कर दिया। आप महोत्सव मनानेकी आज्ञा दे दें। तब सीताको विश्वास हो जायगा। अपने उद्धारसे निराश होनेपर वह अन्तमें आपको स्वीकार कर लेगी। वह सुखमें पली है। सुखके सम्बन्धमें आश्वस्त होनेपर मान जायगी।'

'यह डरपोक है, कायर है, कुबुद्धि है, कुपुरुष है!' सहजशूर, स्वभावसे सरल कुम्भकर्ण महोदरकी छल-कपटकी बातें सुनकर क्रुद्ध हो उठा। उसने रावणको भी लथाड़ा—'तुमने ऐसे मूर्ख, स्वार्थी मन्त्री बना रखे हैं? यह चाटुकार मंदमति अपनेको बुद्धिमान मानता है। यह क्या समझता है कि विजयी वानर गर्जना नहीं करेंगे? या सीताको उनका सिंहनाद सुनायी नहीं देगा? वानर चुप रहेंगे या पुरीपर आक्रमण करेंगे। ये सब मित्रके रूपमें शत्रु हैं। इनके दोषसे स्वर्णपुरी लङ्काका कोष रिक्त हो गया। इनके दोषसे सेना मारी गयी।'

'सचमुच महोदर रामसे डर गया है।' रावणने हँसकर भाईको झगड़ा करनेसे बचाया—'तुम अकेले जाकर वानरोंपर टूट पड़ो। हाथमें त्रिशूल ले जाओ। वानर तो तुम्हें देखकर ही भाग जायँगे। राम-लक्ष्मण-का भी भयके कारण हृदय फट जायगा।'

'वानर भी वीर हैं। वे समीप आकर तुम्हें तंग न करें, अत: सेना-को साथ जाने दो ; 'कुम्भकर्णने जब विशाल शूल ले लिया और कहा कि सेना यहीं रहे, तब रावणने स्नेहपूर्वक समझाया—' सेनाके राक्षस वानरोंको पीछेसे तुम्हारे पास नहीं आने देंगे।'

दशग्रीवने स्वयं कुम्भकर्णके कण्ठमें विशेष रूपसे बनवायी माला डाली। उसे कवच पहिनाकर आलिंगन किया और आशीर्वाद दिया। राक्षस सिंह, गज, सर्प, पक्षी आदि वाहनोंपर बैठकर उसके पीछे चले।

'आज भरपेट वानरोंके शरीरका भोजन प्राप्त होगा। 'कुम्भकर्ण-को यह आशा प्रमत्त तथा प्रसन्न किये थी। अपशकुनों-उत्पातोंका ताँता लगा है, इस ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। सब नगर-द्वार उसके लिए बहुत छोटे थे। उसने पद उठाया और परिखा पार कर गया। उस सचल पर्वतको देखकर वानर भयके मारे भागे।

'भागकर कहाँ जाओगे ? चारों ओर समुद्र है। आज प्राणपणसे युद्ध करो ! 'अङ्गदने पुकारा। बहुत-से वानर लौटे। वृक्ष, पत्थर आदिसे कुम्भकर्णपर प्रहार करने लगे। कुम्भकर्णको प्रहारकी चिन्ता नहीं थी। वह वानरोंको समेटकर चबानेमें लगा था। कुछको पैरोंसे कुचलता जा रहा था। अङ्गदने फिर ललकारा वानरोंको। कुछ थोड़े शरभ, मैन्द, तार, पनसादि लौटे। श्रीरामके लिए प्राणत्यागका संकल्प करके कुम्भकर्णपर प्रहार करने लगे। कुम्भकर्णको प्रहारका पता ही नहीं लगता था। वह शूलको भी वानरोंको रोककर समेटनेके उपयोगमें ले रहा था। झुंडके झुंड वानर मुखमें डालता था। उनमें से बहुत से उसके नासिका छिद्रसे निकलकर भाग रहे थे।

हनुमान उस महाकायके प्रहारसे घायल-विह्वल हो गये थे। नीलको उसने पकड़कर पटक दिया। वे मूर्छित हो गये। ऋषभको पकड़कर कक्षमें दबा लिया उसने। अङ्गद भी आहत हो गये। सुग्रीवको भी उसने पकड़ा— 'तुम प्रजापतिके प्रपौत्रसे पौरुष दिखलाओ ! '

'अब आधा काम तो पूरा हो गया।' सुग्रीवको पकड़कर वह लङ्काकी ओर लौटा।

'हमारा क्या कर्त्तव्य है ?' सुग्रीवको लेकर कुम्भकर्ण लङ्का जाने लगा तो पवनकुमार चिन्तित हुए—' यदि मैं छुड़ाता हूँ तो वानरेन्द्र बहुत लज्जित होंगे। अत : मुझे प्रतीक्षा करना चाहिये।'

उत्तम सेवकको सेवा भी सोच-समझकर करनी पड़ती है। हनुमान वानरोंको व्यवस्थित करनेमें लग गये।

कुम्भकर्ण सुग्रीवको लेकर लङ्का लौटा। परिखाके भीतर प्रवेश करते ही वर्षा हुई। सुग्रीवकी मूर्छा दूर हो गयी। दो क्षण वे सोचते रहे। स्थिति समझमें आयी तो दाँतोंसे काटने और दोनों हाथोंसे नोचने लगे। कुम्भकर्ण इस अचानक आक्रमणसे चौंका तो छूट गये। तत्काल कूदकर श्रीरामके समीप आ गये।

'आप ही इस महादैत्यसे हमारी रक्षा करें!' वानर भागे दौड़े श्रीरामके समीप पुकारते पहुँचे। कुम्भकर्ण लौटा आ रहा था। उसके हाथमें आयी सफलता छिन गयी थी। बहुत क्रुद्ध था। कहींसे एक भारी मुद्गर उठा लिया था उसने। वानरोंको मुद्गरसे पीटता मुखमें डालता दौड़ता आ रहा था।

श्रीरामने धनुष चढ़ाया। 'डरो मत! शान्त खड़े समर देखो!' उन सबके शरणदने वानरोंको अभय दिया और आगे बढ़े। उनके पहिले वाणने ही कुम्भकर्णके हाथका मुद्गर काट फेंका और वह मुद्गरधारी भुजा भी काट दी। दूसरे हाथसे उसने शिला उठायी। वह हाथ भी कट गया। अब मुख फाड़कर वह दौड़ा श्रीरामकी ओर। उन शारंगधन्वाने पैर काट दिये। इतनेपर भी धड़ लुढ़कता चला आ रहा था। श्रीरामके एक वाणने उसका हृदय बिद्ध करदिया। दूसरे दिव्यास्त्रने जो अर्धचन्द्राकार था, पर्वतके समान मस्तक काट दिया।

'दो घड़ी तक लगा था कि कुम्भकर्ण विजयी होंगे; किन्तु—' बचे-खुचे राक्षस लङ्का भागे। उन्होंने डरते-डरते रावणसे निवेदन किया।

'किन्तु—किन्तु क्या?' रावण व्याकुल बोला—'वह समरविमुख होकर फिर सोने चला गया?'

'वे सदाके लिए समरभूमिमें सो गये।' राक्षस रोते-रोते बोले—'रामने उन महाप्राणको मार दिया। उनके शरीरसे निकली अद्भुत ज्योति भी रामके शरीरमें लीन हो गयी।'

दशग्रीव शोक-मूर्छित गिर पड़ा सिंहासनपर। देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा, अतिकाय, महोदर सब व्याकुल क्रन्दन करने लगे, रावणकी चेतना लौटी तो सिर पीटने लगा—'मेरे भाई! तुम मुझे छोड़कर चले

गये ? मुझे असहाय कर गये ! मेरा जीवन व्यर्थ हो गया ! मैं अब राज्य लेकर क्या करूँगा। मुझे भी अब तुम्हारे स्थानपर ही आना है।'

'विभीषणकी बात ही सत्य थी। मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। मैंने उस विनम्रको अपमानित किया। वह कुशली रहे ! ' विपत्तिमें बहुत बार बुद्धि जाग्रत होती है। बुद्धि-विपर्यय भी हो जाता है। आज राक्षसेन्द्र रो रहा था—'प्रहस्त और कुम्भकर्णके मरनेसे पूर्व मेरी समझमें यह बात नहीं आयी थी। यह विभीषणकी बात न माननेका दुष्परिणाम है। मैंने धर्मशील अनुजको निर्वासित करके अनुचित किया।'

'आप हम सबके अधीश्वर हैं। आप जैसे महत्पुरुष विलाप नहीं किया करते।' त्रिशिराने साहस किया—'आपके समीप ब्रह्माका दिया अभेद्य कवच है, शक्ति है, एक सहस्र गर्दभ जुतें, ऐसा अपूर्व रथ है। आप निराश क्यों होते हैं ? अब तो शत्रुका सामना करना ही एकमात्र मार्ग है। आप भाईका प्रतिशोध लेनेका निश्चय करके उठ खड़े हों। अभी तो आपके पुत्र हम सब सेवाको समुद्यत हैं। आप हमें संग्राममें जानेकी आज्ञा दें।'

'तुम लोग विजयी होओ ! महाकालिका तुम्हारे आगे-आगे प्रयाण करे ! ' रावणने त्रिशिरा, देवान्तक, नरान्तकादि अपने पुत्रोंको आशीर्वाद दिया—'मैं इस समय शोक-सन्तप्त हूँ। कुम्भकर्ण क्या गया, मेरी शक्ति, साहस सब चला गया। मुझे सम्हलनेमें समय लगेगा। मेरे दोषसे मेरा भाई मारा गया। उसे ब्रह्माने कहा था—'जब असमय जगा दिया जाय, समझ लेना कि अब मृत्यु तुझे अनन्त निद्रा देनेवाली है।'

'हाय ! मुझ स्वार्थान्धने भाईको असमय जगाया !' आज दशग्रीव अत्यन्त व्याकुल था। उसे कुम्भकर्णपर गर्व था। इस सदा सोनेवाले भोले भाईसे असीम अनुराग था।

'आप आकुलताका त्याग कर दें !' नरान्तकने आश्वासन दिया—'हम सब शत्रुपर विजय प्राप्त करके ही आपके सम्मुख आवेंगे। अन्यथा अब समरभूमि हमारी अनन्त शय्या होगी।'

लङ्कासे जो यह प्रतिज्ञा करके गया, उसके भाग्यमें समर शय्या ही है—इसे दशग्रीव समझता था। पुत्रोंको विदा करते उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था—पर कोई उपाय नहीं था। यह अग्नि उसने स्वयं लगायी थी। इस नरमेध यज्ञमें अपनोंकी आहुति देनेको अब वह विवश था।

लक्ष्मण-शक्ति

अनवसर आये रावणके पुत्र युद्धभूमिमें। अपने पिताकी व्याकुलता देखकर आये थे। कुम्भकर्णकी मृत्युने उनको निराश कर दिया था। विजय-की अपेक्षा मरण उन्हें अधिक सन्निकट दीखता था।

कुम्भकर्णकी मृत्युने वानरोंको विजयके प्रति असन्दिग्ध कर दिया था। यद्यपि असीम विनाश किया था कुम्भकर्णने वानर-सेनाका ; किन्तु वानर अब अपनी विजयके प्रति पूर्ण आश्वस्त थे। उत्साहातिरेकमें थे। ऐसी सेना अपनेसे कई गुनी सशक्त शत्रु-शक्तिपर भी भारी पड़ती है।

समरभूमि रक्तका दलदल बन चुकी थी। हनुमान गन्धमादन जाकर औषधि ले आये थे। उसकी गन्धसे वानरोंके व्रण भर गये थे। उनके छिन्नाङ्ग पुनः रोपित हो गये थे। उनमें जो अत्यन्त मरणासन्न थे, वे भी स्वस्थ, सबल हो गये थे।

यह लाभ राक्षसोंको अप्राप्य था। रावण नहीं चाहता था कि लङ्कामें आतङ्क फैले। कितने राक्षस मारे गये, यह वह किसीको पता नहीं लगने देना चाहता था। अतः उसने आज्ञा दे रखी थी कि समरभूमिसे वानरोंके हटते ही राक्षसोंके शव समुद्रमें फेंक दिये जायँ। जो अत्यन्त आहत हों, जिनके अंग-भंग हो गये हों, उन्हें भी समुद्रमें फेंक दो। केवल वे उपचारके लिए उठाकर नगरमें लाये जावें, जो सामान्य उपचारसे पुनः युद्धके योग्य हो सकते हों।'

समरभूमि स्वच्छ करनेवाले राक्षसोंका दल पृथक था। वैसे वानर भी आहत, मूर्छित बहुत-से राक्षसोंको समुद्रमें फेंक देते थे। जो समुद्रमें गिरा उसे जलजीवोंने आहार बना लिया। फलतः युद्धभूमिमें मृत, आहत, मूर्छित बहुत-से राक्षस मिलते ही नहीं थे। औषधिका लाभ उन्हें कैसे मिलता।

रावणके पुत्रोंके दुर्ग-द्वारसे बाहर आते ही वानर यूथप उनपर टूट पड़े। त्रिशिरा नीलके द्वारा मार दिया गया। अङ्गदने नरान्तकको यम-

लोक भेज दिया। महोदरका उदर भी बालितनयने फाड़ दिया। अतिकाय द्वितीय कुम्भकर्णके समान पर्वताकार था। अस्त्रज्ञ था। धनुषटङ्कार करता बढ़ा तो वानर भागकर श्रीरामके समीप गये।

'यह रावणकी पत्नी धान्यमालिनीका पुत्र महासेनापति है।' विभीषणने श्रीरामको परिचय दिया—'इसका सूर्यके समान चमकता कवच अभेद्य है। ब्रह्मासे इसने वरदान पाया है। इसे शीघ्र मार दें।'

'मैं सामान्य वानरोंसे युद्ध नहीं करता।' वह वानरोंके प्रहारकी अवगणना करता श्रीरामके सम्मुख आया—'स्वयं युद्ध करो या कोई शूर तुम्हारी सेनामें हो तो उसे भेजो!'

'तू तो कलका बच्चा है।' लक्ष्मणको धनुष चढ़ाये आते देखकर उसने आक्षेप किया।

'मैं श्रीरामका बालक हूँ।' लक्ष्मणने ललकारा-'तेरी तो मैं मृत्यु हूँ। सम्हाल!'

दोनों ओरसे दिव्यास्त्रोंकी वर्षा होने लगी। सहसा लक्ष्मणके श्रवणमें अदृश्य सरसराते वायुदेवके शब्द पड़े—'कुमार! सृष्टिकर्ताके वरदानसे इसका कवच अभेद्य है। केवल ब्रह्मास्त्र उसे तोड़ सकता है।'

लक्ष्मणने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। अतिकायका अभेद्य कवच कट गया। लक्ष्मणने उसका सिर काट दिया। समाचार मिला तो रावण उद्विग्न हो उठा—'मेरे सब पुत्र मारे गये? राम-लक्ष्मणके समीप कितने दिव्यास्त्र हैं?'

'लगता है, लङ्कामें रामके गुप्तचर हैं। लक्ष्मणको कैसे पता लगा कि अतिकायका कवच ब्रह्मास्त्रसे ही कटेगा?' रावण क्रोधोन्मत्त था—'कोई सीताके समीप छिपकर अशोकोद्यानमें आता है? वानरोंके पद-चिह्न पुरीमें कहीं मिलते हैं? वानरोंकी उपेक्षा मत करो। मैं स्वयं युद्ध करने जाऊँगा।'

'पिताजी! आप अकारण व्याकुल हो रहे हैं। पुरीमें वानरोंके पद-चिह्न कहाँ नहीं हैं? प्रतिदिन ही तो वे दोनों उत्पाती वानर, जो दूत बनकर आये थे, परिखा कूदकर आ जाते हैं और यहाँ भवन ध्वस्त करते हैं। पुरीकी सुरक्षित से[illegible] आपको स्वयं अनेक भागोंमें स्थानान्तरित करनी पड़ी है।' इन्द्रजितने उठकर कहा—'आप अपने अवशिष्ट सेवकोंपर शंका

और क्रोध मत करें। राक्षसोंका दोष नहीं है। रामको सूचना देनेके लिए छोटे चाचा पर्याप्त हैं।'

'विभीषण!' रावणने अपने मस्तकोंपर हाथ पटके।

'आप इतने खिन्न क्यों होते हैं। अभी आपका पुत्र यह मेघनाद विद्यमान है।' इन्द्रजित उठ खड़ा हुआ—'क्या हुआ जो दोनों तपस्वी एक बार मेरे नागास्त्रसे मुक्त हो गये। मेरी विद्या, मेरा पराक्रम निःशेष नहीं हुआ है। मैं आज ही दोनोंको मार देता हूँ।'

'वत्स इन्द्रजित! दशग्रीवके कुलदीपक तुम्हीं शेष रहे हो।' रावणने पुत्रको हृदयसे लगाया—'वे दोनों तपस्वी पता नहीं कितने दिव्यास्त्रप्राप्त हैं। सभी सुर उनके सहायक हैं। तुम बहुत सावधानीसे उनसे युद्ध करना। अपने मन्त्रज्ञानका पूरा उपयोग करो। तुम्हारी यात्रा विजय यात्रा बने!'

पिताके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा करके इन्द्रजित पहिले अपने अनुष्ठान-स्थान निकुम्भिला मन्दिर गया। वहाँ उसने कवच उतारकर आचमन किया। अभिचार विधिसे अग्निमें आहुति देने लगा। हवन पूरा करके उसने काले पशुकी बलि दी। सविधि स्तवन करने लगा।

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। अतः आराधना सात्विक-राजस-तामस तीनों प्रकारकी होती हैं। तीनमें कोई आराधना सम्यक् विधिसे हो तो वह सम्पूर्ण प्रकृतिको—आधिदैवत जगतको अवश्य प्रभावित करती है। मेघनादकी आराधना तामस थी; किन्तु सविधि थी। उसका संकल्प पूरा हुआ। अग्निकुण्डसे एक दिव्य रथ प्रकट हुआ सारथि तथा अश्वोंके साथ। वह रथ अपने आरोहीको लेकर अदृश्य रह सकता था।

मेघनाद उस रथमें बैठा और अदृश्य हो गया। उसने राक्षसोंकी सेनाको अदृश्य रहकर ही आदेश दिया—'वानरोंपर आक्रमण करो! उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करो। वे तुमपर प्रबल आघात आज नहीं कर सकेंगे। मैं तुम सबकी रक्षा करूँगा।'

राक्षसोंका बल बढ़ गया। उनका सेनापति अदृश्य रहकर आक्रमण कर सकता है तो उनकी सुरक्षा सुनिश्चित है। मेघनादके लिए अब वानर-सेनामें प्रवेश समस्या नहीं थी। वह अन्तरिक्षसे चुन-चुनकर वानर यूथपोंको अपने विषम वाणोंका लक्ष्य बनाने लगा।

वानर पर्वत, वृक्ष लेकर दिशाओंमें दौड़ते थे, गगनमें कूदते थे; किन्तु किसपर आघात करें? उन्हें कोई आक्रान्ता दीखता नहीं था। मायावी शत्रु सबको देख रहा था और उसे कोई देख नहीं सकता था। फलतः वानर विफल होकर लौटते थे। उनके अंग उस अदृश्य आक्रमणकारीके वाणोंसे विद्ध होते जा रहे थे। वे व्याकुल होकर, तड़पकर भूमिपर गिरते गये।

सम्पूर्ण वानर-सेनामें कोई नहीं बचा जो अत्यन्त आहत होकर मूर्छित नहीं हो गया। हनुमान, अङ्गद, नल, नील, गय, गवाक्ष, द्विविद, मैन्द, जाम्बवन्त, सुग्रीव कोई सचेत नहीं रहा।

मेघनादने केवल विभीषणको छोड़ दिया। इसलिए नहीं कि उनको चाचा मानकर कृपा की। इसलिए कि उसके मनमें आया—'अपने अग्रजको त्यागकर अन्यकी शरण लेनेका परिणाम ये देखें। अकेले, अशरण भटकते फिरें। संसारमें कोई पद-रखनेको स्थान नहीं देगा, तब लङ्का-त्यागके परिणामका पता लगेगा।'

मेघनाद जानता था कि राम-लक्ष्मण दोनों दिव्यास्त्र ज्ञाता हैं। दोनों ब्रह्मास्त्र, पाशुपत अथवा नारायणास्त्र उठा ले सकते हैं। इन अस्त्रों-के लिए शत्रु सम्मुख ही हो, यह आवश्यक नहीं है। ये अस्त्र प्रयोक्ताके संकल्पके अनुसार त्रिभुवनमें शत्रु जहाँ भी हो, दृश्य या अदृश्य, उसे अवश्य मार देंगे। अत: मेघनादने दोनों भाइयोंको धनुष उठानेका अवसर ही नहीं दिया। उसने अदृश्य रहकर दोनोंको सम्मोहनास्त्रसे सम्मोहित-मूर्छित कर दिया और तब अन्यायपूर्वक अत्यन्त क्रूर—शूर-निन्दित कर्म किया उसने। दोनों मूर्छितोंपर बिषम वाण चलाये। उनका अंग-प्रत्यंग विद्ध करके, अपनी समझसे उन्हें निष्प्राण करके तब लङ्का लौटा।

जब मेघनाद युद्ध-भूमिसे गया, सम्पूर्ण वानर-सेनामें कोई जीवन चिह्न लक्षित नहीं होता था। सूर्यास्त हो चुका था। रात्रिका अन्धकार फैलने लगा था और वानरोंकी सेनापर मृत्युकी काली छाया फैल चुकी थी। *

---

* 'श्रीरामचरित मानस' की कथासे आप परिचित हैं। मेघनादका केवल लक्ष्मणसे युद्ध हुआ और लक्ष्मण उसकी शक्ति लगनेसे मूर्छित हो गये। वह कथा पूरी आप 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' में पढ़ सकते हैं। यहाँ महर्षि वाल्मीकिके वर्णनके अनुसार मुख्य कथा है। दोनों कथाएँ कल्पभेदसे सत्य हैं। वैसे दोनों कथाओंके मुख्यांश ले लिये गये हैं।

सञ्जीवनी-आनयन

अकेले अरण्यमें—मरुस्थलमें भटक जानेसे भी भयावह है कि अपने चारों ओर असंख्य शव पड़े हों और रात्रिका अन्धकार हो गया हो। अपनी पुकार सुननेवाला कोई न हो। मरणसे भी भीषण यातना दे गया मेघनाद विभीषणको।

विभीषणने उल्मुक (मशाल) प्रज्वलित की। वे उसे लेकर यह देखने चले कि कोई जीवित भी है या नहीं। श्रीराम-लक्ष्मणके शरीर सर्वथा निश्चेष्ट थे। हनुमानके समीप पहुँचे तो वे उठ बैठे। आञ्जनेय ब्रह्मास्त्रके द्वारा मूर्छित हो गये थे। अब वे भी विभीषणके साथ हो गये।

मैन्द, द्विविद प्रभृति सब निष्प्राण पड़े थे। सबके शरीर शर-जर्जर, थे। ऋक्षराज जाम्बवन्त दीखे तो उन्हें विभीषणने पुकारा। उन्होंने बहुत कष्टके साथ किसी प्रकार पूछा—'मुझे कुछ दृष्टि नहीं पड़ता है। स्वरसे मैंने पहिचाना है कि आप विभीषण हो। पहिले यह बतलाओ कि हनुमान जीवित हैं ?'

'आपने श्रीरामको, लक्ष्मणको, सुग्रीवको, अङ्गदको नहीं पूछा।' विभीषणने प्रश्न किया—'आपने पवनपुत्रको ही पहिले क्यों पूछा।'

'हनुमान जीवित हैं तो सबके जीवनकी आशा है। वे सब मृतोंको भी सजीव कर सकते हैं।' जाम्बवानने वैसे ही शिथिल स्वरमें कहा—'यदि वे केशरीकुमार जीवित नहीं हैं, तो जो जीवित हैं, वे भी मृतके समान हैं। उन्हें भी प्रातः मेघनाद मार सकता है।'

'आप मुझे आज्ञा दें!' पवनकुमारने उन वृद्ध ऋक्षराजके पैर पकड़ लिए।

'ओह! तो हम सब बच गये।' जाम्बवन्तके स्वरमें सन्तोष व्यक्त हुआ—'अब उपचारका उपाय सोचा जा सकता है।'

'गन्धमादनपर अब औषधि बची नहीं है।' हनुमानका स्वर शिथिल बना रहा। 'क्षीरोदधिकी औषधियाँ भी पहिले ही आ चुकीं।'

'लङ्कामें भिषक्-श्रेष्ठ सुषेण* रहते हैं।' अब विभीषणका मस्तिष्क भी सक्रिय हो गया—'वे संसारमें कहाँ कौन-सी औषधि हैं, उसके ज्ञाता हैं।'

'पवनपुत्र! यह तुम्हारे पराक्रमका समय है। जाम्बवन्तने सुझाया—'सुन ही रहे हो कि लङ्कासे महोत्सव वाद्योंकी ध्वनि आ रही है। वहाँ सब उत्सवमें, विजयोल्लासमें प्रमत्त हैं। तुम वैद्यको ले आ सकते हो।'

हनुमानजीको विभीषणने वैद्यके गृहका ठीक स्थान बतलाया। लङ्का पवनपुत्रकी देखी थी। सीधे सुषेणके गृहके समीप कूदकर पहुँचे। मनमें आया—'कुछ भी हो, यह शत्रु-पक्षका है। वहाँ जाकर पता नहीं क्या बहाना बनावेगा। इसके ग्रन्थ और औषधियाँ इसके गृहमें ही तो होंगी।' लङ्का बसी ही त्रिकूटके शिखरपर थी। सुषेणका गृह जिस विशाल शिलापर था, उसे समूची उखाड़कर आञ्जनेयने गृह-सहित समरभूमिमें लाकर धर दिया।

सुषेण एकाकी थे। परिवार उनके था नहीं। सेवक उत्सव मनाने चले गये थे। गृह उखाड़कर उठाया गया तो जाग गये। भूमिपर भवन उतरते ही द्वारसे निकले। विभीषण अञ्जलि बाँधे सामने मिले। सुषेणने गम्भीर स्वरमें कहा—'चिकित्सकका शत्रु-मित्र कोई नहीं होता। मुझे शीघ्र रुग्णके समीप पहुँचाओ।'

'यहाँ तो अधिकांश शर-जर्जर मृत पड़े हैं।' विभीषणने अत्यन्त खिन्न स्वरमें कहा।

'जिनके भी शरीर सुरक्षित हैं, वे मृत नहीं हो सकते।' सुषेणका स्वर स्वस्थ था—'आघात-जर्जर प्राणीके शरीरमें प्राण एक रात्रि अवश्य रहते हैं। वह सम्पूर्ण मृत सूर्योदयके पश्चात् ही होता है।'

'तुम्हीं यह कार्य कर सकते हो!' सुषेणने हनुमानकी ओर देखा—'हिमालयको लगभग पार करके कैलासके समीप द्रोणाचल शिखरपर मृत

---

*सुग्रीवके श्वसुर वानर सुषेण इनसे भिन्न हैं।

सञ्जीवनी , विशल्यकरिणी , व्रणरोपिणी और संरोहिणी औषधियाँ होती हैं। वे सब रात्रिमें प्रकाशित रहती हैं। उन्हें ले आओ। दो बातोंका घ्यान रखना—१. तुम्हें प्रभातसे पूर्व यहाँ पहुँच जाना चाहिये। २. पर्याप्त अधिक औषधिकी यहाँ आवश्यकता है।'

पवनकुमारने उसी क्षण आकाशसे छलाँग लगा दी ; किंतु इस बार दशग्रीव असावधान नहीं था। इन्द्रजितने जब नागास्त्रका प्रयोग किया था , उसे पता नहीं लगा था कि राम-लक्ष्मण कैसे स्वस्थ हो गये। उसे आशङ्का थी कि इन्द्र अमृतके द्वारा अब भी दोनों भाइयोंको जीवित कर दे सकते हैं। उसने चर नियुक्त कर रखे थे—'युद्ध-भूमिमें कोई बाहरसे आवे या वहाँसे कोई कहीं जाने लगे तो मुझे अविलम्ब सूचना दो।'

कोई सुर आनेका साहस न करे , इसके लिए रावण विशेष सावधान था। उसके चरोंने सूचना दी—'रात्रिके प्रारम्भमें ही वह वानर उठ बैठा , जिसने लङ्का जलायी थी। विभीषणसे कुछ मन्त्रणा करके परिखा कूदकर नगरमें आया और भिषक्-श्रेष्ठ सुषेणको गृह-सहित उठा ले गया। सुषेणने उसे कोई औषधि लानेको कहा है। वह अभी उत्तर दिशामें आकाश-मार्गसे जा रहा है। उसको रोकनेकी शक्ति हममें नहीं है।'

'तुम शीघ्रता करो ! मायावियोंमें तुम श्रेष्ठ हो।' रावण वहीं चरोंको छोड़कर कालनेमिके यहाँ पहुँचा। कालनेमिको उसने अपने सत्कारका भी समय नहीं दिया—'इस समय स्वागत-सत्कार नहीं। हनुमानको किसी प्रकार रोको !'

'आपकी उपस्थितिमें जिसने लङ्का जला दी , उसको रोकनेकी आशा आप मुझसे करते हैं ?' कालनेमि करबद्ध गिड़गिड़ाया—'राक्षसेन्द्र क्षमा करें ! यह सामर्थ्य मुझमें नहीं है।'

'तुमको अभी मरना है ?' दशग्रीवने खड्ग खींच लिया—'अत्यन्त आवश्यक न होता तो मैं स्वयं तुम्हारे समीप आता ? किसी भी प्रकार उसे केवल आजकी रात्रि रोके रहना है तुम्हें।'

'जो आज्ञा !' कालनेमि उठ खड़ा हुआ। मनमें उसने कहा—'अभी यहाँ मरनेसे रामदूतके हाथकी मृत्यु भली। कुछ क्षण और जीवन मिलता है इससे।'

महामायावी असुर कालनेमि। वह पूरे वेगसे बढ़ा। पवनकुमारसे आगे जाकर वनमें मार्गमें पड़नेवाले एक प्राचीन सरोवरके समीप मायासे मनोहर उद्यान प्रकट किया उसने। पर्णकुटी प्रकट हो गयी मायासे। मायावी राक्षस मायासे विशाल जटाधारी महामुनि बनकर वहाँ बैठ गया।

हनुमान पूरे वेगसे उत्तर जा रहे थे। कालनेमिकी मायाका उनपर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हें तीव्र प्यास लगी। कण्ठ सूखने लगा। चन्द्रोदय हो रहा था। नीचे जल देखने लगे तो मुनिका आश्रम दीखा। मुनि दीखे खुले गगनके नीचे शिलापर बैठे। मनमें आया—'अवश्य समीप जल होगा। मुनिसे पूछकर जल पी लूँ तो आगेकी यात्रा सुगम हो जायगी।

'ओह हनुमान्! तुम्हारा कल्याण हो! सफलकाम हो तुम!' प्रणाम करते ही मायावी मुनिने स्वयं कहा—'हम एकान्तवासियोंका मन तो इन्दीवरसुन्दर श्रीरामके समीप ही रहता है। गुरु-कृपासे मैं यहाँ बैठे भी उनकी भुवनपावनी लीलाका दर्शन करता रहता हूँ। उन पुरुषोत्तम-ने इस समय नरनाट्य करते हुए रावणके साथ युद्धकी क्रीड़ा प्रारम्भ की है। विजय तो उनकी सुनिश्चित है।'

'मुझे तीव्र प्यास लगी है। कृपा करके यह बता दें कि जल कहाँ है?' हनुमानजीने बीचमें ही हाथ जोड़कर प्रार्थना की। कालनेमि जानता था कि आञ्जनेय अत्यन्त रसिक हैं श्रीरामकथा-श्रवणके। उसने सोचा था कि कथा-श्रवणमें ये निमग्न हो जायेंगे तो रात्रि व्यतीत होनेका इन्हें पता नहीं लगेगा; किंतु सेवामें लगनेपर पवनकुमारसे प्रमाद हो, यह सम्भव नहीं था। प्राणोंको परमप्रिय लगनेवाले श्रीरामके सुयश-श्रवणका लोभ भी उन्हें विचलित नहीं कर सका।

'मैं तो भूल ही गया था। जल पी लो पहिले!' कालनेमिने अपना कमण्डलु आगे बढ़ा दिया। पहिलेसे कमण्डलुके जलमें उसने अत्यन्त तीक्ष्ण विष मिला दिया था। यही जल पिलानेके निमित्त तो उसने मायासे हनुमानमें पिपासा उत्पन्न की थी।

'इस अल्प जलसे मेरा तालु भी आर्द्र नहीं होगा।' हनुमानने हाथ जोड़ा—'आप मुझे जलाशयका पथ सूचित कर दें।'

'तुमको औषधि लेने भी तो जाना है। वे दिव्यौषधियाँ बिना मन्त्र-ज्ञानके दर्शन ही नहीं देतीं।' कालनेमिका जब विष पिलानेका प्रयत्न

विफल हो गया, उसने दूसरी योजना मनमें बना ली-– ' इन वृक्षोंके पीछे ही सरोवर है। जल पीकर, स्नान करके शीघ्र आ जाओ। मैं मन्त्र-दीक्षा दे दूँगा, जिससे औषधियोंको पहिचाननेका ज्ञान तुम्हें प्राप्त हो जाय।'

' आपका असीम अनुग्रह।' हनुमानने प्रणाम किया और सरोवरकी ओर चल पड़े। कालनेमिने सोचा था कि दीक्षामें अङ्गन्यास, करन्यास, मातृका न्यासादि करवानेमें ही वह रात्रि पूरी कर देगा।

हनुमानने सरोवरका जल पिया। स्नान करनेके लिए उसमें प्रवेश किया तो एक मादा मगरने उनका पैर पकड़ लिया। दूसरे पदसे एक भरपूर लात धमक दी पवनपुत्रने उसे। उसका मगर-देह तो उसे ऋषिके शापसे मिला था। श्रीरामदूतका चरणस्पर्श पाकर शापमुक्त हो वह पुनः अप्सरा होकर आकाशमें जाकर, हाथ जोड़कर बोली— ' आपकी पदरज पाकर मैं पवित्र हुई। वह जो महामुनि बना बैठा है, आपको विलम्बित करनेके प्रयत्नमें लगा राक्षस कालनेमि है।'

अप्सराके द्वारा इतनी सूचना मिलना पर्याप्त था। हनुमान सरोवरसे निकले। उस असुरके समीप आकर बोले—' मुनिराज ! आप मन्त्र पीछे देना मुझे। पहिले अपने उपयुक्त दक्षिणा स्वीकार करो।'

कालनेमिको सम्हलने, सोचनेका अवसर नहीं मिला। हनुमानने उसके कण्ठमें लांगूल लपेटकर उसे शिलापर पटक दिया। मरते समय कालनेमिका अपना रूप प्रकट हो गया। उसके मुखसे निकला—' हा राम!'

× × ×

हनुमान अब पूरे वेगसे उड़ चले। द्रोणाचल तक कुछ क्षणोंमें पहुँचे। पूरा शिखर ज्योतिर्मय औषधियोंसे जगमगा रहा था। मनमें आया— ' इनमें वे चार कौन जो वैद्यने बतलायी हैं। प्रत्येककी कितनी मात्रा ?'

' शत्रुपक्षीय वैद्य है। कोई बहाना कभी बना दे सकता है। उसे कोई अवसर नहीं मिलना चाहिए।' यह सोचकर हनुमानने पूरा शिखर उखाड़कर बायें हाथपर उठाया और लौट पड़े।

रात्रिका प्रथम प्रहर ही था। श्रीभरतलाल नन्दिग्राममें पर्णकुटीमें पादुका-पूजन पूर्ण करके जप करने चाँदनीमें आ बैठे थे। लौटते समय

हनुमानने सबसे छोटा आकाश-मार्ग पकड़ा था, अतः अयोध्याके ऊपरसे निकलना था उन्हें। भरतने अचानक देखा कि गगनमें कोई महाकाय एक प्रज्वलित पर्वत लिए उड़ा चला आ रहा है। मनमें आशङ्का हुई— 'कोई निशाचर है। अयोध्यापर हाथका पर्वत पटक दे सकता है। किसी मुनि-आश्रमको भी ध्वस्त कर सकता है। कहीं आक्रमण न करना होता तो पर्वत उठाये इतने वेगसे क्यों दौड़ा आता ?'

समीपसे धनुष उठाया। ज्यासज्ज किया। बिना नोकका बाण चढ़ाया। यह देखकर कि गगनचर ऐसे स्थानपर आ गया जहाँ नीचे गृह, उद्यानादि नहीं हैं, बाण छोड़ दिया। उस बाणके हृदयमें लगते ही हनुमानके मुखसे मूर्छित होते-होते निकला— 'राम! श्रीराम!'

'राम! श्रीराम!' भरतने सुना। धनुष फेंका और दौड़े— 'यह रामनाम लेकर गिरता प्राणी कौन? मैंने किसे मार दिया? मुझसे भक्तापराध हो गया? कोई श्रीरामका सेवक आहत हुआ ?'

हनुमान हाथ-पैर फैलाये भूमिपर गिरे। पर्वत-शिखरको पवनदेवने गगनमें ही सम्हाल लिया। दौड़े भरत आये। हनुमानको मूर्छित देखते ही उनके प्राण छटपटा उठे। 'भरत! तूने यह क्या किया? तू वैसे ही श्रीराम-विमुख था और उसपर यह अपराध ?'

'यदि मैं सच्चे हृदयसे श्रीरामका सेवक हूँ तो यह वानर स्वस्थ हो जाय!' भरत साश्रुलोचन हनुमानके समीप घुटनोंके बल बैठे। उनके हृदयपर दक्षिण हस्त रखे बोले— 'यदि इस जनपर उन सर्वेश श्रीरामका तनिक भी स्नेह हो तो यह वानर स्वस्थ हो जाय।'

'श्रीराम!' हनुमानने नेत्र खोले और उठ बैठे। श्रीभरतलालको देखते ही सहसा बोले— 'मेरे अनन्त दयाधाम स्वामी आप ?'

'भद्र! मैं चक्रवर्ती महाराज दशरथका द्वितीयपुत्र श्रीरामका अनुज भरत हूँ।' अपना परिचय देकर बोले— 'मुझसे अनजानमें अपराध हुआ। यदि तुम मुझे क्षमा कर सकते हो तो अपना परिचय देकर मेरे श्रवण पवित्र कर दो।'

'मैं श्रीरामका सेवक पवनपुत्र हनुमान आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम करता हूँ।' शीघ्रतापूर्वक उठकर आञ्जनेयने प्रणिपात किया— 'आपके दर्शन करके यह वानर आज पवित्र हो गया।'

'मेरे वे स्वामी कहाँ हैं ? कहाँ हैं हमारे छोटे भाई लक्ष्मण और अम्बा वैदेही ? वे सकुशल हैं ? क्या कर रहे हैं वे ?' हनुमानसे आतुरता-पूर्वक भरतने पूछा— 'तुम इस समय पर्वत लेकर कहाँ जा रहे थे ?'

हनुमानने थोड़े शब्दोंमें जो समाचार दिया, बहुत दारुण समाचार था वह। बहुत संक्षिप्त विवरण देकर हनुमानने कहा— 'देव ! मुझे अनुमति दें। मुझे वहाँ प्रभातसे पूर्व पहुँच जाना चाहिए।'

'तुम अयोध्याके आतुर प्राणोंको थोड़े क्षण दे सकते हो। अभी रात्रिका प्रथम प्रहर है। सूर्यास्तके पर्याप्त पश्चात् तुम चले हो और पूरा मार्ग पार करके, पर्वत लेकर लगभग एक तिहाई पथ लौट चुके हो।' भरतने अनुनयके स्वरमें कहा— 'माताएँ मुझे कैसे क्षमा करेंगी यदि मैं तुम्हें उनसे मिलाये बिना चले जाने दूँ।'

'मैं भी उनके पूजनीय पदोंका वन्दन करके अपनेको कृतार्थ मानूँगा।' हनुमानने स्वीकृति दे दी। चित्रकूटसे लौटनेके पश्चात् पहिली बार भरतने रथ स्वीकार किया। वे हनुमानके साथ अयोध्या आये। मार्गमें ही कुलगुरुको समाचार भेज दिया।

अयोध्याकी राजसभा मणिदीपोंसे नित्य आलोकित-- वह प्रज्वलित उल्मुकोंके प्रकाशसे जगमगा उठी। माताएँ पधारीं, राज-सदनकी तीनों पुत्रवधुएँ उनके साथ आयीं। महर्षि वशिष्ठ आये। शत्रुघ्नने समाचार देकर नगरके सम्मानित जनोंको, मन्त्रियोंको प्रजाप्रतिनिधियोंको बुला लिया। हनुमानने सबको प्रणाम किया। थोड़े शब्दोंमें श्रीरामका समाचार सीता-हरणसे अबतकका सुनाकर अन्तमें कहा— 'मैं चला तो मेरे आराध्यमें चेतना लौटने लगी थी ; किन्तु छोटे कुमार सर्वथा निश्चेष्ट थे।'

'हम दुर्दम दुष्ट दशग्रीवको और उसके राक्षसोंकी शक्तिको देख लेंगे !' महासेनापतिका सिंहनाद सर्वप्रथम गूँजा— 'लंकाको समुद्रमें डुबाकर, अपनी साम्राज्ञीके अपमानका प्रतिशोध लेना है हमें। कुमार ! आप मुझे आज्ञा दें। हम अभी प्रयाण करेंगे।'

महासेनापतिका शंख उनके अधरोंसे लगने ही वाला था। उन्होंने शत्रुघ्नकुमारकी ओर देखा। शत्रुघ्नने भरतकी ओर देखकर अनुमति चाही। गुरुदेवकी उपस्थितिमें भरत यह धृष्टता नहीं कर सकते थे। अयोध्याके

परम सञ्चालक महर्षि वशिष्ठ स्वयं उपस्थित थे। स्वाभाविक था कि भरत अनुमतिकी उनसे अपेक्षा करें।'

'शत्रुघ्न ! तुम्हें किसकी अनुमति चाहिए ?' सहसा माता सुमित्राका ओजस्वी स्वर सुनायी पड़ा—'ये वानर-श्रेष्ठ पर्वत ले जा रहे हैं तो अवश्य तुमको भी ले जा सकेंगे। लङ्का समीप नहीं है। सेनाको पहुँचनेमें समय लगेगा। राम शत्रुके स्थानमें एकाकी हो गये हैं। तुम जाओ। उनसे मेरा सन्देश कहना—'लक्ष्मणकी चिन्ता छोड़ दें ! वह स्वामीकी सेवामें शरीर देकर धन्य हो गया। सच्चे सेवकका कर्तव्य पूर्ण किया उसने। सेवक कर्तव्य पूर्ण करके समर-शय्या ले लेते हैं तो स्वामीका उनके लिए रुदन शोभा नहीं देता। रामको शत्रुका शमन करके वधू सीताके साथ अयोध्या लौटना चाहिए।'

'हनुमान ! मेरे रामसे कहना कि वह सीता और लक्ष्मणके साथ लौट सके तो अयोध्या लौटे।' माता कौसल्याके स्वरमें कोई कातरता नहीं थी—'अन्यथा उसे अयोध्या नहीं लौटना चाहिए।'

'नहीं! नहीं! नहीं!' सुमित्राजीने उच्च स्वरमें कहा—'हनुमान मेरा आदेश है, तुम यह सन्देश नहीं कहोगे। शत्रुघ्नको साथ ले जाओ। यह भी यदि अपने अग्रजके समान समर-शय्या ले ले तो सुमित्रा पुत्रवती मानेगी अपनेको। रामको तब भी सीता-सहित लौटना है।'

'अम्ब ! आप सब मुझे लज्जाहीना होकर बोलनेके लिए क्षमा करें !' हनुमान भी चौंके। इतना मधुर, इतना ओजस्वी नारी-स्वर होता है ? उन्होंने देखा—जैसे भगवती सीताकी ही दूसरी मूर्ति तनिक अवगुण्ठनवती होकर अपने स्थान पर उठ खड़ी हुई थीं। पवनपुत्रने पृथ्वीमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। वह ओजस्वी स्वर—'मेरे स्वामीको कुछ नहीं हुआ है ! उन्हें कुछ नहीं हो सकता। आप देखते हैं, मेरी चूड़ियोंमें सब अभग्न हैं। मेरे ललाटका सिन्दूर-विन्दु समुज्वल है। उर्मिला स्वस्थ, जीवित है, तब तक इसके आराध्यको कुछ हो कैसे सकता है ?'

उर्मिलाने दोनों हाथ उठाकर चूड़ियाँ दिखला दीं और तनिक देर—क्षणार्धको अवगुण्ठन ललाटसे हटाया तो महर्षि वशिष्ठने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया—'देवि ! तुम महासती हो। तुम्हारे संकल्पको अन्यथा करनेकी शक्ति सृष्टिकर्तामें भी नहीं है। दूसरा कुछ भी न हो तो

भी लक्ष्मण तुम्हारे सतीत्वके तेजसे ही सुरक्षित हैं। उनके ऊपर आघात करनेवाले अज्ञने अपनी आयु समाप्त कर ली। अब वह दूसरा सूर्यास्त नहीं देख सकेगा।'

'यहाँसे किसीको जानेकी आवश्यकता नहीं है। मुमूर्षु दशग्रीवकी विजयका सम्पूर्ण सुयश वत्स श्रीरामको प्राप्त करने दो!' महर्षिकी वाणी पर अयोध्यामें अविश्वास करनेवाला कोई नहीं था। हनुमानको भी स्पष्ट लगता था कि इन सृष्टिकर्ताके पुत्रने इन्द्रजितकी आयु तो समाप्त ही कर दी, रावणके जीवन-दिन भी अत्यल्प कर दिये। महर्षिका स्वर तनिक प्रसन्न हुआ— 'यहाँ सब क्यों भूलते हैं कि श्रीरामकी वनवास- अवधि समाप्तप्राय है। हमें अयोध्यामें उनके स्वागतका समारम्भ करना है।'

सचमुच इस अवधिकी ओर तो अब तक किसीका ध्यान गया ही नहीं था। महासेनापतिका शंखयुक्त कर नीचे आ गया। हनुमानने पृथ्वीमें मस्तक रखकर सब माताओंको, कुलवधुओंको, शत्रुघ्नको, भरतको भी प्रणाम करके महर्षिके पदोंमें मस्तक रखा तो उन्होंने पूरा दक्षिण हस्त फैलाकर आशीर्वाद दिया— 'विजयी भव! सफलकामो भव! शुभस्ते पन्थानः सन्तु।'

समय नहीं था। माताओंने संकेतसे अनुमति दे दी। श्रीभरतके साथ शत्रुघ्न भी हनुमानके पार्श्वमें रथमें बैठे। रथ नन्दिग्राम आया। अब भरतजीने कहा— 'पवनकुमार! हमने तुम्हारा पर्याप्त समय नष्ट कर दिया। तुम्हें बहुत दूर जाना है। पर्वतको लेकर मेरे बाणपर बैठ जाओ। मैं तुम्हें अभी लङ्का पहुँचा देता हूँ।'

'मेरे भारको वाण कैसे वहन करेगा?' एक बार हनुमानके मनमें आया। दूसरे ही क्षण सावधान बुद्धिने सुझाया— 'जिनके शरके सन्धान करते ही सागर खौल उठा था, उनके अनुजकी शक्तिको अल्प समझनेकी भूल करते हो? उनका वाण अयोध्याकी समस्त सेनाके सहित तुम्हारा वहन कर सकता है।'

अब यह भी समझमें आ गया कि लगभग दो सौ योजन दूर लङ्का पर चढ़ाई करनेके लिए अयोध्याके महासेनापति किस बलपर शंखनाद करने जा रहे थे। हनुमानने हाथ जोड़े। विनम्र स्वरमें प्रार्थनाकी— 'आप आज्ञा दें। आपके अनुग्रहसे मैं पर्वत लेकर वाण-वेगसे ही जा सकूँगा।'

'प्रभुसे मेरा प्रणाम कहना !' भरतने अङ्कमाल दी—'अब तुम प्रस्थान करो !'

हनुमानने भरतलालके पदोंमें प्रणिपात किया—उनकी प्रदक्षिणा की और गगनमें पहुँचकर वाम हस्तपर पर्वतको सम्हाला तो शब्दसे भी अधिक तीव्र वेगसे जाते उन पवनपुत्रका जयघोष नीचे सुनायी पड़ा—'जय श्रीराम !'

× × ×

लङ्काकी समर-भूमिमें विभीषण प्रतीक्षा कर रहे थे। जाम्बवान प्रतीक्षा कर रहे थे ; किन्तु उठनेकी शक्ति उनमें नहीं थी। श्रीराम सचेत हो गये थे ; किन्तु उठ नहीं सकते थे। वे अनुजसे लिपट विलाप कर रह थे—'लक्ष्मण ! अकेले मुझे इस शत्रुपुरीमें त्यागकर तुम चले गये ! तुम सब कुछ त्यागकर मेरे साथ वनमें आये। माता सुमित्राको मैं क्या मुख दिखाऊँगा ? वधू उर्मिलासे क्या कहेगा राम ? वह सती होगी और मैं देखूँगा उसे अग्नि-ज्वालामें बैठे ? नहीं, राम अब जीवित रहकर क्या करेगा।'

सुषेण चिकित्सक थे। शान्त प्रतीक्षा कर रहे थे। विभीषण अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे। श्रीराम तनिक-तनिक देरपर पूछते थे—'रात्रि कितनी शेष है ? हनुमान आ रहे हैं ?'

'अर्धरात्रि बीत गयी ?' विभीषणसे सुनकर श्रीरामकी व्याकुलता इतनी बढ़ गयी कि वे प्रलाप करने लगे। तभी गगनमें जयघोष गूँजा—'जय श्रीराम !'

हनुमानने पर्वत भूमिपर रखा तो सबसे पहिले सुषेण उठे। वे उस शिखरपर चढ़कर कुछ औषधियाँ लेकर उतरे। श्री राम-लक्ष्मणके समीप जाते हुए उन्होंने हनुमानको ही आदेश दिया—'भद्र ! पर्वतको पूरी सेनामें घुमा दो। औषधियोंकी गन्ध अपना काम पूरा कर देगी।'

मृत सञ्जीवनीकी गन्धसे मृत भी जीवित हो गये। विशल्यकरिणीके प्रभावसे शरीरमें रह गये बाण स्वतः बाहर हो गये। व्रणरोपिणीने घाव ऐसे भर दिये कि उनका चिह्न भी शेष नहीं रहा। संरोहिणीने छिन्नाङ्ग पुनः पूर्ण कर दिये। सुषेणको उनके गृह समेत लंकामें यथास्थान स्थापित करके जब पवनपुत्र लौटे, श्रीराम-लक्ष्मण पूर्ण स्वस्थ थे। वानरी सेना जयनाद करती कूद रही थी।

मेघनाद-वध

'अभी—आज अभी आक्रमण कर दो लङ्कापर।' सुग्रीव सबसे अधिक क्रुद्ध थे— 'दुष्ट दशग्रीव ऐसे युद्धमें नहीं आवेगा। पुरीमें प्रवेश करके उसे केश पकड़कर खींच लाओ।'

वानरेन्द्रका आदेश पाकर वानरोंने ब्राह्म मुहूतमें ही धावा बोल दिया। गगन गूँजने लगा—

'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयतु सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥'

अभी राक्षस असावधान थे। वानरोंके प्रचण्ड आक्रमणका वेग उनके लिए असह्य हो गया। इस आक्रमणमें निकुम्भ, कुम्भ, यूपाक्ष, शोणिताक्ष आदि कुम्भकर्णके सब पुत्र मारे गये।

दशग्रीव चकित रह गया। इन्द्रजितने कल सायंकाल सबको मार दिया था, यह प्रातःकाल सब जीवित होकर लड़ने कैसे आ गये? लगता है, कालनेमि असफल हो गया। औषधि इनके समीप पहुँच गयी।

अस्त्रप्रिय मकराक्षको उसने युद्ध करने भेजा और भिषक् सुषेणको बुलवाया। सुषेणने आकर प्रणाम किया तो क्रुद्ध रावण बोला— 'केवल वानरोंको जीवित करना जानते हो?'

'राक्षसेन्द्र! आप क्रोधका त्याग करें। मैं चिकित्सक हूँ। मेरे सम्मुख रुग्ण होता है, राक्षस या वानर नहीं।' सुषेणने निर्भीक उत्तर दिया— 'मैंने कभी आपकी सेवा अस्वीकार की है?'

'अभी संसारमें कहाँ-कहाँ तुम्हारी औषधियाँ हैं जो मृत को जीवित कर देती हैं।' दशग्रीवने सबको नष्ट कर देनेका विचार कर लिया था।

'केवल तीन स्थानोंपर वे प्राप्य थीं, क्षीरोदधि, गन्धमादन और द्रोणाचलपर।' सुषेणने कहा— 'तीनों स्थानोंकी वे लोग ले आये।'

'इसका अर्थ कि औषधियाँ समाप्त हो गयी। सन्तोषसे दशग्रीव बोला—'अब यदि उन्हें मार दिया जाता है तो फिर इसी प्रकार उन्हें कोई जीवित नहीं कर सकता।'

'यदि देवता उन्हें अमृत देकर जीवित न कर दें।' सुषेणने कहा—'जहाँ तक मैं जानता हूँ, अब औषधियाँ शेष नहीं हैं। एक बार उखाड़ देनेपर उनको उगनेमें पर्याप्त समय लगता है। वे रखी हुई निष्प्रभाव होती हैं।'

सुषेणको रावणने विदा कर दिया। इस कर्त्तव्यनिष्ठ वैद्यके प्रति निष्ठुर होनेसे उसकी अपनी ही हानि थी। दूसरी ओर मकराक्षने जाकर सीधे श्रीरामको ललकारा—'वानरों और राक्षसोंका व्यर्थ वध करानेसे क्या लाभ? तुममें शौर्य है तो मुझसे द्वन्द्व युद्ध करो। जो अस्त्र तुम्हें प्रिय हो, उसे चुन लो!'

'धन्यवाद!' श्रीराम हँसे। 'हम तो धनुर्धर हैं। तुम अस्त्र-प्रयोग करो।'

मकराक्षके बाणको कट ही जाना था। स्वयं मकराक्षको श्रीरामके अमोघ शरने मस्तक काटकर मुक्त कर दिया।

'बेटा! तुम अमित पराक्रम हो। तुम्हारे अस्त्र-ज्ञानकी संसारमें समता नहीं है। एक बार राम-लक्ष्मणको फिर मार दो।' रावणने इन्द्रजितको बुलाकर उसकी प्रशंसा करके कहा—'मैंने सुषेणसे पूछ लिया। अब कहीं औषधियाँ नहीं हैं। अब वे मार दिये जायँ तो उन्हें जीवित नहीं किया जा सकेगा।'

'आप आश्वस्त रहें! मैं मिथ्या तापसोंको आज अवश्य मार दूँगा!' मेघनादने पिताको आश्वासन दिया।

अपना वही सदाका क्रम मेघनादको अपनाना था। वह निकुम्भिला मन्दिर गया। रक्तवस्त्रधारिणी स्त्रियाँ उपस्थित हुईं। अभिचार विधिसे हवन प्रारम्भ किया उसने। विभीतक (भल्लातक)-की आहुतिसे प्रसन्न अग्निदेवने सदाके समान उसे अदृश्य रहने वाला रथ दे दिया।

'मेघनाद आ गया!' जैसे ही अन्तरिक्षसे अदृश्य मेघनादने बाण-वर्षा आरम्भ की, वानरोंमें कोलाहल उठा। वे व्याकुल होकर श्रीरामके समीप भागे।

'मैं इन मायावी राक्षसोंको मिटाकर आज पृथ्वीको पवित्र कर दूँगा।' अनन्तपराक्रम लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने धनुष चढ़ाया और ब्रह्मास्त्रके प्रयोगका सङ्कल्प करने चले।

'सम्पूर्ण राक्षसकुलके संहारका सङ्कल्प उचित नहीं है।' श्रीरामने अनुजको रोका— 'इससे तो भागते, युद्धविमुख, आहत और अपने आश्रित विभीषण भी मारे जायँगे। तुम केवल इस मायावीको मारनेका सङ्कल्प करो।'

मेघनाद अस्त्रज्ञ था। वह इस बार भी अदृश्य रहकर राम-लक्ष्मण-पर प्रथम प्रहार करके उन्हें धनुष उठानेका अवकाश नहीं देना चाहता था; किंतु उसकी तनिक-सी त्रुटिसे यह अवसर हाथसे निकल चुका था। वह अपनी भूल समझ गया। वानरोंपर बाण-वर्षा करके उसने इन दोनों भाइयोंको सावधान कर दिया था और लक्ष्मण तो ब्रह्मास्त्रोंमें-से भी ब्रह्मशिरका प्रयोग करने जा रहे थे। यह वह अदृश्य रहकर देख रहा था। अतः युद्धभूमिसे भाग गया।

'मेघनाद भाग गया!' वानरोंने कोलाहल किया। वह अन्तरिक्षमें दृश्य बनकर ही भागा था, जिससे उसे भागते सब देख लें। लक्ष्मण उसे पलायन करते देखकर अस्त्र प्रयोग न करें। उसका उद्देश्य पूरा हो गया। हँसकर रामानुजने प्रत्यंचा उतार ली। भागते शत्रुपर तो शूर प्रहार करते नहीं।

'अब?' मेघनाद समझ गया कि वह अदृश्य रहकर भी अब आघात करनेका लाभ नहीं उठा सकता। अब दोनोंमें कोई राजकुमार उसे पहिले ही प्रहारमें किसी अमोघास्त्रका प्रयोग करके मार देंगे। उसने माया-प्रयोगका निश्चय किया— 'ये स्वयं शरीर त्याग करें, ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी होगी।'

'मेरे स्वामी! मैंने कभी आपसे कोई प्रार्थना नहीं की। आपको कभी कोई क्लेश नहीं दिया। आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा रही है!' मेघनाद चिन्तामग्न अपने सदन पहुँचा तो उसकी परमसती पत्नी प्रमिलाने उसका पैर पकड़ा— 'आज इस अनुचरीका अनुरोध स्वीकार कर लें। आज मेरा दक्षिण नेत्र और भुजा स्फुरित हो रही है। आप समरभूमिमें आज मत जाइये।'

'तुम सहज भीरु हो !' मेघनादने हँसकर पत्नीको उठाया— 'शत्रु द्वारपर सिंहनाद कर रहा है। मैंने पिताको आश्वासन दिया है। अब प्राणभयसे भवनमें कैसे बैठा रहा जा सकता है ? तुम स्वयं कहती हो कि तुम्हारा सौभाग्य तुम्हारे सतीत्वसे सुरक्षित है।'

'यह सत्य होनेपर भी अपूर्ण सत्य है स्वामी !' प्रमिला (सुलोचना) ने रुद्ध कण्ठ कहा— 'आज मेरा विश्वास विचलित हो रहा है। सबकी शक्ति-सीमा है। सीता महासती हैं और कोई और हैं—मेरा हृदय कहता है, कोई और हैं, सम्वतः रामके अनुजकी सहधर्मिणी। मेरे सतीत्वकी शक्ति उनकी अदृश्य शक्तिके सम्मुख कुण्ठित होती लगती है। आप आज मेरा अनुरोध मान लें। मुझे दिशाएँ अन्धकारसे ढकती लगती हैं। मेरे करोंके कङ्कणोंमें एक स्वतः भग्न हो गया।'

'मैं युद्ध करने अभी नहीं जा रहा हूँ।' इन्द्रजितने पत्नीको आश्वासन दिया। वह युद्ध करने नहीं, माया-प्रदर्शन करने जा रहा था। वह जब नगरके पश्चिम द्वारसे रथपर बठा निकला, उसके रथपर रुदन करती माया-निर्मित सीता बैठी थीं। वे आर्तस्वरमें पुकार रही थीं— वानरो ! इस दुष्टसे मेरी रक्षा करो ! पवनपुत्र, बचाओ ! लक्ष्मण दौड़ो !'

'अम्बा !' हनुमानने दूरसे देखा। उनको भ्रम हो गया तो दूसरे वानरोंने तो वैदेहीको देखा ही नहीं था। मेघनादने केश पकड़ा— 'मैं इसको मारे देता हूँ। यही सब विपत्तिका मूल है।'

'हाय ! यह दुष्ट मुझे मार रहा है। कोई रक्षा करो !' वह माया-सीता चिल्ला उठीं।

हनुमान छीनने झपटे ; किंतु तबतक मेघनादने खड्गसे जनेऊ काट-काटकर (बायें कन्धेसे दाहिनी कुक्षि तक) उस सीताके दो टुकड़े कर दिये और गर्जना की— 'अब तुम सबका यह युद्धोद्योग व्यर्थ हो गया।'

'हम तुझे और दशग्रीवको मारकर इसका प्रतिशोध लेंगे।' क्रुद्ध हनुमानने गर्जना की। उन्होंने भारी पर्वत-शिखर मेघनादपर फेंका। मेघनादने बाण मारकर उस पर्वतके टुकड़े कर दिये ; किंतु तत्काल रथ लौटाकर नगरके भीतर भाग गया। उसके साथ जो सेना आयी थी, वह पवनपुत्रके क्रोधानलमें भस्म हो गयी।

'हनुमान दुष्कर कर्म कर रहे हैं। वे अकेले इन्द्रजितसे युद्धमें लगे हैं।' श्रीरामने जाम्बवन्तसे कहा— 'उनकी सहायता करनी चाहिए।'

जाम्बवन्त आज्ञा पाकर चले तब तक मेघनाद भाग चुका था। वानर दुःखी लौट रहे थे। हनुमानके नेत्रोंकी अश्रुधारा रुकती नहीं थी। वे दौड़े आये और श्रीरामके चरणोंपर गिर पड़े। बड़ी कठिनाईसे कह सके— 'दुष्ट मेघनादने मेरे सामने श्रीजनकनन्दिनीका वध कर दिया।'

'सीता! वैदेही!' श्रीराम सुनते ही मूर्छित होकर गिरे। सब वानरोंने उन्हें घेर लिया। लक्ष्मण अग्रजका आलिंगन करके क्रन्दन करने लगे— 'आपने धर्मका दृढ़ आचरण किया, वह क्या व्यर्थ चला गया? क्या धर्म भी अपने रक्षककी रक्षा नहीं करता?'

कोई भी अनर्थ सम्भव था। लक्ष्मण क्रोधमें आकर कुछ भी कर सकते थे; किंतु इस क्षण विभीषण अपने मन्त्रियोंके साथ आ गये। वे यह पता लगाने गये थे कि इन्द्रजित क्या करना चाहता है। युद्ध-भूमिसे विमुख सब वानर श्रीरामके समीप एकत्र हो गये हैं, यह देखकर किसी अनर्थकी आशंकासे वे दौड़े आये थे।

'कुमार! आप भी मायावी मेघनादकी मायासे भ्रान्त हो गये?' वानरोंको रुदन करते देखकर विभीषणने हनुमानसे इस व्याकुलाका कारण पूछा। सुनते ही लक्ष्मणसे बोले— 'मेघनाद तो सीताके समीप नहीं पहुँच सकता। वह उसका माया-दर्शन था।'

'माया-दर्शन?' अब श्रीराम चौंककर उठे। लक्ष्मण और सब वानर भी विभीषणका मुख देखने लगे।

'यदि वे सचमुच श्रीसीता थीं तों उन्हे वह आप दोनोंके सम्मुख क्यों नहीं ले आया? उस अदृश्य रहनेवालेके लिए ऐसा करना कठिन था?' विभीषणने दृढ़ स्वरमें कहा— 'कहाँ है वैदेहीका शव?'

'उसे तो वह रथमें ही ले गया!' हनुमान भी चौंके और अब।

'वह उसका वहाँ अग्नि-संस्कार करेगा या समाधि बनाकर पूजेगा?' विभीषणने स्पष्ट किया— 'वास्तविक सीता होतीं तो शव वह यहीं छोड़ जाता। उस माया-शरीरसे गिरा रक्त भी वहाँ नहीं मिलेगा।'

बहुतसे वानर दौड़े। दो क्षणमें आकर उन्होंने बतला दिया—'वहाँ तो भूमिपर दो बूँद रक्त भी नहीं है।'

'वह निकुम्भिला मन्दिरमें जाकर राक्षस-मेध यज्ञ करने बैठा है।' विभीषणने बतलाया—'वहाँ बहुत धूम्र उठते आप देख रहे हैं। यदि यह यज्ञ पूरा हो गया तो मेघनाद लगभग अमर हो जायगा। उसे मार देना आवश्यक हो गया है। मेरे साथ आप लक्ष्मणको भेजें। पूरी सेना वहाँ नहीं जा सकती। अन्यथा दशग्रीव प्रतिकार करने पहुँच जायगा। चुने वीरोंको लेकर वहाँ पहुँचना पड़ेगा।'

'लक्ष्मण! मैं इन्द्रजितकी माया समझता हूँ। वह बलवान है। ब्रह्मास्त्र-वेत्ता है। अदृश्य रह सकता है।' श्रीरामने अनुजको आदेश दिया—'अब वह अपने मन्त्र-ज्ञानका दुरुपयोग करनेपर उतर आया है। अतः इस सुर-साधु-उत्पीडकको आज मार दो। हनुमान, अङ्गद, जाम्बवान, नील तुम्हारे साथ जायँगे। विभीषण मार्ग-दर्शन करेंगे।'

'आपके इन श्रीचरणोंकी शपथ!' लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध थे आज। अग्रजकी परिक्रमा करके, उनका पादस्पर्श करके प्रतिज्ञा की—'समस्त सुर-असुर भी सहायक होकर आ जायँ तो भी मैं आज उस मायावीको अवश्य मार दूँगा।'

अरुण नेत्र, धनुष चढ़ाये लक्ष्मण चले। विभीषण मार्ग-दर्शन कर रहे थे। परिखाकी लगभग आधी परिक्रमा करके लम्बा मार्ग पार करनेके पश्चात् रजत-शिखरके दूसरी ओर वे निकुम्भिला मन्दिर पहुँचे। हनुमान भी चकित रह गये। सबको लगा कि इतना दुर्गम, इतना गुप्त स्थान विभीषणके मार्ग-दर्शन बिना पाया नहीं जा सकता था।

'हम तुझे और रावणको मारकर इसका प्रतिशोध लेंगे!' हनुमान-का यह वाक्य सुनकर मेघनाद चौंक गया था। वह इसीसे युद्ध-भूमिसे तत्काल भागा था—'यह प्रतिशोधकी भावना लक्ष्मणमें, राममें भी जाग सकती है। उनके समीप ब्रह्मास्त्र है, पाशुपतास्त्र है, सम्भव है नारायणास्त्र भी हो। उनमें क्रोध जागे, इससे पूर्व अपनेको सुरक्षित-अमरप्राय कर लेना आवश्यक है।'

अनुष्ठान—एकमात्र उपाय अनुष्ठान था। अत्यन्त शीघ्र सिद्धि तो उग्रतर तामस अनुष्ठानोंसे ही प्राप्त होना सम्भव है। वैसे भी राक्षसोंकी

आस्था राजस-तामस तन्त्रोंपर ही थी। मेघनाद महातान्त्रिक। वह अविलम्ब निकुम्भिला मन्दिर पहुँचा। उसने सैकड़ों राक्षस दौड़ाये। आवश्यक सामग्री क्षणोंमें एकत्र हो गयी। काले वस्त्र पहिनकर वह आचमन करके श्मशान-कालिकाको प्रसन्न करने रक्षोमेध यज्ञ करने बैठ गया। विशाल सरोवरके समान महाकुण्डमें सम्पूर्ण भैंसों, सुरा और रक्तकी आहुति देने लगा। गगन उठते धूम्रसे भर गया। दिशाओंमें रक्त-मांस जलनेकी दुर्गन्ध व्याप्त हो गयी।

'यहाँ अभी स्वयं राक्षसेश्वर भी आवें तो प्रवेश मत करने देना।' मेघनादने अपने विश्वस्त सैनिकोंकी पूरी सेनाको उस गुप्त गुहा-मन्दिरकी रक्षामें नियुक्त किया।

'कुमार! अपने समीप बिलम्बित होनेका तनिक भी अवकाश नहीं है।' विभीषणने सावधान किया— 'मेघनादका यह अनुष्ठान अल्पकालिक है। यह पूरा हो गया तो अवश्य उसे कुछ वर्षोंके लिए अवध्य बना देगा। सावधान! वह यज्ञ करते हुए भी दिव्यास्त्र प्रयोग कर सकता है। इस मेघकृष्ण राक्षस-सेनाको अविलम्ब मार दो। इनका व्यूह भङ्ग करके ही हमको इन्द्रजितके पास पहुँचना है।'

'दम्भी दुष्ट! युद्धसे भागकर यहाँ छिपा बैठा है?' हनुमानने मेघनादको ललकारा। लक्ष्मणने सुरक्षापर नियुक्त सेनाका संहार एक ही बाणसे कर दिया था। विभीषणके साथ सब मन्दिर-प्राङ्गणमें पहुँच चुके थे। नील और जाम्बवन्तने महिषोंको बन्धन-मुक्त करके बाहर हाँक दिया। रक्त और सुराके पात्र पटककर फोड़ दिये। यज्ञ-पात्रोंको छीनकर तोड़ डाला।

'कुलघ्न! कुल-कलङ्क! तुम इन लोगोंको ले आये हो? मेघनादने विभीषणकी भर्त्सना की 'जहाँ पालित हुए, जहाँके अन्न-जलसे जीवित रहे, उसीके साथ विश्वासघात करते तुम्हें लज्जा नहीं आती?'

'तू अब मुझे शिक्षा देने चला है? अपने घरमें पलनेवाले सर्प-वृश्चिक पहिले मार दिये जाने चाहिए।' विभीषणने भी फटकारा— 'विश्वके सत्पुरुषोंका विनाश करनेको उद्यत दुष्टोंको अभय कर देना घोर अधर्म है। उन्हें मिटा देना आवश्यक है।'

हनुमानने पैरकी ठोकर मारकर कुण्डके समीपकी वेदियाँ ध्वस्त कर दी थीं। कुण्डकी मेखलाएँ तोड़ दी थीं। अग्निमें समीपसे उठाकर बहुत-सा जल डाल दिया था। मेघनाद अनुष्ठान-भ्रष्ट होनेसे निराश, क्रुद्ध उठा। उसने आग्नेय दृष्टिसे हनुमानकी ओर देखकर धनुष उठाया।

'कुमार सावधान ! यह दुष्ट पवनपुत्रपर ब्रह्मशिरका प्रयोग करने जा रहा है।' विभीषणने मेघनादके मन्त्रोच्चारणमें हिलते ओष्ठ देखकर लक्ष्मणको सचेत किया।

लक्ष्मणके प्रहारने मेघनादका सङ्कल्प नष्ट कर दिया। व्याकुल होकर वह मन्त्रोच्चारण बीचमें भूल गया। अब लक्ष्मणपर दिव्यास्त्र वृष्टि करने लगा। दोनों प्रलय पावकके समान दुर्धर्ष, दोनों दिव्यास्त्रोंके मर्मज्ञ। लगा कि प्रलय सन्निकट है। मेघनादने दौड़कर अपने अदृश्य रहनेवाले रथपर बैठ जानेका प्रयत्न किया। रथ अभी प्राङ्गणके बाहर ही था; किंतु लक्ष्मणके प्रचण्ड बाणोंसे वह रथ, सारथि, अश्व उसी क्षण नष्ट हो गये। मेघनाद गदा उठाकर दौड़ा। उसे भी सौमित्रने काट फेंका।

'पाशुपतास्त्र ?' मेघनादको स्मरण आया। उसका धनुष कट चुका था। दूसरा धनुष उठाने लपका।

'कुमार ! इसका शीघ्र वध करो !' विभीषणने फिर सचेत किया—'दशग्रीवका यह अन्तिम सहारा है। कोई अमोघास्त्र उठा सकता है।'

'यदि श्रीराम सत्यसन्ध, धर्मात्मा हैं तो यह शायक इस मायावी-को मार दे ! लक्ष्मणके करोमें उनके त्रोणका सबसे समुज्वल, सबसे प्रचण्ड महाशायक था। स्थिर चित्तसंकल्प करके उसे उन्होंने चढ़ाया। प्रत्यञ्चाको कान तक खींचकर बाण छोड़ दिया।

उस बाणने किरीट-कुण्डल-सहित इन्द्रजितका मस्तक काट दिया। सहसा गगनसे सुरोंने सुमन-वृष्टि प्रारम्भ की। जय-ध्वनि गूँजने लगी 'अनन्तविक्रम श्रीरामानुजकी जय !'

'आर्यपुत्र विजयी हुए ! अयोध्याके राजसदनमें, अपने अन्तःपुरके एकान्त कक्षमें हनुमानके जानेके पश्चात् स्थिर, एकाग्रचित्ता, दृढासना बैठी परमसती उर्मिलाके अंकमें एक अरुण विकचपद्म अचानक अन्तरिक्षसे

गिरा तो चौंककर उन्होंने नेत्र खोले। पुष्पको मस्तकसे लगाकर माता कौसल्याके समीप पहुँची— 'यह आशीर्वाद-सुमन आया है।'

'वत्से! लक्ष्मणकी विजय उसी समय सुनिश्चित हो गयी, जब तू उसका संकल्प करके एकाग्रमना बैठ गयी।' माताने पुत्रवधूको हृदयसे लगाया— 'स्वयं प्रलयंकर भी प्रतिपक्षमें होते तो तुझ जैसी सतीके संकल्पके सम्मुख उन्हें पराजित होना पड़ता।'

'विजय—स्वामीकी विजय!' रावणके राजसदनमें अपने अन्तःपुर-में प्रमिला भी एकाग्रचित्ता बैठी थी; किंतु बार-बार कोई अदृश्य कर उसे झकझोर देता था— 'नहीं! यह सम्भव नहीं।'

'नहीं! नहीं!' प्रमिला बार-बार चीत्कार करती थी। उसे अपने चारों ओर अन्धकार घिरता लगता था। उसकी एकाग्रता बार-बार नष्ट होती थी। अन्तमें जब उसके करोंका कंकण अकारण कड़ाक करके टूटा, वह मूर्छित होकर गिर पड़ी— 'हाय! स्वामी गये! हार गयी मैं। मेरी अदृश्य संस्पर्धिनी! यह आसुरी शाप देती है, तुम्हें भी स्वामीके पीछे सती ही होना पड़ेगा।'

'कौशल्यानन्दवर्धन रघुकुलमुकुटमणि श्रीरामकी जय!' लक्ष्मण-ने आकर अग्रजके पदोंपर मस्तक रख दिया। विभीषण, जाम्बवन्त आदिने भी प्रणाम किया। हनुमानने मेघनादका छिन्न मस्तक उनके सम्मुख रखा।

'तुमने आज असाध्यको साध्य कर दिया!' श्रीरामने अनुजको हृदयसे लगाया।

'जो द्वादश वर्ष निराहार, निद्रारहित ब्रह्मचर्यव्रती रहे, वही इसे मार सकता था।' श्रीरामने सुनाया तो लक्ष्मणने मस्तक झुका लिया। वानर भले आश्चर्यसे उनकी ओर देखें; किंतु ये सब व्रत तो उनके लिए अयोध्या छोड़नेके समयसे स्वाभाविक हो गये थे और उसे तो अब चतुर्दश वर्ष पूरे होने वाले थे।
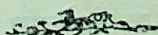
प्रमिला-सती

अविराम तीन दिन-रात इन्द्रजितने युद्ध किया था। एकादशीसे त्रयोदशीतक युद्ध करके उसने वीरगति प्राप्त की थी। श्रीराम अनुजकी प्रशंसा कर रहे थे। लक्ष्मणके शरीरपर अपने अभयकर फिरा रहे थे— 'तुमने दशग्रीवकी दक्षिण भुजा काट दी।'

इस प्रशंसासे लक्ष्मण संकुचित हो रहे थे। ताराके पिता सुषेण द्रोणाचलसे औषधियाँ लेकर आहत वानरोंको स्वस्थ करने में लग गये थे।

'विभीषण लक्ष्मणको वानरोंके साथ निकुम्भिला मन्दिर ले आये थे। उन्होंने ही बार-बार उत्तेजित किया।' राक्षसोंने रावणको जाकर यह समाचार दिया— 'आपके पुत्र इन्द्रजितने अतुलनीय पराक्रम प्रदर्शित किया; किन्तु अन्तमें उन्होंने वीरगति प्राप्त की। उनका मस्तक हनुमान उठा ले गये!'

दशग्रीव पुत्रवध सुनकर मूर्छित हो गया। चेतना प्राप्त करके शोकार्त रुदन करने लगा— 'तुम यम और कालसे भी अजेय थे। युद्धमें मृत्यु तुम जैसे शूरका योग्य सुयश है। आज स्वर्गमें सुर उत्सव मनावेंगे। लङ्कामें तुम्हारी माता और पत्नी रुदन करेंगी। उचित तो यह था कि तुम मेरा प्रेतकर्म करते; किन्तु अब मुझे तुम्हारी उत्तरक्रिया करनी पड़ेगी?'

'मैंने एक सहस्र वर्ष दुश्चरतप करके सृष्टिकर्ताको सन्तुष्ट किया। उन्होंने मुझे देवता तथा असुरोंसे अवध्य बनाया।' रावणने उन्माद-ग्रस्त-की भाँति अट्टहास किया— 'ब्रह्माके द्वारा दिया गया मेरा दिव्य धनुष और कवच कहाँ है? विजय-वाद्य बजाओ! मैं मानवोंकी शक्ति देखूंगा। आज उन्हें मार दूंगा या मर जाऊँगा।'

'इन्द्रजितने मायासे सीताका वध दिखलाया था, मैं उसे सत्य करूँगा।' दुरासद दुर्धर्ष दशग्रीव क्रोधोन्मत्त दांत पीस रहा था। अपने

हाथ मसल रहा था। पैर पटक रहा था। पुत्रका मरण सुनकर उसकी बुद्धि विचलित हो गयी थी। उसका निर्णय अस्त-व्यस्त हो गया था। भयके कारण राक्षस भी उसके सामने आनेका साहस नहीं कर पा रहे थे, उसने भारी तलवार खींच ली— 'सब साथ चलो! आज मैं सबके सम्मुख सीताको मार दूँगा।'

हुङ्कार करते क्रुद्ध रावणको आता देखकर अशोकवनमें वैदेहीके समीप बैठी राक्षसियाँ भाग गयीं। पहिली बार रावण इस वाटिकामें अपने सेनापतियोंके साथ, बिना किसी रानीको संग लिए आ रहा था। उसकी उग्रतर भङ्गिमा देखकर देवी मैथिली डर गयीं— 'आज यह मुझे अनाथाके समान मार देगा। मेरी ओरसे निराश हो गया है और मेरे स्वामी तथा देवरपर कोई वश नहीं चला है, तब क्रोधोन्मत्त मुझे मारने आया है। आर्यपुत्र दीर्घायु हों! लक्ष्मण दीर्घायु हों!'

श्रीजनकनन्दिनीने नेत्र बन्द कर लिए। उन्होंने अपने जीवनका अन्तिम क्षण समझा। अपने मनको श्रीरामके चरण-चिन्तनमें एकाग्र किया।

'आप महर्षि पुलस्त्यके पौत्र, वैश्रावण कुबेरके भाई हैं। वेदज्ञ हैं, विवेकी हैं, कर्तव्यपालक हैं।' मन्त्री सुपार्श्वने सीताके समीप पहुँचनेसे पूर्व ही हाथ जोड़कर दशग्रीवकी स्तुति करते हुए डरते-डरते कहा— 'आप अपना क्रोध मुख्य शत्रुपर सार्थक करें! एक विवशा स्त्रीका वध क्यों करते हैं?'

कभी-कभी प्रबल प्रवाहमें प्रवाहितको एक साधारण हिलोर भी दूसरी दिशा दे देती है। रावण खड़ा हो गया। उसने सुपार्श्वकी ओर देखा— 'तुम ठीक कहते हो।'

'दशग्रीव! तूने स्वयं यह नरमेधयज्ञ प्रारम्भ किया है! इस यज्ञमें रामको होता बना लिया तो आहुति देंगे ही। लक्ष्मण तो उनके उद्‌गाता हैं। सुग्रीव-विभीषण अध्वर्यु ऋत्विक बन गये। इतने वानरोंको तूने सभासद बनाकर बुला लिया। अब अपनी पूर्णाहुति देनेमें यह संकोच क्यों?' मस्तक झुकाये रावण जो बोलता जा रहा था, साथके राक्षसोंने उसे शोकोन्मादका प्रलाप ही माना। वह बोलता जा रहा था— 'देखना यह है कि कोई प्रधानाहुति तो अवशिष्ट नहीं है?'

'राक्षसेन्द्र ! आपकी पुत्र-वधू आपका दर्शन करने पधार रही हैं।' रावण अशोकोद्यानसे आकर अपने भवनके मन्त्रणाकक्षमें ही सिर झुकाये बैठ गया था। अन्तःपुरसे सेविकाने आकर सूचना दी तो वह हड़बड़ा उठा।

'आपके पुत्र मेरी प्रतीक्षा करते होंगे, आप मुझे अनुमति दें।' कक्षमें प्रवेश करके प्रमिलाने पृथ्वीपर सिर रखकर प्रणाम किया। उसने अपना सम्पूर्ण शृङ्गार किया था। जैसे वह आज पुनः नववधू बन गयी हो। उसके स्वरमें कम्पनका नाम नहीं था। भूमिसे सिर उठाकर उसने दोनों हाथोंमें लेकर अञ्चल फैलाया—'मैंने सुन लिया, निकुम्भिला मन्दिरमें उनका कबन्ध पड़ा है। मैं उनका मस्तक माँगने आयी हूँ।'

दशग्रीव फूटकर रो पड़ा। उसने अपने हाथोंसे दसों मुख ढक लिये। कठिनाईसे बोल सका—'वत्से ! यद्यपि सहमरणकी प्रथा हमारे राक्षसकुलमें सम्मानित नहीं है; किन्तु मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं। जो स्वयं अपनी आहुति देनेको उतावला हो रहा है, वह दूसरेको रोक कैसे सकता है।'

'मेघनादके चले जानेसे रावण कङ्गाल हो गया। आज किसीको मरणके अतिरिक्त कुछ देनेको मेरे पास नहीं और अपनी पुत्र-वधूको मरण-का उल्लास देने योग्य भी वह नहीं रहा।' त्रिभुवनजयीका इतना निराश, व्यथापूर्ण स्वर कदाचित् ही कोई सुन सकता हो—'वत्से तेरे पतिका मस्तक रामके समीप पहुँच गया। बलपूर्वक उसे ला दे सकूँगा, अब यह कहनेका दर्प दशग्रीवमें नहीं रहा। राम धर्मात्मा हैं। यह राक्षसाधिप उनका आचार्य बना था। निर्लज्ज होकर, शस्त्रहीन होकर उनके समीप जाय और पुत्रका मस्तक माँगे तो वे अस्वीकार नहीं करेंगे।'

'नहीं ! आप नहीं जायँगे।' प्रमिलाने तेजोद्दीप्त मुख उठाया—'अब मेरे पास लज्जा, संकोच करनेको रह क्या गया। मैं स्वयं उनके समीप जाकर पतिका मस्तक माँग लूँगी।'

'वहाँ तुम्हारे स्वसुर विभीषण हैं।' रावणने शिथिल स्वरमें कहा—'वे तुम्हारी सहायता करेंगे। राम धर्मज्ञ हैं। भले मैंने उनकी पतिव्रता पत्नीका हरण किया है, वे सतीका सम्मान करना जानते हैं।

उनके समीप जानेमें तुम्हें संकोच नहीं होना चाहिए। तुम्हारे लिए वे भी स्वसुर समान हैं। सुरक्षा-सैनिक साथ जाँयगे।'

'केवल अन्तःपुरकी रक्षिकाएँ जायँगी मेरे साथ।' पुनः प्रणाम करके जब वह सती लौटी, उसके पादक्षेपसे कक्षभूमि पर कुंकुम झड़ रहा था। दशग्रीवने देखा। सिंहासनसे उठकर उस कुंकुमको मस्तकसे लगाकर पुत्रके उपयुक्त उत्तरक्रियाके प्रबन्धमें लग गया।

थोड़ी-सी पुर-रक्षिकाओंकी सेना। सब बड़वा (घोड़ी) पर बैठीं। सब सशस्त्र, सबने कवच पहिन रखे। केवल उन काले कवच, शिरस्त्राण पहिने राक्षसियोंकी काली घोड़ियोंके मध्य अकेली रक्ताम्बरा, श्वेत-वड़वारूढ़ा, मुक्तकेशा प्रमिला। लगता था कि कोई स्वर्गकी देवी अवनि पर उतर आयी है।

'स्त्रियोंकी सेना आ रही है!' वानरोंने जैसे ही प्रमिलाका दल उत्तर द्वारसे निकला, दौड़कर श्रीरामको सूचना दी।

'स्त्रियोंकी सेना?' श्रीरामने चौंककर विभीषणकी ओर देखा। 'अब क्या दशग्रीव इतना दुर्बल, कायर हो गया है कि वह स्वयं दुर्गमें दुबका रहे और स्त्रियोंको संग्राम करने भेजे?'

'राक्षसेन्द्रको किसीने कापुरुष कभी नहीं कहा।' विभीषणने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया— 'मैं देखता हूँ।'

'आपकी पुत्र-वधू प्रमिला आपके पदोंमें प्रणत है।' विभीषणको देखते ही उस सतीने राक्षसियोंको रोका और स्वयं वाहन बढ़ाकर सम्मुख आ गयी— 'गुरुजनोंके व्यवहारकी आलोचना और उन्हें उलाहना देने-का मुझे अधिकार नहीं है। मैं तो अपने पतिका मस्तक माँगने आयी हूँ। आप मुझे स्वामीके शरीरके साथ चितारोहणमें इतनी सहायता करेंगे कि मैं श्रीरामके समीप उपस्थित हो सकूँ?'

'वत्से! उनके समीप उपस्थित होनेमें किसी आर्तको अनुमतिकी आवश्यकता नहीं होती।' विभीषणके नेत्र वर्षा करने लगे— 'तुम आ सकती हो'

'इन्द्रजितकी विधवा सती होना चाहती है। आपसे अपने पतिका मस्तक माँगने आयी है।' विभीषणसे सुनते ही श्रीराम उठकर खड़े हो गये।

'देवि ! सती सर्ववन्दनीया होती है। अतः यह इक्ष्वाकु-गोत्रीय दाशरथि राम तुम्हें प्रणाम करता है।' श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया, इससे पूर्व कि प्रमिला बड़वासे उतरकर उनको प्रणाम करती, वानर स्तब्ध देखते रहे। वे भुवनवन्द्य हाथ जोड़े, सिर झुकाये कह रहे थे— 'मुझे खेद है कि यह क्रूर कर्तव्य हमें करना पड़ा; किन्तु किसी सतीके फैले अञ्चलमें उसके स्वामीका छिन्न मस्तक अर्पित करनेमें राम समर्थ नहीं हैं। तुम कहो तो तुम्हारे स्वामी सजीव···'

'नहीं! नहीं!' प्रमिलाने पुकारा— 'उन्होंने वीरगति प्राप्त की। यह उनकी अनुगामिनी उनको पीछे लौटनेको बाध्य नहीं करेगी। सुना था कि आप उदारशिरोमणि, धर्मात्मा हैं। आज स्वयं देखती हूँ कि पुरुषोत्तमके पादारविन्दमें पहुँच गयी हूँ। पतिलोककी प्राप्तिमें आपकी केवल अनुमति और आशीर्वाद लेने आयी हूँ।'

'वत्से ! सतीको वारित करनेकी शक्ति सृष्टिमें किसीमें नहीं होती।' श्रीरामने गम्भीर कण्ठ कहा— 'तुम स्वयं सादर अपने स्वामीका सिर ग्रहण करो। उसे सम्मानपूर्वक रखा गया है। वे उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं।'

सुलोचना प्रमिला श्रीरामके संकेतके अनुसार आगे बढ़ी। मेघनादका मस्तक एक स्वच्छ शिलापर सुरक्षित रख दिया गया था। प्रमिलाने वहाँ पहुँचकर पहिले भूमिमें घुटने टेककर पृथ्वीमें सिर रखकर उस सिरको प्रणाम किया। अविकृत मेघनादका मुख—लगा कि उसपर जो क्रोधके भाव थे, पत्नीके सम्मुख आनेपर लुप्त हो गये। उठकर दोनों हाथोंसे उठा-कर वह सिर उसने हृदयसे लगाया और लौटी।

प्रमिलाने किसीकी ओर नहीं देखा। उसके मानधनी पतिका वह मस्तक उसकी गोदमें था, जो पिताके अतिरिक्त कहीं झुकता नहीं था। उस मस्तकको लेकर मेघनादकी मरणोन्मुख अर्धाङ्गिनी किसीकी भी वन्दना नहीं कर सकती थी।

'विभीषण ! लङ्का-द्वार तक तुम्हें इस सतीका अनुगमन करना चाहिए।' विभीषणको भेजकर श्रीरामने सुग्रीवकी ओर देखा— 'वानर इस समय शान्त रहेंगे। दशग्रीव जब तक पुत्रकी उत्तर क्रिया सम्पन्न नहीं कर लेता, कोई लङ्कामें नहीं जायगा और न उधर, जहाँ इस पुरीकी श्मशान-भूमि है। इस समय कोई जयघोष नहीं किया जायगा।'

प्रमिलाके आगमनका समाचार मिलनेसे अब तक अग्रजके संकेतपर लक्ष्मण दूर ही रहे थे। वह सती अपने पतिको वीरगति देनेवालेको देखकर व्यथित हो सकती थी। उसे क्षुब्ध या अपमानित अनुभव करानेकी क्षुद्रता तो सोचने योग्य ही नहीं थी।

× × ×

दशग्रीवने समुद्र किनारे चिता सज्जित करा ली थी। मेघनादका मस्तकहीन शरीर (कबन्ध) निकुम्भिला मन्दिरसे वहाँ मँगा लिया था। उसे स्नान कराके चितापर—शरीरधारी सनातनधर्मी गृहस्थकी जो अनिवार्य अन्तिम शय्या है, उसपर शयन करा दिया गया था। प्रमिला-की प्रतीक्षा थी।

प्रमिलाने किसीकी ओर नहीं देखा। आकर वह अपनी बड़वासे उतरी और सीधे चितापर चढ़ गयी। पतीके शरीरको उसने इस प्रकार अपनी गोदमें रखा कि उससे सटाकर सिर रखनेपर वह प्रमिलाकी दक्षिण जंघापर ऐसे धरा रहा, जैसे शरीरसे लगा ही हो।

'वत्से !' दशग्रीव कुछ कहना चाहवा था; किंतु उसके कण्ठने साथ नहीं दिया। वह निर्निमेष देखता खड़ा रहा।

'राक्षसेन्द्र ! आप धन्य है। आपने पुरुषोत्तमको पतितपावन होनेका अवसर दिया है।' सतीकी दिव्य दृष्टिको दशग्रीवका अभिनय आच्छादित नहीं कर सकता था। शान्त, निष्कम्प स्वरमें सम्पूर्ण समष्टि-को उस परमसतीने आशीर्वाद दिया— 'आप ठीक सोचते हैं। अपने आरम्भ किये महामेधयज्ञको अपनी आहुति देकर परमगति प्राप्त करें। सुर संकटहीन होकर सुखी हों। असुर शान्त होकर सुखी हो। संसार रामके छत्रकी छाया प्राप्त करके परम सुखी हो।'

आज भी सती स्वतः अग्नि प्राप्त कर लेती है, उस समय तक तो अग्निदेव लंकामें सेवक थे। उस चितामें न किसीको अग्नि देनी पड़ी, न दक्षिणाग्निका आह्वान करना पड़ा। प्रमिलाने तनिक ऊपर दृष्टि उठाकर अस्ताचलकी ओर जाते आदित्यमण्डलकी ओर देखा और अञ्जलि फैला दी।

जैसे मेघनादका शरीर और प्रमिलाका शरीर कर्पर-निर्मित हो, इस प्रकार एक साथ जल उठा। चिताके चन्दनकाष्ठने पीछे ज्वाला पकड़ी, वे दोनों शरीर पहिले प्रज्वलित हो उठे।

हुताशनमें सतीका अपमान करनेका साहस नहीं था। प्रमिलाका शरीर भस्म होता गया—भस्म हो गया ; किंतु उसके वस्त्र तब तक बच रहे , जब तक उसके शरीरकी अस्थियाँ भस्म नहीं हो गयीं।

दशग्रीव संज्ञाशून्यके समान खड़ा रहा , तब तक चिताग्नि शान्त नहीं हो गयी। अन्तमें पुत्र-पुत्रवधूको जलाञ्जलि देने वह सागरमें उतरा।

अहिरावण

'अभी कोई और प्रधानाहुति अवशिष्ट है ?' पुत्रको जलाञ्जलि देकर दशग्रीव समुद्रसे निकला तो उसके मनमें एकमात्र यही प्रश्न था। शीघ्र उसकी बुद्धिने उत्तर दे दिया—'एक है। अमङ्गल मुहूर्तमें मेरी अनुमतिके बिना जिसका प्रसव उसकी माताने कर दिया, अतः क्रुद्ध होकर जिसे मैंने सागरकी लहरोंको सौंप दिया, वह अपने भाइयों-सहोदरोंके साथ मरा तो नहीं। वह नागलोकके एक द्वीपमें बस गया। मेरा नाम अपनाया उसने। नागलोकवासी होनेके कारण अपनेको अहिरावण कहने लगा। वह और उसके भाई मेरे ही औरस पुत्र हैं। वे रह जायँगे ? इस महामेधमें भी उद्धार-वञ्चित हा रह जायँगे ?'

'विभीषणको रामने शरण दी है। अपने सेवकके अनुगतोंका दायित्व उनपर। अतः लङ्कामें विभीषणके अनुचर बचे रहें, इसमें कोई आपत्ति नहीं।' रावणकी मेधा प्रबुद्ध हो गयी थी—'दशग्रीव ! यदि अपने अनुगतोंको, अपने औरसोंको त्यागकर तू चला जाता है तो उनका उद्धार करनेवाला कोई कहीं मिलेगा ?'

'अहिरावण नागलोकमें रहता है। उसे यहाँ बुला भी लिया जाय, लाभ ?' राक्षसेन्द्रने क्षणभरमें निश्चय कर लिया 'उसके पूरे कुलका उद्धार करनेके लिए रामको वहाँ जाना पड़ेगा। उनको वहाँ जाना ही है।'

दशग्रीव समुद्रतटसे वैसे ही आर्द्रवस्त्र राजसदन न जाकर निकुम्भिला मन्दिर चला गया। मेघनादके रक्तसे सिञ्चित उसी प्राङ्गणमें वह बैठ गया। सामग्री सेवकोंने आज्ञा पाते ही प्रस्तुत कर दी। तन्त्रोंका वह परमाचार्य अहिरावणके नामसे आकर्षण-प्रयोग करने लगा था।

'आपने मुझे स्मरण किया पिताजी !' अहिरावण उत्पन्न होते ही त्याग दिया गया था। समुद्रकी लहरोंने उसे निगला नहीं। अपने सब भाइयोंके साथ नागलोकमें उसने स्वयं अपना राज्य स्थापित किया था।

लङ्कासे, माता-पितासे न उसे प्रीति थी, न कोई सम्बन्ध। वह पृथ्वीपर आया ही नहीं था। केवल दिग्विजय करता जब दशानन उसके यहाँ पहुँचा था, परिचय हो गया था। उसने पिताका सत्कार किया था। आज अचानक पितासे मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठा उसके मनमें जगी। वह अपनेको रोक नहीं सका था। कोई अज्ञात शक्ति उसे सीधे यहाँ निकुम्भिला मन्दिर खींच लायी। दशग्रीवके अनुष्ठानका सम्भार देखते ही वह समझ गया कि उसकी यहाँ आनेकी उत्कण्ठाका कारण क्या था। उसने विनम्र होकर, प्रणाम करके पूछा— 'मेरे योग्य कोई सेवा ?'

'वत्स ! आज तुम्हारी यह पितृभूमि और पिता सङ्कटमें हैं। मेरा सुरसुरजयी पुत्र मेघनाद भी मारा गया।' रावणने उसे हृदयसे लगाकर कहा— 'तुमको तुम्हारे मातमह मयने अपनी समस्त मायिक शक्तियोंसे स्नेहपूर्वक सम्पन्न किया है। अब तुम्हीं सङ्कटसे मुझे बचा सकते हो।'

'मैं उन दोनों राजकुमारोंको हरण करके अपने यहाँ लिये जाता हूँ।' पितासे पूरा विवरण सुनकर अहिरावणने कहा— 'वहाँ आज ही उनकी बलि दे दूँगा अपनी आराध्या चामुण्डाको।'

'तुम इतना कर सको तो वानर स्वतः भाग जायँगे।' रावणने प्रसन्न होकर कहा— 'जो प्रातःकालसे पूर्व रह जायँगे, उन्हें मैं मार दूँगा। लेकिन दोनों राजकुमार वानरोंसे सुरक्षित रहते हैं। तुम उनको ले जानेमें सफल हो गये, यह सूचना मुझे कौन देगा ?'

'आपने ही तो कहा है कि पितृव्य विभीषण उनके पक्षमें हैं। मैं उनके रूपमें वहाँ जाऊँगा।' अहिरावणने योजना स्पष्ट की— 'आपको क्षणार्धके लिए जब गगनमें तीव्र आलोक दीखे, समझ लें कि आपके शत्रु जा रहे हैं।'

पिताको आश्वासन देकर अहिरावण उत्तर द्वारके ऊपर आया। उसने मायासे समस्त वानर-सेनाको सम्मोहित किया। दिन-रातके युद्धसे श्रान्त आज सब मेघनादके मारे जानेसे निश्चिन्त थे। श्रीरामने अत्यन्त आग्रह करके लक्ष्मणको आज अपने समीप शयन करा लिया था। सब सो गये मायाके प्रभावसे।

अहिरावणने देखा, अपने लांगूलकी परिखा सुप्त वानर सेनाके चारों ओर बनाकर हनुमान स्वयं उसका द्वार बने बैठे हैं। यद्यपि मायाके

प्रभावसे उनको भी तन्द्रा आ रही थी ; किंतु बलपूर्वक वे अपनेको सुप्त होनेसे बचाये थे । उनकी पूँछ-परिखाका उल्लङ्घन असम्भव है। इस प्रयत्नमें पक्षी भी पवनपुत्रकी अचित्त्य शक्तिके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ेगा, यह अहिरावण समझ गया । वह विभीषणके रूपमें उनके समीप पहुँचा ।

'आप इस समय ?' हनुमानने पूछा ।

'मैं समुद्र-किनारे सन्ध्या करने चला गया था।' उस कृत्रिम विभीषणने कहा— 'यह भी आवश्यक था कि देख लूँ, दशग्रीव क्या करने जा रहा है। पुत्रको जलाञ्जलि देकर वह नगरमें गया। कल युद्धमें आवेगा। यह सब देखनेमें मुझे विलम्ब हो गया।'

'आजका सांकेतिक शब्द ?' हनुमानने फिर पूछा ।

'मुझे कैसे पता हो सकता है।' मायावी राक्षसने शान्त स्वरमें कहा— 'आप जानते हैं कि ये शब्द सूर्यास्तके पश्चात् निश्चय किये जाते हैं। मैं तो उससे पूर्वसे प्रभुके समीप पहुँच ही नहीं सका।'

सन्देहका कोई कारण नहीं था। पवनकुमारने मार्ग दे दिया ; किंतु थोड़ी देरमें ही भीतर कोलाहल होने लगा। मायाका प्रभाव दूर होनेपर पहिले सुग्रीव जागे। उन्होंने व्याकुल होकर जाम्बवन्तको जगाया— 'सानुज श्रीराम नहीं हैं ! इस अन्धकारपूर्ण रात्रिमें वे कहाँ गये ?'

'सानुज श्रीराम नहीं हैं !' जाम्बवन्तने विभीषणको जगाया। दो चार क्षणोंमें सम्पूर्ण वानर-सेना जाग गयी। सब व्याकुल हो उठे। जाम्बवन्तने कहा— 'हनुमानसे पूछना चाहिए।'

'सानुज श्रीराम नहीं हैं। कोई सायंकालके पश्चात् भीतर आया था ?' सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवन्त पहुँचे हनुमानके पास। पूछा— 'भीतरसे कोई बाहर गया ?'

'भीतरसे बाहर किसीको जाते मैंने नहीं देखा। मेरी पूँछका उल्लङ्घन कोई तभी कर सकता है जब मेरे स्वामी उसके साथ हों।' हनुमानने कहा— 'बाहरसे भीतर तो अन्धकार हो जानेके पश्चात् केवल ये विभीषणजी गये थे।'

'मैं तो मेघनाद-वधसे लौटनेके पश्चात् प्रभुके समीप ही हूँ।' विभीषणने कहा— 'लगता है कोई मेरे रूपमें आकर श्रीराम-लक्ष्मणको हरण कर ले गया।'

' मैंने गगनमें एक तीव्र प्रकाश क्षणार्धके लिए देखा । ' हनुमानने बतलाया—' जो भी आपके वेशमें रहा हो , उसके भीतर जानेके तनिक देर पीछे ही वह प्रकाश हुआ । '

' मैं अपने वंशकी अन्तिम आहुति स्वयं दे रहा हूँ । ' उसी प्रकाशको देखकर लंकाके राजसदनमें दशग्रीवने दीर्घ श्वास ली ।

' हम राक्षसोंके कुलकी एक पवित्र शपथ है , राज परिवारके लोगोंका रूप मायासे केवल राज-परिवारके लोग ही बना सकते हैं । ' विभीषण सचिन्त कह रहे थे—' रावण-कुम्भकर्णके पुत्रोंमें अब कोई जीवित नहीं है । मेरा रूप दानवेन्द्र मय बना सकते हैं या स्वयं रावण । लेकिन दानवेन्द्रमें दुर्वृत्तिका लेश नहीं है । दशग्रीव भी मुझे कलङ्कित करनेका ऐसा क्षुद्र प्रयास नहीं करेगा । वह राम-लक्ष्मणका हरण भी करे तो रखेगा कहाँ ?'

' केवल एक है—रावणका परित्यक्त एक औरस पुत्र है अहिरावण । उस मायावीके अतिरिक्त यह कर्म और किसीका नहीं हो सकता । ' विभीषणने निश्चयात्मक स्वरमें कहा— ' अवश्य मेघनादकी मृत्युसे निराश रावणने उसे बुलाया होगा । पवनपुत्र ! आपको प्रभुके समीप शीघ्र पहुँचना चाहिए । सूर्योदयसे पूर्व दोनों भाइयोंको यहाँ ले आनेमें आप ही समर्थ हैं । '

'आप सब सावधान रहें । मैं यहाँ नहीं हूँ , यह किसी प्रकार राक्षसों-को ज्ञात न हो ! ' हनुमानने विभीषणसे अहिरावणकी पुरीका पूरा पता पूछा और उसी क्षण प्रस्थान किया ।

' इस पुरीका स्वामी आज कहीं बाहर गया था ? । ' समुद्रके भीतर नागलोकके उपद्वीपमें हनुमान पहुँचे तो उस पुरीके द्वारपर अपने ही समान रूप ,आकारके बलवान वानरको देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ । उन्होंने उससे पूछा ।

' मेरे स्वामी अहिरावण आज कहींसे दो अत्यन्त सुन्दर श्याम-गौर राजकुमारोंको निद्रित ही उठा लाये हैं । ' उस वानरने कहा— ' उन दोनोंकी अभी थोड़ी देरमें चामुण्डाको वे बलि दे देंगे । तुम देवी-मन्दिरसे उठती वाद्य-ध्वनि सुन रहे हो ? '

'सुन रहा हूँ। तुम कौन हो ?' हनुमानने पूछा।

'मैं परम पराक्रमी पवनपुत्र हनुमानका सुत मकरध्वज हूँ।' उस वानरने गर्वपूर्वक कहा— 'मेरे स्वामीने मुझे आज द्वारपर नियुक्त करके आज्ञा दी है कि किसीको भीतर प्रवेश मत करने देना।'

'मैं आजन्म ब्रह्मचारी, तुम मेरे पुत्र कैसे हो गये ?' हनुमानने उस वानरको घूरकर देखा। वह आकृतिमें उनकी प्रतिमूर्ति था।

'मेरे अहोभाग्य कि मुझे आज अपने पूजनीय पितृपदोंके दर्शन हुए।' वह चरणोंमें लोट गया। उठकर हाथ जोड़ बोला — 'आपने जब लङ्का जलाकर समुद्रमें पूँछ बुझानेके लिये छलाँग लगायी, आपके शरीरका स्वेद-बिन्दु जलमें टपका। उस उज्वल बिन्दुको एक महामत्स्यने आहार समझकर मुखमें ले लिया। उससे उसके उदरमें मेरे शरीरका निर्माण हुआ। जालमें उसे दैत्य मछुओंने पकड़ा और अहिरावणको दे गये। उस मत्स्यको यहाँ रसोईघरमें काटा गया तो मैं निकला। इस पुरीके स्वामीने मेरा पालन कराया। एक दिन देवर्षि नारद पधारे। उन्होंने मुझे यह मेरी जन्म-कथा बतला दी।

'अच्छा ! अब मुझे तुम्हारे देवी-मन्दिर जाना है।' हनुमानने पैर बढ़ाया— 'वे दोनों राजकुमार मेरे स्वामी हैं। मैं उन्हें ले जाने आया हूँ।'

'आप मेरे पिता हैं; किंतु जिसने मेरा पालन किया है, उसने मुझे द्वार-रक्षापर नियुक्त किया है।' मकरध्वज द्वार रोककर खड़ा हो गया— 'जब तक मुझमें शक्ति है, आप भीतर नहीं जा सकते।'

पिता-पुत्रमें मल्ल-युद्ध प्रारम्भ हो गया। हनुमानके समीप अधिक अवकाश नहीं था। उन्होंने मकरध्वजको पटककर उसीकी पूँछसे कसकर बाँध दिया। उसे वैसे ही वहीं छोड़कर भीतर चले गये। देवी-मन्दिर पहुँचकर हनुमानने स्वयं देवीका भयंकर रूप धारण किया। वह चामुण्डा-विग्रह तो उनके चरणोंके दबावसे पाताल-प्रविष्ट हो गया और वे स्वयं उसके पीठपर स्थिर खड़े हो गये।

'आज चामुण्डा बहुत प्रसन्न हैं।' राक्षस अत्यन्त उत्साहमें थे। उन्होंने अर्चा करके जो भी नैवेद्य अर्पित किया, हनुमानने मुख खोलकर सब खा लिया।

अयोध्या छोड़नेके पश्चात् आज प्रथम बार भली प्रकार श्रीराम-लक्ष्मणको अभ्यङ्ग लगाकर उष्णोदकसे राक्षसोंने स्नान कराया। उनकी अलकोंमें सुमन सजाये। शरीरमें सुगन्धित चन्दन लगाया। दोनों भाइयोंको वल्कलके स्थानपर लाल कौशेय वस्त्र धारण कराये। पुष्पमाल्य कण्ठमें डाला। दोनों भाइयोंने केवल फलाहार स्वीकार किया, अन्यथा राक्षस तो स्वादिष्ट पक्वान्न प्रस्तुत कर रहे थे। अहिरावणने आज्ञा दे दी थी—'कोई कटु वाक्य नहीं कहे। कोई बलप्रयोग मत करो। पुरुष-पशु भली प्रकार सत्कार-योग्य होता है।

'अब जो तुम्हें प्रिय हो, तुम्हारी सहायता कर सके, उसका स्मरण कर लो!' खिलाकर, इत्रादिसे पूजित करके दोनों भाइयोंको देवीके सम्मुख खड़े करके अहिरावणने खड्ग उठाया—'अब तुम्हारी बलि दी जायगी।'

'आर्य!' लक्ष्मणने अग्रजकी ओर देखा। उनके ये भाई भी अद्भुत हैं। वे संकेतसे भी अनुमति दे दें तो इन सब राक्षसोंको वे अपने हुंकारसे भस्म कर दे सकते हैं; किंतु वे तो बराबर शान्त रहनेका संकेत करते आ रहे हैं।

'लक्ष्मण! मुझे तो पवनकुमार ही परम प्रिय हैं।' श्रीरामने सहजभावसे कहा—'तुम भी उन सबके विपत्ति-विदारक वायुपुत्रका स्मरण करो।'

'यहाँ पवनपुत्र?' लक्ष्मणने आश्चर्यसे पूछा।

'तुमने देवीके नेत्रोंको ध्यानसे देखा?' श्रीरामके अधरोंपर मन्द स्मित आया।

अब तक अहिरावण शस्त्र-पूजन सम्पन्न कर चुका था। उसका खड्गवाला दाहिना हाथ ऊपर उठा। सहसा मानो वह सम्पूर्ण लोक फट जायगा, ऐसी भयङ्कर गर्जना गूँजी। 'हुं' के विश्वभेदी घोषके साथ हनुमान प्रकट हो गये। अहिरावणके हाथका खड्ग छीन लिया उन्होंने और उसीसे उस मायावी राक्षसका मस्तक उड़ा दिया। कुछ क्षण लगे, वहाँके सब राक्षसोंके छिन्न-सिर शव बिछ गये। रक्तके प्रवाहसे पूरी पुरी पिच्छल हो गयी।

'यह कौन है ?' अहिरावणकी पुरीमें केवल स्त्रियाँ बच गयी थीं जब हनुमान श्रीराम-लक्ष्मणको अपने दोनों कन्धोंपर उठाकर वहाँसे चले। द्वारके समीप अपनी ही पूँछमें बँधे मकरध्वजको बँधे देखकर श्रीरामने पूछा।

'यह मुझे प्रवेश नहीं करने दे रहा था।' हनुमानने झुककर उसे खोल दिया — 'अतः मैं इसे बाँधता गया था।'

'यह तो तुम्हारा पुत्र लगता है।' स्नेहपूर्वक श्रीरामने मकरध्वजकी ओर देखा। पवनकुमारने संकोचसे सिर झुका लिया। उसने दोनों भाइयोंको तथा हनुमानको भी प्रणाम किया। उनकी प्रदक्षिणा की।

'वत्स ! अब तुम इस पुरीके अधीश्वर हुए।' समीप बुलाकर श्रीरामने उसके मस्तकपर हाथ रखा— 'आसुर भाव मत अपनाना। अपने इन पिताके समान शरणागतोंके रक्षक रहो !'

लंकाकी समर-भूमि ब्रह्ममुहूर्तसे पूर्व ही जयघोषसे गूंजने लगी। पवनपुत्र वहाँ दोनों भाइयोंको लेकर पहुँच चुके थे।

शक्ति-पूजन

अनेक बार मन कोई निमित्त पकड़ता है। श्रीरामने अहिरावणकी पाताल नगरीसे समर भूमिमें आते ही कहा— 'लक्ष्मण ! मेघनाद मरनेसे पूर्व यज्ञ करके श्मशान-कालिकाको सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न कर रहा था। अहिरावण चामुण्डाकी अर्चना-चेष्टामें लगा था। दोनोंकी उपासना अधूरी रह गयी, यह दूसरी बात है ; किंतु उनकी उपासना शक्तिदात्री है, यह तो हम भी स्वीकार करते ही हैं। तब शत्रु-संहारके लिए हमको भी उन महाशक्तिकी शरण लेना चाहिए।'

लक्ष्मणने अग्रजकी ओर देखा। उनके ये लीलामय अग्रज कब क्या करना चाहते हैं—किसीके लिए भी समझ लेना सम्भव नहीं है ; किंतु लक्ष्मणको चामुण्डा, श्मशान-चण्डिका, उग्रतारा, छिन्नमस्ता प्रभृति शक्तिके राजस-तामस रूपों से सहज विरक्ति है। वे बोले नहीं।

'महाशक्ति सर्वेश्वरी, सर्वसञ्चालिका हैं ; किंतु सृष्टिके सञ्चालनके लिए उन्होंने गुणोंका आश्रयण करके अनेक रूप धारण किया है। उनके नवदुर्गारूप हों या दस महाविद्यारूप, एक ही महाशक्तिके रूप हैं।' श्रीरामने अनुजकी विरक्ति देखकर समझाया—'जैसे प्रकृतिमें तमोगुणसे रजोगुण तथा रजोगुणसे सत्त्वगुण बलवान है ; किंतु आवेश, उत्पात, आरम्भिक उग्रता तमस एव रजोगुणमें अधिक है, उसी प्रकार शक्तिके राजस-तामस उग्ररूप प्रचण्ड हैं। उनका प्रभाव अत्यन्त प्रबल है। फिर भी सात्त्विक रूप शान्त होते हुए भी अन्ततः उनको प्रशमित करनेमें समर्थ हैं।'

'दैत्य, दानव, राक्षस अपनी राजस-तामस प्रकृतिके अनुसार कालीकुलका आश्रयण करते हैं।' अब श्रीरामने स्पष्ट किया—'हम वैसा नहीं कर सकते। उग्ररूपोंको सन्तुष्ट करनेके लिए जो कुछ अनिवार्य है, वह हमें इष्ट नहीं है। हम गौरीकुलका आश्रयण करेंगे।'

'त्रिपुरसुन्दरी भगवती ललिता ?' लक्ष्मणमें अब उत्साह आया— 'अथवा उनका शीघ्र सन्तुष्ट होनेवाला स्वरूप त्रिपुरभैरवी ?'

'वे आद्या सर्वाराध्या हैं।' श्रीरामने मस्तक झुकाया— 'इस समय हम संग्राममें अत्यन्त दुर्जय शत्रुका शमन चाहते हैं, अतः उनकी सिंहवाहिनी, दशभुजा महाशक्ति दुर्गाका स्तवन करेंगे।'

ब्रह्ममुहूर्तका आरम्भ ही हुआ था। श्रीरामने अनुजके साथ पुनः स्नान किया। अहिरावण द्वारा अर्पित अङ्गराग, चन्दन, माल्यादि विसर्जित हो गये। इनकी उपयोगिता तो उस नागपुरीमें थी। उन असुरोंके उद्धारके लिए थी। अब लक्ष्मणने समझा कि वहाँ उनके अग्रज क्यों शान्त रहकर राक्षसोंकी सब सेवा स्वीकार करते गये थे। अन्ततः अहिरावण तथा उसके अनुगतोंके उद्धारका भी तो कुछ निमित्त आवश्यक था। वह न भक्त था, न द्वेषी। न प्रेमसे चिन्तन करता था, न शत्रुतासे। वह बलि भी देने जा रहा था तो केवल पिताको सन्तुष्ट करनेके लिए। ऐसे तटस्थका तो उद्धार सम्भव नहीं है। अतः उसकी सेवा-स्वीकार करना था। इसीसे श्रीराम, वह जो कहता गया, करते गये। उसीने कहा— 'अपने प्रियका स्मरण करो!' तब पवनकुमारका स्मरण किया। अब वह प्रयोजन पूर्ण हो गया। अतः उसके द्वारा अर्पित वस्त्र, अङ्गरागादि विदा होने चाहिए थे। वहाँसे धारण कराया गया रक्ताम्बर त्यागकर दोनों भाइयोंने पुनः वल्कल धारण किया।

श्रीरामको पूजा-सामग्री अपेक्षित थी? वे दयामयी कहाँ सामग्री-सम्भार देखती हैं। उनकी अर्चा-सामग्री अन्तःकरणमें भावित जितनी उत्तम होती है, बाह्य सामग्री उतनी श्रेष्ठ कैसे एकत्र की जा सकती है। श्रीरामने उन दशभुजाका उपस्थान किया। *

अभी अरुणोदय हुआ नहीं था; किंतु श्रीरामके स्तवन करते ही दिशाएँ आलोकसे उज्वल हो उठीं। गगनमें श्रीरामसे किञ्चित् दक्षिण होकर वे सिंहवाहिनी सायुधाभरणा, रक्तवसना, त्रिनेत्रा, चन्द्रकिरीटिनी प्रकट हो गयीं। उनका शतसहस्र सूर्योपम महातेज, वानरोंने ही नहीं,

---

*ग्रन्थान्तरोंमें कल्प-भेदकी कथा है कि ब्रह्माकी प्रार्थनासे महाशक्ति दुर्गा लङ्काकी समर-भूमिमें आकर दस दिन अदृश्य रहकर युद्धका सञ्चालन करती रहीं।

लक्ष्मणने भी नेत्र बन्द कर लिए दोनों करोंसे। असम्भव था उनकी ओर देख पाना।

स्वर्णसटा केशा, करालदंष्ट्रा केशरी शान्त, स्निग्ध लोचनोंसे देख रही थीं। वे अभयकरा, वरदहस्ता, सुप्रसन्ना—श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर अवनिमें ही मस्तक रखा। खड़े होकर उन अरुण-मृदुल पादपद्मोंमें मानसिक पुष्पाञ्जलि अर्पित की।

परावाणीको कृतार्थ होनेका अवसर कब आता? श्रीराम स्तवन करने लगे। लगा निखिल ब्रह्माण्डोंका कण-कण उनके स्तवन-स्वरसे ध्वनित हो रहा है। देवता, ऋषि, गन्धर्वादि प्रत्यक्ष दीखे गगनमें महाशक्तिके चारों ओर उसी स्तुतिके स्वरोंका साथ देते।

'अभयमस्तु! समरविजयी भव!' उन आद्याका दक्षिण कर उठा। उनके अकल्पनीय मधुर, स्नेह-स्निग्ध स्वरसे दिशाएँ भूम उठीं। उनके करके चन्द्रोज्वल कङ्कणकी किरणोंमें करतलकी अरुणिमाका राग—श्रीराम, सम्पूर्ण वानर-सेना-स्नान कर गयी। वे निखिल ब्रह्माण्ड-विधायिका, विश्वविनोदिनी बोलीं -- 'तुमको इस स्तवनकी आवश्यकता थी? तुम्हारा संकल्प—वही तो घनीभूत होकर यह शक्ति-स्वरूप ग्रहण करता है। लेकिन तुम मर्यादापुरुषोत्तम अपनी मर्यादासे महिमान्वित करते हो, विश्वके लिए एक परम्परा बनाते हो और स्वयं अपनी परम्पराका पालन करते हो।'

'अच्युत! अविनाशी! अद्वय! तुम नित्यविजयी हो।' नेत्र बन्द किये लक्ष्मणके अधरोंपर स्मित आया। ये आद्या उनके अग्रजकी स्तुति कर रही हैं या अग्रज उनके उपस्थानमें लगे हैं? लेकिन वे आद्या ही कह रही थीं— 'यह दुर्जय दशग्रीव तो तुम्हारा अपना जन है। तुम अपने करोंसे इसका यह रूप मिटा दो। तुम्हारे अपने जनोंका—वे कहीं किसी रूपमें हों, दूसरा कोई भी पराभव नहीं कर सकता। दूसरेमें इतनी शक्ति कभी नहीं आवेगी कि वह तुम्हारे आश्रितोंको पराजित कर सके

अवनत-सिर श्रीराम स्तवन कर रहे थे। साश्रुलोचन, पुलकित तन, गद्गद स्वर—एकाग्रमना श्रीरामकी परावाणी सृष्टिके अणु-अणुको श्रद्धाका पुनीत उपहार दे रही थी। वे ही तो अनादिकालसे प्राणियोंके पथ-प्रदर्शक हैं। वही तो अन्धकारमें भटकते जीवोंके लिए आलोक बनकर

आते हैं। उनकी यह उपासना, उनकी यह स्तुति--विश्वके भ्रान्त जन ही न सीख सकें तो वे क्या करें। अनुजके, समस्त वानरोंके सम्मुख वे जो महाशक्तिका स्तवन कर रहे थे।

'दशग्रीव तृणके समान भस्म हो सकता है किसी भी वानरके द्वारा यदि तुम दृष्टि उठाकर ऐसा संकल्प करो।' महाशक्ति कह रही थीं— 'लेकिन तुम्हें समर-विजयकी परिपाटी स्थापित करनी है। उस अपने अभिनयलीन दर्पदर्शीका उद्धार करना है तो कर दो। तुम सर्वसमर्थ-- मुझसे समर्थन कराना है? समर-विजय करो!'

'वे आद्या अदृश्य हो गयीं। अदृश्य हो गया उनका वाहन। अदृश्य हो गये उनका स्तवन करते सुर, ऋषि, मुनि, गन्धर्वादि; किंतु दिशाओंमें व्याप्त उनकी असह्य अङ्गकान्तिका आलोक धीरे-धीरे अदृश्य हुआ।

लक्ष्मणने, वानरोंने दृष्टि खोली। उनको लगा, जो दिव्य असह्य तेज उन भगवती आद्याके श्रीविग्रहमें था, वह श्रीरामके शरीरमें पुञ्जीभूत हो गया है। आज इन इन्दीवरसुन्दरकी ओर देखना कठिन हो रहा था। इनका सहस्र-सहस्र ज्योत्स्ना-मधुर श्रीअङ्ग आज दुरासद, दुर्धर्ष तेज-समन्वित हो रहा था।

अब भी गगनसे अदृश्य आशीर्वादकी वर्षा होती लगती थी। अब भी जैसे श्रवण सुन रहे हों— 'समरविजयी भव!' सबका हृदय प्रफुल्ल था। सब अत्यन्त उल्लासपूर्ण थे। सबके मनपर छायी युद्धकी विभीषिका जैसे सर्वथा तिरोहित हो चुकी थी। युद्धारम्भसे पूर्व जो उत्साह था, वह जैसे द्विगुण हो उठा।

वही जमे, सूखे, काले पड़ गये रक्तसे क्लिन्न समर-भूमि, वही छिन्नायुध, भग्न रथोंसे पटी पृथ्वी। दशग्रीवके अनुचरोंने रात्रिमें राक्षसोंके शव, शरीरसे कटे अङ्ग समेटकर समुद्रमें फेंक दिये थे सदाके समान। अपने अश्वों, गजों, गर्दभों, खच्चरोंके शव भी फेंक दिये थे; किंतु अब भी युद्ध-भूमि आयुधोंसे, आयुधोंके खण्डोंसे, भग्नरथोंसे, मृत या आहत वीरों तथा गज या अश्वोंके आभूषणोंसे, कवच, ढाल आदि उपकरणोंसे पटी पड़ी थी। उसमें चलना-दौड़ना अत्यन्त कठिन था।

सम्मुख लंकाका वही दुर्धर्ष दुर्ग। प्रतिदिनके समान दशग्रीवके स्थापत्य-निपुणोंने दिनकी भग्न परिखाको रात्रिमें सुदृढ़ कर दिया था प्रतिदिनके समान। सबसे बड़ी बात—अभी भी त्रिभुवनजयी दशग्रीव जीवित था। अब भी उसके समीप लंकाके चुने शूरोंकी अपार शक्तिशाली राक्षससेना थी।

सब था; किंतु वानरोंके हृदयसे आतंक विदा हो गया था। अब उन्हें लंका और लंकापति तृण-तुच्छ प्रतीत होने लगा था। उनके जयघोष-से गगन गूंजा—

'अमित विक्रम श्रीरामकी जय!'

'परम पराक्रमी लक्ष्मणकी जय!'

रावण-युद्ध

'आप सब वीर हैं। अब प्रमादका अवसर नहीं है। यात्रा करें और घेरकर शत्रुको नष्ट कर दें।' दशग्रीवने नम्रतापूर्वक प्रारम्भ किया; किन्तु उसका स्वर शीघ्र कठोर हो गया— 'सबको समझ लेना चाहिये कि जो भी युद्धमें जानेसे दुबकेगा या समर-भूमिसे भागेगा, मैं अपने हाथों उसका वध करूँगा।'

राक्षसोंने सेना सज्जित की और दुर्गसे निकले; किन्तु आज वानर विपुल उत्साह प्राप्त थे। स्वयं श्रीराम सम्पूर्ण सेनाका सञ्चालन कर रहे थे। पवनपुत्रके कन्धोंपर बैठे वे घूम-घूमकर बाणवृष्टि करनेमें लगे थे।

'यह रहे राम!' श्रीरामने गन्धर्वास्त्रका प्रयोग किया तो राक्षस मोहित होकर परस्पर एक दूसरेको राम समझकर एक दूसरेपर ही प्रहार करने लगे। जैसे सहस्रों राम हो गये हों।

श्रीराम एक भी हुए तो उनके करोंमें धनुष कुम्भकारके चक्रके समान घूम रहा था। घूम रहे थे वात्याचक्रके समान पवनपुत्र। राम दीखते ही नहीं थे उस प्रचण्ड वेगके कारण। आज श्रीराम राक्षसोंको साक्षात् काल दीखने लगे। लगभग दो घटी (डेढ़ घण्टे) यह अविराम बाणवर्षा श्रीरामके शारंग धनुषसे हुई। लक्ष-लक्ष रथ, अश्व, गज नष्ट हो गये। लङ्काकी सामान्य सुरक्षित सेना सम्पूर्ण नष्ट हो गयी। असंख्य राक्षस मारे गये। उनके अंग-मस्तक, कर, रामके बाणोंसे कट-कटकर लंकाके भवनोमें, पथपर इतने गिरे कि पुरी और समर-भूमिमें भेद करना कठिन हो गया।

'आजके रामके युद्ध जैसा चमत्कार केवल रुद्र प्रलयके समय प्रकट कर सकते हैं।' सुरेन्द्रने सुरोंके मध्य स्पष्ट कहा।

समर-भूमि और लंकाके पथोंमें ऊपर तक शवोंकी ढेरी लग गयी। चारों ओर रक्तका प्रवाह उमड़ पड़ा। शीघ्र जमकर वह अगम्य दलदल बनताजा रहा था।

लंकाके भवनोंमें राक्षसियाँ केश खोले वक्ष पीटती क्रन्दन कर रही थीं— 'भयंकरी, वृद्धा, महोदरी, श्वेतकेशा, दुर्मुखी सूर्पणखा रामसे प्रेम करने गयी थी। उसी दुष्टाके कारण खर-दूषणादि मारे गये। उसीके कारण दुर्बुद्धि दशग्रीव सीताके लिए अन्धा हुआ। इसे यह भी नहीं सूझा कि विराध, कबन्ध, बालिको मारने वालेसे शत्रुताका क्या परिणाम होगा। विभीषणकी बात सुन लेता तो आज लंका क्यों स्वर्णपुरीसे श्मशान बनती। कुम्भकर्ण जैसा महाकाय मरा, इन्द्रजित जैसा सुरविजयी पुत्र मरा; किन्तु यह सचेत नहीं हुआ। रावण मरेगा। अब कोई बचेगा नहीं। सीता कालरात्रि होकर आयी है। वह सबको चबा जायगी। अब भी इस बीस नेत्रके अन्धेको नहीं सूझता।'

'समयानुसार समझदारी केवल विभीषणमें निकली।' राक्षसियाँ परस्पर एक दूसरीको गले लगाकर विलाप कर रही थीं, रावणको गालियाँ दे रही थीं। आज रावणका भय जैसे उठ गया था। राजसदनकी सेविकाएँ तक स्वजनोंके मारे जानेसे रावणके सम्मुख ही छाती पीटती उसे कोस रही थीं। पूरी लंकामें क्रन्दन व्याप्त था।

'महोदर! महापार्श्व! विरूपाक्ष!' क्रुद्ध रावणने अपने अङ्ग-रक्षक महासेनापतियोंको दाँत पीसते पुकारा— 'सेना सज्जित करो! आज मैं अपने सब स्वजनोंका प्रतिशोध ले लूँगा। दिशाएँ मेरे बाणोंसे आच्छादित हो जायँगी। कोई वानर आज कहीं भागकर नहीं बचेगा। चलो! शेष सब चलो! अपने मारे गये स्वजनोंका शोणित तर्पण करो!'

सब स्वस्त्ययन करके रथारूढ़ हुए; किन्तु आठ अश्वोंके रावणके रथ-ध्वज पर ही प्रस्थानके प्रारम्भमें गीध आकर बैठ गया। शृगाली फेत्कार करती नगरमें सामने आयी। वाम नेत्र तथा भुजा फड़क रही थी। राजसदनकी ध्वजा टूट गिरी। अकारण अश्व ठोकर खाने लगे। लेकिन अपशकुनोंकी इन सूचनाओंको कभी अभाग्यका मारा प्राणी देख सका है?

दशग्रीवने दसों धनुषोंसे दारुण बाणवर्षा प्रारम्भ की। सचमुच दिशाएँ बाणोंसे भर उठीं। वानरदल विचलित होकर भागा। यह देखकर वानरेन्द्र सुग्रीव टूट पड़े। उन्होंने शिला-वर्षा करके विरूपाक्षका रथ नष्ट

कर दिया। वह रथ त्याग गजपर बैठकर गर्जना कर ही रहा था कि उसके करका खड्ग छीनकर सुग्रीवने उसीका शिरश्च्छेद कर दिया।

रावणके उत्तेजित करने पर महोदरगदा लेकर दौड़ा। सुग्रीवने उसकी गदा छीनकर उसके सिरपर दे मारी। अङ्गदने महापार्श्वका परशु छीन-कर उससे उस राक्षसके टुकड़े कर दिये।

'सारथि ! शीघ्रता करो। राम-लक्ष्मणके सामने रथ ले चलो।' रावण चिल्लाया— 'आज मैं रामरूपी वृक्षको काट दूँगा।'

वानर-सेनाको रौंदता रावणका रथ बढ़ा। रावणकी अनवरत बाण-वर्षाके सम्मुख वानर टिक नहीं सकते थे। श्रीरामने धनुष चढ़ाया। वानर-सेनाको पीछे किया और अनुजसे कहा 'लक्ष्मण ! तुम सेनाको सम्हालो। मैं इसे देखता हूँ।'

श्रीराम और रावणके युद्धकी सृष्टिमें तुलना नहीं है - सामान्य शर दोनोंमें कोई छूता नहीं था। सिंहमुख, शृगालमुख, सर्पमुख शरोंकी झड़ी भी क्षणिक थी। दिव्यास्त्र चलने लगे। आग्नेयास्त्रके विरुद्ध पार्जन्य मेघास्त्रके विरुद्ध वायव्य, पार्वतास्त्रके विरुद्ध ऐन्द्रास्त्र—ये दिव्यास्त्र भी दशग्रीवको तुच्छ लगे। वह जो अस्त्र उठाता था, उसको श्रीराम उचित उत्तर देकर व्यर्थ करते चले गये

स्वयं नारायण स्वरूप श्रीरामके विरुद्ध नारायणास्त्रका प्रयोग सम्भव नहीं था। रावण सशङ्क हो गया जब उसके द्वारा प्रयुक्त रौद्रास्त्रने श्रीरामके ललाटका ऐसे स्पर्श किया, जैसे उन्हें स्नेहसे आशीर्वाद देता हो। उसे भय लगा— 'यदि ब्रह्मास्त्र या पाशुपतने ही यही किया तो ?'

श्रीरामपर वश न चलते देखकर रावणने अचानक शक्ति उठायी और विभीषणपर चला दी। धनुषपर बाण चढ़ाये सावधान लक्ष्मणने यह देखा। उनके बाणने उस शक्तिको काट फेंका। दशग्रीवने हुंकार किया और दूसरी प्रज्वलित शक्ति उठा ली— अपनी तपःप्राप्त अमोघ शक्ति।

'मेरे शरणागतवत्सल अग्रजने विभीषणको अभय दिया है।' लक्ष्मणको निर्णय करनेमें आधा निमेष भी नहीं लगा। वे कूदकर विभीषण-के आगे आ गये। शक्ति वक्षस्थलमें लगी तो वे मूर्छित होकर गिरे।

'लक्ष्मणका कल्याण हो !' अनुजको गिरते देखकर सत्यसंकल्प श्रीरामके मुखसे निकला। वे कमलदल-लोचन क्रुद्ध हो उठे। उनके पद्मपलाश नेत्र अत्यन्त अरुण हुए। कठोरभृकुटि बोले— 'वानर लक्ष्मण-को घेरकर उनकी रक्षा करें। सब वानर-सैनिक लक्ष्मणको लेकर शैल-शिखर पर चले जायँ और संग्राम देखें। आज पृथ्वी अरावण या अराम होकर रहेगी।'

'हनुमान ! तुम्हारे लाये द्रोणाचलमें अब भी औषधियाँ सूखी नहीं हैं।' वानर-भिषक् सुषेणने लक्ष्मणके शरीरमें गति देखकर कहा— 'कुमार केवल मूर्छित हैं।'

पवनपुत्रको वह समर-भूमिसे दूर स्थापित शिखर उठा लानेमें क्या श्रम था। सुषेणने औषधि लीं और उनके उपचारसे लक्ष्मण उठ बैठे। उठते ही लक्ष्मणने धनुष चढ़ाया और अग्रजके समीप पहुँचे। श्रीरामने अनुजको आया देखा तो हृदयसे लगाया। स्नेह-पूर्वक बोले — 'इस बार मुझे युद्ध-क्रीड़ा कर लेने दो। तुम तनिक विश्राम कर लो !'

'शत्रु अत्यन्त बलवान है। अस्त्रज्ञ है और रथारूढ़ है।' लक्ष्मणके साथ ही विभीषण श्रीरामके समीप आ गये थे। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'आप पदाति हैं। इतने दुर्जय शत्रुसे इस प्रकार संग्राममें पार पाना अत्यन्त कठिन है। आप पहिलेके समान पवनपुत्रके स्कन्धों पर आरूढ़ होना स्वीकार कर लें।'

'विभीषण ! विजय सामान्य स्यन्दनसे नहीं हुआ करती। शौर्य, धैर्य, साहस और धर्मका स्यन्दन विजयदायी होता है।' श्रीरामने कहा — 'तुम क्या समझते हो कि अधर्महत दशग्रीवको उसका यह रथ बचा लेगा ?'

लक्ष्मणके मूर्छित होनेके पश्चात् क्रुद्ध श्रीरामने रावणके धनुष तथा कवच काट दिया था। दूसरा अमोघ कवच धारण करके दूसरे दस धनुष ज्या-सज्ज करनेमें उसे दो-चार क्षण लगे। अब जैसे ही वह सावधान हुआ, विभीषणके सम्मुख ही श्रीरामके शरोंसे उसका स्यन्दन चूर-चूर हो गया। उसके आठों अश्व मारे गये। ध्वजा कट गयी।

दशग्रीवके सारथिकी प्रशंसा करनी पड़ेगी। उसने कूदकर ऐसे अवसरोंके लिए प्रस्तुत पीछे खड़े रथोंमेंसे एककी रश्मि हाथमें ले ली।

रावणको केवल कूदकर उस रथमें चले जाना पड़ा। अब उसने भी क्रोधमें भरकर एक बाणसे श्रीरामको आहत किया।

'श्रीरामकी जय हो!' देवताओंने गगनसे जय-ध्वनि की। उस भीषण प्रहारको श्रीरामने सहन कर लिया। वे विचलित, कम्पित नहीं हुए, यह देखकर देवता भी चकित रह गये।

दशग्रीवने शूल उठाया था। श्रीरामने उसे ऐन्द्रास्त्रसे काटकर रावणकी भर्त्सनाकी— 'परस्त्रीका अपहरण करनेवाले चोर! आज मैं तुझे मार ही डालूँगा।'

श्रीरामकी बाण-वर्षा अत्युग्र हो उठी। अपने दसों धनुष चढ़ाये भी दशग्रीव उन एकधन्वाके समस्त बाणोंको काट नहीं पाता था। उसने आज तक यह चमत्कार नहीं देखा था। श्रीराम त्रोणसे एक बाण निकालते हैं। प्रत्यञ्चा तक पहुँचते-पहुँचते वह दस हो जाता है। खींचते ही वे सौ बनते हैं, छूटते सहस्र और लक्ष्य तक पहुँचते-पहुँचते लाखों बन जाते हैं। उनमें कोई कितनोंको काटेगा। लक्ष्योंको नष्ट करके उनमेंसे बाण पुनः रामके त्रोणमें आ जाता है। कौन-सा मूल बाण? लक्ष-लक्ष बाणोंमें कैसे पता लगे? वह कभी कट नहीं पाता। अथक उद्योग—वह मूल बाण काटा जा सके। रामके समीप दो त्रोण सही, उसमें पाँच-पाँच बाण मात्र हैं। उनका मूल बाण काटा जा सके—एक भी बाण कम किया जा सके; किन्तु कहाँ? दशग्रीव सफल नहीं हो रहा है। उसका स्वयंका शरीर छलनी हुआ जा रहा है। रामके बाण उसका कवच फोड़कर शरीर-में प्रवेश कर रहे हैं।

मायायुद्ध— मायावी राक्षसका अन्तिम सहारा। रावणने अनेक प्रकारकी माया प्रकट कीं। जलते महापर्वत गगनसे गिरने लगे। समुद्र उमड़ता समूची पृथ्वीको निगलने बढ़ा। अन्तरिक्षसे अस्त्र-शस्त्र, मांस-शोणित, नाग, सर्प-वर्षा। सिंह, व्याघ्र, भल्लूक मुख फाड़े भक्षणको दौड़ते। लेकिन इससे केवल वानरोंको भयभीत किया जा सकता था। मायापति इससे सम्मोहित होते। उनका शर छूटता था और मायिक दृश्य लुप्त हो जाते थे।

अनेकों—सहस्रों रावण प्रकट हुए। लाख-लाख हनुमान लांगूल उठाकर पर्वत लिए मारने दौड़ते दीखे श्रीरामको। श्रीराम सहस्रों दीखने

लगे धनुष चढ़ाये वानरोंको मारनेको उद्यत। व्यर्थ थी सब माया। श्रीराम-के अधरोंपर स्मित। उनके बाण सब माया नष्ट करते गये। अन्ततः मायिक दृश्य केवल दीखते ही तो हैं। वे स्वयं तो कोई हानि कर नहीं सकते। उनको देखकर संत्रस्त होकर कोई अपनी हानि स्वयं कर ले, असावधान हो जाय तो शत्रुको प्रहार करनेका अवसर मिले। दशग्रीवकी ऐसी कोई दुराशा सफल नहीं होती थी। उसके मायिक दृश्य भी पानीके बुलबुलेसे अधिक स्थायी नहीं सिद्ध हो सके। श्रीरामके शरोंने उन्हें टिकने नहीं दिया।

अनवरत आघात, कवच फोड़कर शरीरमें प्रवेश करते प्रतिक्षण शतशः शर, पूरा शरीर रक्तका निर्झर बन गया। कितना भी शक्तिशाली हो, कैसा भी समर्थ हो, कोई कब तक सहन कर सकता है ? दशग्रीव शिथिल पड़ने लगा। उसके बाण लक्ष्यच्युत होने लगे। इससे श्रीरामका प्रहार-वेग बढ़ गया। रावणके नेत्रोंके आगे अन्धकार छाने लगा। उसका शरीर छटपटाने लगा। धनुष रथमें टेककर वह ढीला पड़ गया।

सारथिने अपने स्वामीकी अवस्था देखी तो रथ घुमाकर अश्व दौड़ा दिये। श्रीराम पराङ्मुख शत्रुपर तो प्रहार कर नहीं सकते थे।

नगरमें आकर रावण सचेत हुआ। सारथि पर बिगड़ा— 'भीरु, पौरुषहीन, शस्त्रहीनके समान मुझे युद्धसे भगाकर तूने मेरी अवज्ञा की है। तू भीत है ! मूर्ख है ! शत्रुने तुझे कुछ उत्कोच दिया है ?'

'न मैं भीरु हूँ, न मूर्ख हूँ और न मैंने शत्रुसे उत्कोच ही लिया है। आप मेरा तिरस्कार मत करें।' सारथिने शान्त स्वरमें नम्रता-पूर्वक कहा—'आप अकारण मुझपर दोषारोपण कर रहे हैं। आपके अश्व श्रान्त हो गये थे। आपके शर लक्ष्यच्युत हो रहे थे। अतः मैंने अपना सारथीका कर्त्तव्य पालन किया।'

'जैसे रथीका कर्त्तव्य सङ्कटमें सारथिकी रक्षा करना है, वैसे ही सारथिका कर्त्तव्य भी रथीकी रक्षा करना है।' सारथिने समझाया— 'रथपर रथीके साथ अकेला सारथि होता है। उसे रथको आगे, दाहिने,

बायें या पीछे लौटानेका स्वयं निर्णय करना पड़ता है। रथको तीव्र अथवा मन्दगतिसे चलानेका निर्णय भी वही करता है। मैंने आपके हितके लिए रथ तब लौटाया जब आप अचेत हो चुके थे। अब आदेश दें, मैं आज्ञा-पालन करूँगा।'

'तुम बुद्धिमान हो। जानते ही हो कि पीड़ित व्यक्ति क्रोधमें कुछ कह जाता है। मेरी बातोंका बुरा मत मानना।' रावणने अपने करोंके कङ्कण उतारकर सारथिको पुरस्कृत किया— 'अब मुझे सचमुच थोड़े विश्रामकी आवश्यकता है। तुम रथ, अश्व, उपकरण ठीक कर लो। परिवर्तित कर लो। शीघ्र हम शत्रुके सम्मुख चलेंगे।'

अशोकवाटिकामें

'अभाग्य मेरा कभी पीछा नहीं छोड़ेगा सखि ! मैं जहाँ जाती हूँ, दुर्दैव वहीं विपत्ति और विनाश बुला लेता है !' श्रीवैदेही अत्यन्त दुःखित सरमासे कह रही थीं— 'मेरे कारण मेरे पिताकी पुरीपर शत्रुओंने घेरा डाला और सब नगरजनोंको वर्ष भर अत्यन्त विषम स्थितिमें रहना पड़ा। वे घेरा डालनेवाले राजा और राजकुमार मेरे कारण ही मारे गये अथवा आहत, अपमानित होकर भागे।'

'मैं अयोध्या आयी तो आर्यपुत्रको राज्याभिषेकके दिन वनमें आना पड़ा। साक्षात् श्री, शारदा और उमाके समान मेरी स्नेहमयी सासुएँ विधवा हो गयीं। सम्पूर्ण अयोध्याके नागरिक अब भी आर्यपुत्रके वियोग-दावानलमें दग्ध हो रहे हैं। अपने उन संकोचशील आर्यपुत्रकी दूसरी मूर्ति बड़े देवरके व्रत-तपकी बात सुनी है मैंने। उनके सुखके दिन थे और अभी-से उन्हें मुनि-मन-अगम्य तपमें लगना पड़ा है।'

'मैं मर क्यों नहीं गयी। आर्यपुत्रके जिन चरणोंको मैं अत्यन्त संकोचसे संवाहन करती थी, उनके उस परम सुकुमार श्रीविग्रहको आज यहाँ शत्रुके शरोंसे जर्जर होना पड़ता है।' श्रीजानकीके मनकी व्याकुलता अनुमानसे परे है— 'मेरे प्रतप्त स्वर्ण-गौर देवर लक्ष्मण, इतने सेवाशील, इतने संकोची, वे स्नेह पाने योग्य; किंतु आज उन्हें बार-बार शत्रुके प्रहार इस अभागिनीके कारण मरणासन्न करते रहते हैं।'

'वह असीम पराक्रमी वानर आया था। उसके 'अम्बा' सम्बोधनने मुझे पुत्रवती बना दिया; किंतु इस दग्ध-कपालाने उसे क्या दिया? इसके कारण उसे बाँधा गया, राक्षसोंने अपमानित किया और अग्निकी लपटों-में वह दौड़ता-कूदता फिरा। आज वह और उसके ही साथी असंख्य वानर बेचारे अपना घर-द्वार, पुत्र-परिवार त्यागकर समुद्रके पार इस राक्षस-पुरीमें पड़े हैं। राक्षसोंके द्वारा मारे जा रहे हैं।'

'देवि ! सृष्टिमें सदा दुर्लभ रत्नके लिए संघर्ष होता आया है। यह संघर्ष तो अन्यायको, अधर्मको मिटाकर धर्मकी स्थापनाके लिए आपके आराध्य कर रहे हैं।' सरमा बार-बार हाथ जोड़ती है, समझाती है— 'आप जैसा महारत्न सृष्टिने दूसरा नहीं पाया। आपका यह तप विश्वको परम वरदान है। इससे सुरोंका, सत्पुरुषोंका संकट सदाके लिए समाप्त होने जा रहा है। संसारकी शान्ति सुरक्षित होने जा रही है। श्रीरामका यह अद्‌भुत शौर्य स्मरण करके संसारके प्राणी सदा पवित्र होंगे। आप उनकी यशोध्वजा हो। आपके कारण उनका सुयश समुज्वल हुआ है।'

'मैं रत्न हूँ सखि ? तू कहती है तो रत्न ही हूँ, अन्यथा ऐसी पाषाणी कैसी होती। इतना दुःख कैसे सह पाती। लेकिन इतना अमांगल्य अशुभ रत्न विश्वमें कभी नहीं हुआ होगा। जहाँ जाती हूँ, वहीं विपत्तिके मेघ घिर आते हैं। मैं पञ्चवटी पहुँची तो जनस्थान उजाड़ हो गया। यहाँ लङ्का आकर मैंने सुना कि खरदूषणका कुल ही समाप्त हो गया।'

'आप जैसी दयामयी ही शत्रुकी विपत्तिमें भी दुःखी हो सकती हैं।' सरमाने झुककर चरणरज ले ली— 'अन्यथा यह तो ऐसी घटना है कि सुर अब तक स्मरण करके आनन्द-विभोर होते हैं। ऋषि, मुनि, तापस, सत्पुरुष सबके लिये जनस्थान अगम्य हो गया था। दारुण-राक्षस तपस्वी, शान्त, प्राणिमात्रके सुहृद सत्पुरुषोंको अकारण उत्पीड़ित करके आनन्द मनाते थे। उन्हें आहार बना लेते थे। वे हँसते थे यह कहकर— 'एक कंकाल प्राय मुनि मिल गया था आज। उससे उदरपूर्ति तो क्या होती; किन्तु उसका सूखा मांस बहुत स्वादिष्ट लगा। स्वाद-परिवर्तन हो गया !'

सरमा कैसे समझे कि जो जगज्जननी जगदम्बा हैं, उनकी करुणा अपने अधमतम कुपुत्रके लिए भी आकुल होती है। वह कहती गयी— 'सर्प, वृश्चिक, दंश-मशक, व्याघ्र-भेड़ियोंको स्वातन्त्र्य प्राप्त हो जाय तो सृष्टिमें कोई प्राणी सुरक्षित रहेगा ? इनका शमन, इनका संहार तो आवश्यक है, यह तो सत्कार्य है। निर्बल, निरीह, निर्दोष प्राणियोंको समर्थ ही सुरक्षा प्रदान नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? आपके परम समर्थ आराध्यने सृष्टिके संतप्त प्राणियोंको दारुण राक्षसोंसे अभय देनेके लिए

धनुष उठाया है। उनके असह्य, अकल्पनीय पराक्रमसे यह सुर-साधु-सुरक्षाका कार्य पूर्ण हो रहा है। अवशिष्ट भी पूर्ण होने जा रहा है, यह तो प्रसन्नताकी बात है।'

'प्रसन्नता, सुख सीताके प्रारब्धमें लिखना विधाता भूल गया। यह तो जहाँ जाती है, दारुण दावानल जल उठता है। यह स्वर्णपुरी इसके कारण दग्ध हुई। वह राक्षसोंका, राक्षसियोंका क्रन्दन, इस्ततः भागते फिरना देखने योग्य था?' जिसमें अनन्त दया है, उसके दुःखको कैसे कम किया जा सकता है? संसारके अज्ञ जीव अपने पापोंसे, अपराधोंसे अपने लिए पीड़ाके निमित्त एकत्र करते रहते हैं और उन वात्सल्यमयीकी वेदना बढ़ती है।

श्रीजनक-नन्दिनीको जबसे दशग्रीवने पञ्चवटीसे उठाया, उनकी वेदना, विरामका नाम नहीं लेती थी। वे निद्रा तो लेती ही नहीं थीं। भूमिपर बिना किसी आस्तरणके यदा-कदा लेट जाती थीं। आहारका सर्वथा त्याग कर दिया था। अहर्निशिके रुदनने उनके कपोलोंपर अपनी स्थिर रेखाएँ बना ली थीं। वही वस्त्र जो उन्हें देवी अनुसूयाने दिया था। सिरके केश उलझकर एक वेणी-जटा बन गये थे। पल्लव-मृदुल अधर सदा हिलते रहते थे। प्रायः सिर झुकाये अपने पदनखोंको देखती राम-नामकी रट लगी थी उन्हें।

दशग्रीवका अशोकोद्यान नन्दनकाननसे कहीं सुन्दर, कहीं सुरम्य और अत्यन्त सुशोभित था; किन्तु श्रीमैथिलीने केवल उस दिन दृष्टि उठाकर उस उद्यानको देखा, जिस दिन हनुमान उसे ध्वस्त करते उसमें उछलते उत्पात कर रहे थे।

हनुमानके आनेसे पूर्व राक्षसियाँ रात-दिन डराया-धमकाया करती थीं। रावण तो अब भी अनेक प्रकारसे भयभीत करता है। उन दिनों केवल एक चिन्ता — 'आर्यपुत्र कैसे होंगे? क्या करते होंगे? कैसे होंगे कुमार लक्ष्मण? मेरी स्मृति आती होगी स्वामीको? वे अपनी इस चरणाश्रिताके उद्धारके लिए प्रयत्न करेंगे?'

'वे तो अपने अपराधी भृत्यको भी नहीं भूलते।' अखण्ड अविचल विश्वास। इस विश्वासने ही उन दारुण दिनोंमें उनका जीवन बचाया—

'वे आवेंगे--अवश्य आवेंगे। इस अपनी दासीका उद्धार किये बिना वे रह नहीं सकते। क्या होता है दुष्ट दशग्रीव उन अमित-विक्रमके सम्मुख।'

पवनपुत्र अन्वेषण करते अकस्मात् आ पहुँचे थे। उनके आगमनने पूरी परिस्थिति परिवर्तित कर दी। पहिले केवल त्रिजटा थी जो तनिक सहानुभूति रखती थी। वह भी उस सहानुभूतिको प्रकट करनेमें भय खाती थी। विभीषणकी पत्नी सरमा और उनकी पुत्री कदाचित ही लुक-छिपकर आ पाती थीं। त्रिजटाने उस दिन राक्षसियोंको अपना स्वप्न सुनाकर डरा दिया। हनुमानने लङ्का जलाकर स्वप्नकी सत्यताको प्रामाणिक बना दिया। तबसे रावणका भयंकर भय होने पर भी राक्षसियाँ सब सानुकूल हो गयीं। वे कभी डराती भी हैं तो पीछे पैरोंमें पड़कर प्रार्थना करती हैं— 'हमें क्षमा करना! हम यह अभिनय करनेको विवशा हैं।'

अब इनका भयभीत करनेका अभिनय देखकर हँसी आती है; किन्तु जो दूसरोंके दुःखसे दुःखी होनेवाली अनन्त दयामयी हैं, उनकी वेदनाका अन्त कहाँ है। प्रतीक्षा सफल हुई, विश्वास बलवान सिद्ध हुआ। श्रीराम असंख्य वानर-सेना लेकर समुद्रपर सेतु बनाकर आ गये उद्धार करने, किन्तु अब अपनी चिन्ता मिटी नहीं, मिटती दीखती है, वियोगका महा-वाडव बुझता दीखता है तो दूसरोंके दुःखकी ज्वाला दग्ध करने लगी है।

'स्वामीके सुकुमार शरीरपर असंख्य बाण प्रतिदिन लगते हैं। उन्हें नागपाशका विषम बन्धन प्राप्त हुआ। लक्ष्मण जो लालित होने योग्य हैं, प्रवलतम प्रहार प्रतिपक्षका झेल रहे हैं। कई-कई बार इतने आहत हुए कि उनके उठ बैठनेकी आशा ही नहीं रह गयी थी।' अब सरमा अदृश्य रहकर युद्धकी स्थिति देख आती है। वह जो सुनाती है, उससे जो प्राणोंको पीड़ा होती है— 'अभागिनी सीता मर जाती या युग-युग तक यहीं दशाननकी बन्दिनी बनी रहती—इसके लिए आर्यपुत्रको, लक्ष्मणको कितना दुःख उठाना पड़ रहा है!'

यहीं तक अन्त होता, तब भी कुछ बात थी। सरमा प्रायः सायं-काल आकर सुनाती है कि युद्धमें कौन-कौनसे प्रधान शूर सेनापति खेत रहे। वह बड़े उत्साहसे कहती है— 'दशग्रीवका दर्प चूर्ण हो गया। उसकी शक्ति क्षीण हो रही है। उसके दुर्दान्त दिक्चक्रजयी दनुज मारे जा रहे हैं।'

'हाय सखि ! सीताने आकर इस स्वर्णपुरीको दग्ध पाषाणी बना दिया और अब स्वर्गका तिरस्कार करने वाली इस राक्षस-राजधानीमें नरककी ज्वाला जलानेलगी है।' उत्साहके स्थानपर उन कृपामयीकी वेदना तीव्रतम हो जाती है—'बेचारे राक्षसोंकी विधवाएँ क्रन्दन करती होंगी। उनकी वेणियाँ खुल गयीं। उनके कर-कङ्कण-शून्य हो गये। उनके शिशु अनाथ हो गये। यह दारुणा दग्ध-कपाला यहाँ चिताकी ज्वाला बढ़ाती जा रही है, जहाँ काल भी बन्दी था। जहाँके लोगोंने दुःख जाना ही नहीं था, वहाँ जानकीने घर-घरमें क्रन्दन ध्वनि गुंजित करदी है।'

उस दिन जब प्रमिलाके सती होनेका सम्वाद देते हुए स्वयं सरमा फूटकर रो पड़ी-- 'लङ्कामें वह सौकुमार्य, सौन्दर्य, पवित्रताकी पावन प्रतिमा थी। शचीका सौन्दर्य मद उसे देखकर दूर हो गया था। वह परम पतिव्रता—मुझे वह अपनी सगी पुत्रवधू लगती थी। स्वामीको राक्षसेन्द्रने निर्वासित कर दिया, इन्द्रजितने भी उन्हें अपमानित करनेकी धृष्टता की; किन्तु शील-संकोचकी मूर्ति सुलोचनाने मेरे सम्मानमें कभी प्रमाद नहीं किया। वह उठकर मेरे पदोंपर मस्तक ही रखती थी। स्वामीकी चर्चा आनेपर भरे दृग कह देती— 'पूज्योंके गुणावगुण सोचनेका हमें अधिकार ही नहीं है।'

'लङ्काकी उस सुमन-सुकुमार अधिदेवताने अग्निमें अपनी आहुति दे दी।' सरमाके अश्रु उस दिन रुकते ही नहीं थे— 'चली गयी यहाँकी वह साक्षात् श्री। अब इस पुरीको श्मशान बननेमें अधिक विलम्ब नहीं है।'

श्रीजनकनन्दिनी मूर्छित हो गयीं थीं सुनकर। त्रिजटाने सरमाको झिड़का था--- 'तुम्हें आज यहाँ नहीं आना था। जानती तो हो कि जानकी शत्रुका संताप भी सहन नहीं कर पातीं। इनके नवनीत-कोमल हृदयको ताप न हो, इसलिए मैं किसी राक्षसके मरणकी चर्चा, इनके स्वामीका शौर्य सुनानेके लिए भी इनके सम्मुख नहीं करती। अब आज तुम यहाँसे जाओ।'

'सरमा चली गयी ?' श्रीजानकीने चेतनामें आते ही पूछा— 'त्रिजटा ! सब लोग तुम सबको राक्षसियाँ कहते हैं; किन्तु तुम लोग इस प्रत्यक्ष पिशाचिनीको धिक्कारती क्यों नहीं हो जो तुम्हारे स्वजनों,

सम्बन्धियोंको प्रतिदिन चबाये जा रही है। इसे आजके दारुण दिनमें मारने आकर भी दशग्रीव लौट गया। इतनी दया उसमें और उसके मन्त्री महापार्श्वमें भी है ; किंतु सीतामें दया नहीं है।

त्रिजटाको उस दिन बहुत कठिनाई हुई। श्रीमैथिली बार-बार मूर्छिता होती थीं — 'हाय प्रमिला ! वह भोली बालिका सती हो गयी ! उसे इस भाग्यकी मारी सीताके कारण ज्वालाओंका आलिङ्गन करना पड़ा।'

'महापार्श्व मारा गया, यह समाचार सीताको मत देना।' आज सरमाके आते ही त्रिजटाने उन्हें सावधान किया। 'तुम अब लङ्काकी साम्राज्ञी होनेवाली हो। इतना सचेत तुम्हें रहना चाहिए कि इन अपनी आराध्याको उत्साहातिरेकमें व्याकुल न बना दो। जानती हो कि ये दशग्रीवके वधको भी सुनकर प्रसन्न नहीं हो सकतीं। संसारकी सम्पूर्ण ममता इनमें मूर्तिमती हो गयी है।'

लेकिन सरमा और त्रिजटा आज जो पूरी लङ्कामें करुण क्रन्दन व्याप्त था, उसे कैसे दबा सकती थीं। आज जब राक्षसियाँ दशग्रीवको ही दुःखिता होकर दुर्वचन कह रही थीं, श्रीजानकी तक उनके अपशब्द न पहुँचें—कैसे सम्भव था ? कोई सम्मुख आकर कठोर वचन न कहे, इस विषयमें त्रिजटा, सरमा और सुरक्षामें लगी दूसरी राक्षसियोंने भी पूरी सावधानी रखी ; किंतु दूरसे जो चिल्लाने, पुकारनेकी ध्वनि आ रही थी !

'सीता पिशाचिनी है। वह सब राक्षसोंका रक्तपान करनेपर तुली है।'

'सीता चामुण्डा है, वह यहाँ सबको चबाती चली जा रही है। वह इन्द्रजीतको, कुम्भकर्णको भी चबा गयी। दशग्रीवको भी चबा जायगी। उसकी उदर-ज्वालासे यहाँ कोई नहीं बचेगा।'

'सीता करालिका' 'सीता साक्षात् मृत्यु' 'सीता, सीता, सीता।' राक्षसियाँ चिल्ला-चिल्लाकर कोस रही थीं। जिनके जो मुखमें आता था कहती थीं। आज जब रावणका ही भय उन्हें नहीं था, त्रिजटा या सरमा उनको रोकनेमें कैसे समर्थ होतीं ?

'वे सब सच कहती हैं।' श्रीजनकनन्दिनीके नेत्र लाल-लाल हो रहे थे। आज उनके अश्रु भी सूख गये थे। वे जैसे उन्मादिनी हो उठी थीं—'लेकिन वे इस पिशाचिनी, करालिका, विपद्रूपाको मार क्यों नहीं देती हैं? यह वज्र-हृदया ही अब कौन-सा सुख भोगनेको जी रही है?'

सरमा और त्रिजटा अत्यन्त व्याकुल थीं। उनका हृदय छटपटा रहा था। किसी क्षण कोई दुर्घटना न हो जाय—अब एक क्षणको भी वैदेहीको अकेली नहीं छोड़ा जा सकता था।

रावण-वध

'आचार्य ! आप जैसे सद्गुरुके रहते मेरी यह दुर्दशा ?' अपने ऊपर ही आ पड़ती है, तब व्यक्तिके सैद्धान्तिक निश्चय अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। दशग्रीव कभी इतना आहत, अपमानित नहीं हुआ था। उसका हृदय व्याकुल हो गया था। उसका निश्चय विचलित हो गया था। उसने सुतल जाकर शुक्राचार्यके चरण पकड़े।

'वत्स ! मेरी सञ्जीवनी विद्या केवल मेरे यजमानों—दैत्यकुल तक सीमित रहेगी, यह मैंने सृष्टिकर्त्ताको वचन दे दिया है।' अत्यन्त नीतिज्ञ उन असुर-गुरुको द्रवित कर लेना सरल नहीं है। वे तटस्थ भावसे कह गये—'दानव-कुलको भी इसका लाभ कभी नहीं मिला। मेरे यजमानोंमें माली और सुमाली लंका नहीं गये। वृद्ध माल्यवान युद्धमें नहीं उतरेंगे। सुमालीके पुत्र प्रहस्त तथा उसके दैत्य साथियोंको मैंने पुनर्जीवित कर दिया है। उन्हें आदेश दे दिया है कि अब वे पृथ्वीपर चलने वाले इस युद्धसे दूर रहें।'

'मैं किसीको पुनर्जीवित करनेकी प्रार्थना करने नहीं आया।' रावण जानता था कि दैत्य-गुरुपर ऐसी प्रार्थनाका प्रभाव नहीं पड़ना है। यहाँ आकर वह निराश हो गया कि अब उसे अपने मातृकुलसे भी कोई सहायता मिलनेकी आशा नहीं रही। क्योंकि दैत्यकुल अपने आचार्यका अत्यन्त आज्ञानुवर्ती है। अतः दीन वाणीमें दशग्रीवने कहा—'मैं अपनी रक्षाके लिए प्रार्थना करने आया था।'

'तुम आ ही गये हो तो मैं तुम्हें निराश नहीं करूँगा।' शुक्राचार्यने मन्त्रोपदेश करके कहा—'एकान्तमें इसके द्वारा हवन करो। यदि दस सहस्राहुति निर्विघ्न दे सके तो यज्ञकुण्डमें-से अश्वोंसे जुता रथ, दिव्य धनुष तथा अक्षय त्रोण प्राप्त होगा। तुम सबसे अजेय हो जाओगे।'

आचार्यको प्रणाम करके रावण लौटा। उसने नगर-द्वार बन्द करा दिये। राजसदनका द्वार बन्द करा दिया। अपने अन्तःपुरके उस भूगर्भमें

जिसमें लङ्का-दहनके समय वह परिवार सहित सुरक्षित रहा था, प्रवेश करके, आवश्यक सामग्री लेकर मौन होकर बैठ गया। उसका द्वार भी उसने भीतरसे बन्द कर लिया।

श्रीराम भी रावणके साथ युद्ध करते हुए श्रान्त हो गये थे। वे प्रातःकाल चिन्तित हो रहे थे— 'अब दशग्रीव आने ही वाला है!'

चिन्ता सुरोंको भी कम नहीं थी। अतः सुरगुरु महर्षि अगस्त्यको लेकर वहाँ पधारे। आकाशसे अगस्त्यजी श्रीरामके समीप उतरे। श्रीरामने भाईके साथ उन्हें प्रणाम किया तो वे बोले—' महाबाहु राम: मुझसे सनातन गुह्यमन्त्र आदित्य हृदयको* ग्रहण करो। यह शत्रुनाशक, परम कल्याणकारी है। यह चिन्ता-शोकहारी, परमपावन देवासुर-नमस्कृत भगवान भास्करका स्तवन सर्वमङ्गल्य, सर्वानर्थ निवर्तक, आयुदाता, गुणवर्धक है। क्योंकि भगवान सूर्य निशानिवर्तक हैं, यह निशाचरोंके प्रतिकूल है। इसका तीन बार जप इसी समय करके तुम रावणका वध कर सकोगे।'

महर्षि अगस्त्य मन्त्रोपदेश करके चले गये। श्रीरामने आचमन करके प्रभातमें उदय हुए भगवान भास्करकी ओर देखते हुए एकाग्रमनसे तीन बार उस मन्त्रका जप किया, अन्तमें पुनः आचमन करके धनुष उठाया।

'त्वरस्व! त्वरस्व!' सूर्यमण्डलसे आती रश्मियोंमें स्पष्ट सुनायी पड़ा— 'शीघ्र रावणको मार दो।'

'विभीषण! आज अब तक दुर्गद्वार बन्द हैं। दशग्रीव या उसका कोई योधा युद्धभूमिमें नहीं आया?' श्रीरामने देखा कि वानर द्वारपर प्रहार करके उसे तोड़ देनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

'दशग्रीव अपने अन्तःपुरमें कोई यज्ञ करने लगा है।' इसी समय विभीषणके एक मन्त्रीने आकर उनके कानमें कुछ कहा। उसे सुनकर विभीषणने श्रीरामसे निवेदन किया— 'लङ्कामें राजभवनके ऊपर धूम्रकी रेखायें दीख रही हैं। वह तन्त्रोंका अद्वितीय ज्ञाता है। उसका यज्ञ पूरा हो गया तो उसे जीतना अशक्यप्राय हो जायगा। अतः हनुमान, अङ्गदादिको उसका यज्ञ, ध्वस्त करनेकी आज्ञा दें।'

---

* वाल्मीकीय रामायणके लङ्काकाण्डमें यह स्तोत्र मन्त्र है।

इस बार विभीषण साथ नहीं गये। अङ्गदके साथ हनुमान, नल-नील, द्विविद, मैन्द, गय, गवाक्षादि प्रधान यूथप श्रीरामके आदेशसे परिखा-पर कूदकर चढ़ गये और वहाँसे भवनोंपर कूदते सीधे राजसदन पहुँचे। अन्तःपुरमें उन्हें उतरते विलम्ब नहीं हुआ। रक्षकोंको थोड़ेसे संघर्षमें वानरोंने समाप्त कर दिया। विभीषणकी पत्नी सरमाने एक सेविकाको अपनी ओर कर लिया था। उसने भूगर्भगृहका द्वार संकेतसे सूचित कर दिया। अङ्गदने ठोकर मारकर वह द्वार तोड़ दिया; किंतु उस लम्बे स्थानमें सब एक साथ युद्ध नहीं कर सकते थे। रावण लाल वस्त्र पहिने अग्निमें आहुति डाल रहा था। उसने द्वारकी ओर मुड़कर भी नहीं देखा।

वानरोंने भवनके कंगूरे गिरा दिये। स्तम्भ उखाड़ फेंके। यज्ञकी सब सामग्री उठाकर एक साथ यज्ञ-कुण्डमें डाल दी। दशग्रीवके हाथसे स्रुवा छीनकर तोड़ डाला। उसके केश खींचकर, उसे नोचकर भागे; किंतु वह अविचल बैठा रहा। उसका जप अविराम चल रहा था। उसे आशा थी कि जपसे भी काम चल जायगा।

अब भी दशग्रीव उठता नहीं है, यह देखकर अङ्गदने क्रोधमें आकर उसकी एक रानीकी चोटी पकड़ी और उसे घसीटने लगे। दूसरे वानरोंने भी इसका अनुकरण किया। मन्दोदरी भी वानरोंके इस आक्रमणसे नहीं बची। स्त्रियाँ चिल्लाने लगीं— 'हाय! आज हमारा पुत्र होता तो हमारी रक्षा करता।'

वानरोंने मुख फाड़कर नाक-कान काट लेनेका ढङ्ग दिखाया। अब रानियाँ चीत्कार करने लगीं— 'हमारा अपमान हो रहा है। हम कुरूपा की जा रही हैं। तुम्हारे ऐसे पौरुष और यज्ञको धिक्कार!'

रावणको लगा, वानर सचमुच उसकी रानियोंके नाक-कान काट लेंगे। रामने यह परम्परा ही प्रचलित कर दी है। वह तलवार लेकर उठा और गर्जना की— 'दुष्टो! स्त्रियोंको छोड़ दो!'

हो गया काम। वानर तो चाहते थे कि रावण आसन त्याग दे और मौन तोड़ दे। वे अङ्गदका संकेत पाकर कूदे। अब उनको सीधे श्रीरामके समीप पहुँचनेसे कौन रोक लेता। दशग्रीव रानियोंको समझाने लगा— 'जीवनमें मान-अपमान, सुख-दुःख आता ही है। अतः धैर्य धारण करो।

आज मैं रामको मार दूंगा। यदि मैं आज मारा जाऊँ तो तुम सीताको मारकर मेरे साथ अग्नि-प्रवेश करना।'

'श्रीरामको जीतना अशक्य है। वे सनातन पुरुष हैं। प्रकृति-पुरुषके वही सञ्चालक हैं। तुमने अन्यायपूर्वक सीता-हरण किया है।' मन्दोदरीने कहा— 'विभीषण गये, तबसे यह पुरी दीना हो गयी। अब भी सीता श्रीरामको लौटा दो।'

'मयतनया! तूने यह बात अनेक बार कही है। अब मेरी बात सुन! तू जो कहती है, मैं उसे समझता नहीं हूँ, ऐसी बात नहीं है।' आज दशग्रीव खुल पड़ा— 'किंतु मेरे सब पुत्र, भाई, सुहृद सम्बन्धी मारे गये, मैं जीवित अब किसके लिए रहूँ? तुझे अब भी जीवनका मोह है? मैंने तुम सबका त्याग किया। अब अकेला दशग्रीव युद्धमें जा रहा है। आज इसे इस महामेघमें आत्माहुति देकर यह यज्ञ पूर्ण कर देना है।'

काले अश्वोंसे जुते, स्वर्णमाल्य-सज्जित मेघाकार रथपर दशग्रीव बैठा। नगरद्वारसे निकला और उसने प्रचण्ड बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी। इसी समय इन्द्रका रथ लेकर उनका सारथि मातलि आया। उसने श्रीरामसे प्रार्थना की— 'सुरपतिने आपकी सेवामें अपना यह दिव्य रथ भेजा है। आप इसपर आरूढ़ हों।'

श्रीरामने रथकी प्रदक्षिणा की। रथारूढ़ होते ही बोले— 'मातलि सावधान! शत्रुका रथ हमको दक्षिण करके वाम भागमें जा रहा है। मैं आज इसे मार देना चाहता हूँ। अपने नेत्र स्थिर रखना, अव्यग्र रहना। रथ-रश्मि सँभालकर आगे बढ़ो। तुम सुरपतिके सारथि हो। तुमने अनेक बार असुरोंका युद्ध देखा है। तुम्हें सचेत करना अनावश्यक है। मैं अब युद्धमें एकाग्र हो रहा हूँ।'

मातलिने निःशब्द सिर झुकाकर आदेश स्वीकार किया। उसी क्षण उस सुरेन्द्र, सारथिका कौशल प्रकट हुआ। उसने रथको ऐसा वेग दिया कि रथ-चक्रोंसे उड़ती धूलिसे रावणके लिए कुछ भी देखना अशक्य हो गया।

इतनी देरमें रावणके साथ आये असिलोमा, वह्निलोमा आदि जो थोड़ेसे राक्षस सैनिक थे, उन्हें अङ्गदादिने मार दिया। अब श्रीराम और रावणका द्वैरथ युद्ध आरम्भ हुआ। शेष सब तटस्थ दर्शक रह गये।

रावणके रथपर मेघोंसे रक्त-वर्षा हुई, वायु उसीकी ओर धूलि लाने लगा। पता नहीं कहाँसे असंख्य गीध उड़ते आये और वे बार-बार उसके रथपर, अश्वोंकी पीठपर बैठने लगे। दिशाएँ सन्ध्या-कालके समान लाल हो उठीं। भूकम्प हुआ। दिनमें ही उल्कापात हुआ। भूमिसे विचित्र शब्द होने लगा। शृगाली फेत्कार करती दौड़ती रथके सम्मुख आ गयी। बिना मेघके लंकामें वज्रपात हुआ और उससे राजसदनका मुख्यद्वार ध्वस्त हो गया। पूरे नगरपर धूलि-वर्षा होने लगी। सारिकाएँ परस्पर लड़ती दशग्रीवके रथपर गिरने लगीं। रथके अश्व बार-बार ठोकर खाकर घुटने टेकने लगे।

वायु श्रीरामकी ओरसे चलकर उनके सामनेका आकाश निर्मल कर रहे थे। गगन निर्मल था। अचानक एक हंसिनी उड़ती आयी और उनके रथकी ध्वजापर बैठ गयी। दक्षिणाङ्ग स्फुरित होने लगे।

'आज विजय प्राप्त करके ही विराम करेंगे!' श्रीरामने गर्जना की।

'आज जीतकर या मरकर ही इस युद्धको विराम मिलेगा!' दशग्रीवने भी सिंहनाद किया।

अब दोनों ओरसे दिव्यास्त्रोंकी वर्षा प्रारम्भ हुई। दोनों ही दिव्यास्त्रोंके लोकोत्तर ज्ञाता। सुर भी चकित रह गये। युद्ध-भूमिमें पल-पल प्रचण्ड तेज, प्रलल-मेघ गर्जन, ब्रह्माण्ड-भेदी शब्द, अग्नि, जल वायु आदिका अकल्पनीय वेग प्रकट होने लगा। दोनों दोनोंके दिव्यास्त्रोंका प्रत्यास्त्रोंसे उत्तर देने लगे।

दशग्रीवने श्रीरामके रथकी ध्वजापर बाण-वर्षा प्रारम्भ की। कमसे कम ध्वजा काट सके तो दूरसे युद्ध देखते वानरोंको रामके संकटापन्न होनेका भ्रम तो हो; किंतु सुरेन्द्रके दिव्य रथकी ध्वजाका स्पर्श करके उसके बाण गिर जाते थे।

'क्या हुआ? रावण मर गया?' लङ्कामें व्याकुलता फैली; क्योंकि श्रीरामने शत्रुकी रथ-ध्वजा काट दी। लङ्कामें केवल यह आश्वासन रह गया— 'वानर हर्षध्वनि नहीं कर रहे हैं।'

रावणने श्रीरामके रथके अश्वोंपर प्रहार किया, पर व्यर्थ। वे अमरेन्द्रके अमर अश्व मरनेवाले तो थे नहीं, उनके शरीरपर कोई व्रण भी नहीं बनता था।

अब रावणने गदा, मुशल, परिघ, चक्र, गिरिश्रृङ्गोंको फेंकना प्रारंभ किया ; क्योंकि रामने उसके दसों धनुष काट दिये थे। राम उसके फेंके सब अस्त्र-शस्त्र काटते गये। उन शस्त्र-खण्डोंसे अन्तरिक्ष भर गया।

रावण अविराम शस्त्र फेंक रहा था। राम हँसते हुए काटते जा रहे थे। बीच-बीचमें रावणको उत्साहित कर देते थे—'साधु ! साधु ! अच्छा श्रम कर रहे हो। और वेगसे ! और बल लगाकर !'

दोनों रथोंके सारथियोंका कौशल अवर्णनीय था। वे अपने रथीको अवसर देने अथवा बचानेके लिए रथोंको आगे-पीछे, दाहिने-बायें, मण्डलाकार दौड़ा रहे थे पूरे वेगसे।

श्रीरामकी बाण-वर्षाने रावणको एक बार विमुख होनेको बाध्य कर दिया। उसके चारों अश्व आहत होकर पीछे भागे। सारथि कठिनाईसे उन्हें रोककर आगे ला सका। इस अविराम दिव्यास्त्र-वृष्टिसे समुद्र क्षुब्ध हो उठा। देवता, ऋषि व्याकुल पुकारने लगे—'स्वस्ति प्रजाभ्यः ! गौ-ब्राह्मणोंका मङ्गल हो ! सब लोगोंका मंगल हो। राम विजयी हों।

अब श्रीरामने एक साथ तीस बाण मारकर रावणके दसों मस्तक और बीस बाहु काट दिये। कोई अन्तर नहीं पड़ा। युद्ध वैसे ही अविराम चलता रहा। दशग्रीवकी भुजाएँ और सिर तत्काल नवीन उग आये। इससे रावणका उत्साह बढ़ गया। वह भी मरणधर्मा है, यह बात—यह भय उसके मनसे भाग गया। वह द्विगुण वेगसे अस्त्र-वर्षा करने लगा।

श्रीरामको भी क्रोध आ गया। वे बराबर शत्रुके सिर और भुजाएँ काटते चले गये। इसका एक बहुत भयानक कुपरिणाम हुआ। रावणकी कटी भुजाएँ आकाशमें चारों ओर उड़ने लगीं। वे श्रीरामके बहुतसे बाणोंको व्यर्थ करनेके पश्चात् पृथ्वीपर गिरती थीं। पृथ्वी उन भुजाओंसे पट गयी। दशग्रीवके छिन्न सिर ऊपर-नीचे, चारों ओर दौड़ने लगे। उनसे हुंकार गूंजने लगी—'पकड़ो! रामको मार दो ! कहाँ है राम !

देवता, ऋषिगण इन उड़ते मस्तकोंके कारण अधिक ऊपर भागनेको बाध्य हुए। वानरोंने कूद-कूदकर कौतुकपूर्वक बहुतसे सिर पकड़े और उन्हें समुद्रमें फेंकने लगे। एक आतङ्क व्याप्त हो गया। श्रीरामने इस आतङ्कको देखा। उन्होंने बाण मारकर शत्रुके उड़ते सब मस्तकोंको विद्ध करके भूमिपर गिरा दिया। लेकिन इससे समस्या सुलझी नहीं। दुर्जय

दशग्रीव अभी अविराम अस्त्र-वर्षा कर रहा था। उसे अपनी भुजाओं और मस्तकके बार-बार कटनेसे जैसे कोई क्लेश हो ही नहीं रहा था।

'इस युद्धका अन्त कहाँ है ?' इस भावसे श्रीरामने सारथिकी ओर देखा।

'आप उपाय जानते हैं। युद्ध-क्रीड़ा करना चाहते हैं तो आप लीलामयको कौन रोकेगा।' मातलिने क्षणार्धके लिए गर्दन घुमाकर पीछे देखा— 'ब्रह्माजीने महेन्द्रके द्वारा जो ब्रह्मास्त्रयुक्त बाण महर्षि अगस्त्यके समीप भेजा था, वह आपके त्रोणमें अब भी सुरक्षित है। उसको प्रयोग क्यों नहीं करते आप ?'

श्रीरामने सस्मित अपना कर दूसरे त्रोणकी ओर बढ़ाया। दक्षिण स्कन्धपर बँधे त्रोणसे उस बाणके बाहर आते ही दिशाएँ उसके तेजसे व्याप्त हो गयीं। श्रीरामने उस शरको मस्तकसे लगाया और अभिमन्त्रित किया।

जिस बाणसे बालि मारा गया था, जिस बाणने खर-दूषणको कालके मुखमें फेंक दिया था, दुर्दम दशग्रीवने उनकी भी उपेक्षा की थी। वे बाण भी केवल उसका मस्तक काट सके थे और मस्तकोंका, भुजाओं-का कटना तो रावणके लिए केशोंके कटनेसे अधिक महत्त्वका नहीं रह गया था। उसे कोई पीड़ा नहीं होती थी। कटे केश बढ़ जाते हैं; किंतु उनके बढ़नेमें समय लगता है, पर दशग्रीवकी भुजाएँ और सिर तो उसी क्षण उग आते थे। अतः वह उनके कटनेकी ओर क्यों ध्यान दे। लेकिन इस दिव्य बाणको देखकर उसका हृदय भी काँप गया।

श्रीरामने वह बाण प्रत्यञ्चापर चढ़ाया। पृथ्वीमें भूकम्प आ गया। समुद्रमें उत्ताल तरंगें उठने लगीं। असमय ज्वार आ गया। अनेक-अनेक जलीय प्रचण्ड वात्याचक्र आकाश तक उठ गये। गगनसे उल्कापात होने लगा। जैसे सूर्य-मण्डलका तेज मन्द पड़ गया हो। दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं।

श्रीरामने वह शर सन्धान करके पीछे मुड़कर विभीषणकी ओर देखा। साभिप्राय थी वह दृष्टि। मानो श्रीराम पूछ रहे हों— 'यह बाण भी रावणके मस्तक काट देगा तो वे अब उग तो नहीं आवेंगे ? यह कार्य तो मेरे दूसरे साधारण शर भी सम्पन्न कर ही रहे हैं।'

विभीषण दौड़कर समीप आ गये। दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर बोले—'मस्तकोंको लक्ष्य मत बनाइये। सिर काटनेसे यह मरनेवाला नहीं है। इसके नाभि-ह्रदमें अमृतकणिका है, यह उसीकी शक्तिसे जीवित है।'

इतनी सूचना पर्याप्त थी। संकेत पाकर विभीषण पीछे चले गये। श्रीरामने कान तक प्रत्यञ्चा खींचकर वह अमोघ ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। विदीर्ण हो गया दशग्रीवका वक्ष, फट गया दुर्जय दशाननका हृदय, भस्म हो गयी रावणके नाभि-ह्रदमें स्थित सुधाकणिका। ध्वस्त रथ, मृत सारथि, त्रिलोकीको युगों तक रुलानेवाला रावण भूमिपर गिर पड़ा।

सम्पूर्ण लङ्कामें 'शरण! शरण!' की पुकार गूँजने लगी। दोनों हाथ ऊपर उठाये, शस्त्रहीन, शिरस्त्राण-रहित द्वार-रक्षक, पुरीके पथ-रक्षक, अवशिष्ट वृद्ध आदि सब राक्षस नगर-द्वारोंसे 'शरण! शरण!' पुकारते भय-विह्वल, कातर-लोचन पंक्तिबद्ध निकल पड़े।

'विभीषण! इनको अभय दो!' श्रीरामने अब घूमकर विभीषण-को पुकारा और अपने धनुषकी ज्या उतार ली। रथसे उतरकर उन्होंने सुरेन्द्रके उस रथकी पुनः प्रदक्षिणा की। उसे मस्तक झुकाया। बोले—'मातलि! तुम्हारे अत्यन्त निपुण सारथ्यने रामको विजयी बनाया। तुम्हारे और सुरेन्द्रके प्रति भी मेरा आभार। अब रथको स्वर्ग ले जाओ।'

मातलि उस दिव्य रथको लेकर स्वर्ग जानेके लिए गगनमें उठे, तब विभीषण घोषणा कर रहे थे—'सब राक्षस लङ्कामें लौट जायें। सब अपने कर्तव्यका पालन करें। दूसरी आज्ञा तक जो जहाँ नियुक्त थे, वहीं लगे रहें। कोई कर्तव्य-पालनमें प्रमाद न करे; किंतु किसीको उत्पीड़ित या संत्रस्त न करे।'

'वानरेन्द्र! सब वानरोंको मना कर दो!' श्रीरामने तत्काल सुग्रीवको आदेश दिया—'गर्जना करनेका समय समाप्त हो गया। जय-घोष करके हत शत्रुके स्वजनोंको दुःखी करना नृशंसता है। अतः सब शान्त रहें।'

यह आदेश वानर स्वीकार कर ले सकते थे, उन्होंने स्वीकार कर लिया। वे शान्त हो गये किंतु सुरोंके अन्तरमें जो उल्लास उमड़ पड़ा था,

युगोंके उत्पीड़नके पश्चात् उन्हें जो परित्राण प्राप्त हुआ था, उससे उत्साहमें आये देवताओंको कैसे रोका जा सकता था ? उन्हें तो मर्यादा-पुरुषोत्तम आदेश नहीं दे सकते थे।

'अमित - विक्रम श्रीरामकी जय !'
'सुर-श्रुति-साधु संरक्षक श्रीरामकी जय !'
'दशमुख-दर्प-दलन-कर्त्ता श्रीरामकी जय !'

गगनसे आते जयनादसे दिशाएँ गूँज रही थीं। दुन्दुभि-नाद उठ रहा था आकाशसे और अनवरत कुसुम-वर्षा हो रही थी। अप्सरा, किन्नर, गन्धर्वोंने नृत्य, वाद्य, स्तवनका महामहोत्सव प्रारम्भ कर दिया था।

रावणोपदेश

'अभी दशग्रीवका देहान्त नहीं हुआ है।' श्रीरामने इतने उग्र युद्धके पश्चात् स्वेद शुष्क होनेकी भी प्रतीक्षा नहीं की। वे लक्ष्मणसे बोले— वे महाप्राण श्रीरामेश्वरकी स्थापनामें मेरे आचार्य हुए थे। उन्होंने मुझे विजयी होनेका आशीर्वाद दिया और अपनी आहुति देकर वह आशीर्वाद सत्य किया। उनकी दक्षिणा देनी है रामको। लेकिन लक्ष्मण ! नीतिशास्त्र-का यह सूर्य मेरे उपस्थित होते ही अस्त हो जायगा। तुम जाकर उनसे उपदेश ग्रहण करो।'

लक्ष्मण गये और लौट आये। उनके पुकारनेपर भी रावणने नेत्र नहीं खोले थे। अनुजको निराश लौटा देखकर श्रीरामने उपालम्भ दिया— 'तुमने आचार्यके चरणोंके समीप उनको अभिवादन किया था ? सम्यक् सम्मान जो न देता हो, जो उपदेशके अनुकूल स्थितिका ध्यान न रखता हो, ऐसे दुर्विनीत एवं प्रमत्त जिज्ञासुका परित्याग कर देना चाहिए, यह शास्त्रकी मर्यादा है। इसे तो तुम्हें स्मरण रखना था।'

'यह इक्ष्वाकुगोत्रीय दाशरथि लक्ष्मण निखिलशास्त्रनिष्णात आचार्य पौलस्त्यके पदोंमें प्रणाम करता है।' इस बार लक्ष्मणने आहत, मूर्छितप्राय, भूमिमें विदीर्णवक्ष उत्तान पड़े दशग्रीवके पैरोंके समीप खड़े होकर उच्चस्वरसे कहकर मस्तक झुकाया। दशग्रीवने नेत्र खोल दिये— यह देखकर दोनों हाथ जोड़कर विनम्र स्वरमें बोले— 'अग्रजने मुझे आपके समीप नीतिशास्त्रका उपदेश-ग्रहण करने भेजा है। वे स्वयं शीघ्र उपस्थित हो रहे हैं।'

'लक्ष्मण ! मेरी अवस्था देखते ही हो। मेरा अंग-अंग, रोम-रोम रामके शरोंसे विद्ध है। मैं बोलनेमें अत्यन्त पीड़ाका अनुभव कर रहा हूँ। मेरी इन्द्रियाँ शिथिल होती जा रही हैं। प्राण अब प्रस्थानको उत्सुक हैं। केवल तुम्हारे इन्दीवरसुन्दर अग्रजकी एक झाँकीकी प्रतीक्षा है ; किन्तु— वह महाप्राण अपनी समस्त शक्ति समेटकर इस अवस्थामें भी मस्तिष्कको,

स्मृतिको सावधान रखता बोला— तुम नीति-शिक्षा ग्रहण करने आये हो। कोई विद्वान अपने समीप उपस्थित जिज्ञासुको निराश करे तो विद्या उसे शाप देती है। वह पिशाच बनता है। यद्यपि अत्यन्त असमय है, पर तुम्हारे लिए और समय भी तो नहीं है। मैं तुम्हें निराश नहीं करूँगा।'

'तुम महर्षि वशिष्ठके शिष्य हो। शास्त्रोंका सम्यक् अध्ययन किया है तुमने, राजनीति-शास्त्र तुमसे अज्ञात नहीं है।' रावणने शास्त्रोचित रीतिसे जिज्ञासुकी प्रशंसाकी— 'मैं केवल अपने अनुभवका सार सुना दूँ, इतना ही समय है और तुम्हारे लिए इतना पर्याप्त है।'

'साम, दान, दण्ड और भेद—इन व्यवहार-शास्त्रके चारों अंगोंको तुम समझते हो।' दशग्रीवने अब अपना अनुभव सुनाना प्रारम्भ किया— 'अपने सेवक और स्वजन प्राण देकर भी अत्यन्त अप्रिय होने पर भी उसका आदेश स्वीकार कर लेते हैं जो सदा उनकी सुख-सुविधाका पूरा ध्यान रखता रहा है। जो उनकी स्वतन्त्रता-उच्छृंखलताको भी सहता रहा है। राक्षसोंने मेरा साथ नहीं छोड़ा। मेरे लिए युद्धमें प्राण दिये। मेरी अत्युग्र प्रकृतिको सहकर भी मेरा सम्मान करते रहे, यह केवल आतङ्कसे सम्भव नहीं था। मैंने उन्हें पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी। उनकी रुचि, सुख-सुविधा मैंने सदा सावधानीसे देखी और उन्हें सुगम बनाये रखा।'

'कोई सेवाशील, विनम्र, धर्मात्मा व्यक्ति यदि अपना विरोध करने लगे, अपने मनके विरुद्ध बोले तो उसका अपमान या उपेक्षा करनेके स्थानपर उसकी बातपर बिशेष ध्यान देना चाहिये।' दशग्रीवने आज स्वीकार किया— 'मैंने विभीषणका तिरस्कार जानबूझकर किया। मैं जानता था कि वह धर्मात्मा है। ऐसा व्यक्ति चाटुकारी नहीं कर सकता। वह अपने आश्रयदाताके हितकी बात अप्रिय होने पर भी कहेगा। अपने अत्यन्त अहित होनेका भय होनेपर भी कहेगा। बात उसीकी सुनने और मानने योग्य होती है। लेकिन मैं यह भी जानता था कि बिभीषण तुम्हारे पक्षमें नहीं गया तो लङ्का अनाथ हो जायगी। राम इसे अधिकृत करनेको रुकेंगे नहीं। अपने उत्तम निर्दोष अनुजको मुझे निर्वासित करना ही था।'

'शत्रुको सामान्य मानकर उसकी उपेक्षा कभी नहीं की जानी चाहिये; किन्तु अपनेको सचिन्त दिखलाकर अपने अनुयायियोंमें भयके प्रवेशको अवसर नहीं देना चाहिये।' यह अपने व्यवहारकी व्याख्या की रावणने। 'दशग्रीवने शत्रुकी उपेक्षा की, यह दोष कोई मुझे नहीं दे

सकता। रामके प्रकट होनेके क्षणसे मैं सतर्क था ; किन्तु तुम ससैन्य सुबेल-पर आ गये, तब तक मैंने अपने सैनिकों, सेनापतियोंके मध्य उत्सव मनाये। मल्लयुद्ध देखता रहा।'

'सदा सफलता ही श्रेयस्कर नहीं होती लक्ष्मण !' अब रावणका स्वर आर्द्र हुआ, शिथिल होने लगा। उसने नेत्र-संकेतसे—क्योंकि कर उठनेमें असमर्थ हो गये थे—सौमित्रको अपने मुखके समीप बुला लिया—'कभी असफलता, पराजय, मृत्युका भी अयोजन करना पड़ता है। तुम देखते हो कि इस युद्धमें मैंने प्रयत्नपूर्वक अपने समस्त शूरोंकी आहुति दे दी है। लेकिन मैं जीवित हूँ तब तक तुम लङ्कामें प्रवेश कर सके ? मेरे सब अनुचर कहाँ गये यह भी तुमको बतलाना पड़ेगा ? अब तुम्हीं सोचकर बतलाओ, विजय किसकी हुई है ?'

'आप धन्य हैं आचार्य ! अवश्य आप विजयी हुए हैं। 'आज पहिली बार लक्ष्मणने सच्ची श्रद्धासे दशग्रीवको मस्तक झुकाया। शिव-स्थापनाके समय तो वे अग्रजके संकोचसे ही इस शत्रुको प्रणाम करते रहे थे।

'अब मैं अधिक बोल नहीं सकूँगा। मेरी मुख्य बात मन लगाकर सुनो !' दशग्रीवने उपदेशका उपसंहार किया—'जीवनके कोइ महत्त्वपूर्ण कार्य करनेकी महत्वाकांक्षा हो तो उसे सब सामान्य कार्य छोड़कर पूर्ण कर डालो। उसे कल पर टालते रहोगे तो वह कभी पूर्ण नहीं होगा।'

'आपकी कोई महत्वाकांक्षा अपूर्ण रह गयी ?' लक्ष्मणने श्रद्धा, उत्साहपूर्वक पूछा।

'रह गयी, किंतु वह असुरकी महत्वाकांक्षा है। उसे तुम मर्यादा-पुरुषोत्तमके अनुज पूर्ण नहीं कर सकते। उसे अपूर्ण ही रहने दो।' इस अवस्थामें भी दशग्रीव हँस पड़ा।

'पर वह क्या है ?' लक्ष्मणने आग्रह किया।

'सुनोगे ? अच्छा सुनो।' शिथिल स्वरमें ही अब वह बोल रहा था—'मैं सम्पूर्ण क्षार समुद्रको मधुर पेय जलसे पूर्ण कर देना चाहता था। सम्पूर्ण सागरको अनेक भागोंमें विभाजित करके बाँध देना, एक-एक भागके जलको उष्ण करके वाष्प बना देना, अवशिष्ट लवणको धरापर पर्वताकार एकत्र कर देना और वाष्पको वारिद बनाकर वर्षाके निर्मल

जलसे सागरके उस अंशको पुनः भर देना लङ्काके अधीश्वरके लिए असम्भव काय नहीं था। इसमें असंख्य जल-जन्तु मारे जाते ; किंतु हम राक्षस कहाँ प्राणियोंकी मृत्युपर रोने बैठते हैं।

'मैं चाहता था स्वर्गके लिए सोपान निर्मित कर देना। भले स्वग सूक्ष्म लोक हो, दशग्रीव स्थूल, सूक्ष्मके मध्य सोपान-निर्माणमें असमर्थ नहीं था।' लक्ष्मण चौंक गये। ओह! कहीं यह महत्वाकांक्षा यह महाप्राण पूर्ण करनेमें लग जाता—श्रुति-शास्त्र तथा सत्कर्म सदाको समाप्त हो जाते। लक्ष्मणका चौंकना देखकर रावण हँसा— 'मैं पापी-पुण्यात्माका भेद मिटा देना चाहता था। मैं असुर था न—चाहता था कि जो शरीरबलसे समर्थ हों, इतनी दीर्घ यात्रा कर सकें, सब इच्छानुसार स्वर्ग जाकर मनोरञ्जन कर सकें।'

'मैं चाहता था कि संसारमें कोई कभी रोगी या वृद्ध न हो। इसके लिए वृक्षोंमें मैं अमृत फल लगनेका विधान करना चाहता था।' रावणने बतलाया— 'मैं प्रकृतिके स्थूल रहस्योंका प्रकाण्ड पण्डित—प्रयोग करनेमें लग जाता तो रोग, वार्धक्य एवं मृत्युको समाप्त कर देनेवाला आविष्कार अवश्य कर लेता।'

'तब पृथ्वीपर केवल राक्षस रह जाते।' लक्ष्मणने भी हँसकर कहा— 'अन्य सब प्राणियोंको वे समाप्त कर देते। उनकी सन्तानोंके लिए भी पृथ्वी छोटी पड़ जाती ; क्योंकि उन्हें मरना तो होता ही नहीं। आचार्य ! आपकी महत्वाकांक्षाओंका अपूर्ण रह जाना ही विश्वके लिए वरदान हुआ।'

परम वेदज्ञ पौलस्त्य दशग्रीवको इक्ष्वाकुगोत्रीय दाशरथि राम प्रणाम करता है !' इसी समय श्रीराम आये और रावणको अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाते उसके दाहिने इस प्रकार खड़े हो गये, जिससे वह भली प्रकार उन्हें देख सके। उनका मेघ-गम्भीर स्वर गूंजा— 'अपने आचार्यको अभीष्ट दक्षिणा देने यह जन उनके चरणोंमें उपस्थित हो गया है।'

'तुम आ गये राम ?' दशग्रीवके अपलक लोचन उन इन्दीवर-सुन्दरके श्रीमुखपर लग गये। उसके कण्ठने अन्तिम सम्बोधन किया— 'राम !' एक अद्भुत ज्योति उसके शरीरसे निकली। उसने श्रीरामकी प्रदक्षिणा की और उनके श्रीचरणोंमें लीन हो गयी।

श्रीराम-स्तवन

अभी तक देवता आकाशमें ही स्थित जयघोष कर रहे थे। उन्हें युगों तक रावणने उत्पीड़ित किया था। वे तबतक आतङ्कित थे, जबतक दशग्रीवमें किञ्चित् भी श्वास शेष था। उन्हें विश्वास ही नहीं होता था कि रावण मर भी सकता था। वे भयभीत थे— 'यह दारुण कहीं अब भी न उठ खड़ा हो।'

जब दशग्रीवके शरीरसे निकली ज्योति श्रीरामके चरणारविन्दोंमें लय होते देवताओंने देख ली, तब उन्हें रावणकी मृत्युका विश्वास हुआ। अब देवता युद्धभूमिमें उतर आये।

बँधा जटामुकुट, वक्षपर कसा मृगचर्म, कटिमें वल्कल—केवल इतना शृङ्गार ; किंतु अपूर्व छटा थी श्रीराम की। मुखपर स्वेदबिन्दु झलमला रहे थे। विशाल बाहु, वल्कल और चरण भी रक्त-बिन्दुओंसे भूषित थे। वे पद्मपलाश-लोचन वाम करसे धनुषको भूमिपर टेके स्थिर खड़े थे। अब भी पीठपर दोनों त्रोण कसे थे। दशग्रीवके शवके दक्षिण वे खड़े थे और वाम भागमें लक्ष्मण। सुग्रीवादि अब समीप आ गये थे। सब श्रीरामसे कुछ पीछे ही शान्त खड़े थे।

सम्पूर्ण युद्धभूमि रक्तकी कीचसे ढकी थी। विभीषणके संकेतपर समर-स्थली स्वच्छ करनेवाला राक्षसोंका दल पूरी शक्तिसे राक्षसोंका, गज-अश्व, गर्दभ-खच्चर आदिका शव उठा-उठाकर समुद्रमें फेंक रहा था। सर्वत्र पड़ी दशग्रीवकी छिन्न भुजाओं तथा मस्तकोंके साथ भी उसे यही व्यवहार करनेका संकेत मिल गया था।

अस्त्रोंके खण्ड, चर्म (ढाल) शिरस्त्राण, आभरण, रथोंके खण्ड उस रक्तके दलदलमें बिखरे पड़े थे और पड़े थे उनमें मृत वानरोंके असंख्य शव। उन्हें स्पर्श करनेका साहस राक्षसोंके स्थल स्वच्छ करनेवाले दलमें नहीं था। उनके शरीरोंका क्या होगा, यह तो उनके स्वामीको सोचना था।

ऐसी युद्धभूमिमें देवता उतरे। उन्हें कहाँ भूमिका स्पर्श करना था कि युद्धस्थलीके रक्तकर्दमपर वे ध्यान दें। उन्हें तो गगनमें कुछ ऊपर ही

खड़े रहना था। पृथ्वीका स्पर्श तो केवल वे भूदेवीके स्वामी ही कर सकते हैं। वे अवतार लेकर धरापर आवें या आविर्भूत हों। सुर ऐसा साहस कभी नहीं करते।

देवता आये तो उनके साथ हंसवाहन भगवान ब्रह्मा भी आ गये और वृषभध्वज नीलकण्ठ महेश्वर भी पधारे। श्रुतियोंके अधिदेवता—शरीरधारी वेद आये। जनलोक और तपोलोकके दिव्य ऋषिगण पहुँचे। लोकपाल, दिक्पालादि कोई यह सुअवसर क्यों छोड़ देता।

ब्रह्माजीने, भगवान शङ्करने, ऋषियोंने, वेदोंने, सब लोकपालों-दिक्पालोंने पृथक-पृथक स्तवन किया। सभीका संकट तो श्रीरामने दूर किया था। गन्धर्व, किन्नर, यक्षादि सबको स्तुति करनी थी। सब स्तवन कर चुके, तब श्रीरामने देवराज इन्द्रसे कहा— 'आप मुझपर एक अनुग्रह करेंगे ?'

'आप आदेश करें !' महेंद्रने हाथ जोड़ा।

'मेरे लिए जिन्होंने अपने घर-द्वार, स्त्री-पुत्र सब छोड़े, यहाँ अपने आवाससे दूर शत्रुके प्रदेशमें आये, वे संग्राम-भूमिमें मरे पड़े हैं।' श्रीरामके नेत्र सजल हो गये — 'दशग्रीवकी अन्त्येष्टिके पश्चात् आप अमृतवर्षा करके उन सब मृत वानरोंको जीवित कर दें।'

'सभी वानर सुरोंके अंशोद्भव हैं। इन्होंने इस युद्धमें सम्मिलित होकर हम देवताओंकी ही सेवा की है।' इन्द्रने कहा— 'यह तो आप शीलसिन्धुका संकोची स्वभाव है कि आप इनको जीवित करनेकी प्रार्थना करते हैं, अपनेको उपकृत मानते हैं। अन्यथा वानरोंका यह अपना स्वार्थ था। उन्होंने सुरोंकी सेवामें शरीर दिया है, अतः उनको जीवित कर देना मेरा कर्तव्य है। मैं आदेशका पालन करूँगा।'

'श्रीराम ! आपके पिताश्री महाराज दशरथ मेरे मित्र थे।' इन्द्रने पुनः प्रार्थनाके स्वरमें कहा — 'देहत्यागके पश्चात् उन्होंने अमरावतीमें रहनेका अनुग्रह किया। वे आपको देखनेके लिए उत्सुक थे, अतः मैंने उनके यहाँ पधारनेकी व्यवस्था कर दी है। वे विमानके द्वारा आ रहे हैं।'

प्राणीका देहत्यागके समय पृथ्वीके किसी व्यक्ति अथवा वस्तुसे तीव्र राग या द्वेष हो तो वह यहाँ उसके समीप ही कर्मानुसार योनिमें जन्म ले

लेता है, अथवा आतिवाहिक देहमें उसके आसपास ही प्रेत या पितर बनकर मँडराता रहता है। महाराज दशरथ अत्यन्त पुण्यात्मा थे, अतः उन्हें प्रेत या पितरका आतिवाहिक देह मिलना सम्भव नहीं था। श्रीभरतने जिनकी उत्तर-क्रिया सम्पन्न की थी, श्रीरामने जिन्हें जलाञ्जलि दी थी, उन्हें पितृलोकमें तब रहना पड़ता, जब उन्हें पृथ्वीपर पुनर्जन्म प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा करनी हो। उन्होंने श्रीरामका स्मरण करते शरीर त्याग किया था। उचित तो यह था कि वे सीधे श्रीरामके धाम साकेत जाते ; किंतु अभी श्रीराम स्वयं धरापर थे, और महाराज दशरथके मनमें श्रीरामको मूर्धाभिषिक्त देखनेकी तीव्र लालसा थी। अतएव श्रीरामका राज्याभिषेक हो जाने तक उन्होंने स्वर्गमें रहना स्वीकार कर लिया था। पुण्यात्मा प्राणियोंको भले स्वर्ग भोगलोकके रूपमें मिले, श्रीचक्रवर्ती महाराजको वह मध्यमें स्वागत-स्थलके रूपमें ही प्राप्त हुआ था। महाराज वहाँ शक्रके शासित नहीं, इन्द्रके सम्मान्य अतिथि थे।

प्राणीके शरीर-त्यागके समय उसके स्थूल शरीरका जैसा आकार होता है, उसे मिलनेवाले आतिवाहिक देह (प्रेत एवं पितर शरीर) का, भोग-देह (स्वर्गके शरीर) का तथा यातना-देह (नरकके शरीर) का भी वैसा ही आकार होता है। यह शरीर होता तो पाञ्चभौतिक ही है ; किंतु पृथ्वीके स्थूल शरीरोंकी भाँति पार्थिव (पृथ्वी तत्त्व प्रधान) नहीं होता। यदि आतिवाहिक देह (प्रेत या पितरका) अथवा यातना देह (नरकका) हुआ तो वायु तत्त्व प्रधान होता है। यदि भोग देह (देव देह) हुआ तो तेजस (अग्नि) तत्त्व प्रधान होता है।

इन सब शरीरोंको सामान्यतः पृथ्वीके प्राणी देख नहीं सकते। क्योंकि ये शरीर सूक्ष्म तत्त्वोंसे बने हैं, पार्थिव पदार्थ—वृक्ष, पर्वत, भित्तियाँ, शिलाएँ या जल इनकी गतिमें बाधक नहीं बन सकते। उनमें-से ये ऐसे ही आ-जा सकते हैं, जैसे हम आप आकाशमें-से। इन शरीरोंमें रहनेवाले प्राणी चाहें तो अपने शरीरको थोड़े कालके लिए इतना सघन कर ले सकते हैं कि उन्हें पृथ्वीके लोग देख सकें। उनको पृथ्वीके पार्थिव शरीरके समान समझकर उनसे व्यवहार कर सकें। इस प्रकार शरीरको सघनता देनेकी शक्ति, उसे सघन बनाये रखनेका समय सबका भिन्न-भिन्न होता है। प्रेत प्रायः रात्रिमें ही ऐसा कर पाते हैं। पितर, देवता दिनमें भी कर सकते हैं। देरतक इस स्थितिमें रह सकते हैं।

सुरोंने भी इसी प्रकार अपना शरीर सघन करके श्रीरामका स्तवन किया था। महाराज दशरथ भी इसी प्रकार प्रत्यक्ष अपने प्रिय पुत्रके समीप पधारे। पिताको आया देखकर श्रीराम सानुज खड़े हो गये। दोनों भाइयोंने भूमिपर लेटकर पिताको प्रणिपात किया। महाराज दशरथने दोनोंको उठाकर हृदयसे लगाया। दोनोंका सिर सूँघा।

'वत्स राम भद्र! तुम्हारा कल्याण हो।' महाराजकी वाणी गद्गद् हो रही थी— 'तुमने दशग्रीवको मारकर इक्ष्वाकु वंशको उज्वल कर दिया। मैंने और मेरे पूव पुरुषोंने इस सुर-साधु-संतापदायीकी उपेक्षा करके जो अपराध किया था, उसे तुमने मिटा दिया। चक्रवर्ती होकर भी सत्कार्य एवं सत्पुरुषोंको पीड़ित करने वालेकी उपेक्षा हमारे कुलके लिए कलङ्क थी। तुमने उस कलुषको धो दिया।'

'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपके द्वारा एक वरदान पानेकी कामना करता हूँ।' श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की।

'वत्स तुम सर्वलोकेश्वर हो। दशरथ धरापर था तो और स्वर्गमें है तो, इसका जो कुछ है, जो भी इसकी शक्तिमें है, वह सब तुम्हारा स्वत्व है।' महाराज उत्फुल्ल बोले— 'तुम कुछ माँगकर मुझे सुखी करना चाहते हो। तुम्हें कुछ भी देकर मुझे असीम आनन्द प्राप्त होगा।'

'आज रामको जो यश, जो उत्कर्ष प्राप्त हुआ है, वह अम्बा कैकेयीके वरदानोंका प्रसाद है।' श्रीरामने प्रार्थना की— 'आपने मेरे स्नेहवश उन परम सतीको परित्यक्ता घोषित कर दिया था। मेरा अनुरोध है कि आप उन्हें पुनः अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लें। वे पतिलोक प्राप्त करें और वहाँ आपकी प्रिया बनी रहें।'

'राम! यह प्रार्थना तुम्हीं कर सकते थे।' महाराजका स्वर अत्यन्त गद्गद हो गया— 'तुम्हारा आदेश-अनुरोध अस्वीकार कर देनेकी शक्ति त्रिभुवनमें किसीमें नहीं है। तुम चाहते हो, अतः मैं कैकेयीको स्वीकार करता हूँ।'

महाराज जब पूछकर, आशीर्वाद देकर स्वर्ग पधारे श्रीरामको लगा कि उनके हृदयका भारी भार दूर हो गया। उन्हें दशग्रीव-दलनका सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त हुआ।

रावणकी अन्त्येष्टि

'आज आप सुरजयी, वेदज्ञ, महापराक्रमी, इस प्रकार पृथ्वीपर पड़े हैं ?' इच्छा न होनेपर भी बड़े भाईका शव देखकर विभीषण व्याकुल हो उठे थे। वे उस शवके समीप घुटनोंके बल बैठकर रुदन करने लगे थे— 'यही परिणाम होना है, मैं जानता था ; किंतु आपने अहङ्कारवश मेरी बात नहीं मानी। प्रहस्तने, इन्द्रजितने, कुम्भकर्णने, आपने जिस परिणामकी आशा नहीं की थी, वह सामने आया। राजनीतिका प्रखर प्रताप, वेदज्ञोंका सूर्य ग्रस्त हो गया। पौरुषका प्रतिमान आज नष्ट हो गया।'

'विभीषण ! तुम्हारे ये अग्रज श्लाघ्य हैं।' जैसे ही देवता स्तुति करके गये, श्रीराम विभीषणके समीप आ गये। 'कौन कहता है कि ये विनष्ट हुए। युद्धमें प्रचण्ड पराक्रम करके वीरगति पाना शूरोंको सदा अभीष्ट रहा है। इनकी मृत्यु शोकके योग्य नहीं, प्रशंसाके योग्य है। अतः शोक त्याग दो।'

'ये जीवनमें कभी पराजित नहीं हुए थे ; किंतु यह महासागरका प्रबल ज्वार आज आप-रूपी बेलासे टकराकर भग्न हो गया।' विभीषणने शोक कातर कहा— 'जीवनमें इन्होने दान किया, सब भोग भरपूर भोगे, शत्रुओंको सन्ताप दिया और सन्तुष्ट किया। सेवकोंको धनी, सुखी रखा। ये तपस्वी, आहिताग्नि, वेदज्ञ थे। इनके मरनेपर मुझे उचित कर्त्तव्यका आप परम धर्मज्ञ उपदेश करें।'

'मेरे सम्बन्धमें शङ्का मत करो। शत्रुता शत्रुके शरीरसे नहीं, उसके कर्मसे होती है। इनकी मृत्युके साथ हमारा प्रयोजन पूरा हो गया। अब ये जैसे तुम्हारे भाई हैं, वैसे ही मेरे भी हैं।' श्रीरामने समझाया— 'सबका अन्तिम यज्ञ होता है देहमेध। अतः उठो और इनकी अन्त्येष्टि—शरीरकी अग्निको आहुति देकर वह यज्ञ सम्पन्न कर दो।'

इसी समय लंकाके दुर्गद्वारसे मुक्तकेशा, निराभरणा दशग्रीवकी रानियाँ रुदन करती, वक्ष पीटती निकलीं। वे उस समरभूमिमें पड़े शवसे

लिपटकर क्रन्दन करने लगीं— 'तुम अपने तेजसे इन्द्र और यमको भी कम्पित करते थे। लोकपाल कुबेरसे पुष्पक इसीलिए छीन लाये थे कि आज इस प्रकार पृथ्वीपर पड़े रहो? सीतारूपी मृत्युको तुम स्वयं उठा लाये। विभीषणकी बात मानी नहीं। इनकी बात मानकर सीताको लौटा देते तो हम आज अनाथा, विधवा क्यों बनतीं?'

'तुमने जिसे उत्कर्षके शिखरपर पहुँचाया था, स्वयं उस राक्षस जातिको नष्ट कर दिया। सदा कहीं किसीके मनका हुआ है? दैवकी गतिको कोई टाल सका है?' महारानी मन्दोदरी अङ्कमें रावणका मस्तक लेकर विलाप कर रही थीं— 'तुमसे उद्विग्न होकर देवता भागते थे। त्रिलोकीको जीता तुमने, वही तुम रामके हाथों मारे गये, यह विश्वास ही नहीं होता है।'

'खरके मारनेका समाचार मिला, तभी मुझे लगा कि राम मनुष्य नहीं हैं। जब इन्होंने समुद्रपर सेतु बना लिया, विश्वास हो गया कि राम परम पुरुष, अनादि-अनन्त, सनातन पुरुष हैं। मनुष्य रूपमें लोक रक्षा-निमित्त प्रकट इन श्रीवत्सवक्षा, अजित, अप्रमेय, शाश्वत, सत्यपराक्रमको पहिचाना नहीं।' मन्दोदरीका विलाप भी उसीके अनुरूप था— 'तुम ऐसे महत्तम कि तुम्हें पराजित करनेको देवता वानर बने। परमेश्वरको भी तुम्हें मारनेके लिए मनुष्य बनना पड़ा। मैंने तुमसे बार-बार कहा था कि रामसे विरोध मत करो।'

'परस्त्री सीताकी चाह-ने तुम्हारी यह गतिकी। सीता तो अरुन्धती-से भी श्रेष्ठ महासती हैं, तुमने उनकी अवज्ञा की। उन पतिव्रताके तपसे तुम दग्ध हो गये।' रानियोंमें अनेकों प्रकारकी विलाप व्याकुल बातें उठ रही थीं— 'पापका फल अवश्य भोगना पड़ता है। अत्युग्र पाप तत्काल फल देता है। अन्यथा कुलमें, रूपमें सीता मुझसे श्रेष्ठ नहीं हैं, पर तुम्हें यह सूझता ही नहीं था। अभागिनी तो मैं हूँ। मेरा पुण्य क्षीण हो गया। तुमने मुझे क्या-क्या सुख नहीं दिया।'

'मैं दानवेन्द्र मयकी पुत्री, इन्द्रजितकी माता आज अनाथा हूँ?' मन्दोदरीकी व्यकुलता असीम थी— 'मैं तभी क्यों नहीं मर गयी, जब इन्द्रजित मरा। तुमने ऋषियोंको बहुत सताया। सहस्रों सतियोंको विधवा बनाया। उनका शाप आज मुझे यह दिन दिखला रहा है। तुम तो अपने पुण्य-पाप लेकर चले गये, अब मैं अपने लिए शोक कर रही हूँ।'

मन्दोदरी रावणके वक्षपर गिरकर मूर्छित हो गयी। उसे दूसरी रानियोंने उठाया। यह देखकर श्रीरामने विभीषणसे कहा— 'स्त्रियोंको लौटा दो और अग्रजका अग्नि संस्कार करो।'

'मैं इस त्यक्त धर्मा, क्रूर, नृशंस, परस्त्री-लोलुपकी अन्त्येष्टि नहीं करूँगा। मन्दोदरीने विलाप करते हुए जो रावणके दुष्कर्मोंका वर्णन किया, उसे सुनकर विभीषणका क्षणिक मोह मिट गया। वे ग्लानिपूर्वक उठ खड़े हुए। वितृष्णासे बोले— 'यह तो भाईके रूपमें शत्रु था। सर्व-लोकोपतापक था। महा-अधर्मी था।'

'विभीषण! तुम धर्मज्ञ हो। जानते हो कि सब समय अपने मनका कार्य ही उचित नहीं होता।' श्रीरामने स्नेहपूर्वक समझाया— 'मेरी प्रसन्नताके लिए दशग्रीवकी अन्त्येष्टि करो। भले तुम्हारा यह भाई अधर्मी था; किंतु शूर था, तेजस्वी था, युद्धमें लड़ता मारा गया। उसकी बुराई भूल जाओ। इससे तुम्हें सुयश प्राप्त होगा।'

'आपका आदेश अनुलंघनीय है।' विभीषण उठ खड़े हुए। अब उनका चित्त शोक और वितृष्णा दोनोंसे स्वच्छ हो गया था। उन्होंने दशग्रीवकी रानियोंको समझाकर नगरमें भेजा।

'मैं इनके साथ जाऊँगी।' मन्दोदरी अपने पतिके शवके साथ लिपट गयी।

'नहीं देवि!' श्रीरामने रोका। रोकनेका कारण था। सतीको पतिके साथ सती होनेसे रोक देनेकी शक्ति किसीमें नहीं है; किंतु सतीत्व एक साधना है, आवेश नहीं है। आवेश क्षणिक होता है, पर साधना तो सतत चलकर जीवनका निर्माण करती है। जिन लोकोत्तर नारियोंके जीवनमें यह सतीत्वकी सतत साधना चलती रही है, पतिका परलोक गमन उनमें शोक नहीं जगाता। उनमें एक आत्मोत्सर्गकी दिव्य प्रेरणा देता है। उस समय उनका अन्तःकरण अद्भुत स्थिरता और उज्वलता प्राप्त कर लेता है। उनका देह तक दिव्य हो उठता है। उनके पदोंसे पृथ्वीपर कुंकुमके बिन्दु गिरते लगते हैं। दशग्रीवकी रानियोंमें-से एकमें भी ऐसी स्थिरता-दिव्यता नहीं आयी थी। वे केवल शोकावेशमें थीं।

मन्दोदरी नित्य कन्या—उसमें सतीत्वका जागना तो सम्भव नहीं था। दूसरी रानियोंमें भी किसीमें वह स्थैर्य नहीं जागा कि वे सुव्यवस्थित

श्रृङ्गार करके, शान्त सहमरणको आयी हों। वे तो शोक विह्वला थीं और आवेशमें आकर प्राणत्याग आत्मोत्सर्ग नहीं, आत्महत्या होता है।

'तुम दिव्या हो। तत्त्वज्ञा हो। तुम्हारी बहुत अधिक आवश्यकता है लङ्काको।' श्रीरामने समझाया— 'अपनेको स्थिर करो। दशग्रीवकी अन्त्येष्टिके पश्चात् तुम्हारे दर्शन करके रामको प्रसन्नता होगी।'

'तुम सर्व-सञ्चालक, सर्वेश्वर।' मन्दोदरीने भूमिपर श्रीरामके सम्मुख मस्तक रखा— 'तुम्हारे संकेतसे ही समस्त सृष्टि-चक्र चलता है। एक अबला तुम्हारे आदेशकी अवज्ञा कैसे कर सकती है।'

मन्दोदरी दूसरी रानियोंके साथ समुद्र-स्नान करने चली गयी। विभीषणने चन्दन, उशीर, पद्मकाष्ठके द्वारा ब्राह्मणोचित विशाल चिता सज्जित करायी। स्नान कराके जब दशग्रीवका शरीर उस चितारूपी पितृमेध वेदीपर कुशास्तरण करके चढ़ा दिया गया, तब उसके ऊपर भी कुश आस्तृत किये गये। सब यज्ञपात्र एवं मुशल भी शवके समीप रखे गये। प्रज्वलित दक्षिणाग्नि लेकर स्नानार्द्रवस्त्रोंमें विभीषणने तीन बार चिताकी प्रदक्षिणा करके नैऋत्य कोणमें अग्नि लगायी। लाजाकी अञ्जलि अर्पित की।

समुद्रके किनारे चैत्रकी अमावस्याके दिन मध्याह्नके उपरान्त युगों तक त्रिभुवनको आतङ्कित रखनेवाले दुर्दान्त दशग्रीवका शरीर चितापर धू-धू करके जल रहा था। इतनी दीर्घायु, इतना ऐश्वर्य, इतना वैभव, ऐसा अतर्क्य बल—सबका धरापर यही अन्तिम परिणाम। स्वयं दशग्रीवने जो महामेध प्रारम्भ किया था, उसमें अपने समस्त अनुयायियोंकी आहुति देनेके पश्चात् उसके स्वयंके शरीरकी यह पूर्णाहुति पड़ गयी।

श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव और सब वानर शान्त, नीरव बैठे थे। विभीषणने आर्द्रवस्त्र अपने इस अग्रजका तर्पण किया। सब कर्म सम्पन्न करके वे श्रीरामके समीप आये और हाथ जोड़कर सिर झुकाये खड़े हो गये।

इसी समय मन्दोदरी भी आयी। वह लङ्काकी साम्राज्ञी, आज एकाकिनी, पैदल, मुक्तकेशा, आभरणहीना आयी थी। उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा चल रही थी। वह बोलनेमें असमर्थ थी। दोनों हाथ जोड़कर श्रीरामके चरणोंके सम्मुख वह शान्त बैठ गयीं।

विभीषणका अभिषेक

'आप दानवेन्द्र मयकी महिमामयी पुत्री हैं देवि ! आपका कन्यात्व नित्य अखण्ड है। आपका ज्ञान अविद्याके कल्मषसे कभी अपवित्र नहीं हुआ। आपमें शरीरके प्रति यह आसक्ति उचित नहीं है। आप शोकका त्याग करें।' श्रीराम स्वयं मन्दोदरीको समझाने लगे। वे सबके उर-प्रेरक हृषीकेश— उनकी इच्छा ही तो सर्वत्र साकार होती है।

'आपके इस पतिकुलमें और पितृकुलमें भी सहमरण श्लाघ्य नहीं माना जाता।' श्रीरामने कहा— 'अपवाद सर्वत्र होते हैं ; किंतु उनको नियम बनाना उचित नहीं है। आपकी पुत्रवधू प्रमिला अपवाद थी इस कुलमें।'

'आप अपने इस पति-कुलको उच्छिन्न, परस्परके संघर्षसे समाप्त होता तो नहीं देखना चाहतीं ?' श्रीराम इस समय मन्दोदरीके प्रति अत्यन्त आदर प्रदर्शित कर रहे थे— 'यह सत्य है कि लङ्काके वास्तविक शासक विभीषण ही थे ; किंतु जो परिस्थिति बन चुकी है, उसमें अवशिष्ट राक्षसोंकी आस्था विभीषणपर बनी रहेगी ? जिनके पति-पुत्र-भाई मारे गये हैं, वे नारियाँ विभीषणको सहयोग देंगी ?'

'विभीषणको भय तथा आतङ्कको माध्यम बनाकर व्यवहार करना नहीं आता, यह आप भली प्रकार जानती हैं।' श्रीरामके मुखकी ओर चकित मन्दोदरी देख रही थी। उसके अश्रु सूख चुके थे। वह समझ नहीं पाती थी कि ये लीलामय कहना क्या चाहते हैं। श्रीराम कहते गये— 'विभीषण भोग लोलुप नहीं हैं। उन्हें आवश्यक भोगोंका अब अभाव नहीं रहेगा। अपनी पत्नीमें इनकी प्रीति है।'

'आपका सम्पूर्ण राक्षस-कुलपर अखण्ड प्रभाव रहा है। आपपर अब भी सब राक्षस-राक्षसियोंकी आस्था है। सब आपका सम्मान करते हैं। आपके कुलमें इसे दोष नहीं माना जाता।' अब श्रीरामने अभिप्राय स्पष्ट किया— 'अतः लङ्काकी सुव्यवस्थाके लिए, हत-बान्धव दुःखियोंको

आश्वस्त करनेके लिए आप सबका आश्रय बन । आप अपना साम्राज्ञीका मुकुट स्वीकार कर लें । विभीषणको केवल सिंहासनपर साथ देनेके लिए आपका सहयोग वाञ्छित है ।'

'अर्थात् मैं पुनः शृङ्गार करूँ ?' मन्दोदरीके नेत्र जल उठे— 'आप मर्यादा पुरुषोत्तम चाहते हैं कि यह विधवा फिर वधू बने ? मैं सरमाका स्वत्यापहरण करूँ ?'

'देवि ! आप नित्य कन्या है ।' श्रीराम शान्त बन रहे । 'आपके कुलमें यह निन्दित आचार नहीं है । इस समय समग्र राक्षस जातिको जो इस महासंहारसे बची है , आपके आश्रयकी आवश्यकता है । विभीषणकी पत्नीका स्वत्वापहरण कहाँ होता है । मैंने सुना है , वे सरला शासिका नहीं हैं । शासन उनके स्वभावमें नहीं है । वे विभीषणके अन्तःपुरकी अधीश्वरी बनी रहेंगी । यह तो आपके लिए एक विषम तप है ।'

मन्दोदरीने रोते-रोते भूमिमें मस्तक रखा । दोनों हाथोंमें मुख छिपाये वह रोती हुई लौट चली लङ्काकी ओर ।

'लक्ष्मण ! ये मुझमें अनुरक्त हैं । इन्होंने मेरे लिए सर्वस्वका त्याग कर दिया । युद्धमें इन्होंने मेरा बहुत उपकार किया । मैं इनके प्रति किये गये अपने 'लंकेश्वर' सम्बोधनको सफल देखना चाहता हूँ ।' मन्दोदरीके जाते ही श्रीरामने भाईको आदेश दिया । सुग्रीवको आलिंगन देकर कहा— 'वानरेन्द्र ! आप हनुमान , अङ्गद , नील आदि सब प्रमुख यूथपोंको लेकर लक्ष्मणके साथ लङ्का पधारें । विभीषणको सविधि सिंहासन-पर बैठा दें और राक्षसोंको आश्वस्त कर दें ।'

लक्ष्मण सबके साथ विभीषणको लेकर लंकामें प्रविष्ट हुए । वानरोंको स्वर्ण कलश देकर सभी समुद्रोंका जल , तीर्थोंका जल तथा आवश्यक औषधियाँ लाने भेज दिया गया । शीघ्रतापूर्वक दशग्रीवकी राजसभा सज्जितकी गयी ।

ऐसा विषम समय था , जब राज्याभिषेकका कोई बड़ा महोत्सव करना विडम्बना ही होती । लंकामें सब विभीषणके अपने ही स्वजन थे । उनके पुत्र , पिता , भाई , सगे सम्बन्धी मारे गये थे , विधवाओंकी ही बहुलता थी लंकाके गृहोंमें । अतः अनिवार्य माङ्गलिक शङ्खध्वनि मात्र होनी थी ।

विभीषणको, उनकी पत्नी सरमाको, मन्दोदरीको भी तीर्थोंके जलसे स्नान कराया गया। तीनोंने वस्त्राभरण धारण किए। अङ्गराग, चन्दन, पुष्पमाल्य—इनके अतिरिक्त रावणके कोषमें सभी निधियाँ थीं। दक्षिणावर्त उज्वल शङ्ख तथा अन्य मांगलिक रत्न, मणियाँ उपस्थित की गयीं।

लक्ष्मणने हाथ पकड़कर विभीषणको सिंहासनपर बैठाकर तिलक किया। वानरेन्द्र सुग्रीवने उनके करोंमें रत्न-जटित राजदण्ड दिया। लक्ष्मणके अनुरोधपर मन्दोदरीने विभीषणके वामपार्श्वमें बैठकर जब रत्न-किरीट मस्तकपर रखा, सरमाने आगे आकर सादर अपनी इस साम्राज्ञीकी पद-वन्दना की।

विभीषणके मन्त्रियोंने उनके ऊपर छत्र तथा चामर, व्यजन धारण किया। युवराज अङ्गद तथा दूसरे वानर यूथपोंने जब उनकी वन्दना कर ली, अवशिष्ट राक्षस उपहार लिये आये। इनमें सबसे आगे दैत्यश्रेष्ठ, दशग्रीवके मातामह माल्यवन्त थे।

उसी समय लक्ष्मण तथा सुग्रीवसे सम्मति करके विभीषणने अपने अबतक साथ रहे मन्त्रियोंको शासनका मन्त्री घोषित किया। उन्होंने इसी समय नगरके सुरक्षा अधिकारी नियुक्त किये। दूसरे भी कुछ प्रधान पदोंकी घोषणा की।

लङ्कामें रावण-वधका समाचार पहुँचते ही सूर्पणखा नगर त्यागकर चली गयी थी। उसने मधुवन पहुँचकर मधुदैत्यके पुत्र लवणासुरके यहाँ शरण ले ली।

'किसीको भी उसके पिछले अपराधोंके लिए कोई दण्ड नहीं दिया जायगा!' विभीषणकी प्रथम राजाज्ञा नगरमें तत्काल घोषित की गयी—'नवीन राक्षसेश्वर तथा महाराज्ञी मन्दोदरीने सबके अबतकके अपराध क्षमा कर दिये। किसीको भयभीत नहीं होना चाहिये; किंतु अब राक्षसोंको कहीं किसीको भी उत्पीड़ित नहीं करना चाहिये। सुरोंका, सत्पुरुषोंका और सभीके उपासना स्थानोंका सम्मान करना चाहिये। अब गोवंश सम्मान्य पशु माना जायगा। किसीका स्वत्व हरण करनेवाला, किसीके साथ अन्याय करनेवाला दण्डित होगा।'

'राज्य वस्तुतः मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामका है।' विभीषणने स्पष्ट घोषणा की— 'मैं केवल उनका सेवक हूँ। भारतके सभी आर्य नरेश और वानरेन्द्र सुग्रीव हमारे मित्र हैं। हमारी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं है। हम शान्तिपूर्वक रहनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं।'

प्राप्त सब उपहार, सब माङ्गलिक द्रव्य, असंख्य रत्न-मणि पुष्पकमें विभीषणने भरवायीं। उस विमानको लेकर श्रीरामके सम्मुख उपस्थित हुए। वह सब सामग्री उन्होंने सादर अर्पित की।

'मैंने यह सब स्वीकार किया।' सस्मित श्रीराम बोले— 'लेकिन अभी लंकेश्वरको किञ्चित् श्रम और करना है। इन वानरोंकी सहायतासे ही राम समर-विजयी हुआ है। अतः विजयोपहारके ये प्रथम अधिकारी हैं। इन असंख्य वानरोंको पुरस्कार-वितरणकी एक ही सुविधाजनक व्यवस्था सम्भव है, तुम विमानमें बैठकर आकाशसे सब सामग्रीकी वर्षा कर दो। वानर स्वेच्छानुसार पदार्थ ग्रहण कर लें।'

विभीषणका अभिषेक हो रहा था, तभी युद्धभूमिपर महेन्द्रने अमृत-वृष्टि कर दिया था। युद्धमें मारे गये सब वानर जीवित हो गये थे। विभीषणने आज्ञा मानकर वस्तुओंकी वर्षा की तो वानर उन्हें कूद-कूदकर लूटने लगे।

'आपने जिस अपराधमें दशग्रीवका वध किया, परस्त्रीको बलपूर्वक अपमानित करनेका वही अपराध इस दुष्टने किया है।' अबतक लक्ष्मणने अपनेको संयमित रखा था। विभीषणके पदार्थ वर्षा करके उतरते ही अङ्गदने लक्ष्मणके संकेतके अनुसार बँधे द्विविदको श्रीरामके सम्मुख उपस्थित किया। लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध थे— 'यह प्राणदण्डका पात्र है।'

विभीषणके अभिषेक महोत्सवमें आयी राक्षस-सुन्दरियोंको देखकर द्विविदका मन विचलित हो गया था। उसने एकको बलपूर्वक उठाया। वह चाहता था कि उसे किसी गुफामें छिपा देगा। यहाँसे विदा होते समय ले जायगा; किंतु वह चीत्कार करने लगी। उसके क्रन्दनको सुनकर अङ्गद दौड़े। द्विविदको लक्ष्मण वहीं विभीषणके द्वारा प्राणदण्ड दिलाना चाहते थे, परन्तु विभीषण श्रीरामके किसी जनको दण्ड नहीं देना चाहते थे। उन्होंने

कह दिया— 'विजयके उल्लासमें सैनिक कुछ उच्छृङ्खलता करें तो उसे क्षमा किया जाना चाहिये।'

'इस समय इसे दण्ड देना उचित नहीं है।' द्विविद लक्ष्मणके आदेशके अनुसार बन्दी करके लाया गया था। मर्यादा पुरुषोत्तमने अग्रजसे कहा— 'हमें लंकेश्वरके प्रथम क्षमादानका सम्मान करना चाहिये। यह अब असुर हो ही गया है। तुम द्वापरमें इसे प्राणदण्ड दे देना।*

* द्विविदको द्वापरमें श्रीबलरामने मारा, यह कथा 'श्रीद्वारिकाधीश'में दी गयी है।

वैदेहीकी विपत्ति-विदा

'अब तुम राजधानी जाकर पहिले पुरीकी व्यवस्था ठीक करो।' श्रीरामने विभीषणको आज्ञा दी। विभीषण भी इस समय उत्सुक थे नगरमें जानेके लिए। उन्हें अनेक अत्यावश्यक कार्य स्मरण आ रहे थे। भगवती वैदेहीके दर्शन आवश्यक थे और श्रीरघुनाथसे नगरमें पधारनेकी प्रार्थना करनेके पूर्व भी कुछ व्यवस्था करनी ही थी। वे प्रणाम करके चले गये।

'हनुमान ! विभीषणकी आज्ञा लेकर सीताके समीप जाओ।' श्रीरामने आञ्जनेयको आदेश दिया— 'रावण मारा गया और मैं सुग्रीव तथा लक्ष्मणके साथ सकुशल हूँ, यह समाचार उन्हें देकर लौट आओ।'

श्रीवैदेही तक समाचार पहुँच गया होगा ; किंतु उन्हें अधिकृत एव विश्वस्त सूत्रसे भी तो समाचार मिलना चाहिए। राक्षसियोंपर अविश्वास कर सकती हैं। श्रीरामके दलमें केवल हनुमानसे परिचित थीं। जिन्होंने उनका पता लगानेके लिये समुद्र लाँघनेका श्रम करके अकेले शत्रुपुरीमें प्रवेशका साहस किया था, सुख-समाचार पहुँचाना उनका स्वत्व था।

हनुमानने राजसदन पहुँचकर विभीषणसे अनुमति माँगी तो वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। वे स्वयं साथ जाते ; परन्तु हनुमान एकाकी जाना चाहते थे। इस समय यही उचित था।

श्रीसीता मलिनदेहा, मलिनवस्त्रा, राक्षसियोंसे घिरी बैठी थीं। उनका मुख सौम्य था। राक्षसियाँ आज बहुत अधिक थीं। सब हाथ जोड़े विनम्रवदना बैठी थीं।

'अम्ब ! श्रीरामका सेवक यह पवनपुत्र हनुमान आपके पादपद्मोंमें प्रणाम करता है।' हनुमानने द्वारसे प्रवेश किया था। पृथ्वीपर उठकर प्रणाम किया। उठकर हाथ जोड़कर खड़े हुए– 'सानुज श्रीराम वानरेन्द्र सुग्रीवके साथ सकुशल हैं। शत्रु मारा गया। विभीषणको लङ्काका राज्य प्राप्त हो गया। प्रभुने आपकी कुशल पूछी है। सौभाग्य है कि आप जीवित हैं, सकुशल हैं, स्वस्थ हैं। जबसे आपको लौटानेकी प्रतिज्ञा करके गया हूँ, अब तक सोया

नहीं हूँ। अब सब निद्रा पूरी करूँगा। लङ्का अब हमारे वशमें है। अपा अपने उद्यानमें हैं!'

हनुमानने पुनः पृथ्वीमें पड़कर प्रणिपात किया। वे हाथ जोड़कर फिर खड़े हुए। श्रीवैदेही उठकर खड़ी हो गयीं; किंतु उनके मुखसे कोई शब्द नहीं निकला। आञ्जनेयने पूछा—'आप किस चिन्तामें हैं?'

'वत्स! तुमसे यह सम्वाद पाकर मैं हर्ष-विह्वल हो गयी हूँ।' हर्षाश्रुकी धारा चल पड़ी। गद्गद् स्वर बोलीं—'समझ नहीं पाती हूँ कि तुम्हें क्या दूँ। सृष्टिमें तुम्हें देने योग्य कुछ नहीं है। त्रिभुवनका राज्य भी तुच्छ है इस सम्वादके सम्मुख।'

'पतिव्रता-शिरोमणि आप ही ऐसी बात कह सकती हैं।' हनुमान भी हर्ष-विभोर हो उठे—'सानुज श्रीरामको विजयी, कुशली मैं देख रहा हूँ, इससे बड़ा पुरस्कार मुझे क्या प्राप्त हो सकता है?'

'वत्स! तुमसा सच्चा सेवक ही ऐसी बात कह सकता है।' उन निखिलेश्वरने आशीर्वाद दिया—'तुम बल, वीर्य, तेज, सहनशक्ति, धृतिमें विश्वमें अद्वितीय रहो। श्रीराम-चरणानुराग तुम्हारे अनुग्रहसे प्राणियोंको प्राप्त हो।'

भाव-विभोर हनुमानने मस्तक रख दिया उनके चारु चरणोंपर। कुछ क्षणके पश्चात् शिशुके समान सरल वाणीसे बोले—'आपकी आज्ञा हो तो मैं अपना पहिला क्रोध आज निकाल लूँ। आपको उत्पीडित करने वाली राक्षसियोंको घूसे-थप्पड़ मारूँ, दातोंसे काटूँ, नोच डालूँ, इनके नासिका-कर्ण काट लूँ। इनके केश उखाड़ लूँ। इनके दाँत तोड़ दूँ। यह मेरी पुरानी प्रबल इच्छा है।'

राक्षसियाँ तो भयके कारण थर-थर काँपने लगीं। वे सब श्रीजानकीके पीछे सिमट गयीं। उन्हें भागकर कहीं भी बचनेकी आशा नहीं थी। श्रीवैदेही सरोष बोलीं—'तुम श्रीरामके सेवक होकर यह क्या कहते हो? ये पराधीना थीं। अपने राजाकी आज्ञासे मुझे डराती थीं। मेरे भाग्य-दोषसे मुझे कष्ट मिला। लक्ष्मण परम भक्त हैं, मैंने उनका तिरस्कार किया। उस भक्तापराधका दण्ड मुझे मिला। कष्ट अपने कर्मोंका फल होता है। उसमें इनका तो दोष नहीं है। रावण मर गया तो ये कहाँ मुझको सताती हैं। एकका पाप दूसरे नहीं भोगना पड़ता। पापीको ही अपने पापका फल भोगना पड़ता है।'

'हनुमान ! ऐसा कोई सृष्टिमें नहीं है, जिससे कभी कोई अपराध न होता हो।' श्रीसीताजीने स्नेहपूर्वक समझाया—'पापी हो या पुण्यात्मा, चाहे मार देने ही योग्य हो, श्रेष्ठ पुरुष सबके साथ करुणाका ही व्यवहार करते हैं। पापीके साथ भी हमें बुराई करना उचित नहीं है।'

'अम्ब ! आप श्रीरामभार्याके अनुरूप ही ये वचन हैं।' हनुमानने पुनः चरण-वन्दना की— 'मैं अपने स्वामीके समीप जाना चाहता हूँ, आप कोई सन्देश देंगी ?'

'मैं अपने उन आराध्य चरणोंके दर्शन करना चाहती हूँ।' श्रीजनकनन्दिनीको और क्या सन्देश देना था।

'आप अभी सानुज श्रीराघवेन्द्रका दर्शन करेंगी।' पवनकुमारने प्रणिपात किया और लौटे।

'यह आरम्भ जिनके निमित्त हुआ, उन शोक-संतप्ता अम्बा सीताका दर्शन करके मैंने उन्हें आपकी विजय सुनाया। वे परमानन्द-निमग्ना हो गयीं सुनकर।' हनुमानने लौटकर श्रीरघुनाथके पादारविन्दमें प्रणाम करके निवेदन किया— 'वे आपके दर्शनोंको आतुर हैं।'

'जानकीको ले आओ !' विभीषण श्रीहनुमानजीके साथ ही आये थे। उनको यह आदेश देते हुए श्रीरामका स्वर शिथिल था। उनके कमल-लोचन भर आये थे। उनके भीतर एक मनोमन्थन चल रहा था— 'जनकनन्दिनी बहुत अधिक कष्ट पा चुकी हैं, उन्हें और क्लेश कैसे दिया जा सकता है। वे सर्वथा निर्दोष हैं, उनका त्याग कर देना किसी प्रकार उचित नहीं है ; किंतु उनको स्वीकार करनेमें लोकापवाद है। अब राम व्यक्ति नहीं रहा। अपने ही व्यक्तित्वको लेकर विचार करनेका इसे अधिकार नहीं है। अभी अयोध्या चलकर पूर्वजोंका सिंहासन स्वीकार करना होगा इसे। प्रजा तो शासकका अनुवर्तन करती है। लोक-रुचि छिद्रान्वेषी है। अतः अब कर्त्तव्य ?'

विभीषण प्रणाम करके चले गये। देर तक श्रीराम सिर झुकाये सोचते रहे। लक्ष्मण, सुग्रीव किसीमें भी कुछ बोलने-पूछनेका साहस नहीं था। इतना गम्भीर उन्होंने श्रीरामको कभी नहीं देखा था। लेकिन कुछ देरमें जब उन रघुवंश-विभूषणने सिर उठाया, अपने नेत्र पोंछ लिये। उनके मुखपर दृढ़ निर्णयकी आभा आ चुकी थी।

'मैं जसी हूँ, वैसी ही अपने स्वामीके श्रीचरणोंमें उपस्थित होना चाहती हूँ।' श्रीवैदेहीने विभीषणसे कहा। विभीषणको प्रथमावसर प्राप्त हुआ था उन परम श्रद्धेयाके पावन पदोंमें प्रणाम करनेका। वे राजभवनकी निपुणतमा सेविकाओंसे—महाराज्ञी मन्दोदरीकी सेवामें रहनेवाली अत्यन्त सेवा-कला-मर्मज्ञाओंसे घिरे गये थे। सेविकाओंका वह समूह अपने साथ समस्त प्रसाधनोपकरण ले गया था।

'मात: ! हम राक्षस हैं। आप जानती हैं कि अविनय हमारा स्वभाव है। हमें अपनी इच्छा ही पूरी करना आता है।' विभीषणने हाथ जोड़कर विनम्र स्वरमें कहा—'आपने बहुत दिनों तक बड़े भाईके अत्याचार सहे हैं। इस उसीके छोटे भाईके अत्याचार भी आपको एक बार सहने हैं। इसपर इसे तो अपने स्वामी श्रीरघुनाथकी अनुमति प्राप्त हो गयी है।'

सेविकाओंको संकेत करके विभीषण शीघ्र वहाँसे लौट गये। उनमें एक-एक सेवाकी अनेकों मर्मज्ञा थीं। उन्होंने श्रीमैथिलीको घेर लिया। अयोध्या छोड़नेके पश्चात् प्रथम बार उनके श्रीअङ्गोंपर सुगन्धित उद्वर्त्तन लगा। उससे अङ्ग-मार्जन करके सबोंने उष्णोदकमें अनेक सुगन्धित द्रव्य डालकर स्नान कराया। वस्त्राभरण सजाये। केशोंको सुलझाया, सुगन्धित तैलसे सिञ्चित किया। उनकी वेणी बनाकर उनमें मौक्तिक लड़ियाँ लगायीं। अंगोंमें अंगराग, चरणोंमें अलक्तक, कण्ठमें पुष्पमाल्य।

अत्यन्त अनिच्छापूर्वक श्रीमैथिलीको यह सब स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने बार-बार कहा—'मेरे स्वामी जटा-वल्कलधारी तपस्वी वेशमें हैं। मुझे यह सब शोभा नहीं देता। मुझपर दया करो।'

'आप निखिलेश्वरी स्वेच्छासे लङ्का नहीं पधारीं। सबने अपने नवीन सम्राट्का स्वर सीख लिया था—'आपने तो यहाँ अत्याचार ही सहे हैं। हम सब राक्षसियाँ हैं। हमें सेवा करना क्या आवे। हमें अपनी कलाको, अपने करोंको कृतार्थ करनेका आज अवसर मिला है। अत: आज भी आपको हम सबका अत्याचार सहना ही है।'

सूचना मिली विभीषणको सेविकाओंसे—'श्रीवैदेहीको स्नान कराया जा चुका; किंतु अपने स्वामीका दर्शन करनेके पूर्व वे किसी प्रकार यहाँ मुखमें जल भी डालनेको प्रस्तुत नहीं हैं।'

विभीषणने रत्नजटित स्वर्ण-शिविका सज्जित करा रखी थी। उसे उपस्थित किया। भगवती मैथिली उसपर आरूढ़ हुईं। बहुमूल्य कञ्चुक-, उष्णीषधारी महाकाय राक्षस वेत्रहस्त शिविकाको चारों ओरसे घेरकर चले। स्वयं विभीषण उनके आगे-आगे चलने लगे।

श्रीराम नेत्र बन्द किये शिलातलपर ध्यानस्थ बैठे थे। दोनों पार्श्वोंमें लक्ष्मण और और सुग्रीव शान्त खड़े थे। दूसरे वानर-यूथप भी पीछे खड़े थे। श्रीरामकी इस समयकी गम्भीरताने सबको अद्भुत असमञ्जसमें डाल दिया था।

'माता जानकी पधार रही हैं।' विभीषणने शिविका दुर्गद्वारसे बाहर रोक दी। स्वयं आगे आकर प्रणाम करके निवेदन किया।

'तुमने मेरा असीम उपकार किया है।' श्रीरामने सिर उठाकर विभीषणकी ओर देखा। उनका स्वर इतना शुष्क था कि विभीषण चौंक गये। वे जैसे बहुत दूरसे, अत्यन्त तटस्थ बोले—'उन्हें शीघ्र यहाँ ले आओ।'

पवनकुमार जिन्हें अम्बा कहते थकते नहीं; जिनके रूपकी गुणोंकी सदा प्रशंसा सुनी है, जिनकी प्राप्तिके लिए इतना श्रम, इतना कठिन संघर्ष हुआ, वे श्रीवैदेही आ रही हैं तो उनके दर्शनोंकी उत्सुकता वानरोंमें उठनी ही थी। वे सब एक साथ दौड़ पड़े। शिविका-रक्षक उन्हें वेत्र चलाकर वारित करने लगे। इससे विपुल कोलाहल होने लगा।

'विभीषण! सब वानर मेरे अपने हैं। इनका अपमान मेरा अपमान है।' श्रीराम कुछ सरोष बोले—'स्त्रीका सत्कार उसे पर्दमें रखना नहीं है। उसका शील, उसकी सच्चरित्रताही उसका पर्दा है। कष्टमें युद्धमें और स्वयंवरमें पर्दका त्याग दोष नहीं है। अतः सीताको पैदल आना चाहिए। सब वानर उनका दर्शन करें।

लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीवादि श्रीरामके स्वर तथा बोलनेके ढंगसे सशङ्क हो गये। विभीषणने जाकर आदेश सुनाया। आगे-आगे चलने लगे। शिविकासे उतरकर लज्जासे सिकुड़तीं श्रीजानकी विभीषणके पीछे चलीं। उनका ऐसा शृङ्गार किया था राक्षसियोंने, उनको ऐसे बहुमूल्य वस्त्राभरण धारण कराये थे जैसे जनकपुरसे नववधू बनकर वे अयोध्या आयी थीं। इस वेशमें स्वामीके समीप जानेमें उन्हें और भी

लज्जाका अनुभव हो रहा था। श्रीरामका दर्शन करके उनका मुखकमल खिल उठा। उनके मुखसे हर्ष-विह्वल निकला— 'आर्यपुत्र !'

'मैंने रावणको उसके दुस्साहसका दण्ड दे दिया। पुरुषोचित पौरुष प्रकट करके मैंने अपना अपमान मिटा दिया। मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी। मैंने समुद्र पार किया और सुग्रीव, विभीषण, हनुमान आदिका सहयोग सफल हुआ।' श्रीरामने जनक-नन्दिनीको प्रणाम करनेका भी अवसर नहीं दिया। वे अत्यन्त रूक्ष स्वरमें बोलने लगे— 'अब कोई अपनी शक्तिके गर्वमें इस प्रकार किसी आर्यपुरुषको अपमानित करनेका नहीं करेगा। शत्रु-दलन करके मैंने उत्तम पुरुषका कर्त्तव्य पूरा कर दिया।'

'सीता ! तुम दशग्रीवके यहाँ दस महीने रही हो। तुम्हारा चरित्र शुद्ध है, इसपर कौन विश्वास करेगा ?' इसी निष्ठुरताको धारण करनेके लिए श्रीराम इतने समयसे गम्भीर रहे थे। उनके विषम विष-बाण जैसे वाक्य— 'अतः मैं आज्ञा देता हूँ, तुम अब चाहे जहाँ जा सकती हो। मुझे तुमसे कोई प्रयोजन नहीं है। दशग्रीवकी गोदसे गिरी, दूसरेके घर रही स्त्रीको मैं स्वीकार नही कर सकता। तुम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव अथवा विभीषण किसीके आश्रयमें रहकर जीवना-यापन कर सकती हो।'

'आप ऐसा कहते हैं ? आप उत्तम पुरुष ? आप तो सामान्य मानव नहीं हैं। सब स्त्रियोंको आप एक समान ही समझते हैं ?' अपने आराध्य, प्राणोंके प्राण, प्रेष्ठतमसे—जिनका अहर्निशि स्मरण करते इतने विपत्तिके दिन काटे थे, उनके मुखसे ये वाग्वाण सुनकर श्रीजनकनन्दिनी-का मानों हृदय विदीर्ण हो गया। बड़े कष्टसे उन्होने अपनेको मूर्छित होकर गिरनेसे बचाया। अपने अश्रु पोंछे और क्रोध तथा करुणा मिश्रित स्वरमें बोलीं—' मेरा दोष क्या है ? मेरा शरीर परवश था—मैं क्या कर सकती थी ? इतने दिनों साथ रहकर भी आपने मुझे पहिचाना नहीं तो मैं मारी गयी।'

'मैं अयोनिजा हूँ। अग्निकी साक्षीमें आपने मेरा पाणि-ग्रहण किया है। आप स्वामीके रहते, भरत, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषणादि पुत्रोपमो-का आश्रय लेकर मैं जीवन-यापन करूँ ?' वे ओजस्विनी फूट पड़ी–' आपने हनुमानका भेजा तभी क्यों कहला नहीं दिया था कि आप इस सीताको

स्वीकार नहीं करेंगे ? तभी मैं मर गयी होती। आपको समुद्रपर सेतु बनाने, संग्राम करनेका श्रम नहीं करना पड़ता।'

'लक्ष्मण! यदि अब भी मैं तुम्हारी कोई हूँ तो अञ्चल फैलाकर तुमसे भिक्षा माँगती हूँ। उठो! मेरी सहायता करो।' उन तेजोमयीके अश्रु सूख गये। उन्होने सौमित्रकी ओर देखा— 'मेरे लिए चिता प्रस्तुत कर दो! पुण्य होगा तुम्हें। मेरे पतिने सबके सम्मुख मेरा त्याग कर दिया है अतः मैं यह शरीर धारण नहीं करूँगी।'

लक्ष्मण अत्यन्त व्याकुल हो गये। उन्होंने बहुत दयनीयकी भाँति अग्रजकी ओर देखा; किंतु श्रीरामने चिता बना देनेका—श्रीवैदेहीकी बात मान लेनेका संकेत कर दिया दिया। वानर व्याकुल रुदन करने लगे। हनुमान रुष्ट होकर समुद्र तटपर जा बैठे। लेकिन लक्ष्मणके मूक अनुरोधपर विभीषणने राक्षसोंको काष्ठ लानेका संकेत कर दिया। चन्दन काष्ठ आ गया तो रोते-रोते लक्ष्मणने चिता सजाकर उसमें अग्नि लगा दी।

'सब देवता, दिव्य ऋषिगण, दिशाएँ, दिक्पाल मेरा प्रणाम स्वीकार करें। सब साक्षी रहें।' श्रीजनकनन्दिनी हाथ जोड़कर चिताकी प्रदक्षिणा करके स्वस्थ निर्भय वाणीमें बोली—'मेरा हृदय यदि मेरे स्वामी श्रीरामसे क्षण भरको पृथक न हुआ हो तो लोकसाक्षी अग्निदेव मेरी रक्षा करें। यदि मैंने सर्व धर्मज्ञ श्रीरामकी मन, वाणी, कर्मसे कभी उपेक्षा न की हो तो अग्नि मेरी रक्षा करें। यदि सबके नित्य साक्षी सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाशने मुझे शुद्ध चरित ही देखा हो तो अग्नि मेरी रक्षा करें।

सर्वत्र हाहाकार मच गया। स्वर्णवर्णा, रत्नाभरणभूषिता, लोक-वन्दिता वैदेहीने अग्निमें प्रवेश किया। लक्ष्मण मूर्छित होकर गिरे। हनुमान पहिले मूर्छित हो चुके थे। सभी वानरोंने, सुग्रीव, जाम्बवन्तने, विभीषणने, राक्षसोंने भी दोनों हाथोंसे नेत्र बन्द कर लिये थे। सब चीत्कार कर रहे थे। केवल श्रीराम स्वस्थ बैठे थे। इन लीलामयको अग्निमें छिपायी अपनी नित्य सहचरीको प्रकट करना था इस छाया-सीता-को तिरोहित करके।

अचानक आकाश विमानोंसे भर उठा। ऊपरसे पुष्प वर्षा होने लगी। भगवान वृषभध्वज, हंसवाहन सृष्टिकर्त्ता, सुरेन्द्र, जलाधिप

वरुण, यक्षराज कुबेर सब उपस्थित हो गये। सुरोंको देखकर मर्यादा पुरुषोत्तम अञ्जलि बाँधकर खड़े हो गये।

सर्वेश्वरेश्वर ! सर्वज्ञ ! सर्वसञ्चालक ! आप अपनी ही अभिन्न शक्ति भगवती सीताकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ?' सभी सुरोंने स्तवन किया— 'आप स्वयं प्रभु, आत्मतन्त्र हैं ; किंतु सामान्य मनुष्यके समान श्रीजनकनन्दिनीकी उपेक्षा उचित नहीं है।'

'आप सब मुझ मानव दशरथात्मजकी स्तुति क्यों कर रहे हैं ?' श्रीरामने अत्यन्त सङ्कोच पूर्वक कहा।

'चक्रायुध ! सर्वकारण कारण ! सर्वान्तर्यामी स्वयं प्रकाश आप ही जैसे लोकोंकी रक्षाके लिए अपनी योगमायाका आश्रय लेकर कभी वाराह, कभी नृसिंह, कभी कच्छप, वामन या मत्स्य बनते हो, वैसे ही इस समय दशरथात्मज बने हो।' चतुर्मख हंस वाहन बोले— 'पुरुषोत्तम ! अजित ! सृष्टिमें आप ही सत्ता रूपसे व्याप्त हो। सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन, लयके आश्रय आप हो। सर्व शरण, सर्वाश्रय शरणागत वत्सल ! आपका स्वरूप कौन जान सकता है। आप सर्वरूप, सर्वन मा, सर्व-व्यापक हो। आपका दर्शन, आपका पराक्रम अमोघ है। आप अपनी अभिन्न शक्तिका त्याग कैसे कर सकते हैं ?'

'श्रीराम ! यह निष्पापा सीता तुम्हारी हैं। ये सद्वृत्ता हैं ?' इन्होंने मन, वाणी, कर्मसे कभी तुम्हारा अतिक्रमण नहीं किया है।' सहसा चिताकी लपटें एक बार आकाश तक भभककर बुझ गयीं। चिता बिखर गयी। द्विमूर्धा, सप्तजिह्वा, अंगारलोचन, लपट केश अग्निदेव लोहित वस्त्रधारिणी, घुँघराले केश, अम्लान पुष्पमाल्यसज्जिता श्रीसीताको लेकर प्रकट हुए। बोले— 'रावणकी वाटिकामें भी अनाहार रहकर इन्होंने केवल तुम्हारा चिन्तन किया है। तुम अपनेको मानव कहते हो, अतः लोकपाल हव्यवाह होनेके कारण मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, इन्हें स्वीकार करो। इनका कभी तिरस्कार मत करना।'

'आपकी आज्ञा उचित है।' प्रेमाश्रुपूर्ण दृग, गद्गद्स्वर श्रीराम-ने सिर झुकाया— 'निःसन्देह सीतामें कल्मषलेश भी नहीं है ; किंतु दीर्घकाल तक ये रावणान्तःपुरमें रही थीं। मैं इन्हें ऐसे ही स्वीकार कर लेता तो लोकापवाद इन्हें भी बहुत व्यथा देता। मैं जानता था, ये

सर्वथा निष्पापा हैं। ये अपने तेजसे ही रक्षित हैं। रावण इनका तिरस्कार करनेमें असमर्थ था। मैं इनका त्याग नहीं कर सकता। अब तो ये आप लोकपूज्यका प्रसाद बनकर मुझे प्राप्त हुई हैं। आपकी आज्ञा मुझे स्वीकार है।'

श्रीरामने आगे बढ़कर श्रीजनकनन्दिनीका कर पकड़ा। यह साक्षत् अग्निदेवकी साक्षीमें पुनः पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। आशीर्वाद देकर अग्नि अदृश्य हो गये। श्रीरामने वैदेहीको अपने समीप बैठा लिया।

हर्षविह्वल लक्ष्मण और हनुमानने एक साथ श्रीसीतारामके चरणोंमें मस्तक रखा। वानर जयघोष करते उछलने-कूदने लगे। लङ्कामें बधायीके वाद्य बज उठे। दिशाएँ निर्मल हो गयीं। सर्वत्र व्याप्त दुःख, शोक, व्याकुलताकी कालिमा स्वच्छ हो गयी। सुर प्रसन्न होकर सुमन-वर्षा करने लगे। गगनमें गन्धर्व, किन्नर, अप्सराओंका नृत्य-वाद्य-महोत्सव प्रारम्भ हो गया।

उपसंहार—

'आपने लोककण्टक रावणको मारकर सबको सुखी किया। अब अयोध्या पधारें!' भगवान् आशुतोष गगनसे सम्मुख उतरे तो सीता-लक्ष्मण के साथ श्रीराम उठकर खड़े हो गये। प्रणाम किया। वे नीलकण्ठ प्रसन्न थे— 'भरत-कौसल्या तथा अयोध्याके जन बहुत दुःखी हैं। उनको सुखी करें। इक्ष्वाकुवंशकी स्थापना करें। अश्वमेध यज्ञ करके भुवनको-भूपतियोंको आदर्श दें।'

'वह विमानमें श्रीचक्रवर्ती महाराज आ रहे हैं।' संकत करके सदाशिव चले गये। निर्मल वस्त्र, तेजोदेह महाराज दशरथ विमानसे उतरे। प्रणाम करते दोनों पुत्रोंको उठाकर हृदयसे लगाया। हर्ष-विभोर बोले— 'वत्स रामभद्र! तुम्हारे बिना स्वर्ग मुझे तुच्छ लगता है। तुमने वनवासकी अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली। कैकेयीके कड़े वचन मेरे हृदयमें शूलके समान पीड़ा देते थे, वधूके साथ आज तुम्हें देखकर मैं सुखी हुआ अब अयोध्या जाओ और यशस्विनी कौशल्याको सुखी करो। मेरी तीव्र अभिलाषा तुम्हें सिंहासनारूढ़ देखनेकी थी। तुमने वनवासकी अवधि पूर्ण करली। दशग्रीवको मारकर सुरोंको सुखी कर दिया। अब मेरी वह अभिलाषा पूर्ण करो।'

'लक्ष्मण! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें धर्म और यश प्राप्त हुआ।' महाराज दशरथने लक्ष्मणकी ओर देखा— 'श्रीराम सदा सबके कल्याणमें लगे रहते हैं। इन्द्रादि देवता भी तुम्हारे इन अग्रजका पूजन करते हैं। ये साक्षात् परमब्रह्म हैं। तुमने इनकी सेवामें लगकर मुझे पुत्र-वान बनाया। मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ।'

'वत्से वैदेही?' अवनतमुखी पुत्रवधूसे श्रीचक्रवर्ती महाराजने कहा— 'श्रीराममे तुम्हारे अपयश-मार्जनके लिए यहाँ तुम्हारी उपेक्षा दिखलायी। इनकी अवज्ञा, या इनपर क्रोध मत करना। यही तुम्हारे परम देवता हैं।'

तीनोंको आशीर्वाद देकर महाराज दशरथ विमानमें बैठकर स्वर्ग गये। सायंकाल हो गया था। विभीषण हाथ जोड़े आगे आकर खड़े हो गये— 'आप सानुज सुग्रीवादि सहित नगरमें पधारें। स्नान करके आभरण धारण करें।'

'अभी वनवासकी अवधि व्यतीत नहीं हुई है।' श्रीरामने स्नेहपूर्वक कहा— 'तुम सुग्रीवादिका सत्कार करो। मैं भाई भरतको स्नान कराके, उनकी जटाओंको सुलझाकर ही शिरःस्नान करूँगा। उनसे मिले बिना एक-एक क्षण युगोंके समान व्यतीत हो रहा है।'

'आप मुझपर अनुग्रह करें। लङ्काकी प्रजाको भी अपनाकर पवित्र कर दें!' विभीषणने पुनः प्रार्थना की— 'प्रातःकाल पुष्पक विमानके द्वारा अयोध्या पधारें।'

'तुमने भली प्रकार मेरा सत्कार किया। मेरा मन भरतके समीप है। उनके बिना मैं कोई भोग स्वीकार नहीं कर सकता। श्रीरामने नगरमें जाना स्वीकार नहीं किया। लक्ष्मण और सीताके साथ वे उस युद्ध-स्थलीमें ही रात्रिको रहे। हनुमान उनके समीप रहे। बहुत आग्रह करके विभीषण सुग्रीवादि वानर-यूथपोंको नगरमें ले गये। उनका उत्तम आतिथ्य किया।

'विभीषण! बुरा मत मानना कि मैंने तुम्हारी उपेक्षा की।' प्रातःकाल पद-वन्दनाके लिए आते ही श्रीरामने विभीषणसे कहा— 'मेरी माताएँ, गुरुदेव, सुहृद सब दुःखी हैं। मैं उन्हें देखनेको आतुर हूँ। अतः विमान शीघ्र उपस्थित करो।'

'सम्पूर्ण स्वर्ण-निर्मित विमान उपस्थित करके विभीषणने निवेदन किया— 'दशग्रीवने इसे यक्षराज कुबेरसे छीना था। अब यह आपका है। आप इसे स्वीकार करके मुझे कृतार्थ करें।'

'धनाधीशका स्वत्व है इसपर।' श्रीरामने विमानको देखा— 'यह उनकी सेवामें रहे, उचित यही है। आवश्यकता होनेपर मैं इसका उपयोग कर लिया करूँगा। उन लोकपालको इसमें आपत्ति नहीं होगी है।'

अद्‌भुत विमान था पुष्पक। उसके लिए किसी चालककी आवश्यकता नहीं थी। जिसके अधिकारमें हो, उसकी इच्छानुसार वह

कहीं भी जा सकता था। उसे बिना किसी आरोहीके कहीं भी भेजा या कहींसे भी बुलाया जा सकता था। वह अपने आरोहीकी इच्छानुसार केवल संकल्पसे गगनमें स्थिर रह सकता था, मन्द गतिसे चल सकता था और शब्दसे कई गुना तीव्र भी चल सकता था। वह पृथ्वीपर, जलपर, या पर्वत-शिखरपर भी उतर सकता था।

पुष्पकके भीतर सदा सुखद वातावरण रहता था। शीत, ताप, ओले, वर्षा, अन्धड़का उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। वह बहुत ऊपर ग्रहान्तरोंमें भी जा सकता था और पृथ्वीके बहुत पाससे उड़ सकता था। नगरमें राजपथपर भी उसे उतारा जा सकता था।

पुष्पकमें वैदूर्य मणिकी वेदियाँ बैठनेके लिए बनी थीं। यह समूचा विमान केवल संकल्प करनेसे छोटा अथवा बड़ा किया जा सकता था। छोटा इतना कि एक ही आरोही बैठे। बड़ा इतना कि विशाल सेना उसमें आ जाय। यद्यपि वह यात्री-विमान था, उसे क्षणार्धमें युद्ध-विमान बनाया जा सकता था। उसपर किसी अस्त्र-शस्त्रका प्रभाव नहीं पड़ता था।

पुष्पकमें ऐसी ध्वजाएँ लगी थीं कि वे वृक्ष, पर्वतादिके मध्यसे विमानके जानेपर भी उलझती या टूटती नहीं थीं। विमानके आरोही भीतर वैसे ही चल-फिर सकते थे, जैसे भूमिपर हों। विमानके उतरते या उड़ते समय भी कोई झटका नहीं लगता था।

सम्पूर्ण विमान बहुत सुसज्ज था। उसमें प्रकाशको इच्छानुसार रखा जा सकता था। विमान उड़ता था, तब बाहर केवल एक मधुर संगीत-लहरी हंसोंके कूजनके समान गूंजती थी। विमानके भीतर तो विमानकी गति, शब्दका पता भी नहीं चलता था।

निधिपति कुबेरका यह विमान असंख्य आरोहियोंको महीनों अन्तरिक्षकी यात्रा करा सकता था। उसमें सभी आरोहियोंकी सुख-सुविधाकी पूरी सामग्री सदा विद्यमान रहती थी। उसमें बैठने अथवा शयन करनेकी सब सुविधाएँ थीं।

सबसे बड़ी बिशेषता यह कि पुष्पक दिव्य विमान था। वह स्वयं आदेश समझ सकता था एक जीवित बुद्धिमान मनुष्यके समान। उसे

दीर्घकाल तक स्मरण रख सकता था और समयपर उसके अनुसार कार्य करता था।

'वानरेन्द्र ! अब सब वानरोंको अपने स्थानोंपर जानेकी आज्ञा दे दें।' श्रीरामने विमान आ जानेपर सुग्रीवसे कहा— 'इन्हें अपने स्त्री-पुत्र-परिवारसे पृथक हुए पर्याप्त समय हो गया।'

'मैं आप सबका बहुत उपकृत हूँ। आप सबकी सम्मिलित सहायतासे ही दशग्रीव मारा गया और विभीषण लङ्काका राज्य पा सके।' श्रीरामने समस्त वानर-सेनाको सम्बोधित किया— 'अब सब लोग अपने आवास पधारें। किसीको भी कोई कष्ट कभी हो तो मुझे सूचित करनेमें संकोच न कर। अयोध्या आप सबकी है। राम आप सबका है।'

विदा होनेका समय बहुत विषम होता है यदि किसी प्रियसे विदा होना हो। श्रीराम प्राणोंके प्राण। ऐसा संकोचशील, स्नेहमय परमोदार स्वामी सृष्टिमें कहाँ सुलभ है जो प्रत्येक पल सेवकोंको सम्हालता रहे। लङ्काके दारुण युद्धमें भी जिन्होंने स्वयं आगे रहकर सबकी रक्षा की, सबकी सुविधाको आगे रखा, आहत एवं मृत वानरोंको भी स्वस्थ, सजीव बनाया, उन श्रीरामसे विदा—उनका वियोग—वानर व्याकुल हो गये; किंतु विदा तो होना ही था। सब श्रीसीतारामकी चरण-वन्दना करके जाने लगे।

किसीको नहीं लगा कि श्रीराम उससे व्यक्तिगत रूपसे नहीं मिले या उससे बात नहीं की। वे सर्वसमर्थ सबसे मिले। सबका स्वास्थ्य पूछा। सबको कर-स्पर्शसे सन्तुष्ट करके भेजा उन्होंने।

'वानरेन्द्र ! मैं तुमसा मित्र पाकर गौरवान्वित हुआ।' श्रीरामने सुग्रीवके कन्धेपर हाथ रखा— 'तुमने मित्र-धर्मका पूरा पालन किया। अब तुम किष्किन्धा पधारो।'

अकेले सुग्रीव ही नहीं थे। उनके पीछे अङ्गद, जाम्बवन्त, नल-नील, मैन्द, गय, गवाक्षादि सब यूथप हाथ जोड़े, साश्रुलोचन खड़े थे। विभीषण भी इसी समूहके साथ आकर खड़े हो गये थे। केवल द्विविद वानरोंके साथ विदा हो गया था। वह अपने अपकर्मसे—अपराधसे लज्जित होकर श्रीरामके सम्मुख आनेका फिर साहस नहीं कर सका।

हनुमान इस यूथसे तटस्थ विमानमें श्रीरघुनाथके बैठनेकी वेदिका सज्जित करनेमें लगे थे। उन्हें आवश्यक नहीं लगा कि अयोध्या जानेकी अनुमति श्रीरामसे माँगनी है। उन्होंने साथ जाना सुनिश्चित मान लिया था। वे अपनेको श्रीरामकी सेवामें सदाको अर्पित कर चुके। इसमें पूछने-की आवश्यकता ?

'हम सब आपके साथ जाकर आपके स्वजनोंका दर्शन करना चाहते हैं।' सुग्रीव तथा विभीषणने एक साथ प्रार्थना की—'आपके अभिषेक महोत्सवमें सम्मिलित होनेके पश्चात् आप जैसा आदेश करेंगे।'

'अच्छा, तब सब लोग विमानमें बैठें। श्रीराम सीता तथा अनुज-के साथ विमानमें आरूढ़ हो गये। उनके पीछे विभीषण, सुग्रीव आदि भी विमानमें आ बैठे। श्रीरामके आदेशसे विमान ऊपर उठा।

नवीन पुस्तकें

सब पाकेट आकारमें—सबके लेखक—**श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'**

१. **ज्ञान-गंगा (कहानियाँ)**—गीताके अध्याय १५ की कहानी व्याख्या, २१ कहानियाँ, पृष्ठ २८४, मूल्य ४)५०

२. **भक्ति-भागीरथी (कहानियाँ)**—गीताके अध्याय १२ की कहानी व्याख्या, १२ कहानियाँ, पृष्ठ २४८ मूल्य ४)००

३. **नवधा-भक्ति (कहानियाँ)**—श्रीमद्भागवत तथा श्रीरामचरितमानस—दोनोंकी नवधा-भक्ति सम्बन्धी १८ कहानियाँ, पृष्ठ १७४, मूल्य ३)००

४. **उन्मादिनी यशोदा**—'व्रजका एक दिन' की भाँति अत्यन्त भावपूर्ण, पृष्ठ १६४ मूल्य २)५०

५. **सांस्कृतिक कहानियाँ (भाग १२)**—जीवनको उन्नत बनानेवाली परम प्रेरणादायक कहानियाँ सभी भाग संग्रहणीय, प्रत्येककी पृष्ठ संख्या १४८ मूल्य २)००

प्राप्ति-स्थान—

श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा-संस्थान,

मथुरा-२८१००१

श्रीकृष्ण - सन्देश

[आध्यात्मिक मासिक-पत्र]

श्रीकृष्ण-सन्देशका वर्ष जनवरीसे प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण-सन्देश प्रतिमास सुरुचिपूर्ण पाठ्य-सामग्री देता है।

आप श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' की सशक्त लेखन-शैलीसे इस पुस्तकके द्वारा परिचित हो रहे हैं। श्रीकृष्ण-सन्देशमें श्री 'चक्र' द्वारा लिखित 'श्रीकृष्णचरित' प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ और उन्हीं द्वारा लिखित 'श्रीरामचरित' प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ जा रहा है।

वार्षिक शुल्क— १० रुपया।

आजीवन शुल्क— १५१ रुपया।

सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक—
श्रीकृष्ण-सन्देश
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंस्थान
मथुरा-२८१००१